सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

५४

(६ मार्च से २२ अप्रैल, १९३३)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें जिस डेढ़ महीने (५ मार्चसे २२ अप्रैल, १९३३)की अवधिकी सामग्री दी गई है वह यद्यपि बाह्यत: घटनाशून्य थी, किन्तु गांधीजी के लिए यह स्पष्ट ही बढ़ते हुए मानसिक तनावका समय था। सितम्बर १९३२ के उपवासके बाद लोगोंमें उत्साहकी जो लहर दौड़ गई थी वह अब शान्त हो रही थी, लेकिन उधर एक ओर तो हरिजन सुधारोंकी धीमी गतिसे अधीर हो रहे थे और दूसरी ओर सनातनियोंने हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके खिलाफ अपने विरोधकी तैयारी शुरू कर दी थी। गांधीजी को इन दिनों जो पत्र मिल रहे थे उन सबको पढ़ना और हरिजनों, सनातनियों तथा सुधारकोंसे बातचीत करना "धधकती आगमें से होकर गुजरना" जान पड़ता था (पृष्ठ ५२)। आश्रमकी समस्याओंको लेकर भी गांधीजी काफी चिन्तित रहे — विशेषकर उस अमेरिकी युवतीके नैतिक कल्याणकी समस्याको लेकर जिसके लिए उन्हें वैसी ही फिक्र रहती थी "जैसी माँको अपनी बच्चीके लिए होती है" (पृष्ठ ३९०)। उन्होंने नारणदास गांधीको लिखा: "एकके-बाद-एक कोई-न-कोई धर्मसंकट मेरे सामने खड़ा ही रहता है" (पृष्ठ १५४)। परिणामत: गांधीजी के इस कथनके बावजूद कि "मेरे अपने मनमें पूर्ण शान्ति है" (पृष्ठ ११०), ऐसा प्रतीत होता है कि उनके अन्दर मानसिक संकटकी स्थिति उत्पन्न होती जा रही थी, जिससे उन्हें छुटकारा मिला ३० अप्रैलकी रातको, जब उन्होंने आत्म-शुद्धिके लिए तीन सप्ताहका उपवास करनेका निश्चय किया।

गांधीजी को यह देखकर बड़ा दु:ख हुआ कि उनके सितम्बर १९३२ के उपवासका प्रभाव अस्थायी सिद्ध हुआ, यद्यपि पहले उन्होंने इसी उपवासके परिणामोंसे परम सन्तुष्ट होकर इसे आधुनिक युगका चमत्कार माना था (देखिए खण्ड ५१)। गांधीजी के ही शब्दोंमें, "उस समय हिन्दू लोग जोशमें थे और उस अवस्थामें उन्होंने बहुत-से ऐसे काम किये जिन्हें बादमें जोश ठंडा पड़नेपर मिटा दिया।" बंगालमें तो उस उपवासके परिणामस्वरूप सम्पन्न यरवडा समझौतेमें परिवर्तन कराने के लिए एक आन्दोलन ही खड़ा हो गया (पृष्ठ ४४२)। सनातनियोंके साथ अपनी वार्त्ताके विफल होनेसे गांधीजी के मनको गहरा क्लेश पहुँचा, क्योंकि हिन्दू धर्मके मूलभूत मूल्योंके प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी और इसलिए वे नहीं चाहते थे कि हिन्दू धर्म मिट जाये, जबकि उनका विश्वास था कि यदि अस्पृश्यता कायम रही तो हिन्दू धर्म अवश्य मिट जायेगा।

हिन्दू धर्मके मूल्योंमें उनकी श्रद्धाका यह एक बड़ा प्रमाण था कि उग्रवादी सुधारोंके प्रहारों और उनके कार्यसे सहानुभूति रखनेवाले ईसाइयोंकी आलोचनाओंको झेलकर ही वे वर्णाश्रम धर्म तथा मन्दिरोंमें पूजाकी परम्पराकी हिमायत पूर्ववत् करते रहे। उनका कहना था कि "वर्ण-व्यवस्था भौतिक लाभको मर्यादित करती है, जिससे

आत्मविकासके लिए अधिक अवकाश मिल सके" (पृष्ठ ३७५)। उनकी मान्यता थी कि जीवनका लक्ष्य केवल "समाजमें ऊपर उठना" नहीं, बल्कि अपने मानव-बन्धुओंकी सेवा करना है, और इसलिए वर्ण-धर्मको बुद्धिपूर्वक स्वीकार करने से "मनुष्य सन्तुष्ट रहता है और उसकी बहुत-सारी शक्ति नैतिक उत्थानके लिए प्रयुक्त होनेको बच जाती है। इसकी अवमानना करने का मतलब होता है हानिकर असन्तोष, लालच, बन्धु-विनाशी स्पर्धा और नैतिक गतिरोध; और इस सबका परिणाम अन्तमें आध्यात्मिक आत्महत्या ही होता है" (पृष्ठ ५०-५१)। किन्तु उन्होंने देखा कि आजके युगमें वर्ण-धर्मको पुनरुज्जीवित करनेके लिए "सबको स्वेच्छासे शूद्रोंका धर्म स्वीकार करने की जरूरत है" (पृष्ठ १४८) और "अपने परिश्रमसे और शारीरिक श्रम करके अपनी रोटी" कमानेकी आवश्यकता है (पृष्ठ २२२)। इसमें गांधीजी का मंशा यह था कि "सभी अपने श्रमके बलपर जियें और इसलिए किसीको भी अपने निर्वाह-भरके लिए आवश्यक साधनोंसे अधिक पानेका अधिकार नहीं है" (पृष्ठ २६)। उनके विचारसे आजीविका शरीर-श्रमसे पैदा करनी चाहिए और दिमागको सेवाके काममें लगाना चाहिए (पृष्ठ ४९)।

जहाँतक मन्दिरोंमें पूजा करने का सम्बन्ध था, उसके प्रति उनकी वैसी ही दृढ़ श्रद्धा थी जैसी कि अधिकांश हिन्दुओंके मनमें युगोंसे रही है। यद्यपि वे स्वयं अद्वैत दर्शनको मानते थे, किन्तु उनका कहना था कि "उस दर्शनमें ऐसा तो कुछ नहीं जो मन्दिरोंमें हमारे विश्वासको गलत बतलाये" (पृष्ठ १८२)। उनके विचारसे यदि कोई द्वैतका अनुभव करता है तो उसमें चिन्ताकी कोई बात नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धमें उसकी स्थिति, वह सत्यको जिस रूपमें देखता है, उसके अनुसार ही होगी (पृष्ठ ४४८)। इसी प्रकार कर्म और भक्तिमें भी उन्हें कोई अन्तर्विरोध दिखाई नहीं देता था; क्योंकि "दर्शनका प्रयोजन तो कर्मकी प्रेरणा ग्रहण करना, आत्माकी स्थिरता और शुद्धि प्राप्त करना है। इस प्रकार दर्शन कोई सदाचरण का विकल्प नहीं है। वह उसमें प्रवृत्त होनेकी एक प्रेरणा-मात्र है" (पृष्ठ १२४)। एक अमेरिकीने गांधीजी की आलोचना करते हुए कहा था कि "मन्दिरोपासक हिन्दू धर्मका पक्ष" लेकर (पृष्ठ ५४) अपनी बातोंका सार्वभौमिकताका तत्त्व खो दिया है (पृष्ठ ५४)। उत्तरमें गांधीजी ने लिखा कि "मुझे ऐसे किसी भी धर्म या सम्प्रदायकी जानकारी नहीं है जिसका काम अपने देवालयके बिना चला हो या चल रहा हो" (पृष्ठ ५५)। अपनी माताके नियमित रूपसे मन्दिर जानेका दृष्टान्त देते हुए उन्होंने कहा, "उनकी श्रद्धा शायद मेरी श्रद्धासे बहुत अधिक गहरी थी, यद्यपि मैं मन्दिर नहीं जाता" (पृष्ठ ५६)। एक अन्य लेखमें अपनी बात स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि मन्दिर, मसजिदें और गिरजे "वैसे ही तो हैं जैसा हमारी श्रद्धाने उन्हें बनाया है। ये किसी प्रकार अदृश्यतक पहुँच पानेकी मनुष्यकी पिपासाके परिणाम हैं।" उन्होंने कहा कि मन्दिरमें उपासना करना "श्रद्धाका एक सुन्दर क्रियागत रूप . . . है" और यद्यपि उनमें सुधारका अवकाश है, तथापि वे "कायम तो मानवके अस्तित्व-पर्यन्त" रहेंगे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत अनुभवका प्रमाण देते हुए लिखा: "हो सकता है,

इसका कारण मेरा बचपनका संस्कार हो; सम्भव है, इसकी वजह तुलसीदास द्वारा मेरे मनमें रामके प्रति उत्पन्न किया गया तीव्राकर्षण ही हो। लेकिन जो प्रबल तथ्य है वह तो है ही। और ये पंक्तियाँ लिखते हुए भी मेरे मनमें बचपनकी वह स्मृति ताजा हो आई है जब मैं अपने पैतृक घरके निकट स्थित राम-मन्दिरमें जाया करता था। तब मेरा राम वहीं निवास करता था। उसने मुझे अनेक तरहके भय और पापोंसे बचाया। . . . जो बात मुझपर लागू होती थी और होती है वही करोड़ों हिन्दुओंपर भी लागू होती है" (पृष्ठ ११२)।

शब्दोंके प्रयोगके सम्बन्धमें गांधीजी यदा-कदा जो स्वतन्त्रता लेते थे उसका औचित्य सिद्ध करते हुए उन्होंने कहा: "सत्यकी खोजमें विचार करना पड़ता है। संकुचित अर्थसे सन्तोष नहीं होता। ध्यान करने से उसी शब्दके उसी अर्थमें ही सन्तोष का बीज देखनेमें आता है। . . . गोसाईं तुलसीदास कहते हैं, "राम ही ओम् है, राम ही वेद है। . . . सब वही है, और कुछ नहीं।" पौराणिक कथाओं और परम्परागत प्रतीकोंकी अनिवार्य अनेकार्थतापर जोर देते हुए उन्होंने तुलसीदासकी ही इस उक्तिका प्रमाण दिया: "मेरा राम दशरथनन्दन है सही, लेकिन वह उससे भी बहुत अधिक है। वही सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म है।" गांधीजी मानते थे कि "इस कथनमें कोई विरोध नहीं, विचार-विस्तार, अर्थ-विस्तार है" (पृष्ठ ३७८)। इस प्रकार गांधीजी ने सनातन धर्मके निगूढ़ रहस्यवादी का, पूर्णमें पूर्णसे पूर्णकी ओर, सत्में सत्यसे सत्यकी ओर चेतनाके विकासका, रूपकों और अन्योक्तियोंकी अविस्मृत भाषामें सुरक्षित पीढ़ियोंको जोड़नेवाली स्वाभाविक धार्मिकताका स्वागत किया और उन्हें एक पवित्र थातीकी तरह सँजोकर रखी जानेवाली वस्तु माना।

सामान्य हिन्दुओंकी तरह गांधीजी भी उपवासको प्रायश्चित्तका एक रूप और स्वजनोंके दोषोंको दूर करने के लिए प्रयोग किया जानेवाला एक प्रभावकारी साधन मानते थे। गांधीजी के ही शब्दोंमें, "हिन्दू धर्म-ग्रन्थ उपवासके दृष्टान्तोंसे भरे पड़े हैं, और आज भी हजारों हिन्दू छोटे-छोटे कारण उपस्थित होनेपर भी उपवास करते हैं। यह ऐसी चीज है जो कमसे-कम नुकसान पहुँचाती है। . . . अच्छाईके नामपर कभी-कभी बुराई भी की जाती है, इसीलिए अच्छा काम करना छोड़ा तो नहीं जा सकता" (पृष्ठ ४४३)।

इस तरह हिन्दू धर्मके मूलभूत मूल्यों और दृष्टिकोणोंको, नामों और रूपोंकी उपासनामें उसकी काल-सापेक्ष्य श्रद्धाको तथा नैतिक वृत्तिके विकासमें पौराणिक उपाख्यानों और मानवीय स्नेहकी प्रभावकारिताको स्वीकार करते हुए, गांधीजी ने यह दावा किया कि वे सनातनियोंसे भिन्न नहीं हैं (पृष्ठ ४५६), और इसलिए "ईसाई धर्म, या . . . खुद अपने धर्मके अतिरिक्त किसी भी धर्मके बारेमें कोई फतवा देना" (पृष्ठ २५९) उन्होंने अनधिकार चेष्टा मानी, लेकिन अपने सहधर्मियोंकी रीति-परम्पराओं और आचरणके दोषोंकी आलोचना करने में उन्होंने तनिक भी झिझक नहीं दिखाई। इस प्रकार, जहाँ उन्होंने ब्राह्मणत्वके आदर्शकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा की वहाँ निःसंकोच यह भी कहा कि "सब ब्राह्मणोंमें . . . सच्चा ब्राह्मणत्व नहीं रहा"

(पृष्ठ २०४)। उनके विचारसे "ब्राह्मणत्वके यानी हिन्दू धर्मके फिरसे जीवित होनेकी अचूक कसौटी अस्पृश्यताकी बुराईका जड़-मूलसे मिटना" था (पृष्ठ २०५), क्योंकि अस्पृश्यता एक भारी झूठ था, घोर अन्याय था। ऐसा भी तो सम्भव था कि गांधीजी के समस्त प्रयत्नोंके बाद भी अस्पृश्यता न मिटे। उनका कहना था कि यदि अस्पृश्यताको न मिटना है और इसलिए "हिन्दू धर्मका नाश होना ही है तो कौन क्या कर सकेगा? . . . जैसी भवितव्यता होगी वैसी ही मति-गति सवर्ण हिन्दुओंको सूझेगी। होनहार होकर रहेगी" (पृष्ठ ५२३)। गांधीजी हिन्दू धर्मके भविष्यके विषयमें ऐसे आशंकामय उद्‌गार व्यक्त करें, यह स्वाभाविक न होते हुए भी उनकी आत्माकी आकुलताका द्योतक था। विशेष रूपसे गुजरातियोंको सम्बोधित करके लिखे एक लेखमें उन्होंने कहा: "अस्पृश्यता बनी रहे और मुझे जीना पड़े, यह तो जहरके प्यालेके समान है।" उसी लेखमें आगे एक और उपवासकी सम्भावनाका संकेत देते हुए उन्होंने लिखा: "या तो मुझे निरुपाय होकर मृत्यु-शय्यापर लेट जाना चाहिए या फिर मुझमें जितनी शक्ति हो उतनी शक्ति अस्पृश्यता-रूपी रावणका वध करने में लगानी चाहिए" (पृष्ठ ७२)। हिन्दू धर्मके शुद्धीकरणके इस अत्यन्त कठिन और आवश्यक कार्यमें उन्होंने विश्वसे सहानुभूति देनेका निवेदन किया, क्योंकि वह एक प्रकारसे "सारे मानव-परिवारकी शुद्धि" था (पृष्ठ ४४२)।

गांधीजी ने एक अधीर कार्यकर्त्ताकी इस बातसे तो सहमति प्रकट की कि "अस्पृश्यताको मिटाने के लिए कड़े कदम उठाने की आवश्यकता है," लेकिन साथ ही यह भी कहा कि "ये कदम तो हमें अपने ही विरुद्ध उठाने हैं" और सनातनियोंका हृदय-परिवर्तन कार्यकर्त्ताओंकी प्रार्थना, उपवास, कष्ट-सहन तथा आत्म-शुद्धिसे ही सम्पादित किया जा सकता है (पृष्ठ ४४६)। हरिजन-सेवामें लगे कार्यकर्त्ताओंको जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ रहा था उनकी गुरुताको स्वीकार करते हुए गांधीजी ने उनसे स्वयं अपनेमें और अपने कार्यकी महत्तामें श्रद्धा रखनेको कहा। उनके विचारसे इस कार्यके लिए आदर्श कार्यकर्त्ता वह था जो "हरिजनों और सनातनियों दोनोंको सन्तुष्ट" रखे और जिसमें "अत्यन्त ऊँचा चरित्र, अपार विनयशीलता और असीम उदारता" हो, और साथ ही जिसमें ऐसी श्रद्धा हो कि "सत्य ही जीवन है और ज्यों ही यह किसी मानवमें अपना घर कर लेता है त्यों ही अपना विस्तार स्वयं कर लेता है" (पृष्ठ ५३)। उनका कहना था कि ऐसी श्रद्धासे कार्यकर्त्तामें जो "प्रचण्ड शक्ति पैदा" होगी वह उसे हर परिस्थितिमें हताश होनेसे बचायेगी (पृष्ठ ४५४)।

अस्पृश्यताकी बुराईके विरुद्ध जनमतको सचेत करने के लिए चार मासतक व्यापक और गहन प्रचार-कार्य करने के बाद गांधीजी ने सब कार्यकर्त्ताओंसे हरिजनोंकी आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक प्रगतिके निमित्त रचनात्मक कार्यक्रमपर अधिक ध्यान देनेको कहा। उन्होंने समझाया कि सबसे अधिक प्रभावकारी प्रचार रचनात्मक कार्यमें निहित है, क्योंकि "सवर्ण हिन्दू स्वयंसेवकों द्वारा किये गये मूक, प्रभावकारी और गरिमामय कार्य" तथा इसके फलस्वरूप समाजमें हरिजनोंके दरजेमें आया सुधार सनातनियोंके "हृदयोंको प्रभावित किये बिना नहीं रहेंगे" (पृष्ठ २८७)। ऐसे

रचनात्मक कार्यके संयोजन और संगठनके लिए घनश्यामदास विड़लाकी अध्यक्षतामें हरिजन सेवक संघ नामकी एक संस्था स्थापित की गई थी, जिसकी शाखाएँ सभी प्रान्तोंमें थीं। गांधीजी संघके कर्मठ और समर्पित मन्त्री अमृत विट्ठल ठक्करसे बराबर पत्र-व्यवहार करते रहे और उन्हें यह सुझाव देते रहे कि संघका काम शक्ति और साधनके किसी प्रकारके अपव्ययके बिना सुचारु रूपसे कैसे चलाया जा सकता है। उन्होंने संघकी नियमावली तैयार करनेमें भी बड़ी रुचि ली और महादेव देसाई द्वारा तैयार किये गये उसके मसविदेमें काफी परिवर्तन किये (पृष्ठ १७-२२ और ९७-९८)। रचनात्मक प्रवृत्तियोंमें गांधीजी समर्पित शिक्षकों द्वारा हरिजनोंके बीच शैक्षणिक कार्यको विशेष महत्त्व देते थे और उन्होंने 'हरिजन' में एक लेख लिखकर यह भी समझाया कि इन शिक्षकोंसे उनकी क्या अपेक्षाएँ थीं। उन्होंने यह स्वीकार किया कि उनकी कसौटी यों तो बहुत कड़ी थी, लेकिन साथ ही यह भी कहा कि "स्वेच्छा-पूर्वक काम करनेवाले के लिए यह . . . उतनी कठिन नहीं है।" उसी लेखमें उन्होंने चम्पारनमें (देखिए खण्ड १३) "पूरी सफलताके साथ" इस क्षेत्रमें किये गये अपने प्रयोगोंका भी किंचित् विस्तारसे वर्णन किया (पृष्ठ २०६)।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस अवधिमें साबरमती-स्थित सत्याग्रह आश्रमकी समस्याओंको लेकर भी गांधीजी काफी चिन्तित रहे। गांधीजी के अनुसार वह आश्रम "विभिन्न मनोवृत्तियोंवाले स्त्री-पुरुषों और प्रच्छन्न प्रलोभनोंके बीच सत्यकी साधनाका एक अभिनव प्रयोग था" (पृष्ठ ३३६) और उसकी दिनचर्या "श्रम ही प्रार्थना है" के सिद्धान्तपर आधारित थी। गांधीजी जानते थे कि बहुत-से आश्रमवासी उस दिनचर्याका पालन "यंत्रवत् . . . अन्धानुकरण" के भावसे कर रहे थे, किन्तु इसपर उन्हें "कोई शिकायत नहीं" थी, क्योंकि उन्हें आशा थी कि "जो लोग उसका यंत्र-वत् पालन कर रहे हैं, वे भी इस भावनाको और इसकी खूबसूरतीको किसी दिन पहचानेंगे" (पृष्ठ ९)। किन्तु सत्यके पालनमें किसी प्रकारकी चूकसे उन्हें गहरी चोट पहुँचती थी। एक युवक और युवतीसे हुई ऐसी ही चूकको लेकर, जिसका कारण गांधीजी ने "सत्यको छिपाना" माना, वे इतने परेशान हो उठे कि उन्हें अपनी ही "आध्यात्मिक गरीबी" की अनुभूति होने लगी। नारणदास गांधीको लिखे एक पत्रमें उन्होंने स्वीकार किया कि "मेरे अनजानेमें अवश्य ही मेरे भीतर कहीं असत्य, हिंसा और विकार छिपे हुए हैं", क्योंकि "जो व्यक्ति सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसके निकट असत्य छिपा नहीं रह सकता" (पृष्ठ १७७)। यद्यपि अस्पृश्यता-निवारण-कार्यमें लीन रहकर गांधीजी अपने अन्य सारे दुःख भूल जाते थे, किन्तु वे इस घटनापर जब भी सोचते तो उनका "घाव ताजा हो जाता" था और उन्हें याद आ जाता था कि "अभी वह मिटा नहीं है" (पृष्ठ २१८)। मीराबहनको उन्होंने लिखा: "अनासक्तिकी भाषा मैं जानता हूँ, लेकिन . . . उसपर अमल नहीं कर रहा हूँ।" किन्तु उन्हें विश्वास था कि उनके हृदयमें जो तूफान मचा हुआ था वह शीघ्र ही शान्त हो जायेगा, क्योंकि उनका जीवन सत्यको समर्पित था और उनकी यह श्रद्धा अडिग थी कि "आश्रम धूलमें मिल जाये और मेरी सभी उपास्य मूर्तियाँ खण्ड-खण्ड हो जायें तो भी सत्य तो कायम रहेगा ही" (पृष्ठ १९३)।

आश्रमके कार्यकर्त्ताओंके स्वभावगत मतभेदोंको लेकर उठनेवाले विवादोंको सुलझाना गांधीजी के लिए अपेक्षाकृत आसान रहा। ऐसे कार्यकर्त्ताओंको लिखे उनके अनेक पत्रोंसे प्रकट होता है कि व्यक्तियोंके रूपमें उन लोगोंके प्रति वे अपने क्या-क्या दायित्व मानते थे। प्रसंगानुसार जहाँ उन्होंने इन लोगोंकी रचनात्मक आलोचना की वहीं उनके प्रति स्नेह-सम्मानका भी प्रदर्शन किया, किन्तु किसी भी स्थितिमें अपनी सत्यनिष्ठाको आँच नहीं आने दी। उन्होंने एक पत्रमें प्रेमाबहन कंटकको आश्वस्त किया: "मैं तुझे सख्त उलाहना इसलिए देता हूँ कि मैं तुझे अपनी पुत्री मानता हूँ और तुझे पूर्ण देखना चाहता हूँ" (पृष्ठ ४१३)। नरहरि परीखसे उन्होंने यह अनुरोध किया कि आश्रमके लिए "तुम पराये बनकर नहीं रह सकते।" दूसरी ओर उन्होंने नारणदास गांधीको लिखा कि "तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए [नरहरि द्वारा] प्रयुक्त भाषाकी ओर न देखना है। लिखनेवाले का हेतु दुष्ट न हो और उसके सुझाव विचार करने योग्य हों तो हमें उनपर विचार करना चाहिए। यह . . . हंसकी रीति है। 'जड़-चेतन गुन-दोषमय बिस्व कीन्ह करतार, संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार" (पृष्ठ ३८१)। गांधीजी को विभिन्न स्वभाव और योग्यतावाले कार्यकर्त्ताओंकी जो पूर्ण निष्ठा प्राप्त थी उसका रहस्य उनके प्रति गांधीजी का यही नीर-क्षीर-विवेकी दृष्टिकोण था और अपने इसी गुणके कारण वे प्रत्येक कार्यकर्त्तासे उसकी सामर्थ्यके अनुसार श्रेष्ठसे-श्रेष्ठ कार्य करवा पाते थे।

आश्रमके दोषोंके लिए अपना दायित्व उन्होंने बराबर स्वीकार किया, क्योंकि "मुझमें, उनका मार्ग-दर्शन करनेवाले में, कितने अधिक दोष, कितना असत्य भरा था।" किन्तु वे निराश कभी नहीं हुए। इसका कारण क्या था? गांधीजी के ही शब्दोंमें, "हम उस बुनियादी सत्यको जानते हैं जिसे हमें पाना है . . .। हम तो जाने-अनजाने उस परम परिणामकी ओर अग्रसर होते हुए असंख्य तुच्छ साधनोंमें से ही हैं। हममें से प्रत्येकको सापेक्ष सत्यका जैसा बोध है उसके अनुसार यदि हम सब ईमानदारी और दृढ़ताके साथ उसका आचरण करें तो किसी दिन हम सम्पूर्ण सत्यको भी प्राप्त कर लेंगे" (पृष्ठ ३९८)। क्या निजी और क्या सार्वजनिक जीवन, क्या धर्म और क्या राजनीति, गांधीजी प्रत्येक क्षेत्रमें सत्ययुगवादीके बजाय सत्ययुगकारी थे। सिद्धान्तोंमें जो-कुछ श्रेष्ठतम है उसे भविष्यमें अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न होनेपर प्रयोगमें लानेकी सम्भावनाके भरोसे बैठकर उपस्थित वर्तमानको यथासम्भव सँवारनेसे आँख चुराना गांधीजी को कतई मंजूर नहीं था।

अनुवादमें सत्यको उतारने तथा सम्पादकीय टिप्पणियोंको युग-सापेक्ष बनानेके सम्बन्धमें उन्होंने वियोगी हरिको जो परामर्श दिया वह सभी पत्रकारोंके लिए अत्यन्त मूल्यवान मार्गदर्शन हो सकता है: "हमारा अनुवाद शुद्ध, सरल और मर्यादित होनेसे नया-सा ही लगेगा। . . . सब लेख प्रस्तुत और सांप्रत मुसीबतोंको हल करने की दृष्टिसे लिखे हुए होने चाहिए" (पृष्ठ ४)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम निम्नलिखित संस्थाओं, व्यक्तियों, पुस्तकोंके प्रकाशकों तथा पत्र-पत्रिकाओंके आभारी हैं :

संस्थाएँ : साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय, नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रंथालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली; स्वराज्य आश्रम, बारडोली; महाराष्ट्र सरकारका गृह-विभाग, बम्बई; राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली; नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद और वुडब्रुक कॉलेज, बर्मिंघम।

व्यक्ति : श्री आनन्द टी० हिंगोरानी, इलाहाबाद; श्री आर० के० प्रभु, बम्बई; कु० एफ० मेरी बार; श्री क० मा० मुंशी, बम्बई; श्रीमती गंगाबहन वैद्य, बोचासण; श्री घ० दा० बिड़ला, कलकत्ता; श्रीमती चन्द्रकान्त फू० शाह, नई दिल्ली; श्री छगनलाल जोशी, अहमदाबाद; श्रीमती जेसी हॉयलैंड; श्री दत्तात्रेय बा० कालेलकर, नई दिल्ली; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री नारायण देसाई, बारडोली; श्री परशुराम मेहरोत्रा, दिल्ली; श्री पी० एन० शंकरनारायण अय्यर, मद्रास; श्री पुरुषोत्तम डी० सरैया, बम्बई; श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी, पूना; श्रीमती प्रेमाबहन कंटक, सासवड; श्री भगवानजी पु० पण्ड्या, सेवाग्राम, वर्धा; श्री भाऊ पानसे, वर्धा; श्रीमती मंगलाबहन बी० देसाई, अहमदाबाद; श्री महेश पी० पट्टणी, भावनगर; श्रीमती मीराबहन, गॉडेन, आस्ट्रिया; श्री रवीन्द्र आर० पटेल, अहमदाबाद; श्री रामनारायण एन० पाठक, भावनगर; श्रीमती लक्ष्मीबहन ना० खरे, अहमदाबाद; सुश्री वसुमती पण्डित, सूरत; श्री वालजी गो० देसाई, पूना; श्री शामल आर० रावल, अहमदाबाद; श्रीमती शारदाबहन गो० चोखावाला, अहमदाबाद; श्रीपाद दा० सातवलेकर, पारडी; श्री हमीद गु० कुरैशी, अहमदाबाद और श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर।

पुस्तकें : 'इन द शैडो ऑफ द महात्मा'; 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद'; 'बापुना पत्रो-४ : मणिबहेन पटेलने'; 'बापुना पत्रो-६ : गं० स्व० गंगाबहेनने'; 'बापुना पत्रो-९ : श्री नारणदास गांधीने'; 'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष'; 'बापू — मैंने क्या देखा, क्या समझा'; 'महादेवभाईनी डायरी' तथा 'हरिजन सेवक संघका संविधान'।

पत्र-पत्रिकाएँ : 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हरिजन', 'हरिजनबन्धु', 'हरिजनसेवक', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करने में मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो-विभाग, नई दिल्लीके भी आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजी के स्वाक्षरोंमें मिली है उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरोंके द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय भाषाको यथासम्भव मूलके निकट रखने का प्रयत्न किया गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं, हमने उनका उपयोग मूलसे मिलाने और संशोधन करने के बाद किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखने की नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणके बारेमें संशय था, उनको वैसे ही लिखा गया है जैसा कि गांधीजी ने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजी ने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि ऐसा कोई अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजी के कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजी के नहीं हैं, कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दी गई है। जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यकता होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजी की सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी निश्चित आधार पर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, 'एम० एम० यू०' गांधी स्मारक संग्रहालयकी मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिट द्वारा तैयार कराई गई रीलोंका, 'एस० जी०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध सेवाग्राम-संग्रहकी फोटो-नकलोंका और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संगृहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

६ मार्च, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। कापीके पन्ने फाड़कर उन्हें काममें लानेमें हिंसा है। क्या तुम इस बातको समझते हो? फिर ऐसा मत करना।

मन्त्री आदि अयोग्य सिद्ध हों या सदस्य उन्हें परेशान करें, ये दोनों बातें हमारी उन्नतिमें बाधक हैं। तुम आज जो करते हो वही कल करोगे। तुम यह तो समझते हो न कि जिसे तुम आज नहीं सीख लेते उसे भविष्यमें नहीं सीख सकोगे। जिस प्रकार बबूलके पेड़में आम नहीं फलते उसी प्रकार यदि तुम फिलहाल संगठित या अनुशासनमें नहीं रह सकते तो ऐसा नहीं हो सकता कि तुम दस वर्ष बाद एकाएक बदल जाओगे। अतः तुम्हें अपने संघको भली-भाँति चलाना सीख लेना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

यरवडा मन्दिर[1]
६ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

यह पत्र मैंने ठीक पाँच बजे (मौनवार) हाथमें लिया है। आश्रमके पत्रोंमें तेरा पत्र मैं अन्तमें पढ़ता हूँ।

तेरी पूनियोंसे मैं ७५ अंकसे आगे नहीं जा सका। ७५ अंकका सूत बहुत कच्चा माना जायेगा। पूनियोंका जो वजन तूने दिया है उसीके आधार पर सूतका अंक निकाला है। सूक्ष्म वजन यहाँके काँटेपर नहीं निकलता। मेरा हाथ यदि अच्छी तरह काम दे तो मैं मानता हूँ कि मैं १०० अंकतक जरूर पहुँच सकता हूँ।

सुशीलाके बारेमें तू जो लिख रही है वह मेरे लिए स्वप्नवत् है। उसके प्रति जरा भी उपेक्षा दिखानेका मुझे भानतक नहीं है। उसीने मुझपर यह छाप डाली है

१. आशय यरवडा सदर जेलसे है, जहाँ गांधीजी ४ जनवरी, १९३२ से ८ मई, १९३३ तक कैद रहे थे। अतः अगले शीर्षकोंमें इस स्थानका नाम नहीं दिया गया है।

कि उसे न तो कुछ पूछना बाकी है और न कहना ही। इसलिए मैंने उससे अधिक पूछताछ नहीं की। यह तू उसे बता देना। मैं क्या जानूँ कि वह तेरी ही तरह लाड़ या खुशामद चाहनेवाली है। तेरी सहेली तेरे जैसी ही होनी चाहिए यह मुझे जानना चाहिए था। यही तू कहना चाहती है न? परन्तु सुशीला कदाचित् यह बात स्वीकार न करे। क्या मेरे लिए एक ही प्रेमा काफी नहीं है? और भी प्रेमा हैं तो सही, परन्तु उनमें थोड़ा-थोड़ा अन्तर है। खैर, ऐसी गलती फिर न हो इसका ध्यान रखूँगा।

विजयाकी उम्र कितनी है? उसका बरताव कैसा है?

लक्ष्मीको अच्छी तरह तैयार करना।

दुर्गाके फोड़े अभीतक अच्छे नहीं हुए, इससे मुझे सन्देह होता है। वह मुझे हमेशा पत्र लिखती थी, लेकिन अब बिलकुल नहीं लिखती। इससे भी मैं मानता हूँ कि वह कुछ-न-कुछ छिपा रही है। देखना, उसे कोई दूसरा रोग तो नहीं है?

कच्चे शाक और खजूरसे वजन घटना ही चाहिए। उसके साथ रोज २।। तोला ताजा कच्चा दूध लेना चाहिए। कच्चे शाकमें टमाटर, मूली, गाजर या लेटिस-जैसी चीज ली जा सकती है। नमक न लिया जाये। दो-तीन नीवू पानी या खजूरके साथ लेकर देखना चाहिए। पानीके साथ नींबू अलग पीना शायद ज्यादा अच्छा होगा। इससे दाँत खट्टे हो जायें तो नीबू न लिया जाये। उसमें सोडा डालकर पिया जा सकता है।

राजाजी वगैराके प्रश्नकी चर्चा मैं नहीं कर सकता। उसमें सत्यका भंग होगा। वह तो कभी अवसर आयेगा तब। मेरे लेखोंमें तो प्रत्येक शंकाका जवाब है।

आश्रमकी त्रुटियाँ तो तू जितनी बतायेगी उतनी मैं स्वीकार कर लूँगा। परन्तु उसीके साथ तू उपाय भी ढूँढ़ दे तो वह अधिक उपयोगी होगा। न ढूँढ़ सके तो भी तेरी आलोचना तो मुझे मिलनी ही चाहिए। मेरी बुद्धि जितनी चलती है उतनी दौड़ाता हूँ। मैं इतना जानता हूँ कि आश्रमका दोष आश्रमका नहीं, मेरा दोष है। कुम्हार बेडौल घड़ा बनाये, इसमें दोष घड़ेका है या कुम्हारका? यह बात मैं सौ फीसदी मानता हूँ और उससे मेरी मूढ़ताका अन्दाज लग सकता है। परन्तु दोष होनेपर भी मुझे आश्रम पसन्द है। क्योंकि यह कहनेको मैं तैयार नहीं कि मैं स्वयं अपने-आपको पसन्द नहीं करता। जितने अंशमें मुझमें 'अहं' नहीं, उतने अंशमें मैं खुदको पसन्द करता हूँ, और जितना 'अहं मेरे भीतर है उसे मैं मिटानेका सतत प्रयत्न करता हूँ।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३२९) से। सी० डब्ल्यू० ६७६८ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३. पत्र : छोटूभाई पटेलको

६ मार्च, १९३३

भाई छोटूभाई;

तुम्हारा पत्र मिला। संयमित संभोग कम हानिकारक है, पर ब्रह्मचर्य श्रेयस्कर है। आत्मा शरीर नहीं है। आत्मा शरीरके बिना टिक सकती है जैसे, ईश्वर। अशरीरीके लिए संभोगकी आवश्यकता नहीं होती, इसलिए अमूच्छितके लिए भी संभोगकी कोई आवश्यकता नहीं हो सकती। यदि मूर्च्छा-रहित होना धर्म है तो मानना होगा कि संभोग अधर्म है और इसलिए हानिकर है।

पृथ्वी अवश्य सजीव है किन्तु मनुष्यकी संरचना पृथ्वीसे भिन्न है। उसका नाश तो है ही।

इस समय समाजकी उन्नति हो रही है या अवनति, यह मैं नहीं कह सकता। यह प्रश्न निरर्थक मालूम होता है।

ईश्वरके आधारके बिना हम अशक्त हैं, यह सत्य ही है इसलिए स्वीकार करने योग्य है।

जो मनुष्य सचमुच नम्र है वह अभिमानीकी तुलनामें बहुत ऊँचा है। नम्रतामें सत्य है, अभिमानमें असत्य है।

भोजनके बाद दातुन करनेकी जरूरत नहीं है किन्तु दाँतोंको अंगुलीसे रगड़कर साफ अवश्य करना चाहिए। कुल्ला भी अच्छी तरह करना चाहिए।

अपने विवाहके बाद तुम आश्रमके साथ कैसा सम्बन्ध रखोगे, यह तो भविष्य ही बतायेगा। उसका विचार इस समय करना अप्रासंगिक है।

तुम्हारे पत्रसे मैं तुम्हें पहचान गया, ऐसा दावा मैं नहीं करूँगा। मैं यह किसीके भी विषयमें नहीं कह सकता।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४७६) से।

४. पत्र : विद्या आर० पटेलको

६ मार्च, १९३३

चि० विद्या,

आश्रममें तेरा वजन बढ़ रहा है इससे पता चलता है कि आश्रम तेरी शारीरिक प्रकृतिके अनुकूल है। जिस प्रकार तेरा शरीर पनप रहा है उसी प्रकार अपना हार्दिक और मानसिक बल भी बढ़ाना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३८) से। सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

५. पत्र : वियोगी हरिको

६ मार्च, १९३३

भाई वियोगी हरि,

आपका पत्र मिला। इस वखतका अंक[१] कुछ ठीक है, अब भी सुधारणाके लिये अवकाश है। इंग्रेजीमें से सब-कुछ लेनेकी कोई आवश्यकता नहिं है, न जो लिया जावे उसका पूरा तर्जुमा करनेकी कोई लेखका पूरा अनुवाद आवश्यक लगेगा, किसीका सार, किसीका त्याग, मतलब यह है कि हिंदी पढ़नेवालों को सब-कुछ देने योग्य मिल जाना चाहिये। जो चीज दूसरे अखबारोंमें आवेगी उसका देखना अवश्य होगा। लेकि[न] कई दफा यह अनुवाद दोषयुक्त होगा। हमारा अनुवाद शुद्ध, सरल और मर्यादित होनेसे नया-सा ही लगेगा। वहां अखबारोंका अनुवाद दोषरहित होगा यहां हिंदी 'हरिजन' में लेनेकी आवश्यकता नहिं रहेगी। इंग्रेजी लेख आगेसे भेजनेकी योजना बना रहा हूं। सतीश बाबू भी मांगते हैं, और गणेशन। सोचता हूं क्या शक्य है। हिंदी लेखकोंके लेख क्यों न रहें ? लेकिन वह निबंध रूपमें नहिं या तो कोई सनातनीकी सम्मति हो, अथवा सनातनीकी कोई दलीलका उत्तर अथवा सेवकोंकी कठिनाईका इलाज अथवा हरिजनोंकी आपत्तिका वर्णन। अर्थात् सब लेख प्रस्तूत और सांप्रत मुसीबतोंको हल करनेकी दृष्टिसे लिखे हुए चाहिये। प्रान्तीय प्रवृत्तिका सारांश तो बहुत ही आवश्यक समजा जाय।

अबसे सब कुछ 'हि० टाइम्स' के ठिकाने ही भेजुंगा।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७५) से।

१. **हरिजन**के हिन्दी संस्करण **हरिजन सेवक**का।

६. पत्र : के० आर० छापखानेको

७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पिछले महीनेकी २६ तारीखके पत्रके लिए और अब तो इस महीनेकी ३ तारीखके पत्रके लिए भी धन्यवाद। 'हरिजन'के सिलसिलेमें कामका बोझ ज्यादा होनेके कारण आपके पहले पत्रका उत्तर अब तक नहीं दे पाया था।

लगता है तथ्य तो आपको बहुत अच्छी तरह याद हैं। मेरे पास ऐसी कोई चीज नहीं है जिसके आधारपर मैं उनका खण्डन कर सकूं। क्या आपको उस कोषमें चन्दा देनेवालों के नाम याद हैं?[१] यदि याद हों और आप उनके बयान भेज सकें तो मैं जो साक्ष्य एकत्र कर रहा हूँ उसकी शृंखला पूरी हो जायेगी। मैं तो अभी सिर्फ यही चाहता हूँ कि हरिजन सेवा-कार्यके लिए मैं उचित रूपसे जितना पैसा इकट्ठा कर सकूँ, करूँ और इसलिए जब श्रीयुत जोशीने मुझे बताया कि इस पैसेपर भी मेरा नियन्त्रण है तो स्वभावतः मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। लेकिन, आप इतना तो निश्चित मानिए कि अगर कहीं मैं आपको इसपर राजी भी कर सकूं कि जिस थैलीके बारेमें ऐसा माना जाता है कि वह मुझे भेंट की गई थी, उसके उपयोगके सम्बन्धमें कुछ मेरी बात भी चले, तो वह श्रीयुत जोशीको तो नहीं दी जायेगी। यदि इस कोषके सम्बन्धमें जाँच-पड़ताल करनेके पीछे तनिक भी राजनीतिक मन्शा होता तो मैं आपको यह पत्र भी नहीं लिखता।

आपको यह याद दिलानेके लिए भी धन्यवाद देता हूँ कि जब मैं साँगली गया था[२], उस समय मुझे आपका मेहमान बननेका सम्मान प्राप्त हुआ था और जिसे भेंट कहा जा रहा है, वह तो एक औपचारिकता-मात्र थी और वह भेंट आपके ही घरमें दी गई थी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० आर० छापखाने
वकील, साँगली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८६) से।

१. तात्पर्य छापखाने तथा आठवले नामक एक अन्य व्यक्तिके खिलाफ लगाये इस आरोपसे है कि जब गांधीजी १९२० में साँगली गये थे, उस समय जो चन्दा उगाहा गया था उसका इन दोनोंने गबन किया था। छापखानेका कहना था कि यह चन्दा देशी राज्योंकी प्रजाके उत्थानके लिए आन्दोलन चलानेके निमित्त कुछ खास-खास लोगोंसे इकट्ठा किया गया था, उस समय गांधीजी से इस विषयपर चर्चा हुई थी और उन्होंने छापखानेसे यह आन्दोलन शुरू करने और सारी रकम अपनी जिम्मेदारी पर अपने पास रखनेको कहा था। देखिए "पत्र : विट्ठल के० जोशीको", ९-३-१९३३ भी।

२. नवम्बर १९२० में।

७. पत्र : बुधीराम ध्यानको

७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला। खद्दरको मैं इसलिए पसन्द करता हूँ कि इसपर मैं जो भी खर्च करता हूँ, वह सब सीधे गरीबोंके हाथोंमें जाता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बुधीराम ध्यान
कक्षा १२–ए
डी० ए० वी० कॉलेज
देहरादून

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८७) से।

८. पत्र : केशवको

७ मार्च, १९३३

प्रिय 'ब्रदर' केशव,

आपका पत्र और आपकी अपीलकी नकल मिली। अभी जब आपके पत्रका उत्तर दे रहा हूँ, काकासाहब[1] मेरे पास बैठे हुए हैं और इसलिए मैंने उनसे कहा है कि वे आपसे मिलकर योजनाको समझें, जिस 'ब्रदर' ने आश्रममें प्रशिक्षण प्राप्त किया है उससे भी मिलें, और तब मुझे सलाह दें। उसके बाद ही मैं अपना मत निश्चित करके आपको बताऊँगा। आप जानते ही हैं कि काकासाहब इसके संस्थापक सदस्योंमें से हैं और इसलिए उन्हें कताई तथा बुनाईके विकासकी शुरूसे ही जानकारी है।

हृदयसे आपका,

'ब्रदर' केशव
क्रिस्टी सेवा संघम्
औंध (पूनाके निकट)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८४) से।

१. द० बा० कालेलकर।

९. पत्र : रामचन्द्रको[1]

७ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

इसी ४ तारीखके आपके विस्तृत पत्रके लिए धन्यवाद। मैं तो बिलकुल भूल ही गया था कि आप आश्रममें भी रहे थे। आपका पत्र काफी कामका है। . . . नी०[2] शनिवार, अर्थात् इसी ४ तारीखको पूनासे रवाना हुई। आपकी उपस्थिति अब बिलकुल अनावश्यक है। अब तक उसके बारेमें मैं आपसे शायद ज्यादा ही जान गया हूँ। आपने जितना बताया है वह तो उससे भी कहीं बुरी जिन्दगी जीती रही है। वर्षोंतक उसने नितान्त अनैतिक और अमर्यादित जीवन बिताया है और सत्यसे उसका कोई वास्ता ही नहीं रहा है। यह बात उसने मेरे सामने स्वीकार की है और मुझे यह निश्चित वचन भी दिया है कि ये सब बातें वह दुनियाके सामने खुले आम स्वीकार करेगी। उसने मुझसे यह वादा भी किया है कि अब वह अपने जीवनमें एक नया अध्याय आरम्भ करेगी और हरिजन बस्तियोंमें अज्ञातवास करती हुई, लोगोंके दान-दाक्षिण्य पर भिखारीका जीवन व्यतीत करेगी और अधिकसे-अधिक गरीबीमें जियेगी। उसमें यह वचन पूरा करनेकी शक्ति है या नहीं, मैं नहीं जानता। आशा तो यही रखें कि उसमें ऐसी शक्ति होगी। वह मानती तो यही है। अगर उसमें ऐसा जीवन जीनेकी सच्ची इच्छा हो तो आपसे उसकी जो सहायता करते बने, कीजिएगा। आप उसे यह पत्र दिखा सकते हैं और समय-समयपर मुझे उसके बारेमें बताते भी रहें। मुझसे उसकी जो बातचीत हुई, उससे मुझे लगा कि आपके लिए उसके मनमें बहुत इज्जत है, लेकिन इसका कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि उसके मनमें आपके बारेमें ऐसा खयाल तो तब था जब वह सर्वथा झूठी जिन्दगी जी रही थी। वह यहाँ आई थी तो उस समय भी उसके मनमें सत्यका उदय नहीं हुआ था, लेकिन अब यदि ऐसा हो गया है तो यह धीरे-धीरे और इस ढंगसे हुआ है जिसका किसीको भान नहीं हुआ। कहनेकी जरूरत नहीं कि यह और भी अच्छी बात है। ऐसा लगता है कि उसके इर्द-गिर्द रहनेवाले कमसे-कम कुछ नौजवानोंने तो ठीक व्यवहार नहीं किया है। लेकिन जरूरी होने पर इसके बारेमें ज्यादा फिर कभी लिखूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८१) से।

१. सर्वेंट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसाइटीकी मैसूर शाखाके संयुक्त मंत्री।

२. पूरा नाम नहीं दिया जा रहा है।

१०. पत्र : वी० एन० सोमसुन्दरम्को[1]

७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, तदर्थ धन्यवाद। मैं आपको केवल यही सलाह दे सकता हूँ कि एक ओर तो आपको मन्दिरके न्यासियोंको समझा-बुझाकर अपनी बातपर राजी करना चाहिए और दूसरी ओर आज जो लोग मन्दिरमें जाते हैं उनका मत अपने पक्षमें तैयार करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एन० सोमसुन्दरम्
४३, सालगडो स्ट्रीट
मुतवाल
कोलम्बो

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४८५) से।

११. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

७ मार्च, १९३३

भाई परीक्षितलाल[2],

तुम्हारा पत्र मिला। सूरतमें संघकी शाखा खोलनेका विचार फिलहाल छोड़ देना। जो काम हमारे हाथमें है यदि हम उसे भली-भाँति सँभाल सकें तो सूरतके बारेमें बादमें सोचेंगे।

सरूपबहनके[3] बारेमें मैं समझता हूँ।

गुजराती 'हरिजन' यहाँसे निकालनेकी बात चल रही है।[4] पत्रक निकालनेका विचार बुरा नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९४) से।

१. मुतवाल युवा हिन्दू संघके अवैतनिक मन्त्री।

२. सर्वेंट्स ऑफ अनटचेबल्स सोसाइटीकी गुजरात शाखाके मंत्री।

३. विजय लक्ष्मी पण्डित; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ३४०।

४. **हरिजनबन्धु**का प्रथम अंक १२ मार्च, १९३३ को प्रकाशित हुआ था।

१२. पत्र : एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको

८ मार्च, १९३३

चि० मेरी और डंकन,

तुम्हारा पत्र मुझे सचमुच बहुत अच्छा लगता है। कुछ अन्यथा कहनेसे पहले तुम्हें यह बता दूं कि मैंने नारणदाससे कहा है, और मेरा खयाल है तुम दोनोंके सामने भी बिलकुल स्पष्ट कर दिया है, कि तुम्हारे साथ आश्रममें आनेवाले अन्य शिक्षार्थियोंके समान व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए, तुम्हें आश्रममें ऐसे ही कार्य चुनने चाहिए जो तुम्हें पसन्द हों तथा जिन्हें तुम ठीकसे ग्रहण कर सकते हो और तुम्हें अपने समयका उपयोग उसी तरह करना चाहिए जिस तरहसे उसका उपयोग करना तुम्हारी दृष्टिमें सबसे अधिक लाभदायक जान पड़े।

अब मैं अपना विचार बताता हूँ। आश्रम ऐसी जगह है जहाँ हमारा विचार 'श्रम ही प्रार्थना है' के सिद्धान्तको अक्षरशः लागू करना है। थोरो और टॉल्स्टॉयने इस श्रमका अर्थ शारीरिक श्रम करना बताया और टॉल्स्टॉयने बोण्डेरफके इस सूत्रको अपनाया कि शारीरिक श्रमसे अपनी रोटी कमाना समस्त मानव-समाजके लिए ईश्वरीय नियम है। 'गीता' के तीसरे अध्यायमें मैंने इसी भावको देखा। इस व्याख्याकी सचाईको मैंने खुद अपने जीवन और अनेक साथियोंके जीवनमें परखकर देखा है और मैंने यह पाया है कि जिस हदतक हम इस व्याख्याको व्यवहारमें नहीं उतार पाये हैं, उसी हदतक हमारा जीवन अपूर्ण और असन्तोषजनक रहा है। इसलिए मेरा कहना यह है कि जबतक आश्रमकी दिनचर्या इसके अन्धानुकरणके समान लगती है, तबतक यही समझा जायेगा कि लोगोंने आश्रम-भावनाको हृदयंगम नहीं किया है। मैं यह बात बेहिचक स्वीकार करता हूँ कि इस भावनाको बहुत कम लोगोंने हृदयंगम किया है। बहुत-से लोग इसका पालन यन्त्रवत् करते हैं और इसीलिए यह अन्धानुकरण है। इस प्रकार इसके यन्त्रवत् पालन किये जानेपर मुझे कोई शिकायत नहीं है, क्योंकि लोग अपना समय व्यर्थ गँवायें, इससे तो यही अच्छा है और मुझे कुछ ऐसी आशा है कि जो लोग उसका यन्त्रवत् पालन कर रहे हैं, वे भी इस भावनाको और इसकी खूबसूरतीको किसी दिन पहचानेंगे। बहुत-से अंग्रेज स्त्री-पुरुष और विशेषकर मिशनरी लोग, मेरे विचारसे, यह गलती करते हैं कि वे दूसरोंकी प्रवृत्तियोंमें स्वयं कोई प्रत्यक्ष हिस्सा लिये बिना उनका दिशा-दर्शन करते हैं। इसलिए उन प्रवृत्तियोंका उनपर कोई असर नहीं होता और वे अकसर अन्धे दिशा-दर्शक बनकर रह जाते हैं। जीवनमें देखे गये ऐसे बहुत सारे उदाहरण इस पत्रको लिखाते हुए मेरे मनमें ताजा हो आये हैं। इसलिए मैं यह कहूँगा कि अगर तुम मेरी बातोंकी

भावनाको समझते और ठीक मानते हो और उनकी सचाईका अनुभव करते हो तो इस दिनचर्याका पालन तबतक धैर्य, समझदारी और पूरे हृदयसे करते रहो जबतक कि यह तुम्हारे स्वभावमें शामिल न हो जाये, तुम्हारे मनको रुचने न लगे और तुम्हें अपना सन्देश आप ही सुन पड़ता हुआ-सा प्रतीत न होने लगे। तब और केवल तभी तुम जन-सेवाके लिए कोई गम्भीर चीज लिखनेमें समर्थ होगे। जबतक किसी अच्छे विचारको अनुभवकी कसौटीपर बार-बार कसकर देख न लिया जाये, तब तक वह भी दुनियाको दिये जाने योग्य नहीं होता। सच्चे श्रमका प्रभाव होता है और वह प्रभाव फैलता भी जाता है। पता नहीं, मैं अपना आशय तुम्हें समझा पाया हूँ या नहीं। अगर नहीं समझा पाया होऊँ तो मेरी सारी दलील बेहिचक अस्वीकार कर दो और जैसा तुम्हें ठीक लगे, वैसा ही करो; क्योंकि इसी तरह तुम आश्रमके अपने अनुभवसे अधिकसे-अधिक लाभ उठा सकोगे।

बापूके स्नेहमय आशीर्वाद

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९६) से। सी० डब्ल्यू० ३३२१ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

१३. पत्र: एफ० मेरी बारको

८ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारे दो पत्र मिले थे। तुम्हें अपने शरीरपर अनुचित भार नहीं डालना है। बेशक, आश्रम-जीवन जीनेकी भरसक कोशिश करो, लेकिन अपने स्वास्थ्यको खतरेमें डालकर नहीं। और आश्रमकी खामियोंके बारेमें मुझे सब-कुछ निस्संकोच बताओ। मेरा लम्बा पत्र[1] नारणदासको दिखा दो तो अच्छा हो।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९७) से। सी० डब्ल्यू० ३३२२ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

१. देखिए पिछला शीर्षक।

१४. पत्र : वाई० आर० दातेको

८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

गायकवाड़ जन्म-दिवस स्मारक[1]-ग्रन्थके लिए मेरा सन्देश निम्न प्रकार है :

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि बड़ौदाके महाविभव महाराजा साहब गायकवाड़ हरिजनोंके प्रति सद्व्यवहार करने और अस्पृश्यताको राज्यकी ओरसे दी गई सारी मान्यताको समाप्त कर देनेके लिए हम सबकी हार्दिक बधाईके पात्र हैं।"

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत वाई० आर० दाते
मार्फत — श्रीयुत हरिभाऊ फाटक

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०४९७) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) भाग-४, पृष्ठ १२७ से भी।

१५. पत्र : पी० आर० लेलेको

८ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,[2]

"वे जैसा हमें देखते हैं"[3] के उत्तरस्वरूप लिखा आपका पत्र मिला। अगर मेरी यह मान्यता सही हो कि ऊपरी खर्च काटकर जो बचा, सब हरिजनोंकी ही जेबमें गया, तो आपका यह उत्तर बहुत अच्छा है। आपका पत्र इस सप्ताह प्रकाशित किया जा रहा है, लेकिन अच्छा हो कि अदायगियाँ किस तरह की गईं, इसका तफसीलवार ब्योरा मुझे भेज दें।

१. फोटो-नकलवाले साधन-सूत्रमें यह शब्द नहीं है।

२. हरिजन सेवक संघ, बम्बई बोर्डके कार्यवाहक मन्त्री।

३. *हरिजन*के ४-३-१९३३ के अंकमें प्रकाशित; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०१-३।

जहाँतक कैदियोंको 'हरिजन' देनेके सम्बन्धमें आपको प्राप्त सरकारी उत्तरका सवाल है, इसपर मुझे 'हरिजन'में नहीं लिखना चाहिए। आप भी इस मामलेको रफा-दफा हुआ मान सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
३१, मुर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४९६) से।

१६. पत्र : पी० राममूर्तिको[1]

८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। आपने मुझे लिखा, इससे मुझे खुशी हुई। मैं चाहता हूँ, आप 'हरिजन'के सारे अंक पढ़नेकी कोशिश करें। अगर ऐसा किया, तो मेरा खयाल है कि आपकी अधिकांश शंकाओंका समाधान हो जायेगा। उसमें आप देखेंगे कि मैंने बेझिझक यह कहा है कि वर्णाश्रम और जाति-प्रथामें जो-कुछ भी बुरा है, वह दूर किया जाना चाहिए। मन्दिर-प्रवेशका अधिकार तो निश्चय ही आपकी आशासे भी पूर्व ही मिलने जा रहा है। यह इस सुधारका केन्द्रबिन्दु है, क्योंकि यह करोड़ों लोगोंके लिए इस बातका एक स्पष्ट प्रत्यक्ष संकेत होगा कि अस्पृश्यता मिट चुकी है। इसलिए सवर्ण हिन्दुओंकी बहुसंख्या रास्तेपर आये या न आये, इस सुधारको तो हमें सम्पन्न करना ही है।

मेरे विचारसे, अस्पृश्यता-विरोधी संघ सन्तोषजनक ढंगसे काम कर रहे हैं। अस्पृश्योंकी शैक्षणिक प्रगतिके लिए वे बहुत-कुछ कर रहे हैं और इस दिशामें कितनी प्रगति हुई है, इसका जायजा लेनेके लिए आपको 'हरिजन'के स्तम्भ पढ़ने चाहिए। यह कहकर कि आन्ध्र देशमें मंचोंसे भाषण देनेके अलावा और कुछ नहीं किया जा रहा है, मेरे खयालसे, आप श्रीयुत नागेश्वररावके साथ न्याय नहीं कर रहे हैं। लेकिन, मैं ज्यादा विस्तृत विवरण मँगानेके लिए लिख रहा हूँ।

यदि आप अस्पृश्यता-विरोधी संघ बनायें और उनको पैसे बिड़ला समिति[2] दे, तो इसे आप आत्मनिर्भरता तो नहीं कहेंगे न? वास्तवमें आपको जरूरत पैसेकी नहीं, बल्कि ऐसे लोगोंकी है जो शिक्षित हों और अपेक्षाकृत गिरी हुई अवस्थामें

१. एक हरिजन अध्यापक और आन्ध्र विश्वविद्यालय सीनेटके सदस्य तथा पूर्व गोदावरी जिलेके अस्पृश्यता-विरोधी संघके उपाध्यक्ष।

१. अधिकृत नाम 'हरिजन सेवक संघ'।

रहनेवाले हरिजनोंको शिक्षित करनेको तैयार हों। इसलिए, हरिजन नौजवानोंको मेरी सलाह है कि वे अधिकसे-अधिक गरीब हरिजनोंके बीच सुधारका काम पूरे जोरसे करें।

मद्रास सेवा आयोगके परिगणनकी मुझे कोई जानकारी नहीं है। आप शायद इस विषयमें मुझे ठीक जानकारी दे सकें, लेकिन हरिजन स्नातकों तथा अन्य सुशिक्षित हरिजनोंके लिए अपने हरिजन-बन्धुओंकी सेवा करनेकी पूरी गुंजाइश है।

अगर खास तौरसे हरिजनोंसे सम्बन्धित कोई तेलुगु अखबार नहीं है, तो इसका कारण मैं यह मानता हूँ कि, बहुत कम हरिजन पढ़े-लिखे हैं। इसलिए आप कोई अखबार निकालनेकी बात सोचें, इससे पहले जरूरी है कि सभी शिक्षित हरिजन अशिक्षित हरिजनोंके बीच फैल जायें और उन्हें शिक्षित बनायें। इसलिए, प्रत्येक शिक्षित हरिजनको एक चलता-फिरता अखबार बन जाना चाहिए और माँग होनेपर आप समय-समयपर पर्चे निकालकर इसमें उनकी सहायता कर सकते हैं।

मुझसे सम्पर्क बनाये रखें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० राममूर्ति, बी० ए०
पी० आर० कॉलेजिएट स्कूल
कोकानाडा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०४९५) से।

१७. पत्र : नारणदास गांधीको

८ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारे द्वारा भेजी हुई भारी-भरकम डाक मिली।

ऐसा कहा जा सकता है कि अंग्रेजी शिक्षा-सम्बन्धी मेरे विचारोंमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है। मुझे ऐसा लगता है कि आश्रममें रहनेवाली बड़ी उम्रकी बहनोंको वे जो चाहें वह सीखने देना चाहिए। उन्हें हर कदम पर अपनी कमी अखरती है और उसमें भी हमारी परिस्थितिमें अंग्रेजीकी कमी ज्यादा अखरती है। वे गणितके बिना काम चला सकती हैं, गुजरातीका अधकचरा ज्ञान उन्हें नहीं अखरता किन्तु अंग्रेजी न जाननेके कारण वे बेचैन रहती हैं। अंग्रेजोंसे हमारा सम्बन्ध बना ही रहेगा, बना रहना चाहिए, और इस प्रकार अंग्रेजीसे भी सम्बन्ध बना रहेगा। इसलिए उन्हें लगता है कि यदि वे थोड़ी-बहुत अंग्रेजी जानती होंगी तो उसका उपयोग तत्काल कर सकेंगी। यह तर्क सर्वथा सही हो ऐसा नहीं है किन्तु उसमें इतनी सचाई अवश्य है जिसकी वजहसे वह आकर्षक जान पड़ने लगता है। अंग्रेजी सीखना कोई पाप तो है नहीं। मुझे लगता है कि यदि और कुछ सीखनेमें उनका मन नहीं लगता तो हम क्यों न बहनोंको अंग्रेजी सीखनेका अभ्यस्त बना दें। यह वांछनीय है कि बड़ी उम्रकी बहनें

किसी भी प्रकार विद्यार्थी-जीवन बितानेमें रुचि लेने लगें और यह भी वांछनीय है कि उनकी ज्ञान-वृद्धि हो। अतः मैं यह जानता हूँ कि जो बड़ी उम्रकी बहनें चाहें उनके अंग्रेजी सीखनेकी हमें यथासाध्य व्यवस्था कर देनी चाहिए। इसमें यदि तुम्हें कोई कमी नजर आये तो उसे मेरे ध्यानमें लाना। मैं पुनः समझानेका प्रयत्न करूँगा।

कीकाभाईके पत्रसे जान पड़ता है कि लक्ष्मीके विवाहपर तुम्हारे पास हरिजनोंका एक बड़ा दल आनेवाला है। मुझे तो यही उचित लगता है कि लक्ष्मीका कन्यादान तो तुम और जमना ही करो। जमनाके मनमें छुआछूतकी भावना तो नहीं है न? जो हरिजन आयें उन्हें अन्य लोगोंसे अलग मत बैठाना। उपस्थित लोगोंमें उनकी संख्या काफी ज्यादा होगी इसलिए मेरे सुझावके अनुसार उनके स्वागतके लिए फलादि बाँटनेकी व्यवस्था करना। मैं गोला-किशमिशका सुझाव देता हूँ। यदि सम्भव हुआ तो आगन्तुक मण्डलीके सामने पढ़नेके लिए कुछ शब्द मैं इस पत्रके साथ लिख भेजूँगा।[1] आश्रमकी ओरसे लक्ष्मीको कुछ कपड़े उपहार स्वरूप देने होंगे। इस बारेमें तुम सोच लेना। यदि बा से मिलना सम्भव हो तो मिलकर उसकी सलाह लेना। वह अपनी कोई नयी या नयी-जैसी साड़ी दे तो अच्छा होगा। यदि बा के पास अब भी कोई गहना पड़ा हो तो वह भी दे दे। सुपरिन्टेंडेंटसे कह देना कि तुम विशेषरूपसे इसी कारण बा से मिलना चाहते हो। यदि वे अनुमति दें तो ठीक है, न दें तो उनकी इच्छा। लक्ष्मीको भेंट देनेके बारेमें अन्य बहनोंसे भी सलाह-मशविरा करना। ऐसी व्यवस्था करना जिससे किसी मामलेमें हमारी तरफसे कोई कमी न रह जाये। इस सम्बन्धमें यदि और कुछ लिखने लायक होगा तो तुम्हें लिखूँगा। यदि तुम्हें मेरा कोई सुझाव अनुचित जान पड़े तो उसे छोड़ देना।

मैंने परचुरे शास्त्रीको पत्र लिख दिया है। तुम्हारे तारपर ही सब-कुछ निर्भर करेगा।

केलॉगकी पुस्तक मिल गई है। गंगाबहन और शारदा यहाँ पहुँच गई हैं। मुझसे मिली नहीं हैं। गंगाबहन नहीं मिल सकतीं। शारदा शनिवारको यहाँ होगी तो मुझसे मिलेगी।

लक्ष्मीकी छोटी बहनको अनसूयाबहनके साथ रखकर तुमने अच्छा किया। देखता हूँ कि दूदाभाई[2] रह गये। धनीबहन[3] अवश्य आये। तुमने खर्च देनेकी बात स्वीकार करके सर्वथा उचित ही किया है।

आनन्दी फिलहाल तो खतरेसे सर्वथा मुक्त है। मैं उसे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा काम देता रहूँगा। वह दूध और फलोंपर रह रही है। अभी तो उसे यहीं रहना चाहिए। तुम लक्ष्मीदाससे उसके उपचारके बारेमें जानकारी ले लेना। वह अन्य लोगोंके लिए भी उपयोगी है। किन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वह सभीको अवश्य अनुकूल आयेगा। हाँ, यह ठीक है कि इससे किसीको नुकसान नहीं पहुँचेगा।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२ और ३. लक्ष्मीके माता-पिता। यह परिवार १९१५में आश्रममें आया था; देखिए खण्ड १३, पृष्ठ १२९।

जबतक तुम्हारी खुराकमें दूध या दही शामिल है तबतक मैं निर्भय हूँ। यह मैं अवश्य चाहता हूँ कि तुम उसमें से भुने हुए बिना छिलकेके चने निकाल दो। तुम जो मानसिक भार उठाए हुए हो उसमें चनोंसे विघ्न पड़ता है। मानसिक उत्तर-दायित्व उठानेवाले के लिए दूध और फल ही उत्तम खाद्य है। यदि तुम कच्ची पात-गोभी खाते हो तो वह कोमल होनी चाहिए। किन्तु यदि उबली हुई खाते हो तो मुझे कुछ नहीं कहना। यदि तुम कच्चा दूध पिओ तो अच्छा होगा।

जमनाको सूर्यस्नान लेना चाहिए, तेलसे मालिश करानी चाहिए, विधिवत् प्राणा-याम करना चाहिए और खुराकमें दूध, पपीता, किशमिश और चाहे तो कुछ साग-सब्जी लेनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि यदि वह ये सब चीजें लेगी तो अच्छी हो जायेगी।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३२८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१८. सन्देश : लक्ष्मी और मारुतिके विवाहपर

८ मार्च, १९३३

चि० मारुति[1] और चि० लक्ष्मीके विवाहके अवसरपर न तो मैं आश्रममें हूँ और न बा है, इस बातका मुझे थोड़ा दुःख तो है किन्तु मैं यह मानता हूँ कि यह मोह है। धर्म जहाँ रखे वहीं रहनेमें सुख मानना चाहिए। उस हालतमें अन्य किसी स्थितिकी कामना करनेकी गुंजाइश नहीं रह जाती अतः दुःखका प्रसंग ही नहीं उठता।

इसके अतिरिक्त जहाँ बहुत-से बुजुर्ग और मित्रगण, भाई और बहनें आशीर्वाद देनेके लिए एकत्र हो रहे हैं वहाँ मेरी या बा की उपस्थितिकी आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए।

लक्ष्मीकी उत्कट इच्छा थी कि मेरी और बा की उपस्थितिमें ही उसका विवाह होना चाहिए। और चि० मारुति भी यही चाहता था। उनकी इच्छा तो मैं समझ सकता था। किन्तु हम सबको ऐसा लगनेके कारण कि लक्ष्मीका विवाह तुरन्त होना चाहिए, मैंने वर-कन्याको तुरन्त यह विवाह कर लेनेका सुझाव दिया और उन्होंने उसे मान लिया। लक्ष्मीका पालन-पोषण बचपनसे ही आश्रममें हुआ है। किन्तु हम उसे इतना ज्ञान नहीं दे सके जितना कि मैं और आश्रमके लोग देना चाहते थे। इसलिए हममें से किसीको भी यह उचित नहीं लगा कि एक सयानी लड़कीको सगाईके बाद बहुत दिनों तक कुँआरा रखा जाये। चि० लक्ष्मीका विवाह हो रहा है किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उसका शिक्षा-क्रम बन्द हो जायेगा। चि० मारुतिको

१. मारुति दक्षिण भारतीय अनाथ बालक था और उसका पालन-पोषण वेलाबहन तथा लक्ष्मीदास आसरने किया था।

मैं बहुत योग्य नवयुवक मानता हूँ। वह संयमी है। उसका पालन-पोषण भाई लक्ष्मीदास और वेलाबहनकी देख-रेखमें हुआ है। उसे अपने उत्तरदायित्वका भान है। इतना ही नहीं कि वह लक्ष्मीका पति होगा; वह उसका मित्र और शिक्षक भी होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि इस सम्बन्धका शुभ परिणाम निकलेगा तो उससे हरिजनों और हिन्दू धर्मको बहुत लाभ पहुँचेगा। इस दृष्टिसे देखनेपर इस सम्बन्धको बहुत महत्त्वपूर्ण माना जायेगा और इस कारण उनका उत्तरदायित्व भी उसी अनुपातमें बढ़ जाता है।

चि० मारुति और चि० लक्ष्मीकी सगाई हुए कई वर्ष हो चुके हैं। आश्रमवासियोंके सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि लक्ष्मीका हाथ किसे सौंपा जाये। हमें लगा कि जिस ढंगसे लक्ष्मीको पाला-पोसा गया है उसे ध्यानमें रखते हुए यदि उसे आश्रम-जैसी शिक्षा पाया हुआ पति मिले तो वह सुखी हो सकेगी। आश्रम वर्णाश्रम धर्मको मानता है और उसके पालनका यथाशक्ति प्रयत्न करता है। मेरे लिए सभी आश्रमवासियोंकी ओरसे कहना कठिन है किन्तु मैं अपने बारेमें तो कह ही चुका हूँ कि वर्तमान स्थितिमें हम सब हिन्दू एक ही वर्णके हो सकते हैं और हैं। यदि हम वर्णाश्रम धर्मका उद्धार करना चाहें तो हमें नये सिरेसे श्रीगणेश करना होगा। मेरा दृष्टिकोण ऐसा होनेके कारण मुझे लक्ष्मीके योग्य पति खोजना था। इस कार्यमें वेला-बहनने मदद की और चि० मारुतिका नाम सुझाया। लक्ष्मीदासको भी यह विचार पसन्द आया। मैंने उक्त नाम लक्ष्मीके सामने रखा और उसने भी इसे स्वीकार कर लिया। इस सम्बन्धमें उसके पिताकी भी सम्मति मिल गई और सगाई हो गई। मेरी दृष्टिमें ये सब धार्मिक कदम थे। मैं विवाहको भी संयम-धर्मकी एक बाड़के रूपमें मानता हूँ और हम सबको यह कामना करनी चाहिए कि वर-वधू भी इसको इसी अर्थमें लें।

इस विवाहका वर्तमान आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस तरहके मिश्रित माने जानेवाले विवाह किसी तरह भी अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका अंग नहीं हैं। इस विवाहमें आश्रमके अनेक आदर्शोंमें विश्वास रखनेवालोंकी पद्धतिको स्वीकृति दी गई है। मुझे आशा है कि यह विवाह अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके समय और उसमें मुख्य रूपसे भाग लेनेवाले की प्रेरणासे हो रहा है। इस बातका कोई गलत अर्थ नहीं निकालेगा। मैं ऐसे विवाह-सम्बन्धको किसीके लिए अनुकरणीय नहीं मानता। विवाहको मैं माता-पिता और उनकी सन्तानकी खुशीकी बात मानता हूँ। मेरा विश्वास है कि इसके लिए हिन्दू धर्ममें पर्याप्त प्रमाण हैं। किन्तु इस मामलेका अस्पृश्यता-निवारणसे कोई सम्बन्ध नहीं है। यह हिन्दू धर्ममें किये जाने योग्य सुधारोंका एक अलग क्षेत्र है।

मोहनदास [के वन्देमातरम्]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३२९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१९. हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा

[९ मार्च, १९३३][1]

२५ सितम्बर, १९३२ को बम्बईमें सवर्ण हिन्दू कहे जानेवाले लोगोंके भारत-भरसे आये प्रतिनिधियोंकी एक सभा हुई,[2] जिसकी अध्यक्षता पण्डित मदनमोहन मालवीयने की। सभामें उन लोगोंकी ओरसे निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया गया :

> **यह सम्मेलन संकल्प करता है कि आजसे हिन्दुओंके बीच कोई भी अपने जन्मके कारण अस्पृश्य नहीं माना जायेगा और जो लोग आजतक अस्पृश्य माने जाते रहे हैं उन्हें सार्वजनिक कुओं, सार्वजनिक सड़कों तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओंके उपयोगके सम्बन्धमें वही अधिकार होंगे जो अन्य हिन्दुओंको प्राप्त हैं। अवसर मिलते ही इस अधिकारको तुरन्त संवैधानिक मान्यता दे दी जायेगी और अगर स्वराज्यसे पूर्व इसको संवैधानिक मान्यता न मिल पाई तो इसे ऐसी मान्यता देना स्वराज्य संसद्के सबसे पहले कार्योंमें से एक होगा।**
>
> **सम्मेलन इस बातपर भी अपनी सहमति प्रकट करता है कि सभी हिन्दू नेताओंका यह कर्तव्य है कि वे प्रत्येक वैध और शान्तिपूर्ण उपायसे तथाकथित अस्पृश्य वर्गोंपर लगी रीतिगत निर्योग्यताओंको, जिनमें मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी शामिल है, जल्द दूर करानेकी कोशिश करें।**

इसके बाद ३० सितम्बरको पण्डित मदनमोहन मालवीयकी अध्यक्षतामें बम्बईमें देशके सभी हिस्सोंके हिन्दू नेताओंकी एक सार्वजनिक सभा हुई। उसमें अन्य प्रस्तावोंके साथ-साथ यह प्रस्ताव भी पास किया गया :

> **हिन्दुओंकी यह सार्वजनिक सभा संकल्प करती है कि अस्पृश्यताके विरुद्ध प्रचारकार्य करनेके लिए एक अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी संघकी स्थापना की जाये, जिसका प्रधान कार्यालय दिल्लीमें हो और जिसकी शाखाएँ विभिन्न प्रान्तीय केन्द्रोंमें हों। इस कामके लिए निम्नलिखित कार्रवाई तुरन्त की जानी चाहिए :**

१. यह शायद वही मसविदा है जिसका उल्लेख "पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको", १४-३-१९३३ में हुआ है। १४ मार्चसे पहलेका रविवार ९ मार्चको पड़ा था। यह संविधान कुछ छोटे-मोटे परिवर्तनोंके बाद २ जनवरी, १९३५ को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त पत्रमें गांधीजी कहते हैं कि यह मसविदा महादेव देसाईने तैयार किया था। गांधीजी द्वारा संशोधन किये जानेके बाद मूल मसविदेके जो अंश बच रहे उन्हें रेखांकित करके दिया जा रहा है।

२. देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ १४८-४९।

(क) सभी सार्वजनिक कुओं, धर्मशालाओं, सड़कों, स्कूलों, श्मशानों, श्मशान-घाटों आदिको दलित वर्गोंके लिए खुला घोषित किया जाये।

(ख) दलित वर्गोंके लोगोंको सभी सार्वजनिक मन्दिरोंमें जानेकी छूट हो। लेकिन शर्त यह है कि (क) और (ख)की पूर्तिके लिए किसी प्रकारकी जबरदस्ती या बल-प्रयोग नहीं किया जायेगा, केवल शान्तिपूर्वक समझाने-बुझानेके तरीकोंसे ही काम लिया जायेगा।

हिन्दुओंकी यह सभा हिन्दू समुदायसे अपील करती है कि अस्पृश्यताको मिटाने तथा इससे सम्बन्धित अन्य उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए वह यथासम्भव अधिकसे-अधिक राशि एकत्र करे और इस उद्देश्यके लिए वह अध्यक्ष तथा मन्त्रीको आवश्यक कार्रवाई करनेके सभी अधिकार देती है।

उपर्युक्त प्रस्तावोंके अनुसार अखिल भारतीय अस्पृश्यता-विरोधी संघ (ऑल इंडिया एंटी-अनटचेबिलिटी लीग) नामकी एक संस्थाका विधिवत् गठन किया गया, जिसका नाम बादमें बदलकर हरिजन सेवक संघ कर दिया गया। उसने २६ [अक्तूबर, १९३२ को दिल्लीमें] अपने लिये एक संविधान स्वीकार किया।

आगे चलकर एक पूर्णतर संविधान बनाना उचित समझा गया और अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघके केन्द्रीय बोर्डकी . . . दिल्लीमें हुई बैठकमें पहलेवाले संविधानको रद्द करके उसके स्थानपर निम्नलिखित संविधान अन्तिम रूपसे स्वीकृत किया गया।

हरिजन सेवक संघका संविधान

मौजूदा नियमोंके सन्दर्भमें :

१. संस्थाका नाम 'हरिजन सेवक संघ' होगा।

२. संघका उद्देश्य होगा सत्यमय और अहिंसात्मक उपायोंसे हिन्दू समाजमें से अस्पृश्यताको और तथाकथित अस्पृश्य लोग, जिन्हें आजसे हरिजन कहा जायेगा, जीवनके सभी क्षेत्रोंमें अस्पृश्यतासे उत्पन्न जिन बुराइयों और निर्योग्यताओंके शिकार हैं, उन तमाम बुराइयों और निर्योग्यताओंको दूर करना और उन लोगोंको शेष हिन्दू समाजके साथ पूर्ण समानताका दर्जा दिलाना।

३. अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए हरिजन सेवक संघ भारत-भरके सवर्ण हिन्दुओंके साथ सम्पर्क करने और उन्हें यह समझानेकी कोशिश करेगा कि हिन्दू समाजमें अस्पृश्यताका जो रूप है, वह शास्त्रों तथा उच्चतम मानवीय भावनाके विरुद्ध है। वह हरिजनोंकी ऐसी सेवा करनेकी भी कोशिश करेगा जिससे उनका, नैतिक सामाजिक एवं भौतिक कल्याण हो।

४. संघके काम-काजकी व्यवस्थाके लिए एक केन्द्रीय बोर्ड होगा, जिसका गठन आगे बताये गये अनुसार किया जायेगा।

५. केन्द्रीय बोर्डमें निम्नलिखित सदस्य और (२) संघके प्रान्तीय बोर्डोंके अध्यक्ष शामिल होंगे और अध्यक्षको अधिकसे-अधिक पाँच अतिरिक्त सदस्य शामिल करनेका अधिकार होगा।

संघटक सदस्य ये हैं:

१. श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला, अध्यक्ष
२. सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, बम्बई
३. सर लालूभाई शामलदास, बम्बई
४. डॉ० बी० आर० अम्बेडकर, बम्बई
५. सेठ अम्बालाल साराभाई, अहमदाबाद
६. डॉ० विधानचन्द्र राय, कलकत्ता
७. लाला लछमनदास, दिल्ली
८. राव बहादुर एम० सी० राजा, मद्रास
९. राव बहादुर श्रीनिवासन्, मद्रास
१०. डॉ० टी० एस० एस० राजन्, त्रिचिनापल्ली
११. श्रीयुत अ० वि० ठक्कर, महामन्त्री
१२. श्री बालू पी० पालवणकर, बम्बई
१३. श्री जे० पी० मंडेलिया, कोषाध्यक्ष, दिल्ली
१४. श्री डी० पी० खेतान, कलकत्ता
१५. श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, लाहौर

६. केन्द्रीय बोर्ड समय-समयपर जीवन-भरके लिये अथवा किसी निश्चित अवधिके लिए अतिरिक्त सदस्य नियुक्त कर सकता है। संघटक तथा अतिरिक्त सदस्यों-की मिली-जुली संख्या पदेन सदस्योंकी संख्यासे कदापि अधिक नहीं होगी।

७. अध्यक्ष, यदि वह पुनः निर्वाचित न हो जाये, तो हर तीन साल बाद अव-काश ग्रहण करेगा और उसका चुनाव मौजूदा बोर्ड करेगा।

८. अध्यक्षको मन्त्री या मन्त्रियों और कोषाध्यक्षको हटाने तथा उनके स्थान पर दूसरोंको नियुक्त करनेका अधिकार होगा, लेकिन शर्त यह रहेगी कि कभी भी तीनसे अधिक मन्त्री या दोसे अधिक कोषाध्यक्ष नहीं रहेंगे।

९. केन्द्रीय बोर्डका अध्यक्ष प्रान्तीय केन्द्रोंमें संघकी जितनी शाखाएँ रखना ठीक समझेगा, उसकी उतनी शाखाएँ वहाँ रहेंगी।

१०. प्रत्येक प्रान्तीय बोर्डके अध्यक्षका चुनाव केन्द्रीय बोर्डका अध्यक्ष करेगा और फिर प्रान्तीय बोर्डके अध्यक्ष अपने बोर्डमें जितने सदस्य रखना ठीक समझेंगे उतने सदस्य चुन लेंगे; लेकिन इन सदस्योंकी संख्या दससे अधिक नहीं होगी।

११. प्रान्तीय बोर्डका अध्यक्ष अपने बोर्डके लिए बोर्डके सदस्योंमें से एक कार्यकारी मन्त्री चुनेगा, लेकिन इस चुनाव पर केन्द्रीय बोर्डके अध्यक्षकी सहमति आवश्यक होगी।

१२. प्रत्येक प्रान्तीय बोर्डको हरिजन कार्यके हकमें जितनी समितियाँ या एजेंसियाँ बनाना जरूरी लगे, उतनी समितियाँ या एजेंसियाँ वह बना सकता है।

१३. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बोर्डों और उनकी समितियोंके अध्यक्ष अवैतनिक होंगे।

१४. केन्द्रीय बोर्ड, प्रान्तीय बोर्डों और समितियोंके पदाधिकारी और एजेंट (१) साथमें दिये जा रहे प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करेंगे, (२) छः रुपयेका वार्षिक चन्दा अग्रिम देंगे, जो इच्छानुसार छः-छः महीनेकी दो किस्तोंमें भी दिया जा सकता है, बशर्ते किसी अध्यक्षने अपने अधिकार-क्षेत्रके अन्दर उन्हें विशेष छूट न दे दी हो; (३) अपना चुना और बोर्डके आधे सदस्यों द्वारा अनुमोदित हरिजन सेवाका कोई ठोस कार्य करेंगे; और (४) उपर्युक्त अधिकारीको प्रति मास अपनी-अपनी डायरी भेजेंगे जिसमें उनके द्वारा की गई हरिजन सेवाका उल्लेख होगा।

१५. संघको अचल सम्पत्ति प्राप्त करने और अपने स्वामित्वमें रखनेका अधिकार होगा। ऐसी सम्पत्ति केन्द्रीय बोर्डके अध्यक्ष द्वारा नियुक्त स्थायी न्यासी या न्यासियोंके अधिकारमें होगी। न्यासी या न्यासियोंको केन्द्रीय बोर्डके प्रस्तावोंके अनुसार ही उस सम्पत्तिकी व्यवस्था करनेका अधिकार होगा।

१६. संघके केन्द्रीय बोर्डका कोष संघके नामसे बैंक या बैंकोंमें जमा किया जायेगा और खाता अध्यक्ष या उसके द्वारा नामांकित एक या एकाधिक व्यक्ति चलायेंगे।

१७. इसी प्रकार प्रान्तीय बोर्डों और उनकी समितियोंके कोष यथासम्भव बैंकोंमें ही रखे जायें और खाते सम्बन्धित अध्यक्ष या उनके नामांकित व्यक्ति चलायेंगे।

१८. सालमें कमसे-कम एक बार भारतके किसी भी सुविधाजनक स्थानमें केन्द्रीय बोर्डकी बैठक होगी। इसकी बैठकके लिए कोरम (गणपूर्ति) दस सदस्योंका होगा।

१९. केन्द्रीय बोर्डको केन्द्रीय और प्रान्तीय बजट तैयार करने और पास करनेके लिए, संघके कोषके अभिरक्षण, विनियोग और लेखा-परीक्षाके लिए और संघके कार्यका अन्यथा नियमन करनेके लिए उप-नियम बनानेका अधिकार होगा।

२०. केन्द्रीय बोर्ड भारतके उन देशी राज्योंमें भी काम कर सकता है जहाँ उसकी प्रवृत्तियोंपर प्रतिबन्ध नहीं है।

२१. केन्द्रीय बोर्ड या प्रान्तीय बोर्डों या समितियोंका कोई भी सदस्य या एजेंट, सदस्य या एजेंट रहते हुए किसी भी प्रकारसे सविनय अवज्ञा आन्दोलनमें भाग नहीं लेगा।

२२. यदि किसी बोर्डका कोई सदस्य या एजेंट बिना किसी उचित कारणके सम्बन्धित बोर्डकी लगातार तीन बैठकोंमें गैरहाजिर रहे तो ऐसा माना जायेगा कि उसने अपना पद छोड़ दिया है।

२३. यदि किसी बोर्डका कोई भी सदस्य उपयुक्त अधिकारी द्वारा दिये गये निर्देशोंका पालन न करे, तो उसे केन्द्रीय बोर्ड अथवा प्रान्तीय बोर्डकी मर्जीके मुताबिक उसके पदसे हटाया जा सकता है।

२४. ऐसा कोई भी आदमी, जो संघके उद्देश्यका समर्थन करता है और जो संघको चन्दा देकर तथा दूसरोंसे चन्दे उगाहकर संघकी सहायता करेगा तथा अन्य प्रकारसे भी उसके कामको आगे बढ़ायेगा, संघका सहायक सदस्य हो सकता है, और उसे समय-समयपर संघकी कार्यवाहियोंकी सूचना दी जाती रहेगी और उसे केन्द्रीय बोर्ड अथवा अपने प्रान्तके बोर्डकी बैठकोंमें शामिल होनेका अधिकार रहेगा तथा वह इनमें आमन्त्रित किया जायेगा, हालाँकि उसे मताधिकार नहीं रहेगा।

२५. केन्द्रीय बोर्ड, प्रान्तीय बोर्ड तथा समितियाँ देश-भरके हरिजन-संगठनोंके साथ सम्पर्क स्थापित करेंगी और उन्हें सलाहकारोंकी सूचियाँ देनेको आमन्त्रित करेंगी। सलाहकारोंको संघकी प्रवृत्तियोंसे अवगत रखा जायेगा और बोर्डों या समितियोंकी बैठकोंमें शामिल होने और उनकी कार्यवाहियोंमें भाग लेनेको निमन्त्रित किया जायेगा, लेकिन ये सलाहकार बैठकोंमें मताधिकारका प्रयोग नहीं कर सकेंगे।

२६. प्रत्येक बोर्ड या समितिमें अधिकतम सीमाका ध्यान रखते हुए अधिकसे-अधिक जितने सदस्य बनाये जा सकते हैं उतने होंगे, लेकिन उन्हें साथमें दिये जा रहे प्रारूप 'ख' में दी गई प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर करने पड़ेंगे और वे इसकी धारा १४ की उपधाराएँ २, ३ और ४ में रखी गई शर्तोंसे मुक्त होंगे।

२७. संघके मामलोंके बेहतर प्रबन्धके लिए अध्यक्ष केन्द्रीय बोर्डके सदस्योंमें से सात सदस्योंकी एक कार्यकारिणी समिति चुनेगा और इन सात सदस्योंमें बहैसियत सभापतिके स्वयं अध्यक्ष तथा दो मन्त्री भी शामिल होंगे।

२८. कार्यकारिणी समितिकी बैठक हर तीन महीने बाद और जरूरत पड़ने पर जल्दी भी होगी और उसे वे सारे अधिकार होंगे जिनका प्रयोग केन्द्रीय बोर्ड करता है, लेकिन जहाँतक सम्भव होगा केन्द्रीय बोर्ड उसके कार्योंकी निगरानी करेगा। सभापति और मन्त्रियोंके अतिरिक्त शेष चार सदस्य यदि दोबारा न चुने जायें तो हर साल निवृत्त होते जायेंगे।

२९. लेखरोधित (सुपरसीटेड) संविधानके अधीन आज तक की गई सारी कार्रवाई और हाथमें लिये गये सभी कार्य-व्यापारोंकी सम्पुष्टि की जाती है।

३०. उपर्युक्त व्यवस्थाओंके अनुरूप, पुराना संविधान रद्द किया जाता है; और केन्द्रीय बोर्डको समय-समय पर इस संविधानमें ऐसा संशोधन करनेका अधिकार होगा जो संघके उद्देश्यसे असंगत न हो।

३१. संक्रमणकी अवस्थामें मौजूदा संगठन तबतक काम करते रहेंगे जबतक कि इस संविधानके अनुरूप सारे परिवर्तन सम्पन्न नहीं हो जाते।

३२. यह संविधान . . . . से प्रभावी होगा।

परिशिष्ट (क)

मैं (नाम . . . . उम्र . . . . . . धन्धा. . . . . . ., निवासी . . . .) हिन्दू समाजमें आज-जैसी अस्पृश्यता बरती जाती है उसके पूर्ण निवारणमें विश्वास रखता हूँ और 'हरिजन सेवक संघ' के संविधानसे सहमति प्रकट करता हूँ। मैं किसी भी मनुष्यको अपनेसे नीचा नहीं मानता और १ जनवरी, १९३५ से हर छः महीनेमें . . . . .की राशि अग्रिम दे दिया करूँगा।

मैं निम्नलिखित ढंगसे हरिजनोंकी व्यक्तिगत सेवा करनेका भी वचन देता हूँ:

(बताइए कि क्या सेवा करेंगे)

मैं हरिजनोंकी जो भी सेवा करूँगा उसका विवरण प्रति मास नियमित रूपसे भेजा करूँगा।

तिथि

स्थान

हस्ताक्षर

परिशिष्ट (ख)

मैं (पूरा नाम, उम्र, पेशा, निवासस्थान) हरिजन सेवक संघके उद्देश्यमें विश्वास रखता हूँ और उसके संविधानसे सहमति व्यक्त करता हूँ।

मैं केन्द्रीय बोर्ड या उसकी शाखाओं द्वारा समय-समय पर दिये गये सभी निर्देशोंका पालन करूँगा।

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८७३३) से; तथा **कांस्टीट्यूशन ऑफ द हरिजन सेवक संघ** से भी

२०. पत्र : अभ्यंकरको

९ मार्च, १९३३

प्रिय अभ्यंकर,

श्रीयुत छापखानेके साथ हुए मेरे आगेके पत्रव्यवहारकी नकल साथमें है।[१] मेरा सुझाव है कि आप उनसे मिलकर जो तय करना सम्भव हो, तय कर लें। मेरी साँगली-यात्राके दौरान जो सब हुआ, उसके बारेमें वे इतने निश्चित हैं कि बिना किसी अकाट्य प्रमाणके उनकी बातोंका खण्डन करना या यह मानना कि वे झूठी बात कहनेके दोषी हैं, बहुत कठिन है।

श्रीयुत जोशी मेरा पत्र[२] शायद आपको दिखायेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५१२) से।

२१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

९ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

अंग्रेजी 'हरिजन' अब अपना खर्च खुद निकालने लगा है। बाजारमें बेचने और वार्षिक ग्राहकोंके चन्देसे जो रकम आज तक इकट्ठी हुई उसमें से भी कुछ बच रहा है, और केन्द्रीय बोर्ड[३] द्वारा दी गई १,०४४ रुपयेकी रकम वैसी ही मौजूद है। इसलिए इसे अब वापस किया जा सकता है। बताओ, यह रुपया आपके पास कैसे भेजा जाये? आपको महाराष्ट्र बोर्डको भी तो कुछ देना है। रुपया वापस करनेके ढंगके बारेमें इसलिए पूछ रहा हूँ कि मनीआर्डर, हुंडी या चैक द्वारा रुपया भेजनेसे कमीशन लगेगा, और मैं वह बचाना चाहता हूँ।

गुजराती 'हरिजन' निकालनेका भी प्रबन्ध हो गया है। पूनासे निकल रहा है। यदि घाटा हुआ तो पहले तीन मासके घाटेका भार बम्बई बोर्डने वहन करनेकी गारंटी दे दी है। पर मुझे तो ऐसी आशंका नहीं है।

हृदयसे आपका,

बापू

१. देखिए "पत्र : के० आर० छापखानेको", ७-३-१९३३।

२. देखिए "पत्र : विठ्ठल के० जोशीको", ९-३-१९३३।

३. हरिजन सेवक संघ।

[पुनश्च :]

काशीसे लिखा हुआ खत मिल गया है। ऑपरेशन मुल्तवी रहता जाता है, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।[1]

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ७९३०) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला। **इन द शेडो ऑफ द महात्मा**से भी, पृष्ठ १०६-७

२२. पत्र : ब्रिटिश भारतीय संघको

९ मार्च, १९३३

संयुक्त अवैतनिक मन्त्रिगण
ब्रिटिश भारतीय संघ
१८, ब्रिटिश इंडियन स्ट्रीट, कलकत्ता

प्रिय मित्रो,

गत महीनेकी २३ तारीखके आपके उस पत्रके लिए धन्यवाद जिसके साथ ब्रिटिश भारतीय संघकी ओरसे पूना समझौतेके बारेमें दिया गया ज्ञापन[2] नत्थी है। बंगालका मत जाननेके लिए मैं इस सम्बन्धमें मित्रोंके साथ खानगी पत्र-व्यवहार करता रहा हूँ। मेरा अपना मत तो बिलकुल स्पष्ट है। अस्पृश्यों या दलित वर्गोंके लिए आरक्षित किये जानेवाले स्थानोंकी संख्यामें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं थी। एक बार जब आरक्षणका सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया, तब मेरी दृष्टि यह हो गई कि उन्हें जितने भी अधिक स्थान दिये जायें, स्वयं उनके लिए और हिन्दू धर्मके लिए, और इसलिए सारे भारतके लिए, हर तरहसे उतना ही अच्छा रहेगा। अगर अस्पृश्य लोग हमारे अपने ही हैं, तो उनके लिए स्थानोंको आरक्षित करनेमें तनिक भी संकोच न रखनेसे अच्छा और क्या हो सकता है? मेरे विचारसे भेदभावको मिटानेका

१. पुनश्चवाला अंश **इन द शेडो ऑफ द महात्मा**में ही है और वहाँ उसमें यह भी कहा गया है कि यह अंश हिन्दीमें था। यहाँ उद्धृत अंश उक्त पुस्तकके हिन्दी संस्करण **गांधीजी की छत्रछाया में** से लिया गया है और सम्भवत: गांधीजी की ही हिन्दीमें है।

२. यह ज्ञापन सर विपिनविहारी घोषकी अध्यक्षतामें नियुक्त एक उप-समितिने तैयार किया था। यह उप-समिति ११ जनवरी, १९३३ को ब्रिटिश भारतीय संघ (ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन) के कक्षमें हुए सर्वदलीय बंगाली हिन्दू सम्मेलन द्वारा नियुक्त की गई थी। ज्ञापनमें अन्य बातोंके अलावा यह कहा गया था: "इस प्रकार यह स्पष्ट हो जायेगा कि बंगालके सवर्ण हिन्दुओंमें पहलेसे ही यह भावना विद्यमान है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है; और प्रधान मन्त्री द्वारा पूना समझौतेको स्वीकार कर लिया जाना उनकी शिकायतोंको काफी बढ़ा देता है। ऊपर बताये गये तथ्योंके आधारपर, यह निवेदन है कि पूना समझौतेसे प्रधान मन्त्रीके निर्णयमें बताये स्थानापन्न समझौतेकी शर्तें पूरी नहीं हुई। इसलिए इस बातका पूरा औचित्य मौजूद है कि प्रधान मन्त्री अपनी स्वीकृतिपर दोबारा विचार करें।" (एस० एन० २०३४१)।

सबसे अच्छा तरीका यही होगा। मैं इस विचारसे तनिक भी सहमत नहीं हूँ कि यरवडा समझौतेमें[1] अलगावके सिद्धान्तको बिलकुल अक्षुण्ण रखा गया है। इसके विपरीत, जहाँतक राजनीतिक पहलूका सम्बन्ध है, संयुक्त निर्वाचनका सिद्धान्त यरवडा समझौतेकी मुख्य विशेषता रही है। अगर स्वयं अपनेमें और हरिजनोंके प्रति अपने स्नेह-सम्मान भावमें हमारा विश्वास है, तो इसमें कोई बुराई नहीं। संयुक्त निर्वाचनके लिए उम्मीदवारोंका प्रारम्भिक चुनाव हरिजन लोग करें; अगर चारोंके-चारों स्थानोंके लिए ऐसे ही उम्मीदवार चुने जाएँ जो हिन्दू-विरोधी प्रतिक्रियावादी हों, तो यह मेरे लिए इस बातका निश्चित प्रमाण होगा कि इस कामको करनेके लिए हमें जितना समय मिला उसमें हम उनका स्नेह या सम्मान प्राप्त नहीं कर पाये हैं और अगर हमें प्रतिक्रियावादी उम्मीदवारोंमें से ही सदस्य चुनने पड़ें, तो हमें अपने भाग्यको ही दोष देना चाहिए। मैं आपके इस भयको किसी भी तरह सही नहीं मानता कि दलित वर्गोंके सदस्य हिन्दुओं या राष्ट्रके हितके साथ न्याय नहीं करेंगे। साथ ही, मुझे ऐसा कोई डर भी नहीं है कि वे जनताके प्रतिनिधियोंकी हैसियतसे अपने उचित कर्तव्योंका निर्वाह नहीं कर पायेंगे। अगर अन्यथा कुछ हुआ, तो उसका मतलब होगा कि हम स्वराज्यके लायक नहीं हैं।

इसलिए सब-कुछ विचार करनेपर मुझे ऐसी आशंका है कि इस समझौतेपर पुनर्विचार किये जानेकी बातमें मैं शरीक नहीं हो सकता, और फिर यह बात तो है ही कि इसमें मैं तो केवल एक सम्बन्धित पक्ष हूँ, और अगर शेष सभी पक्ष ब्रिटिश भारतीय संघ द्वारा सुझाई गई दिशामें इस समझौतेमें परिवर्तन करनेपर सहमत हों या वे ऐसा करना चाहते हों तो फिर एक मेरे मतका तो कोई महत्त्व नहीं होगा।

मैं आपकी स्थिति किसी भी तरहसे अटपटी नहीं बनाना चाहता, इसलिए मैंने उसपर कोई सार्वजनिक चर्चा नहीं चलाई है और न तबतक चलाऊँगा जबतक कि आप ही न चाहें कि मैं चर्चा चलाऊँ। मैंने जिस व्यक्तिको पहले-पहल पत्र लिखा वह, मेरे खयालसे, डॉ० विधान राय ही थे, और उन्होंने मुझे बताया कि वे सभी सम्बन्धित पक्षोंसे मिल रहे हैं और वे मुझे फिर पत्र लिखेंगे। लेकिन तबसे उनका कोई पत्र मुझे नहीं मिला है। अब मैं आपकी मर्जीपर हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५११) से। सी० डब्ल्यू० ७९३१ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. समझौतेके पूरे पाठके लिए देखिए खण्ड ५१, परिशिष्ट २।

२३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

९ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

बंगला 'हरिजन' के दो अंकोंका विषय-परिचय देते हुए आपने जो पत्र भेजा, वह मुझे मिल गया। 'हरिजन' के अगले अंकमें प्रकाशित होनेवाली टिप्पणी[1] देखिएगा।

चेचकके बारेमें आपकी बातपर मैंने गौर किया है। लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि विभिन्न जातियोंमें चेचकसे कितने लोग बीमार होते हैं, इससे सम्बन्धित आँकड़े जमा करनेसे कोई लाभ होगा या नहीं।

आप सनातनियोंसे सम्पर्क बनाये हुए हैं, यह जानकर खुशी हुई। यह तो सुविदित है कि जबतक हम मन्दिर-प्रवेशके सवालको छोड़ नहीं देते तबतक वे और कोई बात नहीं सुनेंगे। उनके सामने मेरा यह सुझाव पेश है कि उन्हें खुद अपने संगठन शुरू करके दूसरे काम हाथमें लेने चाहिए। अगर वे यह नहीं करते, तो उससे यही प्रकट होता है कि सब-कुछ पाखण्ड है।

जहाँतक वर्णाश्रमका सम्बन्ध है, वास्तवमें मेरा यही मतलब है कि अगर वर्णके अनुसार सारे हिन्दू समाजका वर्गीकरण करना ही हो तो केवल एक ही वर्ण सम्भव है, वह है शूद्र। सभीका चौथे वर्णको स्वीकार कर लेना न केवल हिन्दू समाजकी सच्ची अवस्थाका परिचायक होगा, बल्कि वह ऊँच-नीचके भेदोंको एकदम मिटा देगा। उसका मतलब यह नहीं है कि कोई भी ब्रह्म-ज्ञान या कोई अन्य ज्ञान प्राप्त न करे। हाँ, उसका मतलब यह अवश्य है कि सभी अपने श्रमके बलपर जियें और इसलिए किसीको भी अपने निर्वाह-भरके लिए आवश्यक साधनोंसे अधिक पानेका अधिकार नहीं है। मेरे विचारसे संक्षेपमें यही वर्ण धर्म है। यह तो सच है कि हिन्दू समाज कभी भी पूर्ण रूपसे इस आदर्श तक नहीं पहुँच पाया है, लेकिन मेरे विचारसे यह भी उतना ही सच है कि हिन्दू समाज जिस कालमें अपने विशुद्धतम रूपमें था उस कालमें उसने इसे प्राप्त करनेका सचेतन प्रयास किया है और उसे सफलता भी मिली है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०७) से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ११-३-१९३३।

२४. पत्र : विट्ठल के० जोशीको

९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, श्रीयुत छापखानेका भी मिला था[१]। उन्होंने बिलकुल स्पष्ट उत्तर दिया है, जिसमें श्रीयुत आठवलेके उत्तरकी पुष्टि की है। उनका भी यह सुझाव है कि मामलेकी सफाईके लिए आपको श्रीयुत छापखानेके पास जाना चाहिए था। मेरा सुझाव है कि आप ऐसा ही करें। बाकी पत्र-व्यवहारकी नकलें श्रीयुत अभ्यंकरको भेजी जा रही हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि मामलेको अदालतमें ले जानेका कोई सवाल नहीं है। मैं तो जिनके पास यह राशि पड़ी है, उनसे अनुनय-विनय ही कर सकता हूँ, लेकिन मेरे लिए यह मान लेना कठिन है कि श्रीयुत छापखाने-जैसे व्यक्ति, मेरी साँगली-यात्राके दौरान जो सब हुआ, उसका गलत विवरण देनेके दोषी हो सकते हैं। श्रीयुत गंगाधररावकी स्मरणशक्तिके आधारपर कोई बात नहीं कही जा सकती। वे विश्वासपूर्वक कोई बात नहीं कह रहे हैं और इतने साल पहले घटी घटनाओंको याद करना किसीके लिए सम्भव नहीं है। इसलिए जबतक इसके विरुद्ध कोई अकाट्य प्रमाण नहीं मिल जाता, श्रीयुत छापखानेकी बातको अवश्य मानना चाहिए और उस हालतमें मैं तो उनसे केवल अनुनय-विनय ही कर सकता हूँ कि इसमें से कमसे-कम कुछ पैसेका उपयोग तो वे हरिजन-कार्यके लिए करें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विट्ठल के० जोशी
न्यू पेठ
साँगली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५१४) से।

१. गांधीजी द्वारा दिये गये उनके इस पत्रके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: के० आर० छापखानेको", ७-३-१९३३।

२५. पत्र : नी० को

९ मार्च, १९३३

प्रिय नी०[१],

आज तुम्हारा पत्र मिलनेकी आशा थी। तुम्हें जो तार मिला था उसकी पीठ पर लिखा तुम्हारा सन्देश मिला था। २५ रुपये लेनेसे तुम्हारा इनकार करना ठीक था। तुम्हारे सन्देशके नीचे लिखी बात मुझे पसन्द नहीं आई। "तुम्हारा पुत्र" अस्वाभाविक और नाटकीय लगता है। अगर तुम्हें सचमुच सत्यका बोध हो गया है तो तुमको यह महसूस करना चाहिए कि अतीतमें तुमने कितनी भारी गलती की है और तुम्हें सारा आवेश और अस्वाभाविकता छोड़ देनी चाहिए। तुम मेरी पुत्री तभी हो सकती हो जब तुमने मुझसे जैसी नेक बननेका वादा किया है, वैसी नेक बन जाओ।

मुझे एस०[२] और सर एम० के[३] पत्र मिले थे। इसलिए मैं सर एम० को[४] पत्र लिख रहा हूँ। उसमें मैं तुम्हारी स्वीकारोक्तियोंका सार और तुम्हारा वादा बताये दे रहा हूँ। तुम्हारे दिये नाम तो स्वभावतः उसमें नहीं दे रहा हूँ और एस०को भी एक ऐसा ही पत्र लिख रहा हूँ। यह ठीक है न? एस०ने अपने पत्रमें यह भी लिखा है कि अगर तुम मेरे मार्ग-दर्शनमें आ जाओ और मैं तुम्हारी सेवाओंका उपयोग कर सकूँ तो उसे खुशी होगी।

ईश्वर तुमपर कृपा करे और तुम्हें अपना वादा पूरा करनेकी शक्ति दे।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०४) से।

१. एक अमरीकी महिला जो बादमें कुछ समयके लिए साबरमती आश्रममें रही थी; इस पत्र और अगले अन्य सम्बन्धित शीर्षकोंमें उसका नाम नहीं दिया जा रहा है।

२ और ३. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

४. देखिए अगला शीर्षक।

२६. पत्र : एम० को[1]

९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

नी० के बारेमें आपके पत्रके लिए धन्यवाद। वह कुछ दिन मेरे साथ रही थी और मुझे दुःखके साथ कहना पड़ रहा है कि उसका जीवन, जैसा आपने बताया है, वैसा नहीं रहा। थोड़ा-थोड़ा करके उसने अपने ही मुँह अपने सारे दोष बताये और उस सबको मिलाकर उसके जीवनकी जो कहानी बनी वह मनको कँपा देनेवाली थी। लगता है, छोटी अवस्थासे ही उसने बहुत ही असंयमित और अनैतिक जीवन व्यतीत किया है। वह तो अपनी ओर बढ़नेवाले लगभग हर आदमीके पंजेमें फँसनेको तैयार रहती थी; और हिन्दू धर्म अंगीकार करनेके बाद भी उसमें कोई सुधार नहीं आया। उसपर यूरोप और भारतमें कुल मिलाकर लगभग १०,००० रुपयेका कर्ज है। उसने छद्मनामसे यात्रा की है। उसके पक्षमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि अपने स्वैराचारकी कहानी बतानेमें मुझसे कोई दुराव नहीं किया, यद्यपि जैसा कि मैंने कहा है, वे बातें मुझे उससे जिरह करते हुए थोड़ा-थोड़ा करके ही मालूम हुईं। उसने कहा है कि वह प्रायश्चित्त करेगी और मुझे अपने अतीतसे बिलकुल नाता तोड़ लेनेका निश्चित वचन दिया है। मैंने उससे कहा है कि मैं उसको यों ही केवल विश्वासके आधार पर स्वीकार नहीं कर सकता, लेकिन अगर उसने अपना वचन पूरा किया तो उसका बचाव और मार्ग-दर्शन करनेमें मैं नहीं हिचकूँगा। मैं नहीं जानता कि अपने ऊपर नियन्त्रण रखने और अपना वचन पूरा करनेकी कितनी क्षमता अब भी उसमें शेष रह गई है।

उसकी स्वदोष-स्वीकृतिका यह विवरण देकर मैं कोई विश्वास-भंग नहीं कर रहा हूँ। क्योंकि बहुत-कुछ इसी तरहकी एक स्वीकारोक्ति वह बंगलोर पहुँचते ही प्रकाशित करानेवाली थी। वह आवास भी छोड़ देनेवाली थी और अपने लड़केके साथ केवल क्षमाशील संसारके दान-दाक्षिण्यपर निर्भर रहते हुए भिखारिनका जीवन व्यतीत करनेवाली थी और हरिजन-बस्तियोंके किसी कोनेमें यथासम्भव सादीसे-सादी जिन्दगी बितानेवाली थी तथा शिक्षिकाको छुट्टी देकर अपने नन्हेंसे लड़केको भी अपने प्रायश्चित्तमय जीवनमें सहभागी बननेका सौभाग्य देनेवाली थी।

उसके जीवनसे सम्बन्धित कुछ और भी बातें हैं, कुछ विवरण हैं, लेकिन उनके बारेमें मुझे किसीको बताना नहीं चाहिए और जहाँतक मैं समझता हूँ, वह खुद भी उनकी जानकारी किसीको नहीं देगी।

१. नाम नहीं दिया जा रहा है।

उसकी स्वीकारोक्ति सुनकर मैं उदास हो गया हूँ। मेरे सामने अन्य बहुत-से लड़के-लड़कियोंने भी स्वीकारोक्तियाँ की हैं, किन्तु नी० के जैसे मामलेसे साबका पड़नेकी बदकिस्मती मुझे कभी नहीं मिली। लेकिन, उसके बारेमें कोई फतवा देनेका मुझे हक नहीं है। फतवा देना तो ईश्वरके हाथमें है। मुझे तो खुद ही दुनियाकी दयाकी जरूरत है, इसलिए उसपर भी मुझे दया ही आती है और मैं अपनी क्षमता-भर उसकी मदद करना चाहता हूँ। जब उसने मुझे अपना यह निर्णय बताते हुए पत्र लिखा कि अगर वर्षके आरम्भमें उपवास शुरू करूँगा तो मेरे साथ वह भी उपवास करेगी, उसी समय मैंने उसके प्रति आकर्षण अनुभव किया था। मैंने उसे इसके खिलाफ चेतावनी दी थी; और उसके बाद हमारा पत्र-व्यवहार लम्बा खिंच चला। मैंने यह आशा की थी कि वह हरिजन-सेवकोंकी सेनाकी एक शानदार सदस्या होगी और उसके पत्रोंसे यही आशा बँधती थी।

मेरे प्रति आपकी व्यक्तिगत शुभेच्छाओं और कृपापूर्ण विचारोंके लिए आपको धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५०२) से।

२७. पत्र : रामचन्द्रको

९ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

साथमें एक पत्र भेज रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि आप इसे पढ़कर नी०को दे दें।

यह अनुरोध भी है कि इंजिनियरिंग कालेजवाले रामस्वामीका पूरा नाम और पता भेज दें। मुझे मालूम हुआ है कि भंगीका काम करनेमें वह उसका प्रमुख साथी रहा है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०३) से।

२८. पत्र : आर० राममूर्तिको

९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके १० फरवरीके उस पत्रके लिए धन्यवाद जिसमें आपने मुझे 'शान्ति-पर्व'के उद्धरणोंका स्मरण दिलाया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० राममूर्ति
मार्फत – श्रीयुत रामचन्द्रराव
१, रावण अय्यर स्ट्रीट
पी० टी०, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०८) से।

२९. पत्र : पंचानन तर्करत्नको

९ मार्च, १९३३

प्रिय पण्डितजी,

आपका बिना तिथिका पत्र पाकर मुझे आश्चर्य हुआ।

जहाँतक आपके सुपुत्रके आनेकी बात है, वे मेरे पास कोई शास्त्रार्थ करनेवाले शास्त्रीकी हैसियतसे नहीं, बल्कि ऐसे व्यक्तिकी तरह आनेवाले थे जो चाहता है कि वह मेरे प्रश्नोंके उत्तर देकर मेरी शंकाएँ मिटाये और इसलिए वह १० दिनोंतक या जरूरत हो तो इससे भी लम्बी अवधि तक रोज-रोज मुझसे मिले, और जिस प्रकार आप मुझ पर बिना कोई शर्त थोपे आये थे[1], आपके प्रतिनिधिकी हैसियतसे वे भी उसी प्रकार आनेवाले थे।

अब आप लिखते हैं कि वे आपका वादा पूरा करने मेरे पास एक शास्त्रार्थी की हैसियतसे आ रहे हैं; इस पर मुझे आश्चर्य है।

१. देखिए खण्ड ५२, पृष्ठ ३१९ और खण्ड ५३, पृष्ठ ३३६-७।

दूसरे इस चर्चाके प्रारम्भसे ही, आज जैसी अस्पृश्यता वरती जाती है, वही इस चर्चाका विषय थी[1], और जिस दिन चर्चा शुरू हुई उसी दिनका पण्डितों द्वारा लिखा एक पत्र मेरे पास है, जिसमें कहा गया है कि यही मुझे और उन लोगों, दोनोंको ग्राह्य सामान्य आधार है। आप, आपके पुत्र या कोई और भी मेरे पास पड़ा मूल कागज देख सकता है। लेकिन पण्डितोंने मुझपर एक अन्य शर्त लगाई थी और उनका खयाल था कि उसे मैं कभी भी स्वीकार नहीं करूँगा, लेकिन जब वे जेलके दरवाजेतक आ गये तब चर्चाका अवसर न खोनेके खयालसे ही मैंने वह आपत्ति छोड़ दी और "इस समय वरती जानेवाली" शब्दोंको बरकरार रखकर उनकी शर्त मान ली। फिर भी, वे नहीं आये। इसको मैं अनुचित, अशिष्टतापूर्ण और पण्डितोंके लिए अशोभनीय आचरण कहे विना नहीं रह सकता। शास्त्रियोंके साथ अपने सम्पर्कके दौरान मुझे जितने भी पीड़ाजनक अनुभवोंका दुर्भाग्य प्राप्त हुआ है उनमें यही सबसे अधिक पीड़ाजनक था।

आपके पत्रके दूसरे हिस्सोंके बारेमें मैं इससे ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता कि शास्त्रोंकी आपकी व्याख्यासे मैं सहमत नहीं हो सकता। क्योंकि सामान्य बुद्धि और सार्वभौमिक नैतिक नियमोंसे उसका मेल नहीं बैठता; और यह बहुत-से उन पण्डितों की शास्त्रोंकी व्याख्याके विरुद्ध है जो विद्वत्ता और प्रामाणिकतामें विरोधी विचार-धाराके पण्डितोंसे किसी कदर कम नहीं हैं। तो, शास्त्रोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें ऐसे विवादके रहते हुए, अगर मैं उस व्याख्याको स्वीकार करूँ जो मेरी नैतिक भावनासे मेल खाती है तो आप मुझे दोष न देंगे।

जहाँतक आपके प्रस्तावित उपवासका सम्बन्ध है, अगर आप उसे शुरू करेंगे तो मुझे दुःख होगा, लेकिन हिन्दू धर्मको माननेवालोंमें तो ऐसे उपवास आये दिन होते ही रहते हैं और अगर शुद्ध हृदयसे तथा विना क्रोध या दुर्भावनाके ऐसे उपवास किये जायें तो उसपर खुशी ही होनी चाहिए।

अगर आपने विधानमण्डलमें विचाराधीन दोनों विधेयकोंके[2] मजमून और उनके प्रयोग तथा प्रसंगका ध्यानपूर्वक अध्ययन किया होता, तो आप उनके बारेमें वैसी बातें नहीं लिखते जैसी आपने लिखी हैं। मेरे विचारसे वे किसीके धर्म या अन्तरात्मा के आदेशके आड़े नहीं आते। एक विधेयक तो दीवानी कानूनके क्षेत्राधिकारसे अस्पृश्यताको हटाता है और यह ऐसी चीज है जिसे करनेकी इच्छा मुझे, आपको और हरएक व्यक्तिको होनी चाहिए; दूसरेमें सबको अपनी-अपनी अन्तरात्माके आदेशके अनुसार चलनेकी सुरक्षा प्रदान की गई है, जबकि आज स्थिति यह है कि बहुत-से

१. १२ जनवरीको सनातनी शास्त्रियोंके साथ; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४० ।

२. इन दो गैर-सरकारी विधेयकोंका सम्बन्ध अस्पृश्यता-निवारणसे था। एकका प्रवर्तन केन्द्रीय विधान सभामें रंग अय्यर और दूसरेका मद्रास विधान परिषद्में डॉ० सुब्बरायण करनेवाले थे। रंग अय्यरका विधेयक पहले २७ फरवरीको और फिर २४ मार्चको पेश किया जानेवाला था। परन्तु दोनों अवसरोंपर, "अस्पृश्यता-विरोधी" आन्दोलनके कट्टर विरोधी सदस्यों या उसके प्रति उदासीन रहनेवाले सदस्यों द्वारा दूसरे गैर-सरकारी विधेयकोंपर बेमतलब लम्बी चर्चा चलाये जानेके कारण, यह विधेयक पेश नहीं किया जा सका"। **इंडिया इन १९३२-३३**।

लोगोंको — और इन लोगोंकी संख्या बराबर बढ़ती ही जा रही है — अपनी अन्तरात्माको दबाकर रखना पड़ता है।

हृदयसे आपका,

पण्डित पंचानन तर्करत्न
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०९-ए) से।

३०. पत्र : मोतीलाल रायको

९ मार्च, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

आपने मुझसे अपना उत्तर सीधे पण्डित पंचानन तर्करत्नको भेजनेको कहा है। मगर दुर्भाग्यवश आपने मुझे उनका पता नहीं दिया और उन्होंने भी अपने पत्रमें अपना पता नहीं भेजा है। इसलिए मैं अपना उत्तर[1] आपको ही भेज रहा हूँ। आप चाहें तो इसे एक लिफाफेमें डालकर वहींसे उनको भेज सकते हैं। डाकमें डालनेसे पहले, आपको वह पत्र पढ़ लेना चाहिए। अपने पोस्टकार्डमें आपने जो पत्र लिखनेका वादा किया था, उसकी मैं धीरजसे प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०९) से।

३१. पत्र : देवप्रसाद सर्वाधिकारीको

९ मार्च, १९३३

प्रिय सर देवप्रसाद,

आपके ३ मार्चके पत्रके लिए धन्यवाद। पत्रसे मालूम हुआ कि त्रिपुरावाले अब्दुल अलीम संस्थामें[2] दाखिल कर लिये गये हैं और आप डॉक्टरसे उनकी जाँच करवा रहे हैं तथा ऐसी व्यवस्था कर रहे हैं जिससे उनपर विशेष ध्यान दिया जा सके। इस सबके लिए आभारी हूँ।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. इस संस्थाका नाम "द रिफ्यूज" था और यह "गृहविहीन, असहाय तथा निरुपाय" लोगोंके घरके रूपमें काम आता था। देवप्रसाद सर्वाधिकारी इसके अध्यक्ष थे।

आशा करनी चाहिए कि उनके प्रति जितनी सहानुभूति दिखाई जा रही है वे उसके योग्य साबित होंगे।

हृदयसे आपका,

सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी
१२५ बहू बाजार स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५०६) से।

३२. पत्र : नारणदास गांधीको

९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ मेरी और डंकन द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर[1] भेज रहा हूँ। उन्हें पढ़कर उनपर विचार करना और उन्हें दे देना। लक्ष्मीके बारेमें मैंने तुम्हें कल पत्र[2] लिखा था और उसके साथ अपना सन्देश भी भेजा था। बहुत करके तो देवदास रविवारको वहाँ पहुँच जायेगा।

मेरा यह विचार दृढ़ होता जा रहा है कि दमेका मूल भी पेट ही है। और यदि चिमनलाल तथा जमना दृढ़तापूर्वक दूधके प्रयोग पर डटे रहें तो उनका दमा अवश्य चला जायेगा। यह माननेका कोई कारण नहीं है कि दूध एक पूर्व-निर्धारित मात्रामें तो लेना ही चाहिए। मैं समझता हूँ कि चिमनलाल और जमना बहुत ही कम दूध पचा सकेंगे। प्रोटीन, घी और विटामिनोंके लिए ही दूध पिया जाता है। यदि प्रोटीन ताकत देता है तो उसकी मात्रा तनिक भी ज्यादा होनेसे वह शक्ति हर भी लेता है। अतः कमजोर व्यक्ति बहुत कम दूध लेकर अपनी शक्ति बढ़ा सकते हैं। कमजोरोंकी मुख्य खुराक हरी साग-सब्जी और रसीले फल ही हो सकते हैं। इसलिए अन्य उपचारोंको आजमाये बिना यदि वे दोनों रसीले फलों और साग-सब्जीसे अपना पेट भरें और ताकतके लिए स्वल्प परिमाणमें दूध लें तो अवश्य अच्छे हो जायेंगे। यदि वे इस उपचारसे अच्छे न हो पायें और यह मानकर चुप बैठ रहें कि अन्य किसी उपचारसे वे ठीक नहीं हो सकते तो भी मुझे कोई दुःख नहीं होगा। उन्हें कच्चा दूध लेना चाहिए और उसमें फल या हरी सब्जी मिला लेनी चाहिए। ऐसा करनेसे दूध पीनेकी बजाय खाना पड़ेगा। और यदि दूध खाया जायेगा तो वह पचनेमें हलका होगा। उन्हें खाली पेट धीरे-धीरे और उचित अनुपातमें प्राणायाम करनेका अभ्यास करना चाहिए। इसके अतिरिक्त सूर्यस्नान लें। इस ऋतुमें कटिस्नान भी अवश्य लाभ पहुँचायेगा।

१. देखिए "पत्र: एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको", ८-३-१९३३।

२. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", ८-३-१९३३।

मैंने राधाका हिसाब जाँच लिया है। उसे मैं लौटा रहा हूँ। मुझे लगता है कि वर्तमान स्थितिमें और कोई चारा नहीं है। उसका खानेका खर्च ही ३० रुपये है। ५५ रुपये तो किराया, गाड़ी और यात्राका खर्च है। २५ रुपये डॉक्टर, महरी, डाक, घड़ीकी मरम्मत आदि और [खेलनेके लिए] ताशोंका है। इन २५ रुपयोंके बारेमें किसी हदतक आलोचनाकी गुंजाइश हो सकती है किन्तु खुराकके ३० रुपयेके बारेमें आलोचना नहीं की जा सकती; बशर्ते कि यह एक महीनेकी खुराकका खर्च हो। आश्रमके खर्चका पूरा सवाल अर्थात् हमारे रहन-सहनका सवाल अटपटा है। हम ज्यों-ज्यों निरन्तर सतर्कतापूर्वक आश्रममें सादगीको बढ़ावा देंगे, ज्यों-ज्यों अपने आधिभौतिक और आधिदैविक संकटोंमें अधिकाधिक ईश्वरकी सहायता पर ही निर्भर करेंगे त्यों-त्यों हमारा काम चमकेगा। हमें आत्मसंतोष प्राप्त होगा और हम सुरक्षित रहेंगे। और जिन्हें अधिक खर्च करनेकी आदत पड़ गई होगी उनकी आलोचना किये बिना ही उनपर अंकुश लग जायेगा। यहाँ 'हम'से मेरा तात्पर्य उन अधिकांश शोधकों और साधकोंसे है जो आश्रममें रहते हैं। मुझे तो ऐसा लगता है कि हमारे लिए एक ऐसा समय आनेवाला है जब कि हमें आश्रमसे संन्यास लेना पड़ेगा। अर्थात् व्याधि-मात्रके लिए जो उपाय सहज ही आश्रममें किये जा सकें उनसे संतुष्ट रहना। अल्मोड़ा-जैसे स्थानकी कल्पना इसके पूरकके रूपमें की थी और अब भी की जाती है। किन्तु लगता है कि शायद उक्त कल्पनाको छोड़ देना हमारे लिए उचित होगा। किन्तु आश्रममें अनुकूल वातावरण तैयार करके ही हम यह सब कर सकते हैं और उक्त वातावरण तैयार करते और उसका प्रसार करते हुए कोई किसीसे होड़ न करे। जिसे ऐसा लगे वह [आश्रमसे] संन्यास लेकर बैठ जाये। अर्थात् वह अपनी व्याधिके उपचार अथवा निजी कार्यसे भी आश्रमके बाहर न जाये। फिल-हाल तो इसकी अभिलाषा ही की जा सकती है। मुझे यह एक अवसर मिल गया इसलिए मैं यह सुझाव तुम्हारे सामने रख रहा हूँ ताकि तुम इसपर फुरसतसे विचार कर सको और इस बारेमें पुरानी मण्डलीसे भी चर्चा कर सको।

सीतलासहायने मुझपर भी प्रहार किया है। किन्तु मैंने इसकी पूरी जवाब-दारी तुमपर डाल दी है। उनकी भी शिकायत है कि मैं अपनी जवाबदारीसे बचना चाहता हूँ। किन्तु उनके इस आरोपको मैं सह लूँगा। पुरुषोत्तम मुझे विस्तारसे लिखे। कनुके बारेमें मुझे डॉक्टरका कथन उचित जान पड़ता है। यदि उसने भलीभाँति यह जान लिया होगा कि मालिश कैसे की जाती है, [शरीरके] उस भागसे वह कोई काम न ले और धीरे-धीरे मालिश होती रहे तो वह अवश्य अच्छा हो जायेगा। किन्तु इसमें समय तो लगेगा ही।

तुम्हारी सहनशीलता आदिकी परीक्षा लेनेके लिए तुम्हें परशुराम अच्छा मिल गया है। किन्तु तुम सक्षम हो इसलिए चिन्ताकी कोई बात नहीं है। जब तुमसे सहन न हो तो उसे तलाक दे देना। मैंने स्वयंको हिन्दू विवाहमें इतना सुधार करने को तैयार कर लिया है। करोड़ों गरीब हिन्दू तो तलाककी प्रथाका पालन करते हैं। इसके बिना उनका जीवन चल ही नहीं सकता। अपनी मर्जीसे ही जो द्विज बन बैठे हैं ऐसे कितने ही लोग स्त्रियोंसे बलपूर्वक द्विजोंके आदर्शोंका पालन करवाते

हैं, इसमें मुझे धम दिखाई नहीं देता। आध्यात्मिक सम्बन्ध अविच्छेद होने चाहिए। किन्तु जब कानूनके जरिये जबरदस्ती किसी आदर्शका पालन कराया जाता है तो उसमें धर्म नहीं रहता। मैं आश्रमके साथ [आश्रमवासियोंके] विवाहकी चर्चा कर रहा था; लिखते-लिखते स्त्री-पुरुषोंके सामान्य विवाहकी चर्चा कर डाली। जो आश्रम में आता है वह आश्रमसे विवाह करता है, यही कहा जाता है। आश्रम पत्नी है और आगन्तुक पति। किन्तु यदि ऐसी स्थिति आ जाये कि पत्नी बेचारी सहन ही न कर सके तो वह अवश्य तलाक दे सकती है। इस अधिकारका उपयोग जब तुम करना चाहो तब करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम०.एम० यू०/२) से। सी० डब्ल्यू० ८३३०से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

३३. पत्र: के० एस० रामभद्र अय्यरको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पिछले महीनेकी २२ तारीखका पत्र मिला। आपकी पहलको मैं बढ़ावा नहीं दे रहा हूँ, क्योंकि आपके पत्रोंका मेरे मनपर ठीक असर नहीं पड़ा है। वे मुझे असंतुलित लगते हैं, और जब आपकी लिखी बातोंकी ही मेरे मनपर बुरी छाप पड़ी है तो आपके यहाँ आनेसे कोई बात बननेवाली नहीं है। इसलिए आप यहाँ तककी यात्रापर अपना पैसा बर्बाद करें और फिर यहाँ अपना और मेरा भी समय नष्ट करें, यह बात मुझे पसन्द नहीं। आपको भरोसा दिलाता हूँ कि मेरे पास एक मिनटकी भी फुरसत नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० रामभद्र अय्यर
वकील, उच्च न्यायालय
लुज मइलापुर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३२)से।

३४. पत्र : सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्यको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, तदर्थ धन्यवाद।

आपकी बात से तो मुझे पुराने जमानेके गुलामोंके उन मालिकोंका स्मरण हो आता है जो अपने ढोरोंकी तरह उन्हें भी भोजन और सिरपर साया देनेको उनके प्रति की गई अपनी सेवाओंके रूपमें गिनाया करते थे। तब ढोरों और गुलामोंमें अन्तर था तो इतना ही कि गुलामोंके साथ कई बातोंमें अपेक्षतः और बुरा व्यवहार किया जाता था, और उनकी बनिस्वत अच्छा व्यवहार तो किसी भी बातमें नहीं किया जाता था। और यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि आपने यह जाननेकी भी तकलीफ नहीं उठाई कि शिक्षित और धर्म-परायण हिन्दुओंने हरिजनोंके लिए, जिन्हें वे किसी भी तरहसे अपनेसे नीचा नहीं मानते बल्कि अपना ही बन्धु-बान्धव मानते हैं, क्या किया है और वे क्या कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुरेन्द्रमोहन भट्टाचार्य
वेदान्तशास्त्री
ग्राम – आलगी
डाकघर मधाबोली
जिला ढाका

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२१) से।

३५. पत्र : एल० एन० हरदासको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे इस बातका खेद है कि व्यस्त रहनेके कारण मैं अबतक आपके १० फरवरीके पत्रपर ध्यान नहीं दे पाया। अगर पहले ध्यान दिया भी होता तो आपको कुछ भेज नहीं पाता, लेकिन अगर आप 'हरिजन' में प्रकाशित मेरे लेखोंमें से कुछ उद्धृत करना चाहें तो खुशीसे कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एल० एन० हरदास
मार्फत – 'मराठा'
कामठी (म० प्रा०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३६) से।

३६. पत्र : एम० ए० गोपालस्वामी अय्यंगारको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके २३ फरवरीके पत्रका उत्तर मैं अबतक नहीं दे पाया। इसके लिए मुझे क्षमा करें।

मेरा खयाल है, आपका यह कहना बिलकुल ठीक है कि अगर अस्पृश्यता-निवारण विधेयक पास हो जाता है तो मन्दिर-प्रवेश विधेयक अनावश्यक ही होगा। इसलिए अगर आप मैसूर विधान-सभामें निवारण विधेयक पास करवा सकते हैं तो, जहाँतक मैसूरका सम्बन्ध है, मन्दिर-प्रवेश विधेयकके पास किये जानेपर जोर देना अनावश्यक होगा। लेकिन, आप इस बातका खयाल रखिएगा कि निवारण विधेयककी व्याख्या सनातनी लोग स्वीकार कर लें। अगर इतना हो जाता है, तो बाकीको जनमतके परिपक्व होनेके भरोसे छोड़ा जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० ए० गोपालस्वामी अय्यंगार, वकील
बंगलोर सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३५) से।

३७. पत्र : ई० लिंडसेको

१० मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

आपका पत्र पाकर और उस सामाजिक कार्यकर्ताके बारेमें बढ़िया-सा चुटकुला पढ़कर बड़ी खुशी हुई। आपने जो पंक्तियाँ लिख भेजी हैं, उनपर मैंने अभी-अभी नजर डाली है। क्या आपको मैंने कभी बताया नहीं कि कविताके बारेमें कोई मत देनेके मामलेमें मैं बड़ा मूढ़ हूँ? इसलिए आपकी कविताके सौन्दर्य और सन्देशको ग्रहण करनेके लिए मुझे उसको आधे दर्जन बार पढ़ना पड़ेगा। महादेव कवि है और अगर उसे कोई सुन्दर कविता देखनेको मिलती है तो उसके बारेमें मत स्थिर करनेमें उसे कोई कठिनाई नहीं होती। इसलिए मैं उसकी सहायता लेनेकी कोशिश करूँगा। वह मुझसे चन्द फुटोंकी दूरीपर ही अपना काम कर रहा है। लेकिन हम लोग अपने-अपने काममें इस तरह डूबे हुए हैं कि उसके अलावा बहुत-सी साधारण बातों और सामान्य रुचिकी वस्तुओंके सम्बन्धमें बातचीत करनेका हमें समय ही नहीं मिलता।

हृदयसे आपका,

मदाम ई० लिंडसे
बैलियल कॉलेज
ऑक्सफोर्ड

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५२९) से।

३८. पत्र : माइकेल लिंडसेको

१० मार्च, १९३३

प्रिय माइकेल,

माताजी के पत्रके साथ आपने जो छोटा-सा पुर्जा भेजा, उससे मुझे कितनी खुशी हुई, बता नहीं सकता। हमें आपका खयाल अक्सर आता रहा है।

आपने 'कन्फ्यूशियस' की जो दो उक्तियाँ भेजी हैं, वे बहुत सुन्दर और मेरे लिए बड़ी मौकेकी हैं[१]।

१. कन्फ्यूशियससे जब एक शासकने पूछा कि उसे क्या बनना चाहिए तो उसने उत्तर दिया "लोगोंके पथ-प्रदर्शक बनो और उनकी उन्नतिके लिए कार्य करो।" जब अन्य सलाह देनेके लिए कहा गया तो उसने कहा, "इस कामसे कभी ऊबो मत।"

पिताजी को मेरी याद दिलाइएगा और आप मेरा और महादेवका स्नेह-वन्दन स्वीकार कीजिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत माइकेल लिंडसे

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३१) से।

३९. पत्र : 'मिलाप' के प्रबन्धकको

१० मार्च, १९३३

प्रबन्धक
'मिलाप'
लाहौर

प्रिय मित्र,

आपके तारके उत्तरमें कोई सन्देश भेजना सम्भव न हो सका। इसलिए मुझे जो बीजक (वाऊचर) मिला था, उसे वापस भेज रहा हूँ, ताकि आप पैसा ले सकें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२७) से।

४०. पत्र : उषाकान्त मुखोपाध्यायको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके रोचक पत्रके लिए धन्यवाद। मैं उसे ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। आपके पत्रको समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो रही है। आपने जो नुस्खा बताया है, उस पर तो सारे देशमें अमल हो रहा है। संस्कृत साहित्यका देशी भाषाओंमें अनुवाद हुआ है और अब तो उसतक अशिक्षित जनसाधारणकी भी पहुँच है।

जहाँतक कानूनका सम्बन्ध है, किसी आदमीको, किसी अन्यको अस्पृश्य मानने पर बाध्य करनेका तो कोई सवाल ही नहीं है। इस विधेयकका उद्देश्य एक ऐसी प्रथाको कानूनी सहारेसे वंचित कर देना है जो नैतिकताके किसी भी साधारण नियम के अनुसार उचित नहीं ठहराई जा सकती। इस कानूनका हेतु केवल इतना है

कि सुधारकोंके लिए ऐसी गुंजाइश कर दी जाये जिससे जो लोग उनके सन्देशको सुनना चाहें उनतक वे अपना सन्देश पहुँचा सकें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत उषाकान्त मुखोपाध्याय
१२, मुखर्जीपाड़ा लेन
कालिघाट, कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२६) से।

४१. पत्र : युवा बौद्ध संघके अध्यक्षको

१० मार्च, १९३३

अध्यक्ष
युवा बौद्धसंघ
महाबोधि आश्रम
पेराम्बूर, मद्रास

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। काश, आपकी मदद करना मेरे बसमें होता।[1] मेरे लिए जो-कुछ करना सम्भव था, कुछ वर्ष पूर्व मैंने कर दिया[2]।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३७) से।

१. युवा बौद्ध संघ (यंग मैंस बुद्धिस्ट एसोसिएशन) के अध्यक्षने संघ द्वारा पारित एक प्रस्ताव गांधीजी को अपने पत्रके साथ भेजा था। उसमें बोध गयाको गैरबौद्ध महन्तसे वापस दिलानेमें सहायताकी याचना की गई थी।

२. देखिए खण्ड २५, पृष्ठ ५७९-८०।

४२. पत्र : सामनेर संघरत्नको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। तदर्थ धन्यवाद। बोध गया मन्दिरके बारेमें अपने तरीकेसे मैं वह सब करनेकी कोशिश कर चुका हूँ जो करना मेरे लिए सम्भव था[1]। इस समय तो उससे ज्यादा करना सम्भव नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सामनेर संघरत्न
मूलगंध कुटी विहार
सारनाथ
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२३) से।

४३. पत्र : सतकौड़ीपति रायको

१० मार्च, १९३३

प्रिय सतकौड़ी बाबू,

आपका पत्र और गत जनवरीका कार्यविवरण पाकर खुशी हुई। अगले अंकमें छपनेकी दृष्टिसे तो आपका विवरण बहुत देरसे पहुँचा। आप हर चीज इस हिसाबसे भेजें जिससे वह अधिकसे-अधिक बुधवारको पहुँच जाया करे। आप 'हरिजन' के लिए जो-कुछ लिखना चाहते हों, अवश्य भेजें। ताजा और उपयुक्त विचार प्राप्त करके मुझे प्रसन्नता होगी।

अपने विवरणमें आपने कहा है कि कालि मन्दिरके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये गये। मैंने तो इससे भिन्न खबर सुनी है — यह कि कालि मन्दिर हरिजनोंके लिए एक तरहसे सब दिन खुला हुआ था और आज भी वह उसी तरह खुला हुआ है। इसलिए इसका पता लगाकर मुझे सूचित करनेकी कृपा करें। मुझे अन्य स्थानोंसे

१. देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ २५१-५२।

भी हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोले जानेकी खबरें मिली हैं, लेकिन बादमें उन खबरोंकी सचाईमें शंका की गई है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३४) से।

४४. पत्र : लिओनार्ड एन० शीफको

१० मार्च, १९३३

प्रिय लिओनार्ड,

आपका एक और मनोहारी पत्र मिला। आपके पत्र बराबर बहुत ही नपे-तुले होते हैं। वेरियर अब मलेरियासे बिलकुल मुक्त है और उसका काम निश्चित गतिसे आगे बढ़ता जान पड़ता है। मेरा खयाल है, आप इस सम्बन्धमें सब-कुछ जानते होंगे कि उसका इरादा मेरी जिलेटसे विवाह करनेका था और बादमें दोनोंने यह तय किया कि वे एक-दूसरेसे विवाह करनेके बजाय उस सेवाका ही वरण करें जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन उत्सर्ग कर दिये हैं। यह उनके लिए निश्चय ही एक कड़वा घूँट रहा होगा, लेकिन वे उसे साहसपूर्वक पी गये। शान्तिवाद-सम्बन्धी गोष्ठी के सम्बन्धमें ऑक्सफोर्ड संघके प्रस्तावके फलस्वरूप हालमें जो बातें सामने आई हैं, उनपर मैं ठीकसे ध्यान नहीं दे पाया हूँ।[१]

आशा है, आपको 'हरिजन'की अपनी प्रति नियमित रूपसे मिल रही होगी।

हम सबका स्नेहाभिवादन।

हृदयसे आपका,

श्री लिओनार्ड एन० शीफ
९, ग्रेट विलसन स्ट्रीट
लीड्स-११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५२२)से।

१. संघकी एक गोष्ठीमें विश्वविद्यालयने यह निश्चय किया था कि यह सदन फिर कभी देश और राजाके पक्षमें संघर्ष नहीं करेगा।" (एस० एन० २०२३८)।

४५. पत्र : एस० वी० सोनवनेको

१० मार्च, १९३३

प्रिय सोनवने,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी सलाह है कि तुम वर्धामें सेठ जमनालालजी के घर जाजूजी से मिलो और उन्हींसे अपने मामलेकी जाँच करवाकर मेरे पास विवरण भिजवाओ। यह पत्र उन्हें दिखा देना। तुम अपने बारेमें सारा विवरण —— अपनी उम्र, अपने परिवारके सदस्योंकी जानकारी और अगर वे कोई और जानकारी माँगें तो वह सब उन्हें दे देना।

हृदयसे तुम्हारा,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एस० वी० सोनवने
पुलफैल
वर्धा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२०) से।

४६. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१० मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,[2]

तुम्हारे पत्र मुझे नियमित रूपसे मिलते रहते हैं और अब तुम्हारी शिष्याओंकी कापियोंमें से ली गई तुम्हारी टिप्पणियाँ भी मिल गई हैं। वे पढ़नेमें बहुत रोचक हैं। लेकिन यह सोचकर मनको परेशानी होती है कि इस सबका अनुवाद और नकल करनेमें तुमने अपना कितना समय लगाया होगा। क्या यह अपनी शिष्याओंके समयमें से चोरी नहीं है? आशा है, मैं तुम्हें जो पत्र भेजता रहा हूँ, वे तुम्हें मिल गये

१. एक हरिजन विद्यार्थी। वह इंटरमीडिएट परीक्षामें असफल हो गया था और गरीबीके कारण पढ़ाई आगे जारी रखनेमें असमर्थ था। उसने गांधीजी से खुद सहायता देने या किसीसे दिलवानेका अनुरोध किया था। (एस० एन० २०३४३)।

२. गांधीजी की एक जर्मन अनुयायी, जिसका नाम उन्होंने बादमें अमला रखा था।

होंगे। पत्र मैंने ठीक हर हफ्ते तो नहीं भेजे हैं, लेकिन काफी हदतक नियमित रूपसे भेजे हैं। आशा है, अब तुम्हें यह भरोसा हो गया होगा कि तुम जो काम वहाँ कर रही हो वह भी मेरा ही काम है; क्योंकि तुम आश्रमके नियमोंका पालन कर रही हो और अपना काम शुद्ध सेवा-भावसे कर रही हो, और मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जबतक तुम्हारी माँ जीवित हैं, उनके पास रहना तुम्हारा कर्तव्य है।

महादेवको तुम्हारे सारे पत्र मिल गये हैं। तुम उससे उन सबके उत्तर देनेकी अपेक्षा तो नहीं करतीं न? वह महीनेमें केवल एक ही बार लिख सकता है। लेकिन दो महीनेमें जेलसे छूटते ही वह तुम्हारे पत्रोंका निबटा देगा।[1]

हृदयसे तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय व पुस्तकालय

४७. पत्र : सोफिया वाडियाको

१० मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

आपके पत्र और कावसजी जहाँगीर हॉलमें इसी २ तारीखको दिये गये आपके भाषणकी टाइपशुदा प्रतिके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

हाँ, मैं आपके आनेकी उम्मीद लगाये हुए था और जब भी समय मिले, आप दोनों अवश्य आयें। आपसे मिलकर और अभी आपके रोचक भाषणसे अस्पृश्यता तथा जाति-प्रथाके बारेमें आपके विचार जितना जान पाया हूँ, उससे अधिक परिपूर्ण जानकारी प्राप्त करके मुझे बड़ी खुशी होगी।

हृदयसे आपका,

मदाम सोफिया वाडिया
हिल क्रेस्ट
पेडर रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५२४) से।

१. यह अनुच्छेद महादेव देसाईकी लिखावटमें है।

४८. पत्र : नृसिंहप्रसाद के० भट्टको

१० मार्च, १९३३

यदि भावनगरकी हिन्दू जनता भारी बहुमतसे यह प्रस्ताव पारित करे कि यदि शूद्र अथवा अस्पृश्य जैसी कोई जाति हिन्दू धर्ममें नहीं है तो समझौतेमें उल्लिखित धारा उनके विरुद्ध होनेके बावजूद अन्त्यज माने जानेवालों को दाखिल करनेमें मैं कोई धार्मिक आपत्ति नहीं मानूँगा क्योंकि तब अन्त्यज मानी जानेवाली किसी जातिका अस्तित्व ही नहीं रह जाता।

प्रायः देखा जाता है कि एक ही संस्थाके विभिन्न विभागोंमें अलग-अलग नियम चलते हैं। प्रतिबन्ध केवल गृह-विभागपर लागू होनेके कारण अध्ययन-अध्यापन मन्दिरमें अन्त्यजोंको लेनेमें मुझे कोई धार्मिक आपत्ति दिखाई नहीं देती जबकि उन्हें प्रवेश न देनेमें धार्मिक शिथिलता नजर आती है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५३३) से।

४९. पत्र : नरहरि परीखको

१० मार्च, १९३३

चि० नरहरि,

तुम्हारा ४ तारीखका पत्र आज ही पढ़ पाया हूँ। तुम्हारा प्रश्न अच्छा है। जिसके मनमें ऐसी श्रद्धा जम जाये कि उसका उपाय केवल ब्रह्मचर्य है, और दूसरा कोई नहीं, वह तो इसी बातकी खोज करेगा कि ब्रह्मचर्यको किस प्रकार सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा समझकर कि यह सही चीज है उसे इस विश्वासके साथ अपनी खोज जारी रखनी चाहिए कि किसी दिन लोग उसका बड़े पैमानेपर अवश्य उपयोग करेंगे। साथ-साथ उसके मनमें यह निश्चय भी दृढ़ हो ही जाना चाहिए कि कृत्रिम उपायोंमें कदम-कदमपर खतरा है और उनसे अनीति बढ़ती है। किन्तु हमें यह मान लेना चाहिए कि आवश्यक प्रमाणमें ब्रह्मचर्यके व्यापक प्रसारके पहले लोगोंको कष्ट उठाने पड़ेंगे। इसमें मुझे कोई अनिष्ट नहीं दिखाई पड़ता। जैसे एक वैसे ही अनेक जैसा करेंगे वैसा पायेंगे। मगर ईश्वर दयालु है। जिसे हम उसके द्वारा दी गई सजा मानते हैं, उसमें भी उसकी दया भरी रहती है। जहाँ सन्तानकी उत्पत्ति

ज्यादा होगी, वहाँ मृत्युका अनुपात भी उसके अनुसार ही होगा। इस प्रकार कुल मिलाकर मनुष्यकी दुनिया दीर्घकालतक चलती रहेगी। यह सच है कि ऐसे जीवन में बहुत रस नहीं हो सकता और उसमें रस न हो यही अच्छा है। यह ज्ञान भी लोगोंको ब्रह्मचर्यकी तरफ ले जायेगा। क्योंकि थोड़े ही अनुभवसे यह देखा जा सकता है कि ब्रह्मचर्यके स्वाभाविक हो जानेमें जितना आनन्द है उतना भोगमें है ही नहीं। जगत्‌का कारोबार सुव्यवस्थित रूपसे चलता रहे इसके लिए ईश्वरके अन्य विधानों को भी मानना ही पड़ता है न? वह विधान यह है कि किसी भी मनुष्यको उदर-पोषणसे अधिक कुछ भी लेनेका अधिकार नहीं है। यदि सब लोग इस नियमका पालन करें तो ब्रह्मचर्यका पूरा पालन न होनेपर भी लोगोंका भूखों मरना सम्भव नहीं। शारीरिक श्रमका अन्त केवल किसानकी तरह मजदूरी करनेमें ही नहीं हो जाता। हर किसानको अपने हाथ-पैरों और खासकर हाथोंका पूरा उपयोग करना ही चाहिए। जिस देशमें खेतीके साथ ही अन्य गृह-उद्योग नहीं चलते, वहाँ किसान लगभग पशु बन जाते हैं। पशुकी सोहबत जितनी जरूरी है उतनी ही जरूरी औजारोंकी भी है। और मनुष्यके दस्तकारी सीख लेनेपर यदि मर्यादित रूपसे उसकी सन्तति बढ़ती रहे तो भी सबको पेट-भर रोटी, तन ढँकनेको कपड़े और मकानके रूपमें गरमी-सरदीसे बचने लायक रक्षण मिल जायेगा। आजकल मैं वर्णधर्मके जिस अर्थका विकास कर रहा हूँ, उसे ध्यानमें रखना।

मुझे लगता है कि इतनेमें तुम्हारी सभी शंकाओंका उत्तर आ जाता है किन्तु न आया हो तो मुझे फिर लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०५६) से।

५०. पत्र : नारणदास गांधीको

१० मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

मैं इसके साथ नरहरि, मूलचन्द और चम्पाके पत्र भेज रहा हूँ। परचुरे शास्त्रीके बारेमें तुम्हारा तार अभी-अभी मिला है। तुम्हारे तारके लिए ही मैंने परचुरे शास्त्री को रोक रखा था। मैंने उन्हें पत्र लिखा था और उसके उत्तरमें उन्होंने जो पत्र लिखा है वह सुन्दर है। उक्त पत्र भी मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। इसे वहाँ सँभाल कर रख लेना। किन्तु मैंने उन्हें कहला भेजा है कि यदि तुम्हारी स्वीकृति आ गई तो उन्हें आश्रम अवश्य जाना चाहिए किन्तु वे अपनी पत्नीसे मिलें और यदि उनकी स्त्री और पुत्र स्वयं आश्रममें आने योग्य हों तथा आनेको तैयार हों तो वे सब आश्रममें आ जायें। अब क्या होता है इसकी सूचना मिलनेपर मैं तुम्हें बताऊँगा।

परचुरे शास्त्री भी तुम्हें लिखेंगे। अब जो-कुछ भी निर्णय होगा वह सर्वथा धर्मपर आधारित होगा। अतः हम सब निश्चिन्त रह सकते हैं। आशा है इसके पूर्व लक्ष्मीके बारेमें लिखे पत्र तुम्हें मिल गये होंगे। मैंने कल और परसों पत्र लिखे थे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५१. पत्र : छोटूभाई के० मेहताको

१० मार्च, १९३३

चि० नेपोलियन,

बहुत दिन बाद तेरा पत्र मिला। मैं जो लिखूं उसे सरदारका लिखा हुआ ही समझना चाहिए। तू अपनी लिखावट नहीं सुधारता। अक्षर मोतीके दानोंकी तरह होने चाहिए। वीसापुर हो आया यह अच्छा किया। मुझे समय-समयपर लिखता रहना। वहाँ हरिजन-सेवाका भी कुछ काम करना।

बापूके आशीर्वाद

चि० नेपोलियन,
मार्फत – डॉ० नाथाभाई पटेल

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २६९७) से।

५२. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

१० मार्च, १९३३

भाई मूलचन्द,

तुमारे प्रश्नका उत्तर हजमें[1] तो दिया है।

जबान और कलमका काम शारीरिक न माना जाय। यहां हाथ-पांवकी मेहनत अभिप्रेत है।

लोग काश्तकारी न करे और भूखों मरे तब दीमाग क्या करेगा? उस वखत तो जो थोड़ी-सी भी खेती करेगा वही अन्नदाता बनेगा। जब घर जलता है तब व्याख्यान क्या करेगा? पानी सींचकर अंगार बुझाना होगा इ०। इसका मतलब यह नहिं है

१. सम्भवतः गांधीजी का मतलब **हरिजन सेवक**से रहा होगा, किन्तु **हरिजन**में ऐसा कोई उत्तर नहीं है।

कि दीमागी कामका उपयोग ही नहिं है। मतलब यह है कि दीमागी काम भी उसीका सिद्ध होगा जो शारीरिक यज्ञकी महीमा जानता है और करता है। दोनों साथ-साथ चलने चाहिये। और महा सिद्धान्त यह है कि आजीविका शरीर श्रमसे पैदा करो और दीमाग केवल सेवाके लिये खर्चा जाय। तव प्रमाण बिलकुल अच्छा हो जायगा। इस हेतुसे आश्रमकी उत्पत्ति समजो। आश्रममें रहनेका लाभ उठाना है तो इस बातको समझो।

बापु

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७०) से।

५३. टिप्पणियाँ

उनसे क्या शिक्षा मिलती है?

सम्पादकने कुछ आँकड़े एकत्र करके इसी अंकमें अन्यत्र प्रकाशित किये हैं। पाठकोंको इनका अध्ययन करना चाहिए। ये आँकड़े 'दलित वर्गों' के बारेमें हैं, जिन्हें मद्रास प्रान्तमें 'पंचम' भी कहा जाता है। इनसे उनकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट होकर सामने आती है। उन लोगोंके छियासी उप-विभाग हैं। और सनातनियोंका दावा होगा कि वे सब जन्मत: अस्पृश्य हैं!!! जनगणनामें जब उनका ऐसा वर्गीकरण किया गया, उससे पहले वे क्या थे? यह भी एक दिलचस्प बात है कि अस्पृश्यताकी कसौटी सभी प्रान्तोंमें एक-सी नहीं रही है, और न एक प्रान्तके अलग-अलग हिस्सोंमें ही वह एक रही है; और इसी तरह यह भी कोई जरूरी नहीं कि जो मद्रासमें अस्पृश्य है वह बम्बई या बंगालमें भी अस्पृश्य हो ही। इन आँकड़ोंका हम जितना अध्ययन करते हैं, यह विश्वास उतना ही अधिक दृढ़ होता जाता है कि यह अस्पृश्यता विशुद्ध रूपसे मनुष्यकी ही गढ़ी हुई है। जनगणना अधीक्षक ही इस विषयमें एकमात्र निर्णायक रहे हैं। पाठक यह भी देखेंगे कि वर्गीकरणके सम्बन्धमें विभिन्न सरकारोंके दृष्टिकोणोंमें अन्तर है। अगर अस्पृश्योंको ईश्वरने ही अस्पृश्य बनाया है, तो फिर यह सब अन्तर क्यों? वह समय आ रहा है जब सवर्ण हिन्दू अपनेको 'अस्पृश्यों' की श्रेणीमें रखवाना चाहेंगे। इसके लक्षण तो क्षितिजपर पहलेसे ही प्रकट होने लगे हैं। अगर अस्पृश्योंको ईश्वरने ही अस्पृश्य बनाया है, तो जिस प्रकार हम बिना किसी प्रयत्नके विभिन्न प्रकारके जीवोंका भेद समझ लेते हैं उसी प्रकार अस्पृश्यों तथा शेष लोगोंके बीचके अन्तरको समझनेमें भी हमसे कोई भूल नहीं होनी चाहिए।

इन उप-विभागोंके लिए अगर सवर्ण हिन्दू नहीं तो और कौन जिम्मेदार है? अगर वे अस्पृश्यताका परित्याग कर दें, तो पूरी सम्भावना है कि अस्पृश्य लोग भी अपने बीचसे उप-अस्पृश्यताको विदा कर देंगे।

एक स्नातककी शंका

एक स्नातक पत्र-लेखक यह जानना चाहते हैं कि मैं ऐसा क्यों कहता हूँ कि अस्पृश्यताकी प्रथा समस्त मानव समाज और धर्मोंमें विद्यमान है और यह एक आवश्यक प्रथा है।

जब हम पाखाना-पेशाब वगैरह करते हैं या हमें गन्दी बीमारियाँ होती हैं, उस समय हम गन्दे हो जाते हैं। उस हालतमें जबतक हम फिर साफ-स्वच्छ नहीं हो जाते तबतक अस्पृश्य ही रहते हैं। विभिन्न राष्ट्रोंमें अलग-अलग सीमातक अस्पृश्यता बरती जाती है और उनके स्वच्छ बननेके तरीके भी अलग-अलग हैं, लेकिन अस्पृश्यताकी प्रथा, वह चाहे जितनी कम बरती जाती हो, सभी जगह प्रचलित है — यहाँ तक कि तथाकथित असभ्य जातियोंके बीच भी। समझदारीके साथ अस्पृश्यता बरती जाये तो वह स्वास्थ्य-सम्बन्धी एक उत्तम नियम है। लेकिन किसीको जन्मत: अस्पृश्य करार देने और पाप-जन्मा कहनेका श्रेय लेना तो जैसे आधुनिक हिन्दू धर्मके लिए ही सुरक्षित रख छोड़ा गया था। जिस धर्ममें दर्पके साथ यह कहा जाता हो कि अहिंसा जीवनमें सबसे बड़ी चीज है उसी धर्ममें प्रतिशोधकी भावनाका विस्तार परलोक तक किया जाये, यह सचमुच बहुत ही दारुण दृश्य है। इसी पागलपन-भरी अस्पृश्यताके खिलाफ अनवरत संघर्ष करनेके लिए मैंने उन सभी हिन्दुओंको आमन्त्रित किया है जिन्हें अपने धर्मपर गर्व है और जिन्हें उसकी पवित्रताकी रक्षा करनेकी चिन्ता है।

उन्हीं पत्र-लेखक भाईने आगे पूछा है: "क्या आपका वर्ण-धर्म लोगोंको समाजमें ऊपर उठनेके अवसरोंसे वंचित नहीं करता? क्या हर आदमीको चाहे जो धन्धा करनेकी छूट नहीं होनी चाहिए?"

वर्ण-धर्मकी मेरी कल्पनामें तो जीवनमें किसी प्रकारकी असमानताके लिए गुंजाइश ही नहीं है। यदि कोई ज्यादा बुद्धिमान है और कोई कम अथवा किसीके पास अधिक भौतिक सम्पत्ति है और किसीके पास कम, तो इसका मतलब सामाजिक दर्जेमें असमानता नहीं होना चाहिए। मैं निश्चय ही आग्रहपूर्वक ऐसा मानता हूँ कि मनुष्य 'समाजमें ऊपर उठनेके उद्देश्यसे' किसी धन्धेको चुननेके लिए नहीं बना है। वह अपने मानव-बन्धुओंकी सेवा करने और पसीना बहाकर अपनी रोटी कमानेके लिए बना है। और चूँकि सबकी बुनियादी आवश्यकताएँ एक ही हैं, इसलिए सभी प्रकारके श्रमका महत्त्व समान होना चाहिए।

हिन्दू धर्मने इस नियमको ढूँढ़ निकाला और उसे वर्णका नाम दिया तथा बड़ी ही सफलतापूर्वक न्यूनाधिक सर्वांगपूर्ण ढंगसे उसपर आचरण किया। आज तो हम जो-कुछ देख रहे हैं वह हिन्दू धर्मका विकृत रूप ही है।

मेरा यह निश्चित विश्वास है कि यह विनाशकी ओर बढ़ती दुनिया केवल उस नियमके पालनसे ही बच सकती है। इसे बुद्धिपूर्वक स्वीकार करनेसे मनुष्य सन्तुष्ट रहता है और उसकी बहुत-सारी शक्ति नैतिक उत्थानके लिए प्रयुक्त होनेको बच जाती है। इसकी अवमानना करनेका मतलब होता है हानिकर असन्तोष, लालच,

बन्धु-विनाशी स्पर्धा तथा नैतिक गतिरोध; और इस सबका परिणाम अन्तमें आध्यात्मिक आत्महत्या ही होता है। इस नियमको जैसा मैं समझता हूँ उसके अनुसार यह केवल रोटी-बेटी व्यवहारसे सम्बन्धित प्रतिबन्धोंका नियमन करनेवाला एक औपचारिक नियम नहीं है, और न कभी रहा है।

आध्यात्मिक उन्नति क्या है?

"जब आप आत्माके विषयमें, हरिजनोंकी आध्यात्मिक उन्नतिके बारेमें लिखते हैं तो उससे आपका क्या मतलब होता है? और हरिजनोंकी आध्यात्मिक उन्नति रुकनेसे सारे संसारकी आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधा क्यों पड़ती है? और अगर हरिजनोंको मन्दिरोंमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता, तो उससे उनकी आध्यात्मिक उन्नति क्यों रुकती है?"—ये हैं वे प्रश्न जो बार-बार लिखनेवाले एक पत्र-लेखकने मुझसे पूछे हैं। वैसे तो उन्होंने और भी बहुत-से प्रश्न पूछे हैं, लेकिन अभी उनकी चर्चा करनेकी जरूरत नहीं है।

आत्मा हमारी सत्ताका वह अविनाशी तत्त्व है जो मानव-शरीरको अनुप्राणित करता है और सत-असतका विवेक देता है। आध्यात्मिक उन्नति उसी अविनश्वर तत्त्वके साक्षात्कारमें सहायता देती है। जो चीज मेरे पड़ोसीकी उन्नतिमें बाधक होगी, वह मेरी उन्नतिमें भी बाधक होगी ही। भारत दुनियाके दूसरे हिस्सोंका एक बड़ा पड़ोसी है। अगर चार करोड़ हरिजनोंकी आध्यात्मिक उन्नति अवरुद्ध होती है और इसीलिए तेईस करोड़ हिन्दुओंकी आध्यात्मिक उन्नति रुकती है, तो भारतकी भी रुकेगी ही।

जहाँतक मन्दिरोंका सम्बन्ध है, अन्यत्र मैंने इस सवालपर विचार किया है[1] कि मनुष्यके जीवनमें उनकी कितनी बड़ी भूमिका है। आत्माका बौद्धिक विश्लेषण एक सीमातक ही सम्भव है। वह बुद्धिसे परे है और इसलिए विश्वासकी दुनियाकी चीज है। इसी प्रकार पूजा-स्थल भी अन्ततः विश्वासकी ही चीज हैं।

बंगला 'हरिजन'

बंगला 'हरिजन' के दो अंक प्रकाशित हो चुके हैं। यह एक पत्रिकाके रूपमें प्रकाशित होता है। इसका आवरण बड़ा आकर्षक है, जिसपर सिरपर कूड़ेकी टोकरी लिये एक स्त्रीका चित्र है। यह खादी प्रतिष्ठान, कालेज स्क्वेयर, कलकत्तासे प्रकाशित होता है और डाक खर्च सहित इसका वार्षिक चन्दा ४ रुपये है और बिना डाक खर्चके ३ रुपये। प्रथम और द्वितीय अंकोंमें अंग्रेजी खण्डमें प्रकाशित तमाम लेखोंके या तो पूरे अनुवाद या सार दिये गये हैं। इनमें हिन्दू धर्मपर मेरे पहलेके लिखे कुछ लेखोंके भी अनुवाद हैं और सतीश बाबू द्वारा लिखे सम्पादकीय या सम्पादकीय टिप्पणियाँ, जैसे "उपेक्षाका परिणाम", "अस्पृश्यताकी कुछ समस्याओंका समाधान", "सनातनी प्रार्थना", "नगरपालिकाकी जिम्मेदारी", "दलित वर्ग और अस्पृश्यता" आदि भी हैं।

पहले हफ्ते इसकी २,००० प्रतियाँ छपीं और ये सबकी-सब बिक गईं। दूसरे सप्ताह ३,००० प्रतियाँ छपीं। आशा है बंगाली लोग इसको सहायता देनेमें उदारतासे काम लेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-३-१९३३

५४. एक सच्चा सेवक

रोज-रोज जो नये-नये अनुभव हो रहे हैं, उनसे सिद्ध होता है कि हरिजनोंकी सेवा शायद सब सेवाओंसे कठिन है। मेरी जानकारीमें बहुत-सी लड़कियाँ और स्त्रियाँ हैं जो नित्य उन लोगोंकी सेवा किया करती हैं। उनमें से एकने भंगियोंकी बस्तीमें जो अनुभव हुआ उसकी शाब्दिक तस्वीर खींची है। जब वह पहले-पहल इस बस्तीमें गई तो बड़ी कठिनाईसे उलटी रोक सकी। मुझे इस बातकी खुशी है कि स्त्रियाँ इस आन्दोलनमें अपना पूरा योगदान दे रही हैं।

भयानक गन्दगीमें रहनेवाले हरिजनोंकी सेवा कैसे की जाये? वह चाहते भी नहीं कि उनकी सेवा की जाये। जो उनके घरोंमें जाते हैं उन्हें वे गालियाँ देते हैं। कोई-कोई तो अपनी गलियोंसे ढेले मारकर काम करनेवालों को भगा देते हैं। परन्तु यदि हमें सेवा करनी है, तो यह सब सहकर भी उनकी सेवा करनी पड़ेगी। यदि हम अपनेको ऊँचा उठाना चाहते हैं तो हमें उनकी इस वर्तमान अवस्थासे उनका उद्धार भी करना होगा। हम लोगोंने दबा-दबाकर उन्हें नीचे गिराया है और इस क्रियामें हम स्वयं नीचे गिर गये हैं। यह ऊँचे दरजेकी सेवा सबके बसकी बात नहीं है। मेरी समझमें जिन गुणोंके बिना एक हरिजन-सेवकका काम नहीं चल सकता उनको मैं संक्षेपमें बतलाता हूँ:

हरिजनोंसे उसे सच्चा स्नेह होना चाहिए, मानों वे उसके अपने कुटुम्बी हों।

उसमें बड़ा धीरज और साहस होना चाहिए — इतना धीरज और साहस कि मौका आनेपर वह शारीरिक चोट और अपमान भी सह सके।

उसका चरित्र सर्वथा शंकातीत और अनिन्द्य होना चाहिए।

उसे अपने शरीर-धारणके लिए आवश्यक स्वल्पतम भोजनपर रह जानेको तैयार रहना चाहिए।

मेरे पास जितनी चिट्ठियाँ आती हैं सबको पढ़ डालना, हरिजनोंसे, सनातनियों से और काम करनेवालों से मिलकर बातचीत करना धधकती आगमें से होकर गुजरना है। जो हरिजन अब बोलने लग गये हैं वे स्वभावतः शंकाशील हैं और अकसर अपनी अपेक्षाओंमें सख्त होते जा रहे हैं। उनमें धीरज नहीं है। सनातनी समझते हैं कि जिसे वे हिन्दू धर्म मानते हैं वह खतरेमें है। उनके पास पैसा है और वे उसे खुले हाथों खर्च करते हैं। नये-नये पत्र निकल रहे हैं। वे सुधारकोंकी नीयतपर शक करते

हैं, उनके बारेमें ऊलजलूल बातें कहते हैं और आन्दोलनका विकृत चित्र खींचते हैं। हमारे कार्यकर्ता भी, सबके-सब आदर्श तो नहीं कहे जा सकते। मैंने देखा है कि कोई एक कार्यकर्ता भी, यदि वह सर्वथा विश्वसनीय और तन-मनसे पवित्र न हो तो अकेला भी अपने चारों ओरका वायुमण्डल जहरीला कर सकता है।

काम करनेवाला यदि हरिजनों और सनातनियों दोनोंको सन्तुष्ट रखना चाहता है, तो अत्यन्त ऊँचा चरित्र, अपार विनयशीलता और असीम उदारता दिखाकर ही वह ऐसा कर सकता है। या दूसरे शब्दोंमें, उसे परम धार्मिक होना पड़ेगा। यह आन्दोलन धर्मकी शुद्धिके लिए है। बमकनेवालों, बड़बोलों या जिनमें चारित्रिक कमजोरियाँ हैं, ऐसे लोगोंके किये कोई धर्म कभी शुद्ध नहीं हुआ है।

काम करनेवालोंको बहुत ही सावधान रहना होगा। कहते हैं कि सनातनी गुंडागर्दीसे काम ले रहे हैं और सभाओंको भंग करनेके लिए बल-प्रयोगसे भी नहीं हिचकते। इसमें क्या अचरज है। बुराईके अपने स्वार्थ और स्वत्वाधिकार होते हैं। वे तो निश्चय ही खतरेमें हैं। अपने जीवनकी रक्षाके लिए बुराई लड़ेगी ही। इसलिए जहाँ कहीं गड़बड़ होनेका डर हो, वहाँ कार्यकर्ताओंको उससे बचना चाहिए, चाहे उन्हें सार्वजनिक सभाओंका आयोजन या इसी तरहका कोई और काम छोड़ना ही क्यों न पड़े। ऐसी दशामें उन्हें मुक्तिका संदेश घर-घर पहुँचाना चाहिए। उन्हें बेकारकी बहस और शास्त्रार्थमें न फँसना चाहिए। उन्हें इस बातका भरोसा रखना चाहिए कि सत्यके पास अपनी रक्षाके लिए अमोघ शक्ति है। सत्य ही जीवन है और ज्यों ही यह किसी मानवमें अपना घरकर लेता है त्यों ही वह अपना विस्तार स्वयं करने लगता है। बहुधा मूक आचरण सबसे अधिक प्रभावशाली वक्तृताका काम करता है। कार्यकर्ताओंको इसीलिए अपनेमें और अपने उद्देश्यमें जीती-जागती श्रद्धा रखनी चाहिए। परन्तु वे जानते हैं कि अकेले वे कुछ भी नहीं हैं। इसीलिए अपनेमें विश्वासका अर्थ है ईश्वरमें विश्वास। जो अपने भीतरसे सारा गर्व और सारा अहंकार निकाल फेंकते हैं वे ईश्वरसे सर्वाधिक सहायता पाते हैं।

हिन्दू धर्म अस्पृश्यताकी बुराईसे तभी शुद्ध होगा जबकि ऐसे हरिजन-सेवक हजारोंकी संख्यामें राजी-खुशीसे अपना बलिदान कर देंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-३-१९३३

५५. क्या मन्दिर जरूरी हैं ?

एक अमरीकी[1] पत्र-लेखक लिखता है[2]:

. . . धर्म-प्रवर्तकोंने जिन महान् धार्मिक सत्योंका साक्षात्कार किया और जिनकी उन्होंने घोषणा की उन्हें जब भी उनके शिष्योंने पुजारियों और पुरोहितों और मन्दिरोंकी सीमाओंमें बाँधनेकी कोशिश की है तब-तब इन सत्योंका नाश ही हो गया है। सत्य इतना सार्वभौमिक है कि उसे सीमित और साम्प्रदायिक बनाया ही नहीं जा सकता। इसीलिए मन्दिरों, मसजिदों और गिरजाघरोंको मैं धर्मका दुरुपयोग समझता हूँ। . . . जब धर्मको पुजारी वर्ग अपना इजारा बना लेता है और मन्दिरोंपर किसीका ऐसा अधिकार हो जाता है जिसका उपयोग वह अपने स्वार्थोंकी सिद्धिके लिए करने लगे तब मानव-जातिका बहु-जन-समाज सत्यसे बिलकुल अलग रह जाता है। . . .

इसलिए हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशकी अनुमति मिल जानेमें मैं कोई लाभ नहीं देखता। मैं जानता हूँ कि इन्साफका तकाजा यह है कि उन्हें बुराई करनेकी भी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। परन्तु जब उन्हें वह स्वाभिमान सीखना है, जिससे वे हमारी सभ्यताके भविष्यके विकासमें सवर्णोंके साथ समान भावसे हिस्सा ले सकें तो मैं समझता हूँ कि उन्हें मन्दिरों और पुजारियों और पुरोहितों आदिके सम्पूर्ण वर्गसे स्वतन्त्र रहना भी सीखना चाहिए। . . . आपने जब यूरोपमें यह कहा था कि "मैं पहले समझता था कि ईश्वर सत्यरूप है, किन्तु अब मैंने अनुभव किया है कि सत्य ही ईश्वर है", उस समय हम सबके हृदयोंसे ठीक यही बात प्रतिध्वनित हुई, वैसे हमारी परम्परा चाहे कुछ भी रही हो। परन्तु जबसे आपने मन्दिरोपासक हिन्दू धर्मका पक्ष ले लिया है — फिर चाहे वह कुछ विशुद्ध कोटिका ही क्यों न हो — हमें ऐसा लगता है कि आपकी बातमें जो सार्वभौमिकताका तत्त्व था, तबसे आपने उसे खो दिया है। मेरी समझमें आपकी बातमें इस सार्वभौमिक आकर्षणका कारण यह था कि आप अपनी बात एक सामान्य हिन्दूकी हैसियतसे नहीं बल्कि आध्यात्मिक जिज्ञासा रखनेवाले उन बहुसंख्यक हिन्दुओंके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे कहते हैं जो अपनी जीवन-यात्राके आध्यात्मिक पाथेयके लिए मन्दिरोंका भरोसा नहीं करते। मैं ऐसा नहीं मानता कि ऐसे लोग हिन्दू-मतकी उत्कृष्टतम परम्परासे बाहर हैं,

१. शायद बॉयड टकर; देखिए "पत्र: बॉयड टकरको", २३-३-१९३३।

२. यहाँ पत्रके कुछ अंश ही उद्धृत किये गये हैं।

बल्कि वे तो उस धार्मिक भावनाको पैदा करनेवालों में से हैं जिसकी बदौलत भारतकी आध्यात्मिकता मानव-समाजके लिए भारतकी सबसे बड़ी देन समझी जाती है।

और न मैं यही मानता हूँ कि यह उच्च कोटिका हिन्दू धर्म हरिजनोंके लिए अत्युच्च होगा। हमारी नये ढंगकी शिक्षासे उनकी आध्यात्मिक वृत्तियाँ मन्द तो हुई नहीं हैं। बुद्ध, चैतन्य और कबीर आदिके उपदेशोंका प्रभाव सबसे ज्यादा इसी वर्गके लोगोंपर पड़ा है। इसी तरह ईसाकी शिक्षा धनिकों और सत्ताधारियोंको नहीं उन मछुओं और भठियारोंको सबसे ज्यादा भायी थी जो इज्जतदारोंके समाजसे बाहर माने जाते थे। . . .

यह एक सोच-विचारकर तय की हुई राय है और सारी दुनियामें बहुत सारे लोग ऐसी ही राय रखते हैं इसलिए यह आदरसे विचारने योग्य है। परन्तु यह बात मैं पहली बार नहीं सुन रहा हूँ। जिस ढंगसे यह विषय मेरे सामने यहाँ रखा गया है, अनेक मित्रोंके साथ इसी ढंगपर इसी विषयपर विचार करनेका अवसर और लाभ मुझे पहले मिल चुका है। पत्र-लेखकने अपनी बातके समर्थनमें जो-कुछ कहा है, उसका अधिकांश मैं मानता हूँ परन्तु इसमें कई महत्त्वपूर्ण तथ्य छूट गये हैं। इसलिए मैं सविनय यह कहना चाहता हूँ कि वह उस निर्णय पर पहुँचनेके लिए काफी नहीं है जिसपर वे पहुँचे हैं। कुछ पुजारी बुरे हैं। मन्दिरों, मसजिदों और गिरजाघरोंमें अकसर विकृति दिखाई देती है। अवगति तो उससे भी ज्यादा दिखती है। तथापि यह सिद्ध करना असम्भव होगा कि सभी पुजारी बुरे हैं या रहे हैं, और यह कि सभी मन्दिर, मसजिद और गिरजे भ्रष्टाचार और अन्धविश्वासके धाम हैं। इस तर्क-सरणिमें इस मूल बातपर भी कोई ध्यान नहीं दिया गया है कि किसी धर्मका काम बिना 'आवास' के आजतक नहीं चला है और मैं तो इससे आगे बढ़कर कहूँगा कि स्वभावसे मनुष्य जैसा बना है वैसा ही बना रहा तो बिना आवासके चल ही नहीं सकता। मनुष्य शरीर ही परमात्माका घर कहा गया है और यह सही भी है, यद्यपि ऐसे अनेक मन्दिर इस तथ्यको झुठलाते हैं और भ्रष्टाचारके ऐसे अड्डे बने हुए हैं जिनका उपयोग दुराचार और लम्पटताके लिए किया जाता है। और मेरा खयाल है कि अगर यह सिद्ध किया जा सके — और वास्तवमें किया जा सकता है — कि कुछ ऐसे शरीर भी हैं जो ईश्वरके सच्चे आवास हैं तो यह ऐसी किसी अतिव्याप्ति-पूर्ण उक्तिका कि चूँकि बहुत-से शरीर भ्रष्टाचारके अड्डे हैं, इसलिए सबको नष्ट कर देना चाहिए, अन्तिम उत्तर होगा। बहुत-से शरीरोंकी भ्रष्टताका कारण कहीं अन्यत्र ढूँढ़ना पड़ेगा। पत्थर और गारेके मन्दिर इन मानव-मन्दिरोंके स्वाभाविक विस्तार के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं, और यद्यपि जब इनकी कल्पना की गई थी तब निश्चय ही ये मानव-मन्दिरोंकी ही तरह ईश्वरके आवास थे और फिर उनपर भी अपकर्षका वही नियम लागू रहा है जो मानव-मन्दिरोंपर लागू रहा है।

मुझे ऐसे किसी भी धर्म या सम्प्रदायकी जानकारी नहीं है जिसका काम अपने देवालयके बिना चला हो या चल रहा हो — चाहे वह मन्दिर हो या मसजिद, गिरजा

हो या हैकल अथवा अगियारी। इसी तरह यह बात भी असन्दिग्ध नहीं है कि ईसा-मसीह सहित किसी भी महान् सुधारकने मन्दिरोंको बिलकुल नष्ट कर दिया हो या त्याग दिया हो। उन सबने मन्दिरों और समाज, दोनोंसे भ्रष्टाचारको दूर करनेकी कोशिश की। ऐसा लगता है कि उनमें से सबने नहीं तो कुछने तो अपनी शिक्षा भी मन्दिरोंसे ही दी। मैं वर्षोंसे मन्दिर नहीं जाता, किन्तु इस कारण मैं अपनेको पहलेसे बेहतर नहीं मानता। मेरी माँ जब जाने लायक थीं तब मन्दिरमें जानेसे कभी नहीं चूकीं। व्यक्तिके रूपमें उनकी श्रद्धा शायद मेरी श्रद्धासे बहुत अधिक गहरी थी, यद्यपि मैं मन्दिर नहीं जाता। करोड़ों लोगोंकी श्रद्धाके स्रोत ये मन्दिर, गिरजे और मसजिदें ही हैं। उनमें से सबके-सब अन्धविश्वासके ही शिकार नहीं और न धर्मान्ध ही हैं। अन्धविश्वास और धर्मान्धतापर ऐसे लोगोंकी कोई इजारेदारी नहीं है। इन बुराइयोंकी जड़ें हमारे दिलों और दिमागोंमें हैं।

मैं जो हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशका पक्ष-पोषण कर रहा हूँ उसे मैं यूरोपमें बार-बार की गई अपनी इस घोषणासे कि सत्य ही ईश्वर है, सर्वथा संगत मानता हूँ। यह वही विश्वास है जिसके बलपर मेरे लिए मित्रता टूटने, लोकप्रियता और प्रतिष्ठा खोनेकी आशंकाके बावजूद हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशका पक्ष-पोषण करना सम्भव हो सका है। मैं जिस सत्यको जानता या अनुभव करता हूँ वह सत्य मुझसे उसके पक्ष-पोषणकी अपेक्षा रखता है। अगर हिन्दू धर्म अपने मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए बन्द कर देता है तो उसे सारी दुनियाको रुचनेवाला धर्म बननेका अधिकार नहीं रह जाता।

यह तो स्वीकार किया ही जाना चाहिए कि मन्दिरों और मन्दिरोंमें उपासनाकी पद्धतिमें आमूल सुधारकी आवश्यकता है। लेकिन, मन्दिर-प्रवेशके बिना सुधारके सारे प्रयत्न रोगके साथ खिलवाड़ करने-जैसा है, मैं जानता हूँ कि इन अमरीकी मित्रकी आपत्ति मन्दिरोंके भ्रष्टाचार या अपवित्रतापर आधारित नहीं है। उसका आधार इससे कहीं अधिक गहरा है। वे मन्दिरोंमें बिलकुल विश्वास ही नहीं करते। मैंने यह दिखानेकी कोशिश की है कि जिन तथ्योंकी पुष्टि दिन-प्रतिदिनके अनुभवसे की जा सकती है उन्हें ध्यानमें रखकर सोचनेसे उनकी स्थिति सही नहीं प्रतीत होती, मन्दिरोंकी आवश्यकताको अस्वीकार करनेका मतलब स्वयं ईश्वर, धर्म और भौतिक अस्तित्वकी आवश्यकताको अस्वीकार करना है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-३-१९३३

५६. सीधा-सादा 'हिन्दू' ही क्यों नहीं?

एक पत्रमें एक सवर्ण हिन्दूने लिखा है:

> **अगर इन दलित वर्गोंको अन्ततः हिन्दुओंमें मिल जाना है तो क्या यह अच्छा नहीं होता कि उन्हें 'हरिजन' के बजाय 'हिन्दू' ही कहा जाता, क्योंकि यह नाम सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्गों दोनोंपर ही लागू होता? अब भी समय है कि 'हरिजन' छोड़कर 'हिन्दू' नाम अपनाया जाये, ताकि सवर्ण हिन्दुओं और दलित वर्गके हिन्दुओं दोनोंको आम बोलचालमें और सरकारी कागजोंमें भी केवल हिन्दू ही कहा जा सके।**

पत्र-लेखकने सुझाव देनेमें देर कर दी। अगर अस्पृश्योंके लिए एक अलग पंजिका स्थायी न हो गई होती —— कमसे-कम कुछ समयके लिए ही —— तो सामान्य नामसे काम चल सकता था। लेकिन इस पंजिकाके कारण यह विलकुल आवश्यक हो गया है कि लोग अस्पृश्य वर्गोंको किसी खास नामसे जानें, और अगर बात ऐसी है तो उन्हें ऐसा नाम क्यों न दिया जाये जो उनपर सचमुच ठीक बैठता है और जिससे किसी खटकनेवाली बातका भी बोध नहीं होता? मैं 'हरिजन' को उपयुक्त नाम मानता हूँ, क्योंकि सवर्ण हिन्दुओंको हरिके जन मानना उचित नहीं हो सकता, लेकिन अस्पृश्योंको वैसा मानना उचित हो सकता है।

मैंने सवर्ण हिन्दुओं और हरिजनोंके बीचका भेद मिटानेका सच्चा उपाय सुझाया है। वह यह है कि सवर्ण हिन्दू अपनेको अस्पृश्यतासे मुक्त करने और स्वयं हरिजन बननेके लिए आत्मशुद्धिका यज्ञ करें। और अगर हर आदमीको यह छूट है कि वह अस्पृश्योंकी पंजिकामें अपना वर्गीकरण उन्हींकी श्रेणीमें कराये, तो मैं सवर्ण हिन्दुओं को बेखटके यह सलाह दूँगा कि वे अपनेको अस्पृश्य करार दें और अस्पृश्योंकी ही तरह रहें। यह इन दोनोंको मिलाकर एक करनेका ठोस और सजीव तरीका होगा।

ऐसा ही सुझाव एक हरिजन मित्रने दिया था, हालाँकि उसमें उनका दृष्टिकोण अलग था। यह उस सुझावका उल्लेख करनेका उचित प्रसंग है। उनका कहना है कि अस्पृश्यतासे छुटकारा पानेका सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि हरिजनोंको सलाह दी जाये कि वे ऐसे नाम अपनायें जिनसे कभी भी अस्पृश्यका बोध न हो और साथ ही वे अपनेको सिर्फ हिन्दू या ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य घोषित कर दें। यह सुझाव तो मुझे १९१५ में ही, जब मैंने अस्पृश्यताके खिलाफ संघर्ष आरम्भ किया था, दिया गया था। इन हरिजन भाईके अपने कुछ निजी अनुभव थे और उन्होंने मुझे बताया कि वे भारतके एक छोरसे दूसरे छोर तककी यात्रा कर चुके हैं, उनको बिना किसी

विघ्न-बाधाके सभी प्रमुख तीर्थस्थलोंमें खुला प्रवेश मिल गया था और वे अपने साथ कुछ और लोगोंको भी ले गये थे।

जब मुझसे उनका परिचय कराया गया तो मुझे उनके हरिजन होनेका कोई चिह्न उनमें नजर नहीं आया। उनकी पोशाक ब्राह्मणों-जैसी थी, ललाटपर तिलक, गलेमें तुलसी या रुद्राक्षकी — ठीक-ठीक याद नहीं पड़ता — माला थी और वे एक आम गुजरातीकी तरह बोलते थे। वे और उनके साथी धर्मशालाओंमें टिकते थे और चूँकि अपनेको निस्संकोच सवर्ण बताते थे, इसलिए उन्हें कभी कोई कठिनाई नहीं हुई।

उन्होंने मुझे बताया कि अस्पृश्यों द्वारा अपनी पहचान छिपानेका यह चलन उनके बीच आम है और वह बढ़ता ही जा रहा है। मगर खेदकी बात यह रही कि मैंने उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। मैंने उनसे कहा कि हो सकता है आपका ऐसा करना आपके लिए और उन कुछ लोगोंके लिए सुविधाजनक हो जिनके पास इस बातके साधन हैं और जो इस दृष्टिसे काफी प्रशिक्षित हैं कि वे अस्पृश्योंको शेष लोगोंसे अलग दिखानेवाली कुछ आदतें छोड़ सकें; लेकिन, ऐसा करनेमें जो बेईमानी है और इसलिए मनुष्यत्वके पतनका खतरा है उसको न लेखें तो भी, कुछ लोगोंके ऐसे व्यवहारका उन लाखों अस्पृश्योंपर कोई असर नहीं होगा जो अपने गाँवोंसे भी बाहर नहीं निकल सकते।

जो उत्तर मैंने तब दिया था वह आजकी परिस्थिति पर भी उतना ही लागू होता है। इसलिए सबसे सीधा और जल्दीका तरीका यही है कि आन्दोलन खुले तौरपर चलाया जाये, अस्पृश्योंको लोग अस्पृश्योंके रूपमें जानकर भी सवर्ण हिन्दू उनके साथ बिलकुल बराबरीके दर्जेपर व्यवहार करें। और चूँकि यह आन्दोलन बहुत बड़े पैमानेपर आरम्भ हुआ और गत सितम्बर महीनेमें सवर्ण हिन्दुओंने घोषणा कर दी थी कि अस्पृश्यता समाप्त हो गई है, इसलिए, दोनों वर्गोंके मिलकर आपसमें एक हो जानेकी प्रक्रियाके चलते, अस्पृश्योंको एक किसी ऐसे नामसे जानना आवश्यक हो गया है जिसमें खटकनेवाली कोई बात न हो। मेरे विचारसे 'हरिजन' ही उनका सबसे अच्छा नाम था।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ११-३-१९३३

५७. अकारण भय

एक सनातनी पत्र-लेखक लिखता है :

> मान लीजिए कि एक सनातनीने कोई नया मन्दिर बनवाया और उसके प्रबन्धके लिए ट्रस्टी नियुक्त किये। यह भी मान लीजिए कि उसने अछूतोंको छोड़ बाकी चारों वर्णोंके हिन्दुओंके लिए मन्दिर खोल दिया। अस्पृश्यता-निवारक विधेयकके अनुसार अछूतोंकी अयोग्यता उनके मन्दिर-प्रवेशके मार्गमें बाधक न होगी। और, मन्दिर-प्रवेश विधेयकके अनुसार, अगर सुधारकोंका बहुमत हुआ तो वे उसके बलपर मन्दिरमें अछूतोंका प्रवेश करा सकेंगे। अर्थात्, यद्यपि मन्दिरकी स्थापना करनेवालेकी रायमें अछूतोंके प्रवेशसे मन्दिर अपवित्र हो जायेगा, यद्यपि वे मानते हैं कि वह और उसी जैसे विचार रखनेवाले, अछूतोंके मन्दिरमें चले जानेपर, विधिपूर्वक पूजा नहीं कर सकते — फिर भी अछूत मन्दिरमें जा सकेंगे और उसकी प्रकट की हुई इच्छाका भंग होगा।
>
> पर अगर कोई सनातनी ऐसा मन्दिर तिब्बत, चीन या अफगानिस्तानमें जाकर बनाये तो निस्सन्देह उसकी इच्छा पूरी हो जायेगी, क्योंकि इनमें से कहीं कोई ऐसा अस्पृश्यता-निवारक या मन्दिर-प्रवेश-विधेयक कानून नहीं है। गरज यह, कि अगर किसी सनातनीकी इच्छा है कि ऊँची जातियोंके उसके सनातनी भाई उसके बनाये हुए मन्दिरमें जा सकें तो वह अपने ही मन्दिरमें अपनी इच्छाके अनुसार पूजा नहीं कर सकता। पर उसी मन्दिरको अगर वह भारतके बाहर किसी देशमें बनाता है, तो उसे यह अधिकार प्राप्त हो सकेगा।
>
> क्या आप समझते हैं कि यह परिस्थिति सन्तोषजनक है?

अगर अस्पृश्यतामें मेरा विश्वास होता, तो इन विधेयकोंसे मुझे वैसा कोई भय न लगता जैसा इस पत्र-लेखकको लगता है। वह समझता है कि तिब्बत, चीन और अफगानिस्तानमें इस विषयमें अधिक स्वतन्त्रता है, पर वह इस बातको भूल जाता है कि इन तीन देशोंमें, जहाँतक मैं जानता हूँ, अस्पृश्यता-जैसी कोई चीज ही नहीं है और इस देशकी तरह वहाँ उसे अस्पृश्यताके आधारपर एक भी व्यक्तिका प्रवेश रोकनेका अधिकार प्राप्त न हो सकेगा। किन्तु जब कानूनमें अस्पृश्यताको कोई मान्यता नहीं रह जायेगी तब भी केवल इतनेसे ही किसी अस्पृश्य कहे जानेवाले को यह हक हासिल नहीं हो जायेगा कि वह चाहे जिस मन्दिरमें चला जाये। जो सनातनी कुछ खास लोगोंके लिए ही मन्दिर बनाता है, वह तो गोया निजी मन्दिर बनाता है, इसलिए उसे इस बातका पूरा अधिकार होगा कि वह जिसका चाहे उस

व्यक्तिका प्रवेश रोक दे — फिर चाहे वह स्पृश्य हो या अस्पृश्य। सिर्फ इतना ही है कि अस्पृश्यताके आधारपर किसी आदमीका आना रोकने और अपने इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कानूनकी सहायता प्राप्त करनेका हक उसे नहीं होगा। और अगर बहुमत अस्पृश्योंके प्रवेशके विरुद्ध है तो निजी मन्दिरकी तो बात ही क्या, सार्वजनिक मन्दिरोंमें भी उनका प्रवेश न हो सकेगा। पहले विधेयकका उद्देश्य तो केवल इतना है कि अस्पृश्यता कानूनन जायज न मानी जा सकेगी। पर जबतक सवर्ण हिन्दुओंका मतपरिवर्तन नहीं होता, तबतक हिन्दू मन्दिर हरिजनोंके लिए बन्द ही रहेंगे। दूसरे विधेयकके अनुसार निजी मन्दिरोंमें तो किसी प्रकारका हस्तक्षेप न होगा, और सार्वजनिक मन्दिरोंका खुलना या बन्द रहना प्रचलित सामाजिक रिवाजपर निर्भर करेगा — और रिवाजमें तो समय-समयपर बराबर परिवर्तन होता ही रहता है। अगर कोई सनातनी चारों वर्णोंके लिए ही सार्वजनिक मन्दिर बनाता है तो हरिजनोंका प्रवेश सिर्फ इसलिए वर्जित रहता है कि वे इस समय वर्णोंके अन्तर्गत नहीं माने जाते हैं; पर अगर वे चारों वर्णोंमें मिल जायें, तो उक्त सनातनीकी इच्छाके विपरीत कुछ भी नहीं होता, क्योंकि न तो वह भावी पीढ़ियोंके धार्मिक विश्वासकी वृद्धि रोक सकता है, न उसके ऊपर और किसी तरहका असर डाल सकता है।

मेरे पत्र-लेखककी केवल एक आपत्ति विचारणीय है। वह दूसरे विधेयकम अल्पमतके अधिकारसे सम्बन्ध रखती है। मैंने इस विषयमें समझौतेकी तजवीज जनताके सामने रखी है, जिसमें अल्पमतका अधिकार — चाहे वह एक ही व्यक्तिका क्यों न हो — भली-भाँति सुरक्षित रहता है। कारण, मेरी अपनी राय तो यह है कि एक भी व्यक्तिके धार्मिक अधिकारमें किसी प्रकारका हस्तक्षेप न हो।

पत्र-लेखक महोदय यह तो चाहते हैं कि उनके और उनके साथी सनातनियोंके अधिकारको सुधारक मान लें, पर वे खुद उन सुधारकोंका अधिकार स्वीकार नहीं करते।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ११-३-१९३३

५८. तार : बच्छराजको

११ मार्च, १९३३

बच्छराज
वर्धा

जाजूजी पूनमचन्दसे[1] मिलकर मेरी ओरसे समझायें कि वह उपवास बन्द करे।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-१०।

५९. पत्र : मीराबहनको

११ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

आज शनिवार, ११ तारीख है और इस समय सुबहके ३। बजे हैं। तुम्हारे साप्ताहिक पत्रके पहुँचनेमें अनिश्चितता रहनेके कारण तुम्हें लिखनेका मेरा दिन भी गड़बड़में पड़ गया है। इस सप्ताह तुम्हारे दो पत्र मिले। पिछले सप्ताहका पत्र मंगलको ही मिला और इस सप्ताहका बुधको। लेकिन कल सुबह मैंने सोचा कि तुम्हारा पत्र आना बाकी है, अतः सुबहका वक्त दूसरे महत्त्वपूर्ण पत्र लिखनेमें लगा दिया। और बादमें जब मुझे सूझा कि तुम्हारा तो कोई पत्र आना बाकी नहीं है, तब मैंने जिसे तुम दफ्तरका समय कह सकती हो उसमें तुम्हें लिखा नहीं। यह पत्र और ऐसे ही दूसरे पत्र मुझे तड़के ही लिखना अच्छा लगता है।

मैं देखता हूँ कि तुम फिर पशु-पक्षियोंके साथका आनन्द लूट रही हो। पता नहीं क्यों मुझे मेंढक बहुत ही असहाय जीव प्रतीत होते हैं। वे न दौड़ सकते हैं, न उड़ सकते हैं और इसलिए आसानीसे चालाक बिल्लीके शिकार बन जाते हैं। और अपनी असहाय अवस्थामें वे हमारी ओर कितनी कातर दृष्टिसे देखते हैं। उधर, बन्दर पर मुझे कभी दया नहीं आती। वह बड़ा सूझ-बूझवाला और शैतान प्राणी है

१. पूनमचन्द राँका जेलोंमें राजनीतिक कैदियोंके वर्गीकरणके विरुद्ध तथा उन्हें भोजन, वस्त्र, पुस्तकें आदिकी अधिक सुविधाएँ दिलवाने और मुलाकातियोंसे बातचीत करते समय बीचमें जो जंगलेका व्यवधान रखा जाता था उसे हटवानेके लिए ४ मार्चसे उपवास कर रहे थे।

और उसे हमें छकानेमें मजा आता है। उसमें कृतज्ञता-जैसी चीज ही नहीं है। और फिर भी, मुझे लगता है हमारा यह सब सोचना या तो कल्पना है या अज्ञान। अगर हमें ज्ञानसे बहुत-कुछ मिलता है तो ऐसा भी प्रतीत होता है कि अज्ञान और कल्पनासे भी हम कुछ कम नहीं पाते। जहाँ अज्ञानमें ही आनन्द हो, वहाँ ज्ञानवान होना मूर्खता है। हमारा सबसे छोटा और प्राचीन उपनिषद् कहता है,[1] "वह अज्ञानसे मृत्यु पर विजय पाता है और ज्ञानसे अमरत्वको प्राप्त होता है।" मूल शब्द अविद्या और विद्या हैं, जिनका अर्थ क्रमशः कर्म और अकर्म, शरीर और आत्मा, आसक्ति और अनासक्ति है। मूल वचनके साथ ज्यादती किये बिना उनके और भी कई अर्थ किये जा सकते हैं। यह बहुत सादा और ऊँचा उपनिषद् है और गहन भी है। 'गीता' की तरह उसमें भी समस्त ज्ञानका सार है। शायद 'गीता' उसकी टीका है। 'गीता' के एक प्राचीन टीकाकार या यों कहो कि भक्तने उपनिषदोंको गायोंकी, 'गीता' को दूधकी और कृष्णको उन्हें दुहनेवाले ग्वालेकी उपमा दी है।[2] मगर अभी इस बारेमें और अधिक नहीं।

आशा है, तुम्हारी प्रगति जारी होगी और उसमें गरमीके मौसमसे, जो हमारे यहाँ शुरू हो गया है, बाधा नहीं पड़ेगी। माथेपर मिट्टीकी पट्टी या केवल गीला कपड़ा रखो। इसका आश्चर्यजनक ठण्डा असर होता है। जिस चीजसे सिर ठण्डा होता है, उससे सारा शरीर शीतल हो जाता है। कल ग्रेगकी भेजी हुई आँखों-सम्बन्धी एक अमरीकी पुस्तकमें मुझे एक जोरदार वाक्य मिला। उसमें कहा गया है कि झूठसे शरीर गरम हो जाता है और आँखोंको नुकसान होता है। अगर 'झूठ' शब्दके अर्थका विस्तार कर लें, तो यह बात सही है। जाने या अनजानेमें कुदरतके कानूनोंको भंग करना झूठ है। जान-बूझकर ज्ञात नियमोंको तोड़ना ऐसा झूठ है, जिससे हमारे नैतिक बलकी हानि होती है। अनजाने कानून भंग करनेसे यह हानि या उतनी हानि नहीं होती है, परन्तु शरीरकी हानि तो हर हालतमें होती ही है। प्राणायाम पर लिखने-वालों का दावा है कि श्वासोच्छ्वासको नियमित और नियन्त्रित करनेकी शक्ति हो, तो जलवायुके परिवर्तनका असर नहीं होता। 'गीता' से इस मान्यताका समर्थन होता प्रतीत होता है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें आधुनिक ज्ञानके प्रकाशमें फिरसे खोज होनेकी जरूरत है। लोनावालाके कुवलयानन्द यह काम कर रहे हैं। सीटी बजाते समय होठोंको जैसा करते हैं, वैसे करके बाहरकी हवा धीरे-धीरे अन्दर ले जाओ तो तुम्हें तुरन्त ठण्डक मालूम होगी। चित लेटते समय याद रखो कि पीठकी मांस पेशियाँ फैलनी न चाहिए। इसलिए तुम्हारा साँस लेना बहुत ही धीमे-धीमे होना चाहिए। इसका उद्देश्य शरीरपर ठण्डक पहुँचानेवाला असर पैदा करना, उसे ढीला छोड़ना और आराम देना है। मन और शरीरके खिंचावको राहत पहुँचानेके लिए नींदसे बढ़कर कोई चीज नहीं है। इसलिए प्राणायाम पालथी लगाकर शरीरको सीधे तख्तेकी तरह

१. **ईशोपनिषद्**, ११।

२. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

तानकर करना चाहिए। यह सब अभ्यास धीरे-धीरे, विचारपूर्वक और नियमित होना चाहिए और हमेशा खाली पेट होना चाहिए।

यहाँ प्रार्थनाके लिए लिखना रुक गया था और अब २५ मिनटके बाद ४-३५ पर फिर लिख रहा हूँ।

सब बातोंको देखते हुए मुझे अर्नाल्डका अनुवाद और सबोंसे अधिक उपयोगी मालूम होता है। 'एब्स्टीमियस' शब्द उपयुक्त नहीं है। 'स्पेअर डाइट' कहना अच्छा है। 'अल्प'का अर्थ है काफीसे कम। काफी क्या है, यह अनुमानका विषय है और इसलिए हमारे अपने ही मनकी कल्पना है। सत्यभक्त मनुष्यने यह जानते हुए कि मनुष्य सदा शरीरके प्रति मेहरबान होता है इस कमजोरीका इलाज करनेकी दृष्टिसे कहा कि उसके विचारसे जितना भोजन काफी हो उससे उसे थोड़ा कम लेना चाहिए। तब कहीं यह सम्भव होगा कि वह जितना सचमुच काफी है उतना ही भोजन लेगा। इस प्रकार जिसे अकसर हम अल्प समझते हैं, सम्भव है वह भी काफीसे ज्यादा हो। कम खानेके कारण जितने लोग कमजोर रहते हैं, उनसे अधिक लोग ज्यादा या गलत भोजनके कारण रहते हैं। अगर हम उचित भोजन चुन लें, तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि कितनी थोड़ी-सी मात्रा काफी हो जाती है।

मुझे खुशी है कि बा तुम्हारे साथ मजेमें है और हिन्दी सीख रही है और तुमसे भजन गवाती है। मृदुला गाती है क्या? न गाती हो तो गाना चाहिए। उसे संकोच छोड़ देना चाहिए — यदि अब भी करती हो तो। अपना दिन वह अन्यथा किस तरह बिताती है? अब तो उसे बा का सचिव या पत्र-लेखक बन जाना चाहिए।

मेरा वजन अब १०४ पर पहुँच गया है। खुराक वही फल और दूध (कच्चा) है। मैं अभी तो एक पौंडसे कम दूध लेता हूँ। फलोंसे ही मेरा वजन कायम है। कोहनियोंका वही हाल है। चिन्ताका कोई कारण नहीं। कताई घटाकर कमसे-कम कर दी है। कोई निश्चित मात्रा नहीं है। अंक अभी तो ५५ और ६० के बीच है। यह केशूकी छोटी-सी ईजादपर पींजे हुए देव कपासका सूत है।

हम सबका प्रेम लो।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६६) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७३२ से भी

६०. पत्र : अब्दुल अलीमको

११ मार्च, १९३३

प्रिय अब्दुल अलीम,

आपके पोस्टकार्डसे यह जानकर खुशी हुई कि आप सही-सलामत कलकत्ता पहुँच गये और 'रिफ्यूज'में रह रहे हैं[1]।

मुझे सर देवप्रसाद सर्वाधिकारीका भी एक पत्र मिला था।

आपको घरकी याद कर-करके परेशान नहीं होना चाहिए। आप एक समझदार नौजवान हैं। इसलिए आपको वहाँ रहनेवाले सभी असहाय भाइयोंके साथ भ्रातृत्वकी भावना विकसित करनी चाहिए और अपने आदर्श आचरण द्वारा वहाँके अधिकारियोंका स्नेह-भाजन बन जाना चाहिए। और अगर आप यही विश्वास रखेंगे कि साथी, रक्षक और संरक्षकके रूपमें ईश्वर बराबर आपके साथ है, तो आप बेसहारापन या अकेलापन कभी महसूस नहीं करेंगे।

आशा है, आपके पास पढ़नेको कुछ सामग्री होगी।

मैं कुछ मित्रोंको यदा-कदा आपसे मिलनेके लिए लिख रहा हूँ[2]।

आप मुझे बराबर खबर देते रहें कि वहाँ आपका कैसा-क्या चल रहा है।

हृदयसे आपका,

श्री अब्दुल अलीम
'रिफ्यूज'
१२५, बहू बाजार
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४८)से।

१. देखिए "पत्र: देवप्रसाद सर्वाधिकारीको", ९-३-१९३३ भी।

२. देखिए अगला शीर्षक।

६१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

११ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपको याद होगा कि आपसे मैंने अब्दुल अलीमके बारेमें बात की थी। अब वह बिलकुल सही-सलामत, 'रिफ्यूज' में, जिसके सम्बन्धमें आपसे चर्चा की थी, रह रहा है। यह १२५, बहू बाजार स्ट्रीटमें स्थित है। इसके अध्यक्ष सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी हैं। आप कुछ नौजवानोंसे कहिए कि वे जाकर अब्दुल अलीमसे मिलें, ताकि वह ऐसा महसूस करे कि वह बिलकुल ही उपेक्षित नहीं है। साथमें उसका कार्ड भेज रहा हूँ, जिससे उसकी मनःस्थितिका पता चल जायेगा। अगर उसे जरूरत हो तो कुछ पुस्तकें दे दी जायें। आप शायद किसी मुसलमानको भी उनसे मिलनेको प्रेरित कर सकें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४५) से।

६२. पत्र : बालमुकुन्दको

११ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आशा है, आपकी परिषद् स्वास्थ्यके नियमोंके पालन, पंजाबके हरिजनोंमें यदि मरे ढोरोंका मांस खानेका चलन हो तो उसके त्याग, पूर्ण मद्यत्याग आदि आन्तरिक सुधारोंकी ओर ध्यान देगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बालमुकुन्द
महामन्त्री
वाल्मीक अछूत मण्डल
लाहौर सिटी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४७) से।

६३. पत्र : वेरियर एल्विनको

११ मार्च, १९३३

प्रिय वेरियर,

इस बार भी कुछ अनिवार्य कारणोंसे तुम्हारे दो पत्रोंका उत्तर देनेमें देर हो गई। जैसे यह सब ईश्वरकी ही इच्छा थी। कल अल्ला आई और उसने मेरे इस पत्रका मन्सूबा ही बदल दिया। मैं तो इसे बस धन्यवाद-पत्रकी तरह लिखना चाहता था। लेकिन अल्लासे जो बातचीत हुई, उसके कारण यह सम्भव नहीं हो सका। उसने कहा कि उसके पास मेरे नाम लिखे तुम्हारे एक पत्रकी नकल थी, लेकिन उससे वह सन्तुष्ट नहीं थी। वह इस बात पर जोर दे रही थी कि तुमने एक वचन दिया था। वह शादी करना नहीं चाहती, लेकिन झूठी भी नहीं बनना चाहती। वह तुम्हें ही झूठा बनाना चाहती है! मैंने मुलायमियतसे उससे कहा कि किसीको भी झूठा बननेकी जरूरत नहीं, जीवनमें प्रेमाचारके दौरान गलतियाँ होना आम बात है और मैंने यह भी कहा कि हो सकता है कि तुम्हारा मन्शा शादीका न होते हुए भी, उसने, स्वयं शादीकी इच्छुक होनेके कारण, तुम्हारे हरएक शब्द और हाव-भावका मतलब तुम्हारी शादीकी इच्छा ही लगा लिया हो। वह ऐसा माननेको तैयार नहीं हुई, लेकिन साथ ही तुमपर मिथ्याचारका आरोप लगानेको भी उसका जी नहीं कर रहा था। मैंने उससे कहा कि तुम झूठ तो बोल ही नहीं सकते और अगर ऐसा तनिक भी सन्देह हो कि तुम्हारा मतलब शादीसे था, तो तुम इस बातको स्वीकार जरूर कर लोगे। तुम अपनी स्मृतिपर जोर डालकर देखो। अगर अल्लाकी कही बातोंकी दृष्टिसे कहीं कोई भूल-सुधार करने-जैसी चीज दिखे, तो तुम उसका प्रतिकार कर देना। मेरा खयाल है, अभी कुछ दिन और उसको तुम्हारे पास नहीं जाना चाहिए। वैसे तो तुमने और मेरीने बहुत ही पवित्र और महत्त्वपूर्ण संकल्प लिया है,[1] लेकिन उसमें तुम दोनोंको बहुत अधिक मनोव्यथा झेलनी पड़ी होगी। लगता है मेरी तो उस आघातके असरसे निकल भी नहीं पाई है। यद्यपि मुझे जो पहला पत्र लिखा, वह तुम दोनोंकी ओरसे था, लेकिन लगता है, इस प्रस्तावित सम्बन्धके भंग होनेके सत्यको मेरी पचा नहीं पाई है। मुझे उससे पूरी सहानुभूति है। मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ऐसी बातें पुरुषकी अपेक्षा स्त्रियोंके लिए अधिक महत्त्व रखती हैं। लेकिन मेरीको इस बातकी प्रतीति होनी चाहिए कि ईश्वरके सामने स्त्री-पुरुषका कोई भेद

१. "एक-दूसरेसे विवाह न करनेका लेकिन अपने-आपको उस सेवा-कार्यके लिये अर्पित कर देनेका जिसके लिए वे अपने जीवन समर्पित कर चुके हैं।" देखिए "पत्र : लिओनार्ड एन० शीफको", १०-३-१९३३।

नहीं होता, या हम सब उसके सामने स्त्रियाँ हैं, उसके साथ एक अटूट बन्धनमें बँधी उसकी परिणीताएँ हैं। अगर उसने इस अमर विवाहकी खूबीको समझ लिया हो, तो उसे ऐसा समझकर खुशीसे नाच उठना चाहिए कि वह मानवीय विवाहके बन्धनसे मुक्त है। अगर मनुष्य मनसे दुर्बल हो तो ऐसा विवाह अच्छा और आवश्यक है, लेकिन अगर उसका मन सबल हो तो निश्चय ही मानव-समाजके सेवकके लिए ऐसा विवाह विघ्न-रूप है, और मेरी ऐसी ही सेविका तो बन गई है। उसे यह भी स्मरण रखना चाहिए कि त्याग वही सच्चा होता है जो मनुष्यको आन्तरिक शान्ति और आनन्द देता है। इसलिए जो होना था और जो वास्तवमें इस शरीरके साथ की गई एक रियायत थी, उसके बारेमें सोच-सोचकर उसे खिन्न नहीं होना चाहिए। उसे तो ईश्वरका स्तुति-गान करना चाहिए कि उसने तुम दोनोंको वासनापर विजय पानेमें समर्थ बनाया। और चूँकि उसने मेरी पुत्री बननेका इरादा किया है, इसलिए उसे बिना किसी दुराव-छिपावके मुझे लिखना चाहिए और अपने पत्रोंमें अपना हृदय उँड़ेल देना चाहिए।

लेकिन, जबतक तुम दोनोंका मन स्थिर न हो जाये और तुम दोनों अपनेको ठोक-बजाकर देख न लो, तबतक अल्लाको वहाँ नहीं जाना चाहिए और न उसे वहाँ जानेके लिए बढ़ावा ही देना चाहिए। वह खुद ही तबतक वहाँ नहीं जाना चाहती जबतक वादेकी उस बातकी पूरी सफाई नहीं हो जाती।

और अब मैं यह जानता हूँ कि मेरी सम्पूर्ण सहानुभूति तुम्हारे साथ है। मेरी आत्मा तुम्हें बराबर देख रही है और ईश्वरसे प्रार्थना कर रही है कि वह तुम्हें अपेक्षित शक्ति प्रदान करे। ये महीने तो तुम्हारे लिए अवश्य ही बहुत कठिन गुजरे होंगे। वास्तवमें मेरी यही प्रार्थना है कि तुम्हारे जीवनमें सत्य — जो स्वयं ईश्वर ही है — उद्भासित हो।

तुम्हें और मेरीको मेरा सम्पूर्ण प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४१) से।

६४. पत्र : मेरी जिलेटको

[११ मार्च, १९३३][1]

प्रिय मेरी,

अभी-अभी वेरियरके नाम पत्र पूरा किया है और प्रार्थना प्रारम्भ होनेमें अब कुछ ही क्षण रह गए हैं। वेरियर तुम्हें मेरा पत्र, या उसका जितना हिस्सा उसकी समझमें तुम्हारे पढ़ने लायक होगा उतना हिस्सा, पढ़वा देगा। वह जो अंश तुम्हें नहीं पढ़वायेगा वे तुम्हारी ही भलाईके लिए नहीं पढ़वायेगा।

चूँकि तुम हमारे इस सतत बढ़ते हुए परिवारकी एक नई सदस्या हो, इसलिए मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम्हारे लिए ठीक-ठीक किस शब्दका प्रयोग करूँ। लेकिन इतना जरूर जानता हूँ और तुम इस बातके लिए आश्वस्त रह सकती हो, कि मेरी सम्पूर्ण सहानुभूति तुम्हारे साथ है। मेरी आत्मा तुम्हारे साथ ही रहती है — उसी तरह जिस तरह एक माताकी आत्मा अपनी सन्तानके साथ रहती है। और इसके पीछे निरे स्वार्थकी भावना है। ईश्वरको सत्य-रूपमें और केवल इसी रूपमें, जानने और देखनेके अपने सतत प्रयत्नमें मैं अकेलापन महसूस नहीं करना चाहता। उसी अटूट बन्धनके कारण वेरियर मेरा पुत्र और तुम मेरी पुत्री हो। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, वेरियरको लिखा मेरा पत्र जितना उसके लिए है उतना ही तुम्हारे लिए भी है। लेकिन मैं चूंकि तुम्हें उसीके जरिये जानता हूँ, इसलिए यह तो उसीको तय करना चाहिए कि उसका कितना अंश पढ़ना तुम्हारे लिए हितकारी होगा। ऐसा मैं कोई इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि तुमपर मेरा विश्वास नहीं है, बल्कि इसलिए कि निदान और उपचारकी अपनी क्षमतापर मेरा आत्मविश्वास पर्याप्त नहीं है। और पिताको अपने बच्चेकी आवश्यकताओंको जानने और क्या करना चाहिए, यह बतानेका अधिकार तो है ही। पर मैं तो एक अन्धा पिता हूँ। हम सबका वह परम पिता, जिससे कभी कोई चूक नहीं होती, निश्चय ही तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा और तुम्हें बिना किसी प्रकारकी कोर-कसरके पूर्ण समर्पणके अपने महान् संकल्पको पूरा करनेके लिए अपेक्षित शक्ति प्रदान करेगा।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७७४) से।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

६५. पत्र : टी० के० मेननको

११ मार्च, १९३३

प्रिय मेनन,

आपने 'मातृभूमि'[1] के जो प्रासंगिक उद्धरण मेरे लिए अनुवाद करके भेजे थे वे मुझे मिल गये थे।

वैसे एक-दो अनुच्छेदोंपर तो कुछ आपत्ति उठाना उचित भी हो सकता है, लेकिन आपने जिस प्रकार इन लेखोंकी हर बातकी भर्त्सना की है, उसका औचित्य मुझे दिखाई नहीं देता। पत्रकार तो अपनी दलीलोंको सजाते हुए कुछ चटपटी बातें लिखेंगे ही; उनका किसीको बुरा नहीं मानना चाहिए बशर्ते कि उनमें शिष्टताकी सारी मर्यादाओंका अतिक्रमण ही न कर दिया गया हो। फिर भी, अगर आपको कभी भी कोई ऐसी चीज दिखे जो बहुत ही आपत्तिजनक हो तो आप उसकी कतरनें भेज दें; फिर मैं सम्पादकको लिखूँगा। उन्होंने भाषाके प्रयोगके सम्बन्धमें बहुत सावधानीसे काम लेनेका वादा किया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० के० मेनन
मार्फत – श्रीयुत चम्पकलाल देवीदास
२६, दलाल स्ट्रीट फोर्ट
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५४३) से।

६६. कस्तूरबा गांधीको लिखे पत्रका अंश

११ मार्च, १९३३

हरिलालकी क्यों चिन्ता करती है? वह पत्र नहीं लिखेगा। यदि उसकी शराबकी लत ईश्वरको पुसाती है तो हम क्या कर सकेंगे? ईश्वरको उसे जब सुधारना होगा तब सुधारेगा।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १८५

१. एक मलयाली दैनिक।

६७. पत्र : मूलचन्द पारेखको

११ मार्च, १९३३

हाथ और पैरका श्रम ही सच्चा श्रम है, और हाथ-पैरोंसे मजदूरी करके ही आजीविका प्राप्त करनी चाहिए। मानसिक और बौद्धिक शक्तिका उपयोग समाज-सेवाके लिए ही करना चाहिए। हम हाथ-पैर न हिलायें तो क्या बुद्धिसे खेती करेंगे? आग लगी हो तो क्या काव्य-रचना करके आग बुझायेंगे?

'योगः कर्मसु कौशलम्'[1] यह सच्ची बात है। शरीर और मनके कामका सुन्दर योग साधना चाहिए। मुसोलिनी लुहारका लड़का था जिसने घरपर घोर परिश्रम किया था और 'युवावस्थामें एक कारखानेमें ईंटें लेकर १२० बार दूसरी मंजिलपर चढ़ानेकी मजदूरी की थी और ११ बार जेल गया था। मगर यही उसके लिए बड़ी तालीम हो गई। उस मजदूरीके दौरान उसका मन सो नहीं रहा था। अगर मन सो रहा होता तो इस तरह तो करोड़ों मजदूर ईंटें ढोते हैं और लाखों किसान खेती करते हैं, मगर उससे वे दुनियामें किसी तरहकी छाप थोड़े ही छोड़ जाते हैं?

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ १८८

६८. गुजरातियोंसे

'हरिजनबन्धु' अंग्रेजी 'हरिजन' का गुजराती संस्करण है। गुजराती 'हरिजन' अंग्रेजी संस्करणके साथ ही प्रकाशित नहीं हो सका यह आपके और मेरे, दोनोंके लिए शर्मकी बात है। आपके लिए शर्मकी बात इसलिए है कि हरिजन सेवा संघकी बम्बई शाखाको भरोसा नहीं था कि 'हरिजनबन्धु' को इतने ग्राहक भी मिल सकेंगे जिससे वह स्वावलम्बी बन सके। घाटा होनेपर, एक गुजराती सज्जनने उसे पूरा करना स्वीकार कर लिया था। किन्तु इस प्रकार घाटा उठाकर गुजराती 'हरिजन' कदापि नहीं निकाला जा सकता। मेरा आग्रह था कि यदि आरम्भमें कुछ घाटा हो तो भी बम्बई या गुजरात शाखाको उसकी पूर्ति करनी चाहिए। आखिर बम्बई शाखाने तीन महीनेतक प्रयोग करनेकी जिम्मेवारी लेकर 'हरिजनबन्धु'[2] का प्रकाशन

१. **भगवद्गीता,** २–५०। पत्र-लेखकने पूछा था : "क्या शारीरिक श्रम करनेवालेको ही श्रमजीवी कहा जायेगा? और जो बौद्धिक कार्य करता है उसे श्रमजीवी नहीं कहा जा सकता?

२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ९-३-१९३३।

आरम्भ कराया है। मुझे आशा है कि गुजराती पहले ही सप्ताहमें बम्बई शाखाको इस तरफसे भयमुक्त कर देंगे।

किन्तु 'हरिजनबन्धु' प्रकाशित करनेका उद्देश्य आपसे प्रति अंकका एक आना या वार्षिक चार रुपये लेकर दो-चार अथवा अधिक लोगोंके लिए आजीविका प्राप्त करना नहीं है। आपका चन्दा छुआछूतको मिटानेकी आपकी इच्छाका प्रतीक होगा या यदि आप सनातनी हैं तो इस मामलेमें सुधारक क्या कहते हैं यह जाननेकी आपकी इच्छाका प्रतीक होगा। मैं तो यह मानता हूँ कि 'हरिजनबन्धु' के ग्राहक अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेका शुल्क देते हैं। यदि आप हिन्दू धर्ममें से अस्पृश्यतारूपी कलंकको मिटाना चाहते हैं तो यह आन्दोलन क्या है, इसको चलानेवाले कौन हैं, आन्दोलन किस प्रकार चल रहा है, इस बारेमें शास्त्र क्या कहते हैं, दुनिया क्या कहती है, उसमें आप किस तरह भाग ले सकते हैं, यह सब आपको जानना चाहिए। और यह सब जानकारी आपको 'हरिजनबन्धु' देगा।

मुझे आशा है कि आपका एक आना व्यर्थ नहीं जायेगा। मुझे खुश करनेकी खातिर आप 'हरिजनबन्धु' नहीं खरीदेंगे। मुझे भय है कि कुछ लोग तो मेरे प्रति अपने अन्ध प्रेमके कारण 'हरिजनबन्धु' की आवश्यकता न होनेपर उसे खरीदेंगे। किन्तु मैं ऐसा नहीं चाहता।

'हरिजनबन्धु' को प्रकाशनकी खातिर प्रकाशित करनेके लिए मैं जरा भी उत्सुक नहीं हूँ। मेरे पास उतना समय नहीं है। उसमें मुख्यतः अंग्रेजीसे अनुवाद रहेंगे, इस कारण आप भड़क न उठना। इस अनुवादमें आपको नवीनता नजर आयेगी। गुजरातियोंको ही सम्बोधित करते हुए मुझे कुछ तो लिखना ही पड़ेगा। उसका थोड़ा-बहुत बोझ मुझे उठाना ही पड़ेगा। मेरे लिए 'हरिजनबन्धु' एक विशेष प्रायश्चित्त है। मैं जी-जानसे इस आन्दोलनमें लगा हुआ हूँ। अस्पृश्यता-निवारण मेरे लिए आज-कलकी प्रवृत्ति नहीं है बल्कि जब मैंने राजनीतिमें प्रवेश किया उसके पहलेकी है, बचपनकी है।

किन्तु यरवडा समझौतेके कारण यह प्रवृत्ति प्रतिज्ञाकी वस्तु बन गई है। मेरा उपवास मेरे लिए मृत्यु-शय्या थी। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने उस समझौतेको स्वीकार किया यह तो उस प्रतिज्ञाका मात्र शाब्दिक पालन हुआ। किन्तु हिन्दू धर्मावलम्बियोंकी ओरसे हिन्दू-प्रतिनिधियों द्वारा की गई प्रतिज्ञाका पालन उक्त समझौतेकी आत्मा थी और है, यह मैंने उन नेताओंको उसी समय समझा दिया था। मैंने इस भरोसे उप-वास तोड़ा था कि इस प्रतिज्ञाका पालन प्रति क्षण होता रहेगा। उक्त प्रतिज्ञाके पालनमें मेरा शरीर बन्धकके रूपमें था और आज भी है। जिस क्षण मुझे ऐसा लगेगा कि प्रतिज्ञा करनेवाले शिथिल पड़ गये हैं उसी क्षण मुझे पुनः मृत्यु-शय्यापर लेट ही जाना चाहिए।

किन्तु मैं मरनेके लिए उत्सुक नहीं हूँ। मैं तो जीवित रहते हुए अस्पृश्यताका अग्नि-संस्कार करनेको उत्सुक हूँ। इस शुभ क्षणको देखनेके लिए यदि मुझे मरना

पड़े तो मैं मरनेको तैयार हूँ। इस तैयारीमें ही मेरे जीवन-रक्षणका मन्त्र है। अस्पृश्यता बनी रहे और मुझे जीना पड़े, यह तो जहरके प्यालेके समान है।

अब शायद आप और अच्छी तरह समझ गये होंगे कि 'हरिजन' अंग्रेजीमें और राष्ट्रीय तथा प्रान्तीय भाषाओंमें निकालनेमें किस प्रकार मेरा प्रायश्चित्त निहित है। या तो मुझे निरुपाय होकर मृत्यु-शय्यापर लेट जाना चाहिए या फिर मुझमें जितनी शक्ति हो उतनी शक्ति अस्पृश्यता रूपी रावणका वध करनेमें लगानी चाहिए। मृत्युशय्याके मौकेको टालनेके लिए 'हरिजन' आदि प्रवृत्तियाँ हैं। इसके द्वारा मेरा उद्देश्य हिन्दू जनताको सावधान करना है। प्रतिज्ञा-पालनका उत्तरदायित्व मुझपर भले अधिक हो किन्तु न्यूनाधिक मात्रामें इसका उत्तरदायित्व ऐसे प्रत्येक हिन्दूपर भी है जो अस्पृश्यताको पाप-रूप मानता है। 'हरिजनबन्धु' किसी हद तक यह बतायेगा कि उस उत्तरदायित्वको किस प्रकार उठाया जा सकता है।

यदि कोशिश की जाये तो सनातनियोंको भी इसमें बहुत-कुछ मिल जायेगा। आज जो दुश्मन बन बैठे हैं, वे कल मित्र थे। धैर्यवान् सनातनियोंके सामने 'हरिजन-बन्धु' यह सिद्ध करेगा कि ऐसा करनेका कोई कारण ही नहीं है। इसमें किसीकी कटु आलोचनाको स्थान नहीं होगा। इसमें पूरी चर्चा केवल धार्मिक दृष्टिसे की जायेगी। मेरे विचारमें अस्पृश्यता-निवारण केवल धार्मिक प्रवृत्ति है। भले ही इसके अन्य बहुत-से परिणाम हों, भले उसमें से कुछ राजनीतिक भी हों। यदि इन सबका धार्मिक आधार न हो तो वे मेरे लिए मिथ्या हैं। मिथ्या वस्तुके लिए कारागारकी शान्तिका उपभोग करनेकी बजाय बाहर प्रचण्ड आन्दोलन चलानेका भार मैं कदापि नहीं उठाऊँगा। मर्यादाकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य ईश्वरने मुझे दी है। अतः मैं किसी भी स्थितिमें क्यों न होऊँ, मैं उससे रस ग्रहण कर सकता हूँ। कैदी होनेमें नुकसान हो सकता है किन्तु उसमें समझदार व्यक्तिके लिए आत्म-दर्शनसे मिलनेवाली शान्ति अवश्य निहित है। किन्तु फिलहाल मैं देखता हूँ कि कैदी होनेके बावजूद और कैदमें रहकर इस प्रचण्ड आन्दोलनको चलाते हुए मैं आत्म-दर्शन कर सकता हूँ। इसीलिए मैंने अपनी नींद बेचकर जागरूकताका सौदा किया है। हिन्दू धर्मकी शुद्धिके इस यज्ञमें आहुति देनेके लिए 'हरिजनबन्धु' प्रति सप्ताह हर गुजराती हिन्दूको आमन्त्रित करेगा।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १२-३-१९३३

६९. मरे ढोरोंका निबटारा[1]

हरिजनोंमें ऐसे कई वर्ग हैं, जैसे दक्षिण भारतमें चक्किलियन और मडिगा तथा गुजरातमें चमार, जो मरे ढोरोंको उठा ले जाते हैं, उन्हें ठिकाने लगाते हैं और उनका मांस खाते हैं। मरे ढोरोंको ठिकाने लगाना एक पवित्र कर्तव्य और पवित्र धन्धा है। लेकिन मुर्दार मांस खाना एक अत्यन्त गंदी आदत है, जिसे हिन्दू धर्म-ग्रंथोंमें एक महापाप माना गया है। यह निहायत जरूरी है कि आत्मशुद्धिके इस अवसर पर अपने हरिजन भाइयोंको इस आदतसे छुटकारा पानेमें मदद की जाये। लेकिन कई कारणोंसे वे ऐसा करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। वे कहते हैं, "यह तो हमारी युगों-पुरानी आदत है। और अब तो वह हमारे लिए एक सुस्वादु व्यंजन हो गया है जिसे हम उसी तरह नहीं छोड़ सकते, जिस तरह आप लोग अपने उत्तम मिष्टान्नोंको नहीं छोड़ सकते। आपको यह भी जानना चाहिए कि मरे ढोरोंको हटा कर ठिकाने लगाना एक ऐसा कर्तव्य है, जो हमें सौंपा गया है और हम महाजनोंके गुस्सेका खतरा उठाये बिना उसे छोड़ नहीं सकते। शायद आप जानते हैं कि मुर्दार मांस मरे ढोरोंको हटानेके मेहनतानेका एक हिस्सा होता है। इस तरह हम तीन कारणोंसे मुर्दार मांस खानेके रिवाजसे बंधे हुए हैं।"

यह दलील विचार करने लायक है। लिखित और मौखिक अपीलोंसे कोई लाभ नहीं होगा; हमें उन्हें इससे बाहर निकलनेका रास्ता बताना होगा। पहले हमें देशके विभिन्न भागोंमें मरे ढोरोंको हटानेकी मौजूदा हालतोंसे स्वयं परिचित होना चाहिए और परिस्थितियोंका विचार करके उन्हें बदलवाना चाहिए। हमें मरे ढोरोंका चमड़ा निकालने और उसके साथकी दूसरी क्रियाएँ अपनी निगरानीमें करवानी चाहिए और बचे हुए भागोंकी ठीक व्यवस्थाका ध्यान रखना चाहिए। ढोर तभी हटवाना चाहिए जब उठानेवाले यह वचन दें कि वे मुर्दार मांस नहीं खायेंगे; और किसीको मरे ढोर उठानेके लिए मजबूर नहीं करना चाहिए।

इस कामके लिए काफी संख्यामें स्वयंसेवक चाहिए। उन्हें सफाईके साथ मरे ढोरोंका चमड़ा निकालनेकी कला सीखनी चाहिए और हरिजनोंको, जो कि यह काम आज पुराने तरीकेसे करते हैं, सिखानी भी चाहिए। आजकी तरह मरे ढोरोंको घसीटकर नहीं ले जाना चाहिए, क्योंकि उससे उनके चमड़ेको नुकसान पहुँचता है। और उसकी कीमत घटती है। उन्हें उठाना चाहिए और ठीक ढंगसे जल्दी ले जाना चाहिए। चमड़ा निकालने और साफ करनेवाले खुशीसे यह नया तरीका अपना लेंगे, लेकिन तभी जब तथाकथित ऊँची जातियोंके लोग उसमें निष्णात बन जायेंगे।

१. इस लेखका अंग्रेजी अनुवाद किंचित् परिवर्धनके साथ १८-३-१९३३ के **हरिजन**में भी प्रकाशित हुआ था और प्रस्तुत अनुवादको उससे भी मिला लिया गया है।

आज जिस ढंगसे मरे ढोरोंका निपटारा किया जाता है, वह आर्थिक दृष्टिसे बहुत ज्यादा हानिकारक है और उससे देशको हर साल करोड़ों रुपयेका नुकसान होता है। मरे ढोरके हर छोटेसे-छोटे भागका भी सही उपयोग होना चाहिए। आज उसका बहुत-सा भाग बरबाद हो जाता है। उसका चमड़ा, हड्डियाँ, आँतें और मांस सब-कुछ उपयोगी होता है, जिसका ठीक उपयोग किया जाना चाहिए। चमड़ेका तो कुछ हदतक उपयोग हो जाता है। लेकिन हड्डियाँ ज्यादातर बरबाद हो जाती हैं। उन्हें सावधानीसे इकट्ठा करना चाहिए और वैज्ञानिक रीतिसे उनका खाद बनाना चाहिए। आँतें ताँतके तार आदि बनानेके काममें ली जाती हैं, लेकिन इसमें काफी सुधारकी गुंजाइश है। आज मांसका जो गंदा उपयोग किया जाता है, उसे रोकना चाहिए और उससे चर्बी पैदा करनी चाहिए, जो कारखानोंके लिए ग्रीज बनानेके लिए कीमती साबित होगी। बाकी बचे हुए हिस्सोंका अन्तिम रूपसे खाद बना लिया जाना चाहिए। या जमीनमें गहरा गड्ढा खोदकर उन्हें गाड़ देना चाहिए। अगर स्वयंसेवक इन सारी प्रक्रियाओंके समय उपस्थित रहनेका निश्चय कर लें, तो यह काम करनेवाले लोग आसानीसे नया तरीका अपना लेंगे और मुर्दार मांस खाना छोड़ देंगे।

लेकिन इसमें कहीं भी जोर-जबरदस्तीकी गुंजाइश नहीं है। जहाँ चमड़ा उतारनेवाले लोग इस परिवर्तनके लिए तैयार न हों, वहाँ उन्हें अपनी मर्जीसे काम करने दिया जाये; उसमें कोई दस्तंदाजी न की जाये। जिस तरह सवर्ण जाति-संस्थाओंपर यह बंधन नहीं है कि वे मरे ढोरोंको उन्हींसे हटवायें, उसी तरह वे भी उन्हें हटानेके लिए बंधे हुए नहीं हैं। यह बात आपसी समझौतेसे ही निबटानी चाहिए।

लेकिन स्वयंसेवकोंको इस दिशामें सारी प्रक्रियाओंका निरीक्षण करनेसे आरम्भ करना चाहिए। बेशक, ऐसा निरीक्षण वहीं किया जाये जहाँ उसका विरोध न हो। जबतक स्वयंसेवक खुद इन प्रक्रियाओंपर पहले अधिकार न प्राप्त कर लें, तबतक इस निरीक्षण-कार्यको रोकनेकी जरूरत नहीं। प्रत्यक्ष कार्य अपने-आपमें ट्रेनिंगका काम करेगा।

नगरपालिकाएँ, स्थानीय संस्थाएँ और राज्य तुरन्त स्वयंसेवकोंको चमड़ा निकालने और कमानेकी ट्रेनिंग देनेका काम हाथमें ले सकते हैं। इस काममें मकानों और निष्णातोंके लिए थोड़ा खर्च तो जरूर करना पड़ेगा। उन्हें इस कामके लिए सचमुच एक प्रशिक्षण विद्यालय खोलना चाहिए और सहयोग, सुझावों और सहायताके लिए इस कामके परोपकारी निष्णातों और पशु-चिकित्सा करनेवाले सर्जनोंको आमन्त्रित करना चाहिए।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १२-३-१९३३

७०. सत्यसे ही[1]

[१२ मार्च, १९३३][2]

मैंने हरिजन-सेवकके लक्षण इंग्रेजी 'हरिजन'में दिये हैं। मेरी आशा है कि संपादकजी उसका तात्पर्य दे चुके होंगे, इस लेखको तो मैं १२ मार्चको लिख रहा हूं। जितना और सोचता हूं इतना ही मुझे मालुम होता है कि यदि सचमुच यह आंदोलन धार्मिक ही है और धर्म शुद्धि, धर्म रक्षाके ही लिये है तो उसमें असत्यका कुछ भी मिश्रण नहिं होना चाहिये। सत्य ही एक धर्मकी सच्ची प्रतिष्ठा है। जब सत्य ही परमेश्वर है तो धर्ममें असत्यको स्थान कभी नहिं हो सकता है। यह बात सब हरिजनसेवकको हृदयमें अंकित कर लेनी चाहिये।

सनातनी अखबार और लेख मेरे पास काफी आते हैं। नये भी निकलते जाते हैं। सनातनीयोंका धन इस काममें खूब लग रहा है। यह जागृति मुझे प्रिय लगती है। इसका सदुपयोग होता तो कैसा अच्छा रहता? दुःखकी बात है कि इन अखबारोंमें लेखोंमें असत्य बहुत भरा है। किसी-न-किसी तरह इस आंदोलनको रोकनेकी वे चेष्टा कर रहे हैं। इस असत्यका उत्तर कैसे दिया जाय?

असत्यसे कभी नहिं। सत्य ही से इसका उत्तर हो सकता है। थोड़े सनातनीयोंने मेरे पास सुधारकोंके बारेमें फरीयाद की है सही। वे कहते हैं सुधारक लोग असत्य चलाते हैं और सनातनीयोंकी सभामें जाकर हल्ला मचाते हैं। सिवाय एक फरीयादके बारेमें मुझको कोई प्रमाण नहिं भेजा गया है। मैंने मांगा तो है। सनातनी लेखकोंने मुझको कुछ प्रमाण नहिं भेजे हैं उससे मैं ऐसा भी ख्याल नहिं करता हूं कि कोई हरिजन-सेवक कुछ दोष नहिं करता होगा। हरिजन-सेवकोंमें दोष होनेका बहुत संभव है इसी कारण तो मैं यह लेख लिख रहा हूं।

मेरे मनमें सनातनी और सुधारक ऐसा भेद नहिं है, दोनोंसे मैं सत्यकी भिक्षा मांगता हूं। परंतु सनातनी मुझको अपनेसे भिन्न मानते हैं, कोई मुझको दुष्मन भी समजते हैं इस लिये आज वे मेरा विनय नहिं सुनेंगे ऐसा मुझे डर है। सुधारक सुनेंगे तो भी हमारा कार्य निपट जायेगा। क्योंकि यह सनातन और निरपवाद नियम है कि असत्यका निवारण सत्यसे है ठीक उसी तरह जैसे अंधेराका निवारण प्रकाशसे है। ऐसा नियम होनेके कारण हम समज सकते हैं यदि हरिजन-सेवक मात्र अपना सब कार्य सत्यसे ही करेंगे तो सनातनीयोंका दिल पीघल जायेगा, वे असत्य छोड़ देंगे और हिंदु धर्मकी रक्षा हो जायेगी।

मैं इतनी प्रतिज्ञा अवश्य करूंगा कि हिंदु धर्मका अथवा किसी धर्मका नाश किसीके आक्रमणसे कभी नहिं हो सकता है। यह स्वयंसिद्ध नियम है। जिसका नाश

१. इसका सम्पादित रूप **हरिजनसेवक**में १७-३-१९३३ को प्रकाशित हुआ था।

२. गांधीजी का कहना है कि उन्होंने इसे इसी तिथिको लिखा था।

कोई भी बाह्य शक्तिसे हो सकता है वह धर्म नहिं। वह भले सामाजिक व्यवहार हो। धर्मका नाश उसके भीतर कुछ गंदगी पैदा होनेसे ही हो सकता है। अस्पृश्यता हिंदु धर्ममें एक ऐसी गंदगी है। उसका नाश न करें तो हिंदु धर्मका नाश निश्चित है। अस्पृश्यता महा असत्य है। उसका निवारण स्पर्शसे है। अस्पृश्यता हमारे दिलमें है। यह आदमी अस्पृश्य जातिका है इसलिए उसका मैं स्पर्श नहिं करूंगा ऐसे मानना घोर पाप है। इसमें घृणा भरी हैं, अहंकार है, उच्च-नीच भाव है। यह सब अधर्म है, असत्य है। मुझे ज्ञान है कि असत्यका समर्थन सत्यसे नहिं हो सकता है, घृणाका समर्थन प्रेमसे नहिं हो सकता है, अहंकारका निरहंकारसे नहिं हो सकता है। यही कारण है कि आज मैं सनातनी अखबारोंमें घृणा, अहंकार, असत्य देख रहा हूं, मुझे सनातनी पूछेंगे "क्या ऐसा कहनेमें निजी असत्य, घृणा, अहंकारका दर्शन तुम ही नहिं कराते हैं?" हो सकता है। मैं तो इतनी प्रतिज्ञा कर सकता हूं कि मुझे ऐसा ज्ञान नहिं है, मुझे ज्ञान होगा तब मैं उसी समय उसका त्याग कर दूँगा। अपना दोष देखनेके लिये मैं टीकाकारोंको आदरसे मिलता हूँ, सुनता हूँ, वे लिखते हैं उसको एक हद तक पढ़ लेता हूँ। जितना मैंने प्रयत्न किया इतना ही ज्यादा मैंने असत्यादि दोषोंका दर्शन उन टीकाकारोंमें किया है। मेरे इस दुःखकी कथा मैं यहां लिखना नहिं चाहता हूं।

इस लेखका उद्देश्य इतना ही है कि हरिजन-सेवक असत्यसे, अहंकारसे, घृणासे बचे, अतिशयोक्ति भी असत्य है। मेरे पास रिपोर्ट आ जाते हैं, "इतने मन्दिर खुले, इतने कुएं खुले इ०।" तलाश करने पर पता चलता है कि उतने मंदिर नहिं खुले, उतने कुएं नहिं खुले। उसमें से थोड़े ऐसे भी थे जो केवल भ्रम पैदा करनेके लिये खुले थे। पीछे बंध कीये गये। ऐसा होना नहिं चाहिए। यदि लोग मंदिरादि खोलनेके लिए तैयार न हो तो हम बलात्कारसे खुलवाना नहिं चाहते हैं। जिसका पालन स्वेच्छासे किया जाय वही धर्म हो सकता है। मंदिरादिके खोलनेमें शुद्धि है ऐसा माने वही खोले तब लाभ हो सकता है। इसलिये जितना कार्य किया जाय वह सब पक्का और शुद्ध होना चाहिए। जो रिपोर्ट भेजा जाय वह सच्चा ही हो। और कोई मंदिर या कुंआ खुलकर बंध भी हो जाय तो उसका स्वीकार करनेसे अच्छा ही होगा। अस्पृश्यता नीकल गई ऐसा कहनेसे अस्पृश्यता नीकली ऐसा कुछ नहिं है। और सचमुच नीकल जायगी उसकी डांडी पीटनेकी आवश्यकता नहिं होगी। मंदिरादि खुलनेकी सच्ची खबर फैलानेका लाभ इतना हि है की दूसरोंको प्रोत्साहन मिले अस्पृश्यता निवारण संघोंको प्रवृत्तिकी गतिका पता चलता रहे।

ऐसे भी मेरे साथी हैं जो मुझ पर प्रेमके कारण और मेरे अनशनव्रतके भयसे कुछ ज्यादती कर लेते हैं, कुछ अतिशयोक्ति कर लेते हैं। उनको मैं सावधान करना चाहता हूं। उनका प्रेम प्रेम नहिं मोह है। और ऐसे अंध प्रेम करनेवाले मेरा अनशनको रोकेंगे नहिं बल्कि अनशनको आगे लायेंगे, ज्यादा शक्य बनायेंगे। मेरी जान बचानेके लिये भी असत्यका प्रयोग न किया जाय।

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६०) से।

७१. पत्र : कुसुमबहन देसाईको

१२ मार्च, १९३३

चि० कुसुम (देसाई),

अबतक तो तू छूट गई होगी। फिर भी तेरा कोई पत्र नहीं मिला यह क्या बात है? क्या कोई व्रत लेकर बाहर निकली है?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १८८८)से।

७२. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी ९ तारीखकी डाक मिल गई है। यह तुम्हें मंगलवारको मिल जायेगा इस आशासे भेज रहा हूँ।

रमाबहनका पोस्टकार्ड मुझे मिला है। वह लिखती है कि तुम अभीतक उसके पास नहीं गये हो। अंग्रेजीके पठन-पाठनके बारेमें तो तुम मुझसे विचार-विमर्श करना किन्तु रमाबहनके पास जानेके बारेमें मैंने तुम्हें जो पत्र लिखा था, मेरे खयालसे, उसका तात्पर्य तो यही है कि इस सम्बन्धमें मुझसे विचार-विमर्श करनेकी आवश्यकता नहीं है। रमाबहनने मुझसे कहा था और उसके पोस्टकार्डसे भी यही ध्वनि निकलती है कि तुम उसके पास कभी नहीं जाओगे। मैंने उससे कहा है कि यह असम्भव है। अब तुम मेरे उक्त कथनको सही सिद्ध करना।

क्या बाबला[1] मगन हौजमें डूबते-डूबते बचा था? यह कब और कैसे हुआ?

परचुरे शास्त्रीके बारेमें तुम्हारा तार शुक्रवारको मिल गया था। यदि सभीने स्वतन्त्र निर्णय लिया होगा तो मैं इसे बहुत अच्छी बात मानूँगा। परचुरे शास्त्रीको काकाने यह बता भी दिया है। अभी तो वे अपने गाँव गये हैं। जो-कुछ होगा तुम्हें लिखूँगा। आशा है लक्ष्मीका विवाह निर्विघ्न निवट गया होगा। वर-वधू यदि मुझसे मिलना चाहें तो आकर मिल जायें। मैं समझता हूँ मारुतिकी ऐसी इच्छा है।

आशा है, कलकी डाक मिल गई होगी। उसमें मैंने आनन्दीके बारेमें लक्ष्मीदासको लिखा है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. नारायण देसाई, महादेव देसाई के पुत्र।

७३. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

१२ मार्च, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,[१]

तेरा पत्र मिला। मैं तेरे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा था। तेरा यह लिखना ठीक है कि आश्रमके पुस्तक-संग्रहमें बहुत-सी बेकार पुस्तकें हैं। यदि मैकफैडनकी[२] कोई पुस्तक वहाँ न हो और कहींसे मिल भी न सके तो तुझे पुस्तक खरीद लेनी चाहिए। अन्य पुस्तकोंपर भी नजर डाल देना। गौरीशंकरके अनुभवका पूरा लाभ उठाना। जमना[३] और चिमनलालपर[४] अपना प्रयोग अवश्य करना। उसमें हानि पहुँचनेका तो कोई खतरा है ही नहीं। तू धैर्यपूर्वक अपना प्रयोग करना। इसीसे तुझे काफी अनुभव हो जायेगा।

मुझे पत्र लिखता रहना। यदि तू मुझे वहाँकी पुस्तकोंकी सूची भेज देगा तो मैं यह बता सकूँगा कि उसमें कितनी पढ़ने योग्य हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९०९) से। सौजन्य : नारणदास गांधी

७४. पत्र : गुलाब ए० शाहको

१२ मार्च, १९३३

चि० गुलाब,

पहले कमीज-पतलून पहनना और जब मरजी हुई तब घाघरी-ओढ़नी पहनने लग जाना उचित नहीं है। पतलूनसे तेरा मतलब जाँघिया ही है न? यदि तू एक ही तरहकी पोशाक पहने तो अच्छा हो। यदि तेरा उच्चारण सुधर गया हो तो खेतीका काम करते हुए तुझे 'गीता' घोखनी चाहिए। शिक्षककी अनुमतिके बिना तू पुस्तक अपने पास नहीं रख सकती।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १७३५)से।

१. नारणदास गांधीके पुत्र।
२. बर्नार मैकफैडन; अमरीकी लेखक तथा दूधकी खुराकके हिमायती।
३. पुरुषोत्तम गांधीकी माताजी।
४. एक आश्रमवसी।

तू उत्तर दे या न दे, मैं तो तेरे स्वास्थ्यके विषयमें पूछता ही रहूँगा। बोल, तबीयत अच्छी रहती है न? गला ठीक है या नहीं? कमर दुखती है? वजन बढ़ रहा है?

तेरी पूनियोंका जो सूत मैं कात रहा हूँ उसे देनेका समय जब आयेगा तब यदि तेरी योग्यता बनी रही तो तुझे जरूर दूँगा। इस उत्तरको तो तू ठीक मानेगी न? सूतका अंक ७५ से ऊपर नहीं जा सकता। पूनियोंमें गाँठे काफी हैं। सम्भव है देव-कपासके लिए केसूका यन्त्र भी पूरा काम न देता हो। देव कपास साधारण पींजनमें तो धुनी ही नहीं जाती, यह तू जानती है न?

महादेवको बुरा लगा है इसका मुझे जरा भी पता नहीं। महादेवने कुछ लिखा है यह भी मैं नहीं जानता था। नारणदासके पत्रसे मैंने इस विषयमें कुछ जाना। तिरस्कारकी बात तो तेरे पत्रसे ही मालूम हुई। महादेवसे इस सम्बन्धमें मेरी कोई बात नहीं हुई। मैंने जब महादेवसे तेरी पूनियाँ कातनेको कहा तब उन्हें धर्म-संकट मालूम हुआ, यह भी मैं नहीं जानता था।[1] इसमें मुझे तेरी बात बिलकुल सच लगती है। तेरे लिखनेके ढंगमें या माँगमें मुझे तिरस्कारकी गंध तक नहीं लगी। मुझे पता नहीं कि महादेवको यह गंध कहाँसे आई। इस समय तो मेरा मौन है, नहीं तो पूछता। तेरी माँगमें मैंने मोह जरूर देखा। मेरे प्रति मोह कैसा? जो किसीका बनने योग्य न रहे, जो रोज सबका बननेका ही प्रयत्न करे, उसके विषयमें मोह त्याज्य है, निरर्थक है। परन्तु यह एक बात है। इसमें से दूसरेके प्रति तिर-स्कारका भाव निकालना बिलकुल दूसरी बात है।

सरदारके वचनमें तो उनके स्वभावके अनुसार विनोद ही था, ऐसा मैं मानता हूँ।

अब यह देख कि तेरे प्रेमकी मैंने कैसी कदर की। तेरी पूनियोंका मुझे वही उपयोग करना चाहिए न, जिसे मैं अच्छेसे-अच्छा मानूँ? उसीमें प्रेमकी कदर मानी जायेगी न? कोई वैद्य बहुत प्रेमसे मेरे लिए सुवर्ण-भस्म भेजे और उसका मेरे लिए जितना उपयोग हो उसकी अपेक्षा मेरे पड़ोसीके लिए अधिक उपयोग हो, तो भस्म उसे दे देना क्या ठीक नहीं होगा? अथवा कोई मेरे चलानेके लिए गाड़ी भेजे, और मेरा पड़ोसी मेरी अपेक्षा उसे अधिक सुरक्षापूर्वक चलाए इसलिए उसे चलाने देकर मैं उसका उपयोग करूँ, तो मैंने दानीके प्रेमकी सच्ची कदर की ऐसा माना जायेगा न? यही बात पूनियोंकी है। ऐसी बढ़िया पूनियोंका सबसे अच्छा उपयोग हमारी मंडलीमें महादेव कर सकते हैं। इसलिए मैंने उन्हें आधी कातनेको दे दीं। इससे उनकी शक्तिका पता लगेगा, देशका धन बढ़ेगा और मेरा सन्तोष बढ़ेगा। इसलिए तुझे यह चाहनेका अपना स्वभाव बदलना चाहिए कि जिसे तू भेंट भेजे उसीको उसका उपयोग करना चाहिए। भेंट देनी हो तो बिना किसी शर्तके देनी चाहिए। तुझे सुशीलाने जो उपाधि दी वह सच्ची थी। किसनके लिए दिये गये फल

१. प्रेमाबहनने पूनियोंका एक पार्सल उपहारस्वरूप गांधीजी को भेजा था। जिस पर "पू० महात्माजी के लिए" लिखा हुआ था। अतः उन पूनियोंको कातना महादेवभाईको उचित नहीं जान पड़ा।

वह समयपर न पा सके, तो तेरे खा लेनेमें ही सुशीलाकी और किसनकी सेवा थी। उन्हें सड़ने देनेमें तेरी मूर्खता थी। दूसरी समस्या हल हुई।

तेरे अन्तिम प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जा सकता। इसलिए लाचार हूँ।

आशा है, लक्ष्मीके साथ तूने खूब बातें की होंगी।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३४०) से। सी० डब्ल्यू० ६७६९ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

७७. पत्र : लक्ष्मीबहन ना० खरेको

१२ मार्च, १९३३

चि० लक्ष्मीबहन,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। तुम्हारी लिखावटको खराब कौन कह सकता है? मेरी अपेक्षा तुम्हारी लिखावट तो बहुत अच्छी मानी जाएगी, अत: मुझे अवश्य लिखती रहना। इस बार तो तुमने महज मुझे रिझानेके लिए ही लिखा था।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २८२) से। सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे

७८. पत्र : मैत्री गिरिको

१२ मार्च, १९३३

चि० मैत्री,[1]

तेरा पत्र मिला। कोष्ठबद्धताके लिए क्या तूने विरेचन लेकर देखा है? विरेचन लेनेके बावजूद यदि कोष्ठबद्धता बनी रहे तो बिना तेलकी हरी सब्जियाँ और दूधपर रहकर देख। दूध कच्चा ही लेना।

दुर्गा[2] क्यों चुप लगा गई है? इधर महावीरका[3] पत्र भी नहीं मिला है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६२३८) से।

१. नेपालके कांग्रेसी कार्यकर्त्ता खड्गबहादुर गिरिकी कन्या।
२. मैत्रीकी बहन।
३. मैत्रीका भाई।

७९. पत्र : भगवानजी पी० पण्डयाको

१२ मार्च, १९३३

चि० भगवानजी,

तुम हरिजनोंके बीच अच्छे घुसे। मैं चाहता हूँ कि तुम अब इस कामको न छोड़ो। अपना विश्वास न खोना। भंगियोंके परिवारोंमें घुलना-मिलना। जब तुम उनका प्रेम प्राप्त कर लो तो जूठन खानेकी उनकी आदत छुड़ाना। वे लोग जहाँ काम करते हैं उन परिवारोंके नाम और उनका ठिकाना आदि जान लेना जिससे जूठन न देनेकी बात उन्हें भी समझाई जा सके। अपने अनुभव मुझे लिखते रहना। तुमने शायद देखा होगा कि तुम्हारे पहले पत्रका उपयोग मैंने अंग्रेजी 'हरिजन' में किया है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५३) से। सौजन्य : भगवानजी पी० पण्ड्या

८०. पत्र : विद्या आर० पटेलको

१२ मार्च, १९३३

चि० विद्या,

खेतीका काम करते हुए 'गीता' अवश्य कंठस्थ की जा सकती है किन्तु उच्चारण खराब हो तो कंठस्थ नहीं करनी चाहिए। उच्चारण तो शिक्षकसे ही सीखना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ९६३४) से। सौजन्य : रवीन्द्र आर० पटेल

८१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

१२ मार्च, १९३३

चि० गंगाबहन (वैद्य),

तुम्हारा सुन्दर पत्र मिला। हम नहीं मिले क्योंकि यही हमारा धर्म था, और धर्मका पालन करके हमें सदा प्रसन्न ही होना चाहिए।

इस बारका तुम्हारा अनुभव अच्छा रहा। पढ़ाई भी ठीक हुई और तुम्हारा शरीर भी स्वस्थ रहा। तुम्हारे बारेमें मीराबहनने तो लिखा ही था। उसके बारेमें तुम्हें जो अनुभव हुआ हो वह मुझे लिखना।

सभी जेलोंमें पत्रोंके मामलेमें ऐसा ही हुआ करता है। इस मामलेमें फिलहाल कुछ बहुत सुधार होनेकी आशा मैंने छोड़ दी है। यदि वे हमें कोई पत्र ही न लिखने दें तो क्या हम उसे स्वीकार नहीं करेंगे; अतः जो मिल जाये हमें उसीसे सन्तोष कर लेना चाहिए। कैदीका मतलब है जिसके शरीरका पूरा अधिकार कैद करनेवाले ने ले लिया हो। और जो लोग स्वेच्छासे यह कैद भोगते हैं वे तो जानते हैं कि यदि उन्हें खाने-पीनेको न मिले तो वे उसे भी सुख मानें। यह 'गीता'की कला है।

आशा है, इससे पहलेका मेरा पत्र मिला होगा। मैं तुम्हारे पत्रोंकी उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करता रहूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो-६ : गं० स्व० गंगाबहेनने से। सी० डब्ल्यू० ८७९८ से भी; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

८२. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ मार्च, १९३३

मैंने आज सुबह एक पत्र लिखकर डाकमें डाला है। आशा है, वह निकल गया होगा। अतः कुछ विशेष लिखनेको नहीं है। आशा है, तुम रमाबहनसे मिले होगे।

देवदास वहाँ पहुँच गया होगा।

बापू

कुल १६ पत्र हैं, जो सभी एक साथ नत्थी हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

८३. तार : माणिकबाई मेहताको

१३ मार्च, १९३३

माणिकबाई[1]
१२१, मुगल स्ट्रीट
रंगून

तार मिला। धैर्य रखें। मैं भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ।[2]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बम्बई सरकार, होम डिपार्टमेंट, आई० जी० पी० फाइल नं० २०-१०।

१. स्वर्गीय डॉ० प्राणजीवन मेहताकी पत्नी।

२. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी जायदादके विभाजनके लिए। देखिए "पत्र : नानालाल के० जसानीको", २७-३-१९३३।

८४. पत्र : एफ० मेरी बारको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

यह पत्र मुझे बोलकर ही लिखवाना पड़ेगा। तुम्हारा वह पत्र मिला जिसमें तुमने बावलाके पराक्रमोंका वर्णन किया है। वह कई तरहसे एक अकालप्रौढ़ बच्चा है। इसलिए तुम देखोगी कि उसने तरह-तरहकी छुट-पुट बातें ग्रहण कर ली हैं और उनमें से अधिकांश काफी ठीक तरहसे ग्रहण की हैं। अगर तुम उससे पूछो तो हो सकता है वह तुम्हें यह भी न बता पाये कि ये बातें उसने कहाँसे ग्रहण कीं, क्योंकि इस तरहसे बातोंको ग्रहण करनेके पीछे कोई सचेतन प्रयास नहीं रहता।

यह जानकर खुशी हुई कि तुम बाहर सोती हो। अपने वर्षोंके अनुभवके बाद मैं कह सकता हूँ कि मनको शीतलता प्रदान करनेके लिए खुलेमें सोने-जैसी कोई चीज नहीं है — यहाँतक कि मच्छरदानीका ऊपरी साया भी मुझे बाधा-जैसा लगा है, मानों आकाशसे मेरे सीधे सम्पर्कके मार्गमें कोई व्यवधान उपस्थित हो गया हो। इसका मतलब यह नहीं कि अगर खुले आसमानके नीचे सोनेमें भी तुमको मच्छर तकलीफ दें तो तुम मच्छरदानी न लगाओ। अगर मच्छर तुम्हें तंग करें तो मच्छर-दानी अवश्य लगाओ। मैं नहीं चाहता कि आश्रममें रहते हुए तुम मच्छरोंके काटनेसे मलेरियाकी शिकार हो जाओ।

जबतक मजबूत और एकसार सूत निकालनेमें सिद्धहस्तता प्राप्त न हो जाये तबतक चाल बढ़ानेके पीछे न पड़कर तुम बिलकुल ठीक और समझदारीका काम कर रही हो। जब तुम इन दोनों चीजोंको साध लोगी तब चाल तो तनिक-से प्रयाससे बढ़ जायेगी।

मैं किसी खतरे या कठिनाईसे घिरा हुआ हूँ, इसका मुझे कोई बोध नहीं है; सो तुम किसी पूर्व-चिन्तासे परेशान मत होना। बस एक कदम आगेकी चिन्ता करो — यह आदेश ऐसा है जिसकी उपेक्षा हमें कभी नहीं करनी चाहिए।

परशुराम द्वारा बोलकर लिखाई तुम्हारी हिन्दीका नमूना मुझे अभीतक देखनेको नहीं मिला है। मिलने पर मैं उसकी जाँच करके नतीजा तुम्हें बता दूँगा।

आशा है, तुम्हारे और डंकनके संयुक्त पत्रका तुम दोनोंको एक ही साथ दिया मेरा उत्तर[1] तुम्हें मिल गया होगा।

सस्नेह —

हृदयसे तुम्हारा,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९९) से। सी० डब्ल्यू० ३३२४ से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१. देखिए "पत्र : एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको", ८-३-१९३३।

८५. पत्र : गौरीशंकर भार्गवको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय गौरीशंकर,

राजस्थान दलित वर्ग सम्मेलन (राजस्थान ऑप्रेस्ड क्लासेज कांफ्रेंस) के प्रस्तावके साथ आपका पत्र मिला। मुझे लगता है कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' की वह रिपोर्ट[1] मैं नहीं देख पाया। इतना तो है ही कि मुझे उसका स्मरण नहीं है। फिर भी, मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने उस ओर और वहाँके हरिजन भाइयोंकी भावनाओं की ओर मेरा ध्यान दिलाया है। मैं चाहता हूँ कि आप उन्हें 'हरिजन' शब्दके उद्भवके बारेमें, जैसाकि वह 'हरिजन' के सबसे पहले अंकमें बताया गया है,[2] समझायें। इस शब्दपर लोगोंकी अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ हुई हैं। जिन लोगोंने मुझे पत्र लिखे हैं, उनमें से अधिकांश तो इसे पसन्द ही करते हैं। आखिरकार इसे स्वयं कुछ हरिजनोंके सुझावपर ही तो अपनाया गया था और जिन लोगोंने यह नाम सुझाया वे खुद प्रतिनिधि थे।

जहाँतक इस सुझावका सम्बन्ध है कि सारा आन्दोलन 'दलित वर्गोंके हाथोंमें छोड़ दिया जाना चाहिए' और एक या अधिक बोर्ड केवल उनका मार्गदर्शन करके ही उन्हें सहायता पहुँचायें, यह व्यावहारिक नहीं है, क्योंकि प्रायश्चित्त तो सवर्ण हिन्दुओंको करना है और इसलिए इस आन्दोलनका संचालन करके अपनी सदाशयताका परिचय देना उन्हींका कर्त्तव्य है। इसमें सन्देह नहीं कि अगर सम्भव हो तो उसपर हरिजनोंकी सहमति भी प्राप्त की जानी चाहिए। लेकिन प्रायश्चित्त किसी प्रतिनिधिको नहीं, बल्कि खुद उसे करना है जिसके हृदयमें पश्चात्तापकी भावना जागी है। यदि इस आन्दोलनके साथ-साथ हरिजन भी कोई सुधार-आन्दोलन करें तो यह मैं समझ सकता हूँ और ऐसा आन्दोलन होना भी चाहिए। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा हृदयसे किये गये पश्चात्तापका स्वाभाविक परिणाम भी यही होना चाहिए।

जहाँतक तीसरे सुझावका सम्बन्ध है, मुझे यह मालूम नहीं कि श्रीयुत शारदा बोर्डके वाजिब प्रतिनिधि हैं या नहीं। उसके सम्बन्धमें आप केन्द्रीय बोर्डको लिखें।

१. यह रिपोर्ट २ मार्चके **टाइम्स ऑफ इंडिया**में प्रकाशित हुई थी। इसमें कहा गया था कि सम्मेलनमें गांधीजी की आलोचना की गई। गौरीशंकर भार्गवके अनुसार यह सम्मेलनकी कार्यवाहीका गलत विवरण था।

२. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ २९१।

चौथी और अन्तिम बात यह कि अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका कार्यक्रम किसी भी अर्थमें केवल मन्दिर-प्रवेश तक ही सीमित नहीं है। इसका उद्देश्य इन वर्गोंकी आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक अवस्थामें भी सुधार करना है। मन्दिर-प्रवेश कार्यक्रमका एक हिस्सा है और ऐसा माना गया है कि इससे हरिजनोंको न केवल धार्मिक समानताका दर्जा मिलेगा, बल्कि आर्थिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रमको गति प्रदान करनेमें भी यह सहायक होगा। आप सभी हरिजन भाइयों तथा जिन अन्य लोगोंकी आशंकाएँ आपने अपने पत्रमें व्यक्त की हैं उन सबको भी यह समझा दें। इन विभिन्न मुद्दोंकी ओर मेरा ध्यान दिलाकर आपने बहुत ठीक किया।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५६२) से।

८६. पत्र : नी० को

१३ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

समय बचानेके लिए यह पत्र मैं बोलकर लिखवा रहा हूँ और तुमको किसीसे कुछ छिपाना भी तो नहीं है।

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई, हालाँकि वह अपेक्षाकृत देरसे आया। अभी पिछले दिनों ही तुम्हें रामचन्द्रके पतेपर पत्र लिखा था, और इसे भी उन्हींकी मार्फत भेज रहा हूँ। जबतक तुम किसी और पते पर भेजनेको नहीं कहोगी, यही चलाता रहूँगा।

यह जानकर खुशी हुई कि तुम हरिजन बस्तीमें चली गई हो और मकान-मालकिनसे तुमने सब-कुछ तय भी कर लिया है। तुम्हें अपना दिन-प्रतिदिनका कार्यक्रम मुझे विस्तारसे बताना चाहिए। जितनी बातचीत नितान्त आवश्यक हो उससे अधिक बातचीत बिलकुल न करो और तुमको सभी सेवाकार्योंमें एस०[1]की भी दिलचस्पी पैदा करनी चाहिए। अगर तुम उसे यह समझाती जाओगी कि वह क्या और क्यों कर रहा है तो वह उसके लिए सबसे सच्ची शिक्षा होगी। इसके अलावा तुम उसे जितनी दे सकती हो उतनी किताबी शिक्षा तो दोगी ही।

मुझे बताना कि तुम्हें खानेको क्या मिलता है और नहाने, कपड़े धोने आदिके लिए कैसी और क्या व्यवस्था है और तुम कपड़े खुद धोती हो या नहीं। मैं चाहता हूँ कि तुमने अपनेको जिस परीक्षामें डाला है उसमें तुम शत-प्रतिशत अंक प्राप्त

१. नाम नहीं दिया जा रहा है।

करो। हम अक्सर तुम्हारी चर्चा करते हैं और तुम्हारे बारेमें सोचते हैं। मेरी प्रार्थनाएँ सदा तुम्हारे साथ हैं।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७१)से।

८७. पत्र : रामचन्द्रको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे खुशी है कि वहाँ जो-कुछ हो रहा है, उससे तुम मुझे अवगत रखते हो। अगर नी० छावनीमें नहीं रह सकती तो उसे तुरन्त जगह बदल लेनी चाहिए। अगर वह बंगलोरमें कहीं नहीं रह सकती तो उसे पूनामें रहना चाहिए। जबतक वह इस अग्नि-परीक्षाको पार नहीं कर लेगी, तबतक मैं उसे कहीं और नहीं भेज सकता।

मकान-मालकिनके लिए क्या किया जा सकता है, मैं नहीं जानता? यह तो है ही कि नी० मूलतः जिम्मेदार है, मगर यही बात मकान-मालकिनपर भी लागू होती है। उसे अग्रिम अदायगीका आग्रह करना चाहिए था और अगर वह यह नहीं करना चाहती थी तो उसे कमसे-कम साप्ताहिक अदायगीका आग्रह तो रखना ही चाहिए था। अब तो मैं यही सुझा सकता हूँ कि जो नौजवान नी० के इर्दगिर्द मँडराते रहते थे वे आपसमें चन्दा करके, तनिक शर्म खाकर, मकान-मालकिनका पूरा या कुछ कर्ज चुका दें।

साथमें नी० को पत्र भेज रहा हूँ। अगर आप चाहें तो इसे भी पढ़ सकते हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७०) से।

८८. पत्र : एस० नागसुन्दरम्‌को

१३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

सरकार तथा विधायक सदनोंके नाम जारी की गई मुद्रित अपीलकी प्रतिके साथ भेजे आपके इसी महीनेकी १० तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० नागसुन्दरम्
पहली मंजिल, लक्ष्मी निवास
किंग्स सर्किलके निकट
माटुंगा, बम्बई-१९

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५६५) से।

८९. पत्र : डॉ० विधानचन्द्र रायको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० विधान,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। १२ ग्राहकोंके नाम मैंने प्रबन्ध विभागको दे दिये हैं। पैसे शायद वहाँ प्राप्त कर लिये गये होंगे। मैंने यह निर्देश भी दे दिया है कि सतकौड़ी बाबूको आपके दिये पतेपर हर हफ्ते १०० प्रतियाँ भेज दी जायें। सारे पैसे अग्रिम चुका दिये जानेकी अपेक्षा की जाती है। इसलिए आप सख्त निर्देश दे दें कि हफ्ते-दर-हफ्ते १०० प्रतियोंके पैसे भेज दिये जायें और जब उन लोगोंको इन प्रतियोंकी जरूरत न हो तो तार द्वारा सूचित कर दें।

हृदयसे आपका,

डॉ० विधानचन्द्र राय
३६, विलिंग्डन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५६९) से।

९०. पत्र : सत्यमूर्तिको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय सत्यमूर्ति,

मेरे नाम हिन्दीमें नन्हीं कमलाके लिखे पत्रके साथ आपका पत्र पाकर खुशी हुई। उसका विचार है कि वह तो इतनी छोटी है कि मेरी लड़की हो नहीं सकती, इसलिए मेरी पोती ही बन गई है। आपको हिन्दी सीखनी चाहिए — और किसी कारण नहीं तो विनोदका आनन्द लेनेके लिए ही। और आपकी प्रतिभाको देखते हुए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप विनोदको समझने लायक हिन्दी महीने-भरमें सीख लेंगे। फिर, अब तो दक्षिणमें हिन्दी शिक्षकोंकी एक पूरी फौज ही मौजूद है। फिलहाल तो यह बात मैं कमलापर ही छोड़ता हूँ कि आप साथका पत्र उसे दें तो इसमें किया गया विनोद वह आपको समझाये और अगर न समझा पाये तो उससे वे सोनेके झुमके छीन लीजिए। सरदार साहब कहते हैं कि अब आपको फिरसे बिलकुल ठीक और तगड़े हो जानेमें जरा भी देर नहीं करनी चाहिए। हम सब भले-चंगे और जैसा कि आप समझ सकते हैं, खासे व्यस्त हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५६८) से।

९१. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

१३ मार्च, १९३३

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला। मुझे तो आप जितना भी दे सकें उतने से ही सन्तोष करना है। अतः आपसे जितना कहा जा सकता है उतना कहकर मुझे चुप हो जाना चाहिए। रमाबहनकी जो स्थिति है वही आप मेरी समझें। यदि कोई चीज उसे आपसे न मिले तो उसके लिए मेरे-जैसे व्यक्तिके सामने वह अपना दुखड़ा थोड़े ही रोनेवाली थी?

आप शायद यह समझते हैं कि आप अमरपट्टा लिखाकर लाये हैं इसलिए जनताको कोई नुकसान नहीं होगा। किन्तु बात यह है कि जहाँ राजाके हस्तक्षेपकी आवश्यकता है वहाँ उन्हें अवश्य हस्तक्षेप करना चाहिए। 'राजा' का अर्थ भले उनकी

कार्यकारिणी सभा या समिति अथवा विधानसभा हो, किन्तु उत्तरदायित्व किसी-न-किसीपर अवश्य होना चाहिए जिससे कि परम्परा चलती रहे। मैं जब आपकी कार्य-प्रणालीका विश्लेषण करता हूँ तो यही उत्तर मिलता है कि उसमें भी प्रच्छन्न शासन है। आप भले स्वयंको और लोगोंको इस धोखेमें रखें कि सब-कुछ अपने-आप चलता है, किन्तु सही बात यह है कि कुछ भी अपने-आप नहीं चलता। अतः मरे हुए ढोरोंको उठाना, पाठशालाओंमें प्रवेश आदिके बारेमें जहाँ-कुछ करना आवश्यक हो और जनताकी राय भी अनुकूल हो वहाँ निश्चय ही कानूनकी आवश्यकता है। जहाँ कानून नहीं होता वहाँ शासन-व्यवस्था नहीं हो सकती बल्कि वहाँ अन्धेरगर्दी और अराजकता ही होती है। मुसोलिनी भी शासन-व्यवस्था चलानेका दिखावा करता है। यह कहनेमें किसीको दिक्कत नहीं होनी चाहिए कि राजासाहब अर्थात् भावनगर रियासत छुआछूतको नहीं मानती। सनातनी भले उसका पालन करें और समाजके सहयोगसे उसपर अमल किया जा सकता हो तो करें। आप अपने कुटुम्बमें कितने ही धार्मिक नियमोंका पालन करते हैं, किन्तु यदि अपनी ही रियासतमें आप उनपर अमल कराना चाहें तो नहीं करा सकते। आप किसीको चोट पहुँचाये बिना कह सकते हैं कि राजा इस विषयमें निष्पक्ष हैं। फिर भले आपकी पाठशालाओंमें कोई तथाकथित अछूत न आये। मुर्दा ढोरोंके बारेमें मैंने गुजराती 'हरिजन' में लिखा है,[1] फुरसत मिलने पर आप उसे पढ़ जायें। उसमें कुछ तो आपको ही सम्बोधित करके कहा गया है हालाँकि उसमें नाम-धाम कुछ नहीं दिया है।

हम दोनों बूढ़े होनेके बावजूद लोभी ही रहे। हममें सेवा करनेकी भारी हौंस है। जितना पैसा हो उतना लुटा दें। किन्तु आपको तो राजकाज चलाना पड़ता है। उसीमें आपके बाल सफेद हुए हैं। तिसपर मेरे जैसेकी संगत करना। आप विकट काम ले बैठे हैं। सरसरी तौरपर देखें तो आपका रास्ता अलग है और मेरा अलग। दोनोंका उद्देश्य एक है और दोनोंको उसी लक्ष्यपर पहुँचना है, किन्तु सभी मामलोंमें क्या आप यही कहते रहेंगे कि 'मेरी पद्धति' के अनुसार ऐसा करो। मुझे तो परि-णामसे मतलब है, कार्य-पद्धतिकी बारीकी भले राजदरबारकी शोभा बढ़ाये। यदि आप हरिजनोंको सन्तुष्ट कर सकें तो मैं गंगा नहा जाऊँगा।

थोड़े लिखेको बहुत समझें।

आप अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखें। आपसे मैंने बहुत पाया है और बहुत पाना है।

मोहनदासका
हरिजन-कल्याण

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९८०) से। सी० डब्ल्यू० ३२४२ से भी; सौजन्य : महेश पी० पट्टणी

१. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा", १२-३-१९३३।

९२. पत्र : रणछोड़दास पटवारीको

१३ मार्च, १९३३

आदरणीय भाई,

आपका पत्र मिला। आपकी आशा मैं नहीं छोड़ूँगा और आप मेरी आशा न छोड़ें। ऐसा करते हुए बहुत-से लोगोंका मेल बैठा है। ऐसा भी हुआ है कि किसी-किसीका नहीं बैठा। किन्तु हमारी गिनती इन 'नहीं' वालोंकी श्रेणीमें मैं तो नहीं करूँगा। यह भगवान्का काम है। और मैं तो प्रयत्न करता रहूँगा।

सभी सुधारक निष्पाप नहीं हैं। निष्पाप कोई नहीं है। फिर भी बहुत से लोग इसके लिए प्रयत्नशील हैं, बहुतोंको धर्म प्रिय है। वे मानते हैं कि वास्तवमें अस्पृश्यता आन्तरिक चीज है और उसका कोई बाहरी चिह्न नहीं है। उससे हम सभीको बचना चाहिए। कोई मनुष्य अस्पृश्य होकर जन्म नहीं लेता। जो चीज किसी अन्य धर्ममें न हो और हिन्दू धर्ममें हो तथा धर्मकी वृद्धि करनेवाली हो तो वह बुद्धिसे भी सिद्ध होने योग्य होनी चाहिए। उसका उज्ज्वल परिणाम भी निकलता हुआ दिखाई देना चाहिए। जन्मसे अस्पृश्यताका सिद्धान्त न तो बुद्धिग्राह्य है और न उसका उज्ज्वल परिणाम ही निकलता है। यदि आप कहें कि मन्दिर-प्रवेशके अतिरिक्त अन्य मामलोंमें उनकी सहायता करनी चाहिए तो आप अपना धर्म समझकर उक्त सहायता क्यों न दें? मेरी मार्फत सहायता न देना चाहें तो भले स्वतन्त्र रूपसे दें।

धर्मकी अधोगति होते तो आप भी देख रहे हैं। बाह्य शुचितापर पूरा जोर देनेसे इसकी रक्षा थोड़े होनेवाली है? मुझे बाह्य शुचिता बुरी नहीं लगती। मैं समझता हूँ कि इसका जितना ज्ञान मुझे है उसका मैं पालन करता हूँ। किन्तु मैं यह नहीं मानता कि इससे मेरी आत्मा शुद्ध होती है। इससे मेरा शरीर शुद्ध रहता है। आत्माको शुद्ध रखनेके लिए मुझे आन्तरिक शुचिताकी आवश्यकता जान पड़ती है जिसे हम सर्वथा भूल गये हैं। परिणामस्वरूप धर्म हीन और तेजहीन होकर स्वार्थ-लिप्त होनेके बावजूद हम यह मान बैठे हैं कि धर्म सुरक्षित है और मेरे-जैसा कोई व्यक्ति यदि अस्पृश्यताके कलंकको धोना चाहे तो धर्म खतरेमें है की पुकार लगाई जाती है, और असत्यका प्रचार किया जाता है (मैं इतना अवश्य चाहता हूँ कि आप-जैसे व्यक्ति ऐसी प्रवृत्तियोंको बढ़ावा न दें और इसीलिए मैं आपसे विनती करता हूँ)। जहाँ हमारा मतभेद हो वहाँ हम एक-दूसरेको अपना दृष्टिकोण समझानेका प्रयत्न करें और जिनके बारेमें हमारा मतभेद नहीं है उन प्रवृत्तियोंको, भले स्वतन्त्र रूपसे किन्तु एक ही दिशामें, चलायें। यदि ऐसा किया जाये तो फिलहाल शक्तिका जो अपव्यय हो रहा है वह रुक जायेगा।

इस पत्रको आप फुरसतसे पढ़ें। अधोईमें आपको समय तो मिलना चाहिए।

मोहनदासके प्रणाम

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५६४) से।

९३. पत्र : स्वरूपरानी नेहरूको

१३ मार्च, १९३३

प्रिय भगिनि,

तुम्हारा खत मिला है। मैं प्रतिक्षा कर रहा था।

जवाहरलालका खत आया है उसने तुमारे शरीरका वर्णन किया है। दुबली बहुत हो गई है। शीघ्रतासे पुणामे हि आ जाना हि अच्छा होगा। इस वखत रहने का स्थान बदलनेकी कोशीश करूँगा। जवाहरने भी इस वारेमें लिखा है।

कलकत्तेके बारेमें अंतर कहे वही करो। मुझे इस वारेमें अभिप्राय रखनेका भी अधिकार भी नहीं, न मैं कुछ रखता हूँ।

कमला तो अब देहरा[दून] जा रही होगी। सरूप दो-तीन दिनमें यहां आ जायगी। उसका काठीयावाडका दौरा ठीक हुआ। इंदु[1], चांद[2] मुझे शनिवारको मिल गयीं। अच्छी थीं। ताराको[3] खेलनेमें से आराम कहाँसे मिले कि वह आवे? जमनालालजी का कमलनयन और रामकृष्ण भी वहीं पढ़ते हैं।

पूना आनेके दिनका पता मुझे कुछ आगेसे दिया जावे।

आपका,
मोहनदास

गांधी-इन्दिरागांधी पत्र-व्यवहार फाइल। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. इन्दिरा गांधी।
२ और ३. चन्द्रलेखा और नयनतारा, विजयलक्ष्मीकी पुत्रियाँ।

९४. पत्र : गिरधारीलालको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय गिरधारीलाल,

आपका साप्ताहिक विवरण पाकर और यह जानकर कि अभी भी धीमी गतिसे ही सही लेकिन प्रगति जारी है, खुशी हुई। हम सबकी यही कामना है और प्रभुसे हम यही प्रार्थना करते हैं कि यह प्रगति निश्चित गतिसे होती रहे और इसके परिणामस्वरूप यह बुराई दूर हो।

हृदयसे आपका,

लाला गिरधारीलाल
१०९-ए, महेन्द्र मैंशन्स
एस्प्लेनेड रोड, फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५८०) से।

९५. पत्र : मियाँ मुहम्मद रफीकको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और मेरे सम्बन्धमें लिखी कविताओंकी पुस्तकके लिए आपका आभारी हूँ। काश मेरे पास आपकी कृति पढ़नेका समय होता कि मैं अपने-आपको आपकी नजरोंसे देख सकता और अपने उर्दूके ज्ञानमें भी कुछ वृद्धि करता। लेकिन अभी तो मेरा सारा समय 'हरिजन' ही ले लेता है और पता नहीं, आपकी पुस्तकको कब हाथ लगा सकूँगा। पुस्तक मिलते ही मैं इसे तृषित नेत्रोंसे देखने लगा, लेकिन फिर मैंने देखा कि आपकी टकसाली उर्दू समझनेमें मुझे कठिनाई होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत मियाँ मुहम्मद रफीक
बागवानपुरा
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७८) से।

९६. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

सचिव
बम्बई सरकार
गृह-विभाग

१४ मार्च, १९३३

प्रिय महोदय,

मुझे खगोलीय दूरवीक्षण यन्त्रका प्रयोग दिखानेके लिए ऋतु-विज्ञान विभागके डॉ० रामनाथन् और डॉ० देसाईको शामको अँधेरा होते ही यरवडा सदर जेलमें आनेकी अनुमति दिलानेके लिए दिये गये, मेरे प्रार्थना-पत्रके सम्बन्धमें अधीक्षकने मुझे अभी-अभी सूचित किया है कि आदेशमें बताये गये कारणोंसे सरकार ऐसी अनुमति देनेमें असमर्थ है। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि मुझे ऐसे निर्णयकी आशा बिलकुल नहीं थी। मेरी जानकारीमें तो यरवडा सदर जेल और अहमदाबाद सदर जेल, दोनों ही जरूरत पड़नेपर रातमें खोले जाते रहे हैं। मैंने प्रार्थना-पत्र किसी अजनबीको नहीं, बल्कि सरकारी अधिकारियोंको अनुमति देनेके लिए भेजा था; और उसमें केवल आधे घंटेतक बिलकुल निर्दोष ढंगकी जानकारी देनेके लिए ऐसे किसी भी दिन उन्हें आनेकी इजाजत देनेका निवेदन किया गया था जो अधिकारियोंके लिए सुविधाजनक हो। मेरा मन यह माननेको तैयार नहीं है कि सरकार इतने सीधे-सादे अनुरोधको भी अस्वीकार कर देगी, इसलिए मैं इसके लिए फिरसे प्रार्थना करता हूँ। लेकिन अगर सरकार अपने निर्णय पर पुनर्विचार करनेसे इनकार करती है, तो क्या वह उपर्युक्त दोनों अधिकारियोंको जेलके दरवाजे बन्द होनेसे ठीक पहले जैसी भी सम्भव हो, वैसी जानकारी मुझे देनेकी अनुमति देगी?[१]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८०) से। बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (४), भाग-२, पृष्ठ १५९ से भी

१. अन्तमें उन दोनों अधिकारियोंको दिनमें जेलमें जानेकी अनुमति दे दी गई और वे ३ अप्रैलको वहाँ गये।

९७. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र[१] आज मिला और अम्तुस्सलामका पत्र पढ़नेसे पहले ही मैं तत्काल उसका उत्तर दे रहा हूँ। मेरा तुमसे कहना यह है कि तुम आश्रम चले जाओ, उन रोगियोंको देखो जो अब भी वहाँ हैं और वहाँ कुछ समय तक रहेंगे और इस बातका विचार करो कि ठंडी जलवायुवाले स्थानमें ले जाये बिना उनकी चिकित्सा हो सकती है कि नहीं। अहमदाबादमें अप्रैलतक तो इतनी गर्मी नहीं पड़ती जितनी लोग समझते हैं। रातें तो काफी ठंडी रहती हैं और मुझे तो गर्मीकी ऋतु भी कुछ कष्टकारी प्रतीत नहीं हुई। मैंने तो स्वयं अपना इलाज आश्रममें एकसे अधिक बार करानेमें झिझक नहीं की यद्यपि मुझे कुछ डाक्टरोंने परामर्श दिया था कि मैं किसी पहाड़ी स्थान या कमसे-कम किसी समुद्र तटके किसी स्थानपर चला जाऊँ। परन्तु तुमको तो स्वयं ही निश्चय करना है और यदि तुम यह आवश्यक समझो तो मैं कोई ठंडी जगह ढूँढ़नेका प्रयत्न करूँगा। तुम्हारे आश्रम जानेसे दो काम बनेंगे — एक तो तुम जगह और परिस्थितिसे परिचित हो जाओगे और आश्रम-जीवनका पहला अनुभव ले सकोगे; साथ-ही-साथ वहाँ पुराने मलावरोधके रोगियों पर — ऐसे रोगी आश्रममें अकसर रहे हैं और हैं — अपनी चिकित्सा आजमा सकोगे। दो रोगी वहाँ पुराने दमेसे पीड़ित हैं जो प्राय: इन रोगोंको दूर करनेवाले जलाशयोंका सेवन करने कहीं बाहर नहीं जाते और जहाँतक बस चलता है आश्रममें ही रहते हैं। तुम आश्रममें जब चाहो जा सकते हो और यदि अम्तुस्सलामको भी साथ ले जाना चाहो तो ले जा सकते हो।

मुझे प्रसन्नता है कि तुम्हारी बच्ची प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा चेचकके रोगसे ठीक हो गई।

यदि तुम्हारा इरादा आश्रम जानेका हो तो केवल एक तार या एक पत्र अपने वहाँ पहुँचनेकी तिथिका भेज देना ही काफी होगा। मैं इस पत्रकी एक प्रतिलिपि मैनेजरको भेज दूंगा।

तुम्हारा शुभचिन्तक,

डॉ० एच० एल० शर्मा
सन-रे हॉस्पिटल
करौल बाग, दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५७९)से। **बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष**, पृ० १९-२० से भी।

१. अपने पत्रमें डॉ० शर्माने गांधीजी को कुछ समयके लिए आश्रममें आकर रहनेके अपने निश्चयकी सूचना दी थी और पूछा था कि उन्हें वहाँ क्या काम करना होगा।

९८. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

आपको संविधानका मसविदा[१] भेजनेमें मैंने बहुत देर कर दी। अब आपका तार आया है। मैंने उसे तैयार तो गत रविवारको ही कर लिया था और उसके बाद यह पत्र लिखवानेके लिए रुका हुआ था। इसी बीच आपका तार मिला। आप देखेंगे कि इसपर कितनी मेहनत की गई है। आपके पास जो मसविदा जा रहा है वह महादेवका तैयार किया हुआ तीसरा मसविदा है। मैं तो केवल उसकी देख-रेख कर रहा था और कुछ सुझाव दे रहा था। मेरा खयाल है, मैं आपको यह बता चुका हूँ कि जब मैंने पहली बार इसे पढ़ा तो मुझे लगा कि इसमें कई जगह दोबारा लिखने और काफी सोच-विचार करनेकी जरूरत है। उसके बाद वह शास्त्रीको[२] दिया गया। शास्त्रीने उसे ध्यानपूर्वक पढ़कर कुछ सुझाव दिये। उसके बाद महादेवने उसमें हाथ लगाया। इसलिए आप ऐसा कह सकते हैं कि यह तीन लोगोंके परिश्रमका फल है। इसे छपवानेसे पहले इसपर संघकी समितिकी स्वीकृति ले लेनी चाहिए। मेरा खयाल है कि समिति द्वारा विचार करनेसे पूर्व हृदयजी को[३] इसपर अपनी विधि-विशेषज्ञ नजर डाल लेनी चाहिए और एक वकीलकी हैसियतसे उन्हें इसमें जो जरूरी लगे, ऐसे संशोधन और परिवर्धन करने चाहिए। अगर वे इसे अपेक्षित समय न दे सकें तो यह किसी ऐसे वकीलको दे देना चाहिए जिसको इस संघ-जैसी संस्थाओंके संविधानके मसविदे तैयार करनेका अनुभव हो। यदि संघको एक बड़ी और कार्यक्षम संस्थाके रूपमें विकसित होना है, तो इस कामपर जितना भी समय दिया जायेगा और श्रम किया जायेगा वह बेकार नहीं होगा। मैं जानता हूँ कि यह काम केवल संविधानसे नहीं, बल्कि कार्यकर्त्ताओंके कार्यसे ही हो सकेगा। फिर भी, एक अच्छे और व्यवहार्य संविधानके बिना हम अपनी संस्था तथा इसकी शाखाओंकी विभिन्न इकाइयोंको एक साथ बाँधकर नहीं रख सकेंगे। अन्तिम मसविदा जब पास किये जानेके लिए तैयार कर लिया जाये और तब उसके तदर्थ प्रस्तुत किये जानेसे पूर्व, अगर इतना समय हो तो, मैं चाहूँगा कि उसकी एक प्रति मुझे भेज दी जाये, क्योंकि आपको बता दूँ कि साथके मसविदेको मैंने सांगोपांग नहीं परखा है।

पंजाब-यात्राकी आपके मनपर क्या छाप पड़ी और हरिजन नेताओंका आपका अनुभव कैसा रहा, यह जाननेके लिए मैं उत्सुक हूँ। स्वात्मानन्दजी[४] मुझे काबिल

१. देखिए "हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा", ९-३-१९३३।

२. **हरिजन**के सम्पादक आर० वी० शास्त्री।

३. हृदयनाथ कुँजरू।

४. स्वात्मा दास; देखिए "पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको", १६-३-१९३३।

आदमी लगते हैं। वे सुलझे-सुथरे हिन्दी लेखक हैं और उनके विचार मौलिक लगते हैं। उन्होंने बताया है कि वे आपसे मिले थे। उनकी सोसाइटीने आपको जो अभिवेदन भेजा था उसकी एक प्रति उन्होंने मुझे भी भेजी है। मैंने उनकी जो रिपोर्ट आपको भेजी थी, उससे आपने यह तो देखा ही होगा कि मुख्य सवर्ण हिन्दुओं द्वारा विभिन्न अस्पृश्यता-विरोधी संगठनोंके चलाये जानेमें उनका विश्वास नहीं है। हमें जहाँतक बने, उनकी शंका-निवारण करना है, और अगर उनके आरोपोंमें कोई तत्त्व नहीं है, तो हमें उनसे ऐसा कह सकना चाहिए और कायल करने लायक प्रमाण देकर अपनी बातकी पुष्टि कर सकनी चाहिए।

मै जानता हूँ कि मैंने आपको उस एकमात्र सहायकसे वंचित कर दिया जो आपको पूरा सन्तोष देता था। अगर आपने शास्त्रीको छोड़नेमें अपनी असमर्थता समझाई होती, तो मैं किसी तरह काम चला लेता। अब मुझमें यह कहनेका साहस नहीं है कि "आप चाहते हों तो शास्त्रीको ले लीजिए।" साथ ही, मैं यह भी जानता हूँ कि किसी कार्यकुशल सहायकके बिना आपका काम नहीं चल सकता; तो क्या आप यह चाहेंगे कि मैं आपके लिए कोई आदमी देखूँ? अगर चाहते हों, तो आप ठीक-ठीक बताइए कि कैसा आदमी चाहिए और उसे आप कितना देनेको तैयार हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११३) से। एस० एन० २०५७६ से भी।

९९. पत्र : प्रेमलीला ठाकरसीको

१४ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

तुम्हारे पत्रसे हमें बहुत आश्वासन मिला। हम सब लोग कोई खबर[१] पानेकी बाट देख रहे थे, किन्तु पत्र सुबह ही मिला। रातको भी बाट तो देखी लेकिन कैद तो कैद ही है। अतः उसका कोई दुःख नहीं है।

तुमने और लीलाबहनने उस समय वहाँ उपस्थित रहकर बहुत अच्छा किया। अब तो तुम बारी-बारीसे जाती ही रहोगी और मुझे खबर भी देती रहना।

जैसाकि तुमने अपने पत्रमें लिखा है, तुम बारह बजे अस्पताल जानेवाली हो। अतः आनन्दीको लिखा पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ। उसे पत्र पढ़वा देना और उसका सन्देश मुझे भेज देना। मैं तुमसे बहुत काम ले रहा हूँ। किन्तु मैं क्या

१. आनन्दी आसरके बारेमें, जिनका पूनाके सैसून अस्पतालमें एक दिन पहले आन्त्रपुच्छका ऑपरेशन हुआ था।

करूँ? अनिच्छापूर्वक कर्ज लेना पड़ता है। ईश्वर चुकायेगा। मुझे लक्ष्मीदासका[1] तार तो मिल ही गया है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

अब नारंगियाँ या मोमबत्तियाँ मत भेजना। वर्धासे काफी आ गई हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ८८२८)से; सौजन्य : प्रेमलीला ठाकरसी। जी० एन० ७४ से भी।

१००. पत्र : बद्रीनाथ शर्माको

१४ मार्च, १९३३

भाई बद्रीनाथ शर्म्मा,

आपका खत मिला। लेखकी कतरनें देखनेमें नहिं आई। प्रयागके प्रस्ताव संतोष-जनक नहिं हैं।[2]

आपका,
मोहनदास गांधी

श्री बद्रीनाथ शर्म्मा
केतकी देव
गया
बिहार

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५५६) से।

१०१. पत्र : नारणदास गांधीको

१५ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

काकासाहब आज आनन्दीको प्रो० त्रिवेदीके घर ले आये हैं। अस्पतालमें आवश्यक सुविधाकी व्यवस्था न हो पाने और ऑपरेशन तथा उसके बाद मरहम-पट्टी करना बहुत ही आसान होनेके कारण डाक्टरने ही यह सुझाया था कि उसे किसी निजी अस्पताल अथवा घरमें रखना चाहिए ताकि उसकी अच्छी तरह देखभाल हो सके। डाक्टर रोज सुबह-शाम प्रो० त्रिवेदीके यहाँ आकर मरहम-पट्टी कर जायेगा।

१. लक्ष्मीदास आसर, आनन्दीके पिता।

२. सम्भवतः तात्पर्य उन प्रस्तावोंसे है जो कि ५ मार्च, १९३३ को भारतीय संवैधानिक सुधारोंके लिए प्रस्तावोंके प्रति असन्तोष प्रकट करनेके लिए पास किये गये थे।

और नर्सों—स्वयंसेविकाओं—की तो कोई कमी ही नहीं है। हरिजन कार्य करनेवाली दो-तीन पारसी बहनें और लीलावती मुंशीकी कन्या नियमित रूपसे बारी-बारीसे उपस्थित रहती हैं। प्रेमलीलाबहन और लक्ष्मीदास भाईकी बहन लीलाबहन तो रात-दिन रहती ही हैं। दिनको हल्का-सा बुखार हो जाता है किन्तु डाक्टरका कहना है कि यह सर्वथा सामान्य बात है। वह फलोंका रस और दूध लेती है तथा प्रसन्न रहती है। चिन्ताका कोई कारण ही नहीं है। फिर भी उसका कहना है कि यदि वेलाबहन पास होती तो अच्छा होता। अतः लगता है प्रेमलीलाबहनने तार दिया है। वेला-बहनका मन न माने तो वह अवश्य आ जाये। शायद वह कल रवाना हो भी चुकी हो या फिर देवदासके साथ कल सुबह पहुँचेगी।

बापूके आशीर्वाद[1]

श्री नारणदास गांधी
सत्याग्रहाश्रम
साबरमती

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१०२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपके ८ मार्चके पत्रका उत्तर इससे पहले देनेका मौका ही नहीं निकाल सका।

चयन-बोर्डसे मेरा मतलब यह था : आपको एक छोटी और कार्यक्षम समिति नियुक्त करनी चाहिए, जिसमें एक आदमी, उदाहरणके लिए, थडानी-जैसा हो, कोई एक सेंट स्टीफन कॉलेजका हो और एक तीसरा आदमी मन्त्री हो तथा आप और ठक्कर बापा पदेन सदस्य हों। यह समिति डेविड स्कीम स्कॉलरशिपके[2] लिए आवेदन-पत्र आमन्त्रित करेगी। यह आवेदन-पत्रोंकी जाँच करके बोर्डसे सिफारिश करेगी। अगर बोर्ड सिफारिशें मंजूर कर लेगा, तो छात्रवृत्तियाँ देनेकी स्वीकृति दे देगा। इस समिति से एक ऐसी योजना तैयार करनेको भी कहा जायेगा जिसमें उन शर्तोंका निर्देश रहेगा जिनके अधीन छात्रवृत्ति दी जायेगी। इन शर्तोंमें उम्मीदवारोंकी योग्यताएँ बताई जायेंगी और इन्हीं शर्तोंके अन्तर्गत आवेदन-पत्र आमन्त्रित किये जायेंगे। मेरा सुझाव है कि समिति श्री डेविडसे उस हदतक सम्पर्क बनाये रखे जिस हदतक वे समितिको अनौपचारिक तौरपर अपने मार्ग-दर्शन और सलाह-मशविरेका लाभ देनेको तैयार हों। इतना तो हुआ चयन-बोर्डके बारेमें।

१. इसपर गांधीजी की ओरसे महादेव देसाईने हस्ताक्षर किये थे।

२. यह योजना कुछ चुनिन्दा हरिजन लड़कों और लड़कियोंकी शिक्षाके लिए सवर्ण हिन्दुओंसे चन्दा एकत्र करनेके बारेमें थी। देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४२७-८।

जहाँतक अनुदानोंका सम्बन्ध है, आपने जो-कुछ कहा है उसमे मुझे सन्तोष नहीं। मुझे ऐसी आशंका थी कि इस तरहके अनुदानोंके लिए की गई अपीलके प्रति लोग शायद पर्याप्त उत्साह न दिखायें। यह बात मैंने श्री डेविडसे उस समय साफ-साफ कह भी दी थी जब मैंने उन्हें यह बताया था कि उनकी योजना पसन्द होनेपर भी मैं सार्वजनिक रूपसे उसको समर्थन देनेमें संकोच क्यों कर रहा हूँ। इसलिए उनसे मैंने आपसे और बम्बई बोर्डसे सलाह करनेको कहा। तदनुसार उन्होंने सलाह की और आप दोनोंने इस कामको बड़े तपाकसे हाथमें लिया। यहाँतक कि संविधानके मसविदेमें आपने इसे विज्ञापित भी किया। इसलिए काफी लम्बे अरसे तक प्रतीक्षा करनेके बाद मुझे कुछ साहस मिला और मैंने 'हरिजन' में इस योजना को अपना आशीर्वाद दिया। मैं निश्चय ही ऐसा महसूस करता हूँ कि सामान्य चन्देसे अलग विशिष्ट हेतुसे इकट्ठे किये गये कुछ दान भी अवश्य होने चाहिए। जो सामान्य चन्दा जमा किया जा चुका है उसीमें से कुछ रकमें अलग रखनेका विचार मुझे पसन्द नहीं। अगर बने तो हमें कुछ सनातनियोंसे दान प्राप्त करना ही चाहिए। खैर, मेरा तो यही विचार है और जमनालालजी, सरदार वल्लभभाई और हम सबका भी ऐसा ही है। जानकीदेवीसे २,५०० रुपये देनेका निवेदन कर चुका हूँ और दूसरोंको भी तुरन्त लिखने जा रहा हूँ। मैं आपका नाम भी दाताओंमें शामिल करके उसे प्रकाशित करना चाहूँगा।

इस सम्बन्धमें 'हरिजन' में मैं तभी कुछ लिखूँगा जब आपसे इस पत्रका सुचिन्तित उत्तर मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०५९२) से। सी० डब्ल्यू० ७९३२ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१०३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय सतीशबाबू,

आपका पत्र मिला। आपने जो अनुवाद[1] भेजा है, उसका उपयोग मैं कर रहा हूँ। गुजराती 'हरिजन' के लिए उसका सीधे बंगलासे अनुवाद करके महादेवने दे दिया है। हिन्दी 'हरिजन' में मैं आपके लेखका अनुवाद देख चुका था। हिन्दी 'हरिजन' की खामियोंके बारेमें आपने जो-कुछ कहा, वह मेरी निगाहमें भी रहा है और मैंने उसके सम्पादकका ध्यान खास तौरपर उसकी ओर दिलाया है। वे एक उत्साही कार्यकर्त्ता हैं और उन्हें जो भी सुझाव दिये जाते हैं, वे खुशी-खुशी स्वीकार कर लेते हैं इसलिए अब आप उसमें धीरे-धीरे निश्चित सुधार देखेंगे।

१. १-४-१९३३ के **हरिजन** में प्रकाशित "काबुली जुल्म"।

अंग्रेजीके लेख जैसे-जैसे तैयार होते जायेंगे, आपको भेजता जाऊँगा। मुझे तो सबको गुरुवारकी सुबहतक लिख-लिखाकर निबटा देना है। सोमवारसे पहले कुछ शुरू नहीं होता। अधिकांश मंगलवार और बुधवारके बीच तैयार हो जाता है।

आपका ४८ कालमोंका विश्लेषण रोचक है। फिर आश्चर्य क्या कि आपके पत्रकी ग्राहक-संख्या दिन-दिन बढ़ती ही जा रही है।[1] यह सारा काम आप दिलसे पसंद करते हैं और यह अच्छी बात है। कोई कारण नहीं कि ग्राहक संख्या १०,००० या इससे भी अधिक न हो जाये। आशा है, आपके यहाँ कर्मचारियोंकी एक अच्छी टोली है। ऐसा न हो कि ज्यादा बोझ लेकर आप स्वास्थ्य बिगाड़ लें। और किसी कारण नहीं तो आपके लेख पढ़नेके लिए ही बंगला सीखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, लेकिन फिलहाल तो यह इच्छा एक स्वप्न ही है।

'रामायण' की अपनी हिन्दी भूमिकाका पहला फर्मा तो आप भेज ही चुके हैं। इसे मैं अपनी बगलमें ही रखता हूँ, ताकि समय मिलते ही पढ़ जाऊँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९४) से।

१०४. पत्र: गो० कृ० देवधरको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय देवधर,[2]

प्रोफेसर पुरन्दरे[3] के बारेमें आपका पत्र मिला। बात यों है। उन्होंने पूनामें कुछ भाषण दिये थे। हरिभाऊ उनको मेरे पास लाये थे। हरिभाऊने मुझे बतलाया था कि लोगोंने उनके भाषणोंको काफी पसन्द किया था और इसलिए प्रचार शुरू करने और पुरन्दरेकी सहायता करनेके खयालसे मैंने सुझाया था कि उनके भाषणोंको पुस्तकाकार प्रकाशित कराया जाये। वे इस बातपर बिलकुल राजी थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि उनकी आवश्यकताएँ बहुत ही कम हैं और वे बड़ी खुशीसे इस उद्देश्यके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित करेंगे। मैंने उनसे पूछा कि भाषणोंको संगृहीत करने और शायद उनको फिरसे लिखने और उनके प्रूफ देखने इत्यादिके सारे कामके लिए उनको क्या दिया जाना चाहिए। मेरे काफी आग्रह करने पर भी उन्होंने कोई निश्चित राशि नहीं बतलाई; उन्होंने बस इतना ही कहा था कि मैं जितनी भी राशि तय

१. बंगला **हरिजन** जो खादी प्रतिष्ठान, कलकत्ताके तत्त्वाधानमें प्रकाशित होता था और सतीश बाबू जिसके सम्पादक थे।

२. सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी और अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघके महाराष्ट्र डिवीजनल बोर्डके अध्यक्ष।

३. एन० एच० पुरन्दरे।

कर दूँगा और केन्द्रीय बोर्डसे जितना-कुछ मिलेगा, वे उसीमें पूरी तरह सन्तुष्ट हो जायेंगे। पुस्तक पूरी हो जानेपर जब अदायगीका समय आया तो मुझे निश्चित राशि बतलानेमें संकोच हुआ। इसलिए मैंने मामला हरिभाऊको सौंप दिया। उनका सुझाव था कि १२५ रुपये दिये जायें। मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया और चेक भी तैयार करवा लिया। लेकिन तब अचानक प्रोफेसर पुरन्दरेने इतनी राशि स्वीकार करनेसे मना कर दिया और कहा कि ३,००० रुपये नहीं तो कमसे-कम १,००० रुपये तो दीजिए ही।

उसके बादसे यही होता रहा है कि मेरे पास बस गुस्से और गालियोंसे भरे पत्र आते रहे हैं। खैर, इसका इतना महत्त्व नहीं। मैंने उनसे कहा कि छपाईका खर्च भुगतान करके वे सारी प्रतियाँ स्वयं ले सकते हैं। इसपर उन्होंने कहा कि छपाईका बिल ही ठीक नहीं है, उसमें बहुत अधिक दर लगाई गई है। तब मैंने कहा कि कोई निष्पक्ष मध्यस्थ जो भी राशि निर्धारित कर देगा मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। इसपर भी वे राजी नहीं हुए। मैं इससे भी काफी ज्यादा लिख सकता हूँ, लेकिन मैं समझता हूँ कि इतना ही काफी है।

मैं केन्द्रीय बोर्डके एक न्यासीकी हैसियतसे काम कर रहा हूँ। फिर मैं बिना किसी औचित्यके केन्द्रीय बोर्डसे अधिक राशि अदा करनेके लिए कैसे कह सकता हूँ? हाँ, अनुवाद आदिके अधिकार उनको दिये जा सकते हैं। हमारे पास जो पुस्तकें हैं उनकी कोई बड़ी माँग भी नहीं है। मैं तो बड़ी खुशीसे कहता हूँ कि छपाईका खर्च पूरा करनेके बाद यदि कुछ राशि बच जाये तो उसको वे ले लें। अब इससे अधिक और क्या देनेकी बात हो सकती है?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९१) से।

१०५. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१६ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मैंने ११ तारीखकी तुम्हारी शिकायतके[१] जवाबमें तुम्हें विस्तारसे लिखनेका वचन दिया था। तुमने बड़े निस्संकोच भावसे लिखा है। यह बहुत ही ठीक किया। इसीलिए अब मैं तुमको बतला सकता हूँ कि मैंने क्या किया है। तुमने शायद 'हरिजन'का अंक देखनेसे पहले ही अपना पत्र लिखाया होगा; क्योंकि उसमें मैंने

१. अमृतलाल वि० ठक्करने स्वात्मदासके बारेमें आम तौरपर शिकायत की थी और उसे "अति उत्साही तरुण", "कामके अनुभवसे शून्य" व्यक्ति कहा था और गांधीजी के इस सुझावको स्वीकार नहीं किया था कि विभिन्न हरिजन-सेवक संस्थाओंकी भर्त्सनासे भरी स्वात्मदासकी रिपोर्टको संस्थाओंके पास घुमा दिया जाये : उनका कहना था कि वैसा करना सौजन्यपूर्ण नहीं रहेगा।

स्वात्मदासके पत्रके बारेमें उनके नाम, प्रान्त या संस्थाओंका उल्लेख किये बिना और जान-बूझकर उसे एक आम समस्याका रंग देते हुए इस तरह लिखा है, कि स्वात्मदास स्वयं भी नहीं समझ सके कि मैंने अपने लेखका[1] आधार उन्हींके पत्रको बनाया है; और तुम्हें यह जानकर सचमुच एक सुखद आश्चर्य होगा कि लेलेका खयाल था कि मेरा इशारा बम्बईकी तरफ था। मैं पिछले २५-३० वर्षोंसे अनेक समस्याओंको इसी तरीकेसे सफलतापूर्वक निबटाता रहा हूँ। साथ ही, मैं इतने समय तक रुकना भी नहीं चाहता था कि तुम स्वयं उस रिपोर्टको देखकर अपनी कोई राय बना लो और फिर मुझे लिख भेजो। वह तो काफी लम्बा खिंचता और कष्टकर होता, जबकि मैं चाहता था कि जल्दसे-जल्द एक सीख उनके मनमें उतार दूँ। मैंने उसमें प्रान्त-विशेष या किसी संस्था-विशेष या अलग-अलग संस्थाओंके बारेमें की गई अलग-अलग शिकायतोंको लिया ही नहीं; उनको तबतक के लिए छोड़ दिया जबतक तुम सारी समस्यापर पूरी तरह विचार न कर लो। क्या इस तरीकेमें तुम्हें कुछ गलत लगता है? क्या इससे पंजाबकी संस्थाओंकी स्थिति किसी तरह अटपटी हुई है या स्वात्मदासको कुछ अनुचित महत्त्व मिल गया है? सम्भाव्य दोषोंके विषयमें 'हरिजन' में लिखे गये उस लेखमें मैंने इतना भी नहीं कहा कि पत्र-लेखककी शिकायतें सही हैं। मैंने तो बस यही लिखा है कि भारत-भरकी सभी सुधारक संस्थाओंको आत्म-विवेचना करनी चाहिए। और मैं तुम्हें बतला दूँ कि लेखका असर हो रहा है। तुम स्वात्मदासकी सभी शिकायतोंकी जाँच कर सकते हो और मैं भी चाहता हूँ कि करो और अपना उत्तर मुझे लिख भेजो जिससे कि मैं उनके बारेमें लिख सकूँ। मैं जानता हूँ कि स्वात्मदास द्वारा उल्लिखित पंजाबकी सभी संस्थाएँ केन्द्रीय संगठनसे सम्बद्ध नहीं हैं। पर इससे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। और यदि हम शिष्टताके साथ उनसे कुछ पूछें तो उन संस्थाओंको भी उसका बुरा नहीं मानना चाहिए। तुम्हारी पूछताछको वे किस रूपमें लेंगी, यह बहुत-कुछ इसपर निर्भर करता है कि पूछताछका ढंग क्या रहता है। मैं जानता हूँ कि तुम सदा ही शिष्टता और बिलकुल मैत्रीपूर्ण ढंगसे ही उनको लिखोगे और अपना मंशा साफ-साफ बतला दोगे कि तुम एक मित्रके नाते उनकी सहायता करना चाहते हो, एक जाँच-अधिकारी की तरह उनके पास नहीं जा रहे हो। लेकिन यह तो मेरा सुझाव ही है। तुम वही करो जो तुम्हें उचित लगे; और यदि तुम समझो कि जाँच-पड़तालकी जरूरत ही नहीं तो वैसा लिखो। मैं उससे भी सन्तुष्ट हो जाऊँगा। मेरा प्रयोजन तो मात्र इतना है कि तुम्हारे तईं यह स्पष्ट कर दूँ कि नाम-पतेका उल्लेख किये बिना उस समस्याको बिलकुल एक आम ढंगसे पेश करना किसी भी तरह अनुचित नहीं था।

जहाँतक स्वात्मदासकी बात है, तुमने उसका जो वर्णन किया है, वह मेरे लिए सर्वथा अप्रत्याशित नहीं था। हमारे सम्पर्क में ऐसे तरुण आयेंगे ही और हमें उनसे निबटना ही पड़ेगा। यह अनिवार्य है। वे जो भी, जैसे भी हैं, उसके लिए

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०१-३।

हम खुद जिम्मेवार हैं। यह हमारे योग्य ही है। इसलिए हमको उनके साथ अधिकसे-अधिक सौजन्यपूर्ण बरताव करना चाहिए, पूरे धैर्यके साथ उनकी बात सुननी चाहिए और उनसे उनके योग्य सेवा-कार्य कराना चाहिए। मैं समझता हूँ कि तुम्हारे पत्रमें उठाये गये सभी मुद्दोंका उत्तर इसमें आ जाता है।

आशा है कि १८ तारीखका भेजा हुआ मेरा पत्र तुम्हें मिल गया होगा। नियमावलीका मसविदा रजिस्टर्ड डाकमें कल तुम्हें भेज दिया गया है। मैंने तुम्हें उसकी रवानगीके बारेमें एक तार[1] भी भेजा था।

पंजाब भूमि विक्रय अधिनियम (पंजाब एलिनेशन ऑफ लैंड ऐक्ट)का तुम्हारा वर्णन पढ़कर बुरा लगा। क्या उस ज्यादतीको रोकनेके लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता? मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे उस अधिनियमकी एक प्रति भेज दो।

हृदयसे तुम्हारा,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ११२८) से।

१०६. पत्र : नारणदास गांधीको

१६ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा ११ तारीखका पत्र मिला। तुमने जो लिखा है वह बिलकुल ठीक है। लगता है यह आखिरी कसौटी है। मैं तो चाहूँगा कि इसमें सब-कुछ होम दूँ। किन्तु यदि इस दुनियामें हम मनचाहा कर सकते होते तो हम राजा होते।

यह मैं तुम्हें लिख चुका हूँ कि परचुरे शास्त्री अपने घर गये हैं। मेरे पिछले पत्र तुम्हें निर्णयपर पहुँचनेमें सहायक सिद्ध हुए होंगे किन्तु निर्णय करनेका अधिकार तुमपर छोड़ देना मेरा कर्तव्य था। लेकिन उतावलीमें मैं चूक गया था।

परशुरामने किससे कर्ज लिया है? यह चौंकानेवाली बात है। कर्ज कौन देता है? मुझे पूरा समाचार देना। परशुरामके दोष मुझे बताना। इस बातका ध्यान रखना कि हम बहुत-कुछ सहन कर सकते हैं किन्तु उसकी भी एक सीमा होती है।

सहयोग और असहयोग, दोनों ही कर्तव्य हैं।

कलसोंकी जोड़ी, थाली, पतीली आदि उपहार यदि लक्ष्मीके लिए भार सिद्ध न हों तो अच्छा हो। ये भी प्रेमके प्रतीक हैं। तुमने उसमें भाग नहीं लिया सो उचित किया। वेलाबहन आदिने कुछ देनेका निश्चय किया यह भी उचित ही है। यहाँ बैठे हुए मैं नहीं कह सकता कि इसकी सीमा-रेखा क्या होनी चाहिए। लक्ष्मीको

१. यह उपलब्ध नहीं हुआ।

माला-जैसी चीज देनेकी मुझे भी तो इच्छा हुई ही थी न? जब कि रामीको कुछ भी देनेमें मुझे हिचकिचाहट हो रही थी। प्रेम ऐसा उलटा रूप ले लेता है। तुम्हारे [भाग न लेनेके] निर्णयके सही होनेके बारेमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है। कलसों की जोड़ीके बारेमें ही [सन्देह] हो सकता है।

मैंने डाक्टर शर्माको जो पत्र लिखा है उसकी नकल साथ भेज रहा हूँ। तुम उसे पढ़ोगे ही इसलिए इस बारेमें अधिक नहीं लिख रहा हूँ। उन्हें मैंने जो-कुछ लिखा है वह ठीक ही है न? मेरीबहनके[1] लिए एक पत्र भी इसके साथ भेज रहा हूँ।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३८५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१०७. पत्र : अमतुस्सलामको

१६ मार्च, १९३३

प्यारी बेटी,

तुम्हारा खत मिला। अब तो मैंने डाक्टर शर्माको[2] लिख दिया है वे आश्रम चले जाएँ और तुमको भी साथ ले चलें। इस खतको तुम देखेगी इसलिये ज्यादा नहीं लिखता हूँ। यह तो ठीक बात नहीं है कि आश्रम टी० बी० का घर है। सच तो यह है कि आश्रममें बहुत कम टी० बी० है।

कुदसियाकी[3] दवा कौन करता था?

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २७९) से।

१. एफ० मेरी बार।

२. देखिए "पत्र: डॉ० हीरालाल शर्माको", १४-३-१९३३।

३. अमतुस्सलामकी भतीजी जो कुछ महीनोंतक आश्रममें रही थी।

१०८. पत्र : मीराबहनको

१७ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

शुक्रवारको सुबहके ३। बजे हैं। तुम्हारा पत्र यथासमय आ गया था।

आज मैं संक्षेपमें ही लिखूँगा, क्योंकि और कई महत्त्वके पत्र लिखने हैं। मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि तुम्हारी प्रगति जारी रहेगी, अगर मैं चित लेटकर धीरे-धीरे गहरी साँस लेनेके सम्बन्धमें अपनी सूचनाएँ तुम्हें समझा सका हूँ। भाजी खूब खानेसे तुम्हारा कब्ज मिट जाना चाहिए। रोटी तो नहीं लेनी चाहिए, मगर पपीता मिल सके तो लेना चाहिए।

भोजनमें और कोई फर्क किये बिना पिछले सप्ताह मैंने नमक-रहित भोजन स्थगित कर दिया। मैंने केवल फलोंके साथ दिन-भरमें कुल मिलाकर ३० ग्रेनतक नमक लेना शुरू कर दिया। इतने ही परिवर्तनकी खबर देनी है कि कल मेरा वजन बढ़कर १०५ हो गया। दूध या फलोंमें कोई वृद्धि नहीं हुई है। परन्तु मैं यह नहीं कह सकता कि वजन नमकके कारण बढ़ा है। देखेंगे।

वेरियर अब कुछ शान्त हो गया दिखता है और विवाह करनेका इरादा तो उसने निश्चय ही छोड़ दिया है। एक ही आश्रमके सदस्योंमें आपसमें विवाह-सम्बन्धका निषेध वे लोग स्वीकार करेंगे या नहीं, यह कहना कठिन है। मैं तुम्हारे नामसे यह बात उससे कहूँगा तो।

लक्ष्मी और आनन्दीके बारेमें तुम बा के पत्रमें पढ़ना; साथ ही में है।

सस्नेह,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६७) से; सौजन्य : मीराबहन। जी० एन० ९७३३ से भी।

१०९. पत्र : नारणदास गांधीको

१७ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

सुबहकी प्रार्थनाके लिए सब लोग इकट्ठे हों, इस बीच मैंने एक पत्र मीराबहनको और एक बा को लिखा। इन पत्रोंको संक्षेपमें ही पूरा कर दिया और अब इसे शुरू किया है। नरहरिका और तुम्हारा, दोनों पत्र पढ़ गया हूँ। उनकी चर्चा तो मैंने नहींके बराबर ही की है। समय कहाँसे लाऊँ? मनमें जो विचार उठते हैं उन्हें लिख डालता हूँ।

तुम्हें नरहरिको बुलाकर उनकी बात समझनेकी कोशिश करनी चाहिए। नरहरिके स्वभावको मैं ठीक-ठीक जानता हूँ। आश्रममें जो कतिपय निष्ठावान सेवक और सेविकाएँ इकट्ठी हुई हैं, उनमें से नरहरि एक हैं। दूध और शक्कर जिस तरह एक दूसरेमें घुल-मिल जाते हैं उसी तरह इन सब सेवक-सेविकाओंको एक-दूसरेमें ओतप्रोत हो जाना चाहिए। यदि उनमें ऐसी शक्ति नहीं आती तो उसका परिणाम आश्रमका नाश ही हो सकता है। किसी तन्त्रके अलग-अलग अवयव आपसमें हिल-मिलकर रहें, यह जिम्मेदारी उस तन्त्रके तन्त्रीकी ही है। यह तत्त्व तुम्हें समझानेका काम मेरा है। तन्त्री किसी भी तन्त्रका मध्यबिन्दु होता है। उसकी तरफ जो आकर्षित नहीं होता, वह उस तन्त्रके लिए विदेशी-जैसा है। तन्त्रीको चाहिए कि उसका या तो वह त्याग कर दे अथवा उसे तन्त्रमें ठीक स्थान दे और वहाँ उसे कार्य करनेकी ठीक सुविधा दे। नरहरिको विदेशी नहीं माना जा सकता। अमुक व्यक्तियोंको हमने आश्रमरूपी शरीरका अंग माना है। उनके त्यागकी बात हम नहीं सोच सकते। सोचें तो फिर हमें अपने त्यागकी बात भी सोचनी होगी। यानी, आश्रमको तोड़नेकी ही बात सोचनी होगी।

यह तो सिद्धान्तकी बात हुई। इसमें से तुम जितना ले सको उतना बोध ले लेना।

शिक्षाके क्षेत्रमें नरहरिको विशेषज्ञ माना जा सकता है। इसलिए जहाँतक शिक्षाका सवाल है, हम अपने विचारोंको गौण स्थान देंगे। ऐसा करनेसे यदि हमें कोई उलटी चीज होती दिखाई दे तो हम उसे होने दें और जब वह हो चुके तब विशेषज्ञको उसकी भूल दिखायें। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। होना भी ऐसा ही चाहिए। जिस विषयको मैंने अपना माना है, उसमें यदि कोई मुझे मेरी भूल बताना चाहे तो मैं उसकी बात एकाएक नहीं मान सकता। मैं तो अपनी भूलको कड़वा अनुभव लेनेके बाद ही स्वीकार करूँगा। प्रत्येक विषयके विशेषज्ञके बारेमें यही नियम लागू होता है। यह भी मैंने केवल सिद्धान्तकी बात कही।

मगनभाईकी श्रेणीके सब लोगोंको पुस्तकें लेनेकी छूट मिलनी चाहिए। ऐसा करनेसे यदि पुस्तकें बिगड़ती या खो जाती हैं तो उतनी पुस्तकोंको हम नष्ट हुआ मानेंगे। लेकिन इस बातको लेकर किसीसे झगड़ा न करें। पुस्तकोंका उपयोग करनेके नियम आश्रममें जहाँ-तहाँ लिखकर प्रयोग किये जाने चाहिए। बड़े पुस्तकालयोंमें उनके सदस्यों तकको यह छूट दी जाती है कि वे पुस्तकोंको उनकी जगहसे उठाकर उनका उपयोग करें। उसके बाद यदि वे उन्हें यथास्थान नहीं रखते तो मेजपर छोड़कर चले जाते हैं और अन्तमें पुस्तकालयका व्यवस्थापक ही उन पुस्तकोंको उनकी जगह रख देता है। आश्रमवासियोंको तो पुस्तकें लेनेकी पूरी छूट होनी ही चाहिए। वे जब चाहें, तब पुस्तकालयकी चाबी ले सकें, ऐसी स्थिति होनी चाहिए। हाँ, यदि तुम इस बातका निश्चय न कर सको कि आश्रमवासी किसे कहा जाये तो तुम्हें कुछ व्यक्तियोंको स्वयं चुनना चाहिए, जिन्हें पुस्तकालयसे पुस्तकें लेनेका और चाबी माँगनेकी छूट दी जायेगी।

यदि बालकोंके सोनेका समय सवा आठ बजे होता हो तो साढ़े आठसे साढ़े चार बजेतक उन्हें निर्भय सोने देना चाहिए। इसके सिवा उन्हें दिनमें भी एक घंटा सोनेकी सुविधा मिलनी चाहिए। हाँ, इस बातका विचार कर लेना कि बालक किन्हें कहा जाये। माँ-बाप जिन्हें कहें, उन्हें बालक माना जा सकता है।

शिक्षकोंको पढ़ानेकी तैयारी कराने लायक समय मिलना चाहिए। चिमनलाल कहता है कि उसे समय नहीं मिलता, यह बात मुझे असह्य लगी। जो काम स्वीकार किया जाये उसे अच्छी तरह पूरा करना चाहिए। या फिर स्वीकार ही नहीं करना चाहिए। स्वीकार करनेके बाद काम न करनेमें असत्य है। यदि मोटरका चालक मोटरको अच्छी तरह नहीं चलाता तो वह अपराधी ठहरता है। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षक, किसी भी कारणसे क्यों न हो, अपने विषयको अच्छी तरह नहीं पढ़ाता तो वह उस मोटरचालकसे अधिक बड़ा अपराधी है। किसीको भी अपनी शक्तिके बाहर जाकर कोई काम नहीं करना चाहिए।

व्यायामके विषयमें हमें कुवलयानन्द जीकी सूचनाओंका चुपचाप पूरा पालन करना चाहिए।

मैंने जो-कुछ कहा उसका तात्पर्य इतना ही है कि तुम सब नरहरिके साथ बैठकर इस प्रश्नपर पूरा विचार करो और फिर जो उचित जान पड़े सो करो।

अन्तमें इतना और कहूँ कि इसमें से जितना तुम पचा सको उतना ही करना। मैं तो दूर बैठा हुआ हूँ। अमल तुम्हें करना है। काम तुम्हें चलाना है। जिम्मेदारी तुम्हें निभानी है। इसलिए मैं तुम्हें सूचनाएँ तो दे सकता हूँ किन्तु उन्हें मानने या न माननेकी तुम्हें पूरी छूट होनी चाहिए। और तुम ऐसा समझना कि ऐसी छूट तुम्हें है।

इस सबसे प्रेमाका सरोकार है ही। उसे अपनी जीभपर और अपने हठपर विजय पानी चाहिए। उसका काम रात-भर पीसकर छोटेसे ढक्कनसे उठा लेने–जैसा ही है। उसे जितना समझाया जा सके उतना समझाना। किसी कामसे मुक्त करनेकी

आवश्यकता हो तो मुक्त कर देना। वह लगातार काम करती रहती है। इसलिए यदि वह अशान्त रहती हो तो उसे अपना काम कम कर लेना चाहिए। किन्तु यदि उसे उसीमें शान्ति मिलती हो तो उसे सब लोगोंकी आलोचना भी सुन सकना चाहिए।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

११०. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय चार्ली,

हम सबको इस बातकी बड़ी खुशी है कि तुम्हारे भाई अच्छे हो रहे हैं।

अस्पृश्यताके सिलसिलेमें सभी गति-विधियोंकी जानकारी तुम्हें 'हरिजन' दे देगा। हालाँकि सभी तरफ तूफान आया हुआ है, पर जैसे भी हो, मेरे अपने मनमें पूर्ण शान्ति है। मन्दिरोंमें प्रवेशकी इस समस्यासे परोक्ष रूपमें अनेक आध्यात्मिक समस्याएँ हल होती जा रही हैं। इस समस्याने हमारे आन्दोलनको उसकी वास्तविक धार्मिक पृष्ठभूमि प्रदान कर दी है और अब भी कर रही है। बहुत-से लोगोंका खयाल था और अब भी है कि यह समस्या एक निरी राजनीतिक और आर्थिक समस्या ही है। लेकिन अब महसूस किया जा रहा है कि अन्य सभी चीजोंका दारोमदार सवर्ण हिन्दुओं के धार्मिक दृष्टिकोणके परिवर्तनपर ही है; क्योंकि मन्दिरोंमें प्रवेशका वास्तविक महत्त्व यही है। हो सकता है कि धार्मिक दृष्टिकोणमें ऐसा परिवर्तन हमारे जीवन-कालमें न भी आ सके। बादमें यह भी सिद्ध हो सकता है कि मैंने अन्धविश्वासकी शक्ति कम करके आँकी थी। फिर भी समस्याका रूप दिन-दिन अधिक स्पष्ट होता जा रहा है। मन्दिर-प्रवेश और तत्सम्बन्धी सभी प्रश्नोंके हल हुए बिना अस्पृश्यता समाप्त भी नहीं की जा सकती। मन्दिर-प्रवेशसे मेरा तात्पर्य कानून और बलके जरिये नहीं, बल्कि जनताकी स्वेच्छासे मन्दिर-प्रवेशकी अनुमति देनेसे है। मैं अबतक सनातनी लोगोंको यह समझानेमें सफल नहीं हो पाया हूँ कि इन दोनों ही विधेयकोंका मंशा हिन्दुओंके अपने धार्मिक विश्वासोंमें किसी भी रूपमें किसी भी तरहका हस्तक्षेप करना नहीं है। इनका उद्देश्य केवल इतना है कि हिन्दुओंके अपने धार्मिक विश्वासोंपर पूरी तरह अमल करनेमें जो कानूनी बाधाएँ पेश आती हैं उनको दूर कर दिया जाये। मुझे इसका बहुत अधिक दुःख है कि सरकार इन दोनों विधेयकोंका यह इतना स्पष्ट-सा उद्देश्य भी नहीं समझ पाई है। लेकिन 'हरिजन'में मैंने जान-बूझकर इस

पहलूपर विचार नहीं किया है। मैंने इसके बारेमें वाइसरायको जरूर लिखा है[1] और इतनेपर ही सन्तोष कर लिया है।

वहाँके सभी लोगोंको हम सबका स्नेह-वन्दन।

हृदयसे तुम्हारा,
मोहन

सी० एफ० एन्ड्रचूज
वुडब्रुक, सेली ओक
बर्मिंघम

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९८८१) से।

१११. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय अगाथा,

तुम्हारा पत्र मुझे मिल गया। मेरा खयाल था कि 'हरिजन' की दस प्रतियों का एक पार्सल मैं तुम्हें भेज चुका हूँ। जो भी हो, इसकी प्रतियाँ उन सभी मित्रोंको भेजी जा रही हैं जिन्होंने मेरी यात्राके दौरान मदद की थी। तुम्हें यदि अधिक प्रतियाँ दरकार हों तो लिखना।

सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कुमारी अगाथा हैरिसन
११९, गोवर स्ट्रीट, डब्ल्यू० सी०-१

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४६३) से।

१. गांधीजी ने वाइसरायको १ और १९ फरवरीको पत्र लिखे थे, देखिए खण्ड ५३।

११२. पत्र : एच० एल० ह्यूबार्डको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

अपनी शुभेच्छाएँ व्यक्त करते हुए आपने जो पत्र भेजा है उसके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

रेवरेंड एच० एल० ह्यूबार्ड
ऑल सेंट्स विकारेज
मार्गेट
इंग्लैंड

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०५) से।

११३. पत्र : के० केलप्पनको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय केलप्पन,

यह कैसी तानाशाही है? आन्दोलनकी प्रगतिके बारेमें मुझे जानकारी तो देते रहो। अजीब बात है कि इतने दिनोंमें तुम्हारी ओरसे एक पत्र भी नहीं आया।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६००) से।

११४. पत्र : के० माधवन् नायरको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय माधवन्,

आपका पत्र मिला। उसमें बतलाया गया है कि श्रीयुत केलप्पनको एकमात्र अधिनायक नियुक्त कर दिया गया है और अस्थायी समिति भंग कर दी गई है। आशा है, यह परिवर्तन आगे चलकर अपना औचित्य सिद्ध कर सकेगा। मैं इस परिवर्तनको पूरी तरह समझ नहीं पाया हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९९) से।

११५. पत्र : जे० एस० एम० जोजेफ तथा हेलेन कोनॉर्डको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय मित्रो,

पत्र और उसके साथ भेजी पुस्तकके लिए मैं आप दोनोंका आभारी हूँ।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि मैं उसे पहले ही पढ़ चुका हूँ। मैंने उसे काफी दिलचस्पीके साथ पढ़ा और उससे बहुत-कुछ जाना-सीखा। यह बात बरसों पहलेकी है।

हृदयसे आपका,

डॉ० जे० एस० एम० जोजेफ तथा हेलेन कोनॉर्ड
१५८, हैरिसन स्ट्रीट
पासाइक, न्यू जर्सी (अमरीका)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६०१) से।

११६. पत्र : पी० आर० लेलेको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,

आपके तीन पत्र मुझे मिले। कहना पड़ेगा कि आपके पहले दो पत्रोंसे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। मैंने जो पत्र प्रकाशित[1] किया है वह तो निश्चय ही इस तरह तैयार किया गया था जैसे वह प्रकाशनके लिए ही हो, और उसका मंशा यह दिखाना भी था कि बकाया राशि हरिजनोंको मिल गई थी। हो सकता है, आपने वह पत्र प्रकाशित करानेके खयालसे न लिखा हो, लेकिन तब वैसा पत्र लिखनेका कोई मतलब ही नहीं था। आप एक प्रकाशन विभाग-भर तो हैं नहीं कि ऐसी शेखी बघारें कि आपके प्रकाशनके कुल काम पर जितनी लागत बैठती है आपका ऊपरी खर्च उसका सिर्फ दस फीसदी ही रहता है। इन समितियोंको अस्तित्वमें लानेवाले प्रस्तावको पढ़िए, तो मेरा आशय आपको साफ हो जायेगा।

१. **हरिजन**के ११-३-१९३३ के अंकमें।

मैंने यह बात नोट कर ली है कि आप नहीं चाहते कि मैं आपके भेजे हुए आँकड़े प्रकाशित करूँ।

१५ तारीखके आपके पत्रके साथ भेजी गई दो कतरनोंके लिए धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
३१, मर्जबान रोड
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९५) से।

११७. पत्र: नी० को

१७ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारा पत्र मिला। यह पत्र मैं स्वयं हाथसे लिखना चाहता था, पर वैसा हो नहीं पाया। अचानक एक मुलाकाती आ धमके और मेरे वशकी बात नहीं रह गई।

मेरी आत्मा तुम्हारे चारों ओर उसी तरह मँडराती रहती है जैसें एक माँ की आत्मा अपने खोये हुए बच्चेके आसपास मँडराती है। मैं तुमको एक बच्चीकी तरह अपनाना तो चाहता हूँ, लेकिन अबतक तुम्हारे प्रति मुझमें उतना विश्वास पैदा नहीं हो पाया है। हो सकता है, इसमें तुम्हारा अपना कोई दोष न हो, लेकिन जो चीज है वह तो है ही। तुमको मेरी विचारधारा पूरी तरह समझनी चाहिए। मेरे पास यही एक तरीका है तुम्हारे मार्ग-दर्शनका और अपनी एक पुत्रीकी तरह तुमको अपना सकनेका।

मुझे सचमुच लगता है कि तुम फिर जालमें फँस गई हो। आध्यात्मिक पति एक ही है, सभी स्त्री-पुरुषोंका सच्चा साथी और मित्र एक ही होता है और वह है ईश्वर, जिसे मैं पूरी तरहसे सत्यके रूपमें जानता हूँ। एक ईश्वर ही है, जिसके तईं कोई लिंग भेद नहीं होता। दैहिक विकारोंसे मुक्त तो केवल ईश्वर ही है। अन्य सभी प्रकारके विवाहोंमें न्यूनाधिक मात्रामें वासनाका अंश होता ही है, दोनों पक्ष चाहे कितने ही उच्चादर्शोंसे प्रेरित क्यों न हों। मानवताकी सेवाके निमित्त अपने-आपको अर्पित कर देनेवाले स्त्री-पुरुषोंके लिए अनन्य सम्बन्ध जैसी कोई चीज होती ही नहीं।

इसलिए यदि तुम मेरी बात मानो तो इस तरह एकके-बाद-दूसरे गलत काम के चक्करमें मत पड़ो। फिलहाल तो लगता है कि तुम ऐसे ही चक्करमें पड़ी हुई हो। तुमने वचन दिया है कि तुम किसीके साथ कोई भी अनन्य या गुप्त या बिलकुल निजी सम्बन्ध नहीं रखोगी। तुम केवल अपने उद्देश्य या कार्यके प्रति समर्पित हो, अन्य किसीके भी प्रति नहीं।

तुम्हेंको नियमित रूपसे पत्र लिखते रहना चाहिए।

सत्य ही ईश्वर है। वही तुम्हारा एकमात्र मार्ग-दर्शक, मित्र, साथी और चिरंतन सम्बल बने।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०३)से।

११८. पत्र : रामचन्द्रको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। नी० के लिए एक पत्र साथ रख रहा हूँ।

चूंकि मैं स्वयं शाकाहारी हूँ इसलिए मुर्गी-पालन और अंडे बेचनेका विचार मुझे पसन्द तो नहीं है, फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि किसी भी हरिजन सेवक संस्थाको ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि तुम्हें यह उद्यम शुरू करना ठीक लगे, तो निस्संकोच करो। अंडे किस तरहके होंगे — मुर्गियाँ सामान्यतः जैसे अंडे देती हैं वैसे या नई निर्दोष पद्धतिके जीव-रहित अंडे?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९८) से।

११९. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१७ मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

आप तीन दिन या अधिकसे-अधिक एक पखवारेके लिए यहाँ क्यों आना चाहती हैं? आपने यदि 'गीता' के मूल तत्त्वको थोड़ा भी ग्रहण किया हो तो आप समझ सकती हैं कि इस प्रकारकी इच्छाका दमन करके उसका उत्तोलन शुद्ध कर्मके रूपमें करना चाहिए। आपके लिए शुद्ध कर्मका अर्थ यह होगा कि आप वहीं अपना कर्तव्य करें। आपको अपनी बचतकी राशियोंको सँभालकर रखना चाहिए और यदि आप उन्हें खर्च करनेसे अपनेको न रोक पाती हों तो उसे यहाँ हरिजन-कार्यके लिए भेज दें।

आशा है, मेरे पिछले सभी पत्र आपको मिल गये होंगे।

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स। सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। एस० एन० २०६०२ से भी।

१२०. पत्र: नरहरि द्वा० परीखको

१७ मार्च, १९३३

चि० नरहरि परीख,

तुमने महादेवको लिखा अपना पत्र क्यों फाड़ डाला? जरा सोचो इसमें कितना क्रोध, कितनी हिंसा थी! नारणदासने पत्रके टुकड़ोंको जोड़कर उसकी पूरी नकल करके यहाँ भेजी है। नारणदासका चाहे कितना भी दोष क्यों न हो फिर भी उक्त पत्र फाड़नेका अधिकार तुम्हें नहीं था। तुम्हारा पत्र और नारणदास द्वारा महादेवको लिखा संक्षिप्त उत्तर भी मैं पढ़ गया हूँ। उसकी मुझपर जो छाप पड़ी वह मैंने संक्षेपमें नारणदासको जता दी है। मैंने सूचित कर दिया है कि उक्त पत्र तुम्हें पढ़वा दिया जाये।

यह सच है कि नारणदासपर मेरा उतना ही विश्वास है जितना कि तुमने सुना है। यही मेरा स्वभाव है। उतना विश्वास सिर्फ उसीपर हो ऐसा नहीं है। मुझे उतना ही विश्वास तुमपर, पण्डितजी पर, काकापर है और इसी प्रकार तुम इसमें अन्य नाम भी जोड़ सकते हो। इन सब लोगोंके विरुद्ध जबतक मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलेगा तबतक मैं कुछ भी माननेको तैयार नहीं हूँगा। इसलिए जो तुम्हारे सुननेमें आया उसमें अचरजकी कोई बात नहीं थी, न होनी चाहिए थी। किन्तु नारणदासके बारेमें मैं जो मानता हूँ वह यह है कि उसमें कार्यदक्षता, धैर्य, विवेक-शक्ति, समता, निष्पक्षता और दृढ़ता आदि गुण बहुत उच्च कोटिके हैं। उसके ये गुण मुझे मुग्ध कर देते हैं। अतः मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि तुम और अन्य सह-योगी उसके गुणोंकी कद्र करें तथा उसकी सेवासे पूरा लाभ उठायें। किन्तु मेरे कहने-भरसे उसमें ये गुण नहीं आ सकते और न अन्य लोग उन्हें देख सकते हैं। यदि ये गुण तुम्हें नजर ही नहीं आते तो तुम क्या कर सकते हो? इससे स्पष्ट है कि यदि ये गुण तुम्हें दिखाई नहीं देते तो तुम उससे जितनी सेवा लेना चाहते हो उतनी कदापि नहीं ले सकते। इतना तो नारणदासके सम्बन्धमें मेरी मान्यताके बारेमें हुआ। तुम्हारा पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा। उसका पृथक्करण करने या उसमें जो नासमझी की बातें हैं उन्हें बतानेका मुझे समय नहीं है, बतानेकी आवश्यकता भी नहीं है। मैं समझता हूँ उससे मुझे जितना सार ग्रहण करना चाहिए था उतना मैंने कर लिया है। नारणदासको मैंने जो सूचनाएँ दी हैं उनसे तुम उन्हें देख सकोगे।

मैं तुमसे जो चाहता हूँ वह यह है कि तुम नारणदाससे मिलकर शान्त चित्तसे विवेचना करके जो सुधार करने लायक हों सो करवा लो। जो बात नारणदासके गले न उतरे उसके बारेमें तटस्थ रहो। मैं समझता हूँ कि तुम ऐसा तो नहीं मानते

या चाहते कि आश्रमकी व्यवस्थाका भार नारणदासके बजाय किसी अन्यको सौंप दिया जाये। यदि तुम ऐसा मानते या चाहते हो तो मुझे अवश्य लिखना। किन्तु यदि ऐसी बात न हो तो नारणदासको जहाँतक समझाया जा सके उतना समझाना तुम्हारा कर्तव्य है। आश्रमके हितके लिए तुम भी उतने ही जिम्मेवार हो जितना मैं अथवा नारणदास या अन्य कोई है। हम जो हैं सो हैं और हमारे कारण आश्रमका जो होना हो सो हो। इसलिए तुम पराये बनकर नहीं रह सकते। हिन्दू विवाहकी भाँति आश्रमवासियोंका सम्बन्ध अटूट है। गौवर बिल अभी तो पास नहीं हुआ है किन्तु पास हो जानेके बाद भी जिसे प्रचलित अटूट विवाह-प्रथासे चिपके रहना होगा वह तो चिपका ही रहेगा। गौवर बिल अनमेल और जबरदस्ती हुए विवाहोंको ध्यानमें रखकर बनाया गया है। हमारे इस विवाहको तुम अनमेल या बलात् हुआ तो नहीं मानोगे? यह तो स्वयंवर है। इस बातको ध्यानमें रखते हुए और यह समझकर कि जो अनिवार्य है उसे सहनेमें ही निस्तार है, तुम्हें तदनुसार व्यवहार करना चाहिए। तुम्हारा पत्र मैंने बहुत उतावलीमें पढ़ा है। इसलिए मेरे करने लायक यदि कुछ छूट गया हो तो मुझे अवश्य बताना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०५७) से।

१२१. पत्र : प्रोफेसर सोरिजको

१७/१८ मार्च, १९३३

प्रिय प्रोफेसर सोरिज,

कल आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई और दिलचस्प जानकारी प्राप्त हुई कि गोआके ईसाइयोंमें जाति-प्रथाका पालन होता है और वह इतने तक ही सीमित है कि अन्तर्जातीय विवाह न किये जायें।

आप यदि गोआवासी हरिजनों और अन्य हिन्दुओंके बारेमें मुझे तुलनात्मक आँकड़े भेज सकें और उसमें यह भी बता सकें कि गोआ या, कहिए, पुर्तगाली भारत में कितने हरिजन कौन-से पेशे करते हैं, तो मैं आपका बड़ा आभार मानूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०५९७) से।

१२२. टिप्पणियाँ

छुआछूतसे बुराइयाँ

तेलुगु जिलोंमें और उनसे मिले हुए तमिल जिलोंमें भी मदीगा और माला जातिके लोग अछूत माने जाते हैं। ये लोग मातास्मा भारियम्मा और गंगाम्माको बलिदान देनेके लिए गाय-भैंस मारते हैं। इसमें तो सन्देह नहीं कि आवश्यकता और संकटके समय कुछ सवर्ण लोग भी इन देवियोंको बलि चढ़ानेकी मनौती मानते हैं, पर बलिदानका असल काम ये तथाकथित अवर्ण ही करते हैं। ये अछूत खुले मैदानमें बलिदान ही नहीं करते, बल्कि गोमांस भी खाते हैं। वे मुर्दार मांस भी खाते हैं। सवर्ण हिन्दू सूअरका मांस नहीं खाते, किन्तु ये खाते हैं। इसलिए मेरी विनय है कि आप अछूतोंको सलाह दें कि वे बलिदान करना और मुर्दार मांस खाना छोड़ दें। मुर्दार खानेसे ही उनका शारीरिक ह्रास हो रहा है। हम लोगोंको, जो अछूतोद्धारका काम कर रहे हैं, क्या आप कोई सन्देश भेजनेकी भी कृपा करेंगे?

आन्ध्र प्रान्तीय किसान-सभाके मन्त्रीके एक लम्बे पत्रका यह एक संक्षिप्त अंश है। इसमें सन्देह नहीं कि हरिजनोंके विरुद्ध जो दुर्भाव फैला हुआ है उसका बहुत-कुछ कारण उनकी मुर्दार मांस और विशेषकर गोमांस खानेकी आदत है। किन्तु हिन्दू धर्मकी या यों कहना चाहिए कि सवर्ण हिन्दुओंकी, सबसे बड़ी कमजोरी इसी बातमें प्रकट होती है कि वे अपने हिन्दू भाइयोंके ही एक समुदायको अछूत समझते हैं और अत्यन्त निठुराईसे उनकी उपेक्षा करते हैं। इसलिए अछूतोंके वर्तमान रहन-सहनके लिए हम ही तो जिम्मेवार हैं। परन्तु सुधारका मौका हाथसे निकल नहीं गया है। हरिजनोंको तो समझ लेना चाहिए कि अछूतपन कभीका मर चुका है। अलबत्ता, उसके अनिष्ट परिणाम तो बहुत कालतक चलते रहेंगे। वे कितने दिन तक चलते रहते हैं, यह इस प्रश्नके प्रति दोनों वर्गोंकी उपेक्षापर निर्भर है। परन्तु सवर्ण हिन्दुओंकी जवाबदेही इस बारेमें उनसे कहीं अधिक और भारी है। अगर वे अपना कर्तव्य निभायेंगे और पूरा दिल लगाकर काम करेंगे तो उन्हें इन बलिदानों और मुर्दार मांस खानेकी आदतको रोकनेमें सफलता अवश्य मिलेगी। समाजके अन्ध-विश्वासों और बुरी आदतोंको छुड़वानेके लिए बस ज्ञानके प्रचारकी जरूरत है। परन्तु मैं सुधारकों और साधारणतः तमाम सवर्ण हिन्दुओंसे यह एक बात बार-बार कह देना चाहता हूँ कि अगर वे इस सुधारको अछूतोद्धारकी एक शर्त बना देंगे तो हरिजनोंकी एक भी बुरी आदतको दूर न कर सकेंगे। बल्कि हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि ये बुराइयाँ अछूतपनसे पैदा हुई हैं, न कि यह अछूतपन इन

बुराइयोंसे पैदा हुआ है। कमसे-कम मौजूदा अछूतपन तो निश्चय ही इन बुराइयोंका परिणाम नहीं है।

जहाँतक मुर्दार मांस खानेकी बुराईका सवाल है, पाठक 'हरिजनबन्धु' में प्रकाशित मेरे एक लेखमें उसके सम्बन्धमें कुछ ठोस सुझाव देखेंगे। इस लेखका अनुवाद[1] अन्यत्र दिया जा रहा है।

ईसाई हरिजन

'ईसाई हरिजन', इन दोनों शब्दोंमें अन्तर्विरोध है — इसलिए कि भारतसे हम जिस अस्पृश्यताको हटाना चाहते हैं, वह (सुधारकोंकी दृष्टिमें) हिन्दू धर्मका एक विशेष अभिशाप और (सनातनियोंकी दृष्टिमें) उसको मिला एक विशेष वरदान है। परन्तु हिन्दुओंके सम्पर्कमें आनेसे ईसाइयोंको ऐसी छूत-सी लग गई कि कमसे-कम मलाबारमें तो ईसाइयोंमें भी अस्पृश्यता दिखाई पड़ने लगी है और उसका स्वरूप लगभग वही है जो हिन्दुओंके बीच है। एक मलाबारी ईसाई सज्जनने श्रीयुत अमृतलाल ठक्करको लिखा है:[2]

> विख्यात वाइकोम सत्याग्रहके दिनोंसे त्रावणकोरके हरिजनोंकी वास्तविक दशा . . .के बारेमें काफी विस्तृत जानकारी तो मिलती रही है, लेकिन लोगोंको इसका गुमान भी नहीं है और न किसीको इसका पता लगा है . . . कि त्रावणकोरके ईसाई हरिजन नागरिक या सामाजिक अधिकारों और भयंकर गरीबीके मामलेमें बिलकुल अपने हिन्दू हरिजन भाइयोंकी ही तरह हैं। पिछले सालकी जन-गणनाकी रिपोर्टके मुताबिक त्रावणकोरके पुलाया या चेरूमा, परिया या साम्भव, इगनाओं या ईनापुलाया और कुछ अन्य छोटी-मोटी जातियोंके लोगोंकी संख्या ६,००,००० थी। ये लोग त्रावणकोरकी बहिष्कृत जातियोंमें सबसे निचले तबकेके माने जाते हैं।
>
> कुल मिलाकर देखें तो धर्मान्तरित (ईसाई) पुलायों या परियाओंकी स्थिति वैसी ही है जैसी अन्य जातियोंकी। त्रिवेन्द्रम-जैसे कुछ शहर जो इसके अपवाद कहे जा सकते हैं वे भी वास्तविक अपवाद नहीं हैं। यहाँ भी अन्य जातियोंसे धर्मान्तरित इन लोगोंकी स्थितिमें कोई अन्तर है तो यही कि ये लोग कुछ ज्यादा दिखावा करते हैं और यहाँ उन लोगोंके बीच मुट्ठी-भर ऐसे लोग हो सकते हैं जो कुछ ज्यादा पढ़े-लिखे हैं या रोजी-रोटी कमानेके कुछ बेहतर धन्धोंमें लगे हुए हैं।
>
> सार्वजनिक संस्थाओं, सड़कों, सरायों, विश्रामालयों, मन्दिरों, गिरजों, कचहरियों, व्यावसायिक संस्थानों, दुकानों और यहाँतक कि शराबघरोंमें भी इन

१. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा", १२-३-१९३३।

२. यहाँ कुछ ही अंश दिये जा रहे हैं।

> लोगोंका प्रवेश उतना ही वर्जित है जितना अन्य हरिजनोंका। नम्बूदिरी-जैसे सवर्णोंके लिए तो दोनों ही जातियोंके लोग आज भी अदर्शनीय बने हुए हैं।
>
> दक्षिणमें नडार और उत्तरमें सीरियाई-जैसे खाते-पीते ईसाई समुदाय, हम ईसाइयोंके लिए वैसे ही हैं जैसे कि हमारे हिन्दू हरिजन भाइयोंके लिए सनातनी लोग हैं। (ईसाई हों या हिन्दू) हम हरिजनोंके लिए सैंकड़ों गिरजोंके दरवाजे बन्द रहते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि निचले तबकेके ईसाई हरिजनोंके लिए अपने पंचम भाइयोंके साथ मिलकर काम करना क्यों जरूरी है। . . .
>
> हमें यह भी बतलानेकी अनुमति दीजिए कि हम अधिकांशतः खेतिहर कम्मी लोग हैं और इसलिए हम अपने सवर्ण हिन्दू और ईसाई मालिकोंके ही आश्रित रहे हैं और आज भी हैं। बढ़ती गरीबी और उत्तरोत्तर छोटे-छोटे टुकड़ोंमें भूमिके बँटते जानेसे हमारी आर्थिक दशा दिन-दिन बिगड़ती जा रही है। . . .

इस प्रकारकी स्थिति निस्सन्देह हिन्दू धर्मपर एक कलंक है, लेकिन धर्मके लिए यह यदि अधिक नहीं तो भी किसी कदर कम कलंकपूर्ण नहीं है। वर्तमान आन्दोलन स्वत: ईसाई हरिजनोंके लिए सहायक सिद्ध हो रहा है। लेकिन यदि अब भी लोग इस आन्दोलनका लाभ उठाकर ईसाई धर्मसे अस्पृश्यताको दूर करनेकी कोशिश नहीं करेंगे तो मुझे आश्चर्य होगा। मैं यह भी आशा करता हूँ कि नडारों और एजवा समुदायोंके अनेकानेक शिक्षित लोग खुद हरिजनोंके अन्दर मौजूद — तरह-तरहके भेदभावोंको मिटानेके लिए अपनी शक्तिके अनुसार प्रयत्न कर रहे होंगे।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-३-१९३३

१२३. हरिजनोंके विचार

'हरिजन' के पिछले अंकमें पाठकोंने ठक्कर बापाके पंजाबके दौरेका वह विवरण पढ़ा और भली-भाँति समझ लिया होगा जो उन्होंने स्वयं ही तार द्वारा भेजा था। गुजरातमें, विशेषकर हरिजन लोग, उनको प्रेमसे ठक्कर बापा ही कहते हैं। उनसे मुलाकात करनेवाले हरिजन प्रतिनिधि-मण्डलोंने अपनी ओरसे जो मानपत्र उनको भेंट किये थे, उनकी प्रतियाँ मेरे पास भी भेजी हैं। जालंधर नगरके आदि धर्म-मण्डल और लाहौर शहरके बाल्मीक आदि धर्म-मण्डल द्वारा भेंट किये गये मानपत्रमें यह कहा गया है:

> पंजाब प्रान्तमें उच्च वर्णके घमंडी हिन्दुओंने समाजमें हमें ऐसी अधम और पतित अवस्थामें पहुँचा दिया है जिसके बारेमें कुछ कहा नहीं जा सकता। हमारे स्पर्श-मात्रसे वे अपने-आपको अपवित्र मानने लगते हैं। सार्वजनिक स्थानोंमें हमारा प्रवेश और सार्वजनिक कुओं तथा तालाबोंसे पानी लेना तक आपत्ति-

जनक समझा जाता है। हिन्दू धोबी और नाई हम लोगोंके कपड़े धोने और हजामत बनानेको तैयार नहीं होते। हमें हिन्दू भोजनालयोंमें भोजन करनेकी अनुमति नहीं। हमें अपने विवाहोंमें बैंड, पालकियाँ आदि इस्तेमाल नहीं करने दी जातीं। पर उनके विवाहोंमें हम लोगोंको हिन्दू वधुओंकी पालकियाँ उठानेपर विवश किया जाता है। हमारे अच्छे कपड़े पहननेपर भी उनको नाराजी होती है। पंजाब प्रान्तके दलित वर्गोंके सामने कई कठिनाइयाँ हैं। उच्च वर्गके हिन्दुओंने उनको हर तरफसे गिरा और दबाकर रखा है। जातिकी समस्या बड़ी दुखदायी बन गई है। उनके रहनेके मकानोंको भी उनकी अपनी सम्पत्ति नहीं माना जाता। गाँवों और शहरोंमें उनकी आर्थिक दशा बहुत ज्यादा गिर गई है, और उनके उत्थानके लिए एक जोरदार प्रचार-आन्दोलन दरकार है।

यदि पंजाब-जैसे उन्नत प्रान्तमें उनकी दशा इतनी खराब है, तब फिर भारतके अन्य प्रान्तोंमें तो पूछना ही क्या! और जैसा कि ठक्कर बापाके तारसे स्पष्ट है, हरिजनोंको कृषि-भूमिके मालिकाना अधिकारसे वंचित करनेके लिए कानूनने सवर्ण हिन्दुओंके साथ जैसे एक षड्यन्त्र रच रखा है। हम आशा करते हैं कि पंजाबकी अनेकानेक समाजोद्धारक संस्थाएँ ऊपर गिनाई निर्योग्यताओंमें कुछको तो तत्काल दूर करनेके लिए अवश्य ही एक सम्मिलित प्रयत्न करेंगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-३-१९३३

१२४. इन अन्त्यजोंके प्रति भी

इस लेखके शीर्षकके लिए मैंने रस्किनका एक बहुप्रचलित एवं सुप्रतिष्ठित मुहावरा उधार लिया है, और उधर उन्होंने यह मुहावरा 'बाइबिल'से लिया था। मूल मुहावरेमें भी मैंने 'भी' (इविन) शब्द जोड़ दिया है और 'इस' (दिस) को बदलकर 'इन' (दीज) कर दिया है।[1] मैं जो चाहता हूँ उसे पूरी तरह कहनेके लिए यह आवश्यक था। हरिजनोंकी पंक्तिमें भंगी लोग सबसे अन्तमें खड़े दीखते हैं, यद्यपि वे समाजके सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य — उतने ही अनिवार्य जितनी एक बातमें माता अपने बच्चोंके लिए होती है — सदस्य हैं। यदि सवर्ण हिन्दुओंको पाखाने आदिकी सफाईका काम स्वयं करना पड़ता तो भंगियोंको यह काम जिन गन्दे तरीकोंसे करना पड़ता है उनमें से कुछ तो कबके समाप्त हो चुके होते। मथुराके अस्पृश्यता-विरोधी बोर्डने वहाँके नगरनिगमको जो पत्र भेजा है, उसका कुछ अंश मैं नीचे उद्धृत कर रहा हूँ:[2]

१. मूल अंग्रेजीमें गांधीजीने रस्किन द्वारा प्रयुक्त **बाइबिल**के मुहावरे "अन टु दिस लास्ट" को किंचित् बदले हुए रूपमें दिया है — अर्थात् "इविन अन टु दीज लास्ट"।

२. गांधीजी द्वारा उद्धृत अंशके कुछ हिस्से ही दिये जा रहे हैं।

> ...कोई क्षीणकाय, दुर्बल और वय-जर्जर स्त्री अपने सिरपर विष्टासे भरी टोकरी लिये शहरकी गलियोंसे विष्टा जमा करनेके गढ़े या उसे बहानेके स्थलको चली जा रही है — प्रतिदिन सुबह-सुबह यह करुण दृश्य देखकर जिसका मन द्रवित न हो उठता हो, वह अवश्य ही बड़ा निष्ठुर हृदय व्यक्ति होगा। पुराने जमानेसे चली आ रही यह बात सर्वथा अमानवीय, क्रूरतापूर्ण और बर्बरताका अवशेष है, यह अस्वास्थ्यकर भी है। . . . इसका उपाय सरल है। आप ठेले खरीदकर अपने इन मूक सेवकोंको दे दें, ताकि ये विष्टाको अपने सिरोंपर ले जानेके बजाय उन ठेलोंमें ले जायें। एक और भी बातका ध्यान रखा जाये तो अच्छा हो। हर पाखानेमें मिट्टी या धातुका एक बरतन हो, ताकि मल साफ करनेका तरीका उतना गन्दा न रहे।

पाठकगण लेखक द्वारा प्रयुक्त किंचित् आडम्बरपूर्ण भाषाका उपहास न करें। उन्होंने जो-कुछ कहा है वह परम सत्य है। भंगियोंने अबतक तो अपना काम बिना किसी शिकवा-शिकायतके किया है, और इसीलिए सवर्ण लोगोंने यह जाननेकी फिक्र नहीं की है कि ये लोग किस प्रकार सदियोंसे समाजकी सेवा करते आ रहे हैं। यदि हमने समाजके इन सेवकोंको अस्पृश्य न माना होता तो उनकी या उनके कामकी ओरसे हम अपनी आँखें बन्द न कर लेते। मगर हमने यही करना पसन्द किया है और भंगियोंको नरकमें डाल रखा है, जिसका परिणाम यह हुआ है हम खुद ही प्रतिदिन पाखाना कहे जानेवाले इस नरकमें गिरते हैं और न तो अपने चारों ओरकी गन्दगीको देखनेकी फिक्र करते हैं और न उसमें भरी दुर्गन्धकी ओर ध्यान देते हैं। जो बात मथुराके भंगियों और नगरपालिका पर लागू होती है वही कमोबेश भारतके सभी भंगियों और नगरपालिकाओं पर लागू होती है। मथुराके अस्पृश्यता-विरोधी बोर्डने जो सुधार सुझाया है वह अत्यन्त वांछनीय है और बिना किसी ज्यादा खर्चके उसे प्रत्येक नगरपालिका लागू कर सकती है।

अभी पिछले ही दिनों मैंने इलाहाबादसे प्रकाशित 'लीडर' में इलाहाबादकी गलियोंमें एक जमींदार द्वारा शुरू किये गये सफाईके कामके बारेमें पढ़ा था। वह काम अभी दो दिन ही चल पाया था कि इस कामको शुरू करनेवाले उस उत्साही नौजवानने टोकरियोंके बदले कोई और तरीका इस्तेमाल करनेकी सोची। तो मैं एक उद्धरण २७ फरवरीके 'लीडर' से भी दे रहा हूँ:

> अस्पृश्यता-विरोधी कार्यकर्त्ता, इन दिनों लोगोंके निजी पाखानोंसे मल आदि उठानेके लिए मेहतर लोग जिन टोकरियोंका इस्तेमाल करते हैं, उनके बदले लोहेके हलके ठेले, जिनमें अलग कर दिये जा सकनेवाले डोल लगे रहेंगे, दाखिल करनेकी कोशिश कर रहे हैं। प्रस्तावित योजनाके अनुसार उन ठेलोंका खर्च मेहतरोंसे काम लेनेवाले लोग उठायेंगे। ऐसा मालूम हुआ है कि इलाहाबाद लॉ जर्नल कम्पनीके प्रबन्धकने प्रचार-कार्यको ध्यानमें रखकर अपने खर्चपर गन्दगी हटानेवाली छोटी गाड़ीका एक नमूना तैयार करवानेका काम अपने जिम्मे

लेनेकी उदारता दिखाई है। इस योजनाके अनुसार प्रत्येक निजी पाखानेमें दो बर्तन रखने होंगे। किसी उच्च गोत्रीय ब्राह्मण महिलाने अपना नाम जाहिर किये बिना कालिमणिका स्थानमें या उसके आसपास एक सार्वजनिक शौचालय बनवानेके लिए अनुदान दिया है। नगरपालिका अधिकारी उस क्षेत्रमें ज्यों ही जलकी आपूर्ति और उसके बहावकी समुचित व्यवस्था कर देंगे त्यों ही यह काम शुरू कर दिया जायेगा।

आशा है, यह खबर छपनेसे लेकर आजतक के सप्ताहोंके दौरान यह उत्साह ठंडा नहीं पड़ गया होगा। यदि कुछ सच्चे और उत्साही कार्यकर्त्तागण सन्नद्ध रहेंगे तो यह अत्यावश्यक सुधार प्रत्येक शहर और नगरमें प्रारम्भ किया जा सकता है। अगर यह खबर सही है कि सार्वजनिक पाखाना बनवानेके लिए एक ब्राह्मण महिलाने अनुदान देनेकी उदारता दिखाई है तो इससे श्रीयुत हीरालाल शाहको बड़ी प्रसन्नता होगी, क्योंकि वे अपने इस प्रस्तावपर बड़े उत्साहके साथ आग्रह करते रहे हैं कि मेहतरोंके लिए अपना दैनिक कार्य खत्म करनेके बाद नहाने और कपड़े बदलनेकी व्यवस्था होनी चाहिए।[1]

इस प्रकार तीन ऐसे सुधार हैं जिन्हें तनिक-सी दूरदर्शिता दिखानेसे और बहुत थोड़े अतिरिक्त खर्चमें भारत-भरमें प्रारम्भ किया जा सकता है। इससे एक ओर तो हरिजनोंको सुविधा मिलेगी और वे सफाईसे रह सकेंगे और दूसरी ओर यह आम तौरपर सारे समाजके स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होगा। तात्पर्य यह कि हम अपने साथ जैसे व्यवहारकी अपेक्षा दूसरोंसे रखते हैं वैसा ही व्यवहार हमें समाजके इन 'अन्त्यजोंके प्रति भी' करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १८-३-१९३३

१२५. कुछ उलझन-भरे प्रश्न

मूर्तिपूजाके विरोधी एक शिक्षकने ये तीन प्रश्न पूछे हैं:

१. श्री रामचन्द्रके जीवनका अनुकरण करनेवाले हिन्दूके लिए क्या यह भी आवश्यक है कि वह मन्दिरमें जाकर उनकी प्रतिमाके दर्शन करे? क्या दर्शन सदाचरणसे श्रेष्ठ है?

२. यदि हम किसी मनुष्यको सिर झुकाकर या हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं तो वह भी उसका उत्तर देता है, किन्तु प्रतिमा तो नहीं देती। फिर उसको नमस्कार करनेका क्या प्रयोजन हो सकता है? जो जवाब ही न दे उसको पत्र लिखनेसे क्या लाभ?

१. देखिए "एक विचारणीय योजना", १९-३-१९३३।

३. जिस व्यक्तिकी प्रतिमाकी हिन्दू पूजा करता है, सम्भव है, उसने अपने जीवनमें गलत काम भी किये हों। जो भक्त उसकी प्रतिमाकी पूजा करता है, हो सकता है, वह उसके गलत कामोंकी भी नकल करे। इससे क्या उसकी हानि न होगी?

इस तरहके प्रश्न पहले भी बहुत पूछे जा चुके हैं और उनके उत्तर भी दिये जा चुके हैं। किन्तु मन्दिर-प्रवेशके सवालने उन्हें फिरसे खड़ा कर दिया है और ये सवाल इन पत्र-लेखक भाई-जैसे ईमानदारीसे शंका करनेवाले लोगोंके मनोंको इस तरह मथ रहे हैं मानों पहले कभी उनके जवाब दिये ही नहीं गये। तो मैं उत्तर देनेकी भरसक कोशिश करूँगा, हालाँकि मुझे तो इस बातमें सन्देह है कि शंका करनेवाले ऐसे लोगोंको सन्तुष्ट भी किया जा सकता है।

किसी भी हिन्दूके लिए रामचन्द्र (की प्रतिमा)की पूजा करनेके लिए मन्दिरमें जाना आवश्यक नहीं है। यह चीज उन लोगोंके लिए है जो मन्दिरमें रामकी प्रतिमा के दर्शन किये बिना अपने रामको अपने ध्यानमें नहीं उतार सकते। हो सकता है यह एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है, किन्तु सचाई यही है कि उसका राम जितना उस मन्दिरमें निवास करता है उतना और कहीं नहीं करता। मैं तो इस सहज-सरल श्रद्धामें कोई विक्षेप नहीं डालना चाहूँगा।

पहले प्रश्नके साथ जो उप-प्रश्न खड़ा हुआ है, वह ठीकसे प्रस्तुत नहीं किया गया है। दर्शन और कर्ममें तुलनाका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अगर ऐसा प्रश्न उठ सकता तो मैं निस्संकोच कहता कि कर्म दर्शनसे श्रेष्ठ है। किन्तु, दर्शनका प्रयोजन तो कर्मकी प्रेरणा ग्रहण करना, आत्माकी स्थिरता और शुद्धि प्राप्त करना है। इस प्रकार दर्शन कोई सदाचरणका विकल्प नहीं है। वह उसमें प्रवृत्त होनेकी एक प्रेरणा-मात्र है।

दूसरा प्रश्न पूछनेमें तो शिक्षक महोदयने मन्दिरमें पूजा करनेके सारे मर्मको ही भुला दिया है। मैं जब किसी जीवित व्यक्तिको नमस्कार करता हूँ और वह उसका यथोचित उत्तर देता है, तो वह सौजन्यका पारस्परिक आदान-प्रदान होता है और उसमें कोई खास खूबी नहीं होती। वह सुसभ्य लालन-पालनका द्योतक हो सकता है। मन्दिरमें तो लोग आत्मशुद्धिके लिए जाते हैं। पूजा करनेवाला उस समय, उसके अन्दर जो-कुछ भी सत् है, उस सबका आह्वान करता है। किसी जीवित व्यक्तिको नमस्कार करके तो वह, यदि उसका नमस्कार निस्स्वार्थ है तो, उसीके अन्दरके सत् अंशको उभार सकता है। जीवित व्यक्तिमें तो न्यूनाधिक दोष होते ही हैं, जैसा कि स्वयं उस नमस्कार करनेवाले व्यक्तिमें होगा। किन्तु, मन्दिरमें वह मूर्तिमन्त ईश्वरकी पूजा करता है, जो इतना पूर्ण और दोष-रहित है जितनेकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। जीवित व्यक्तियोंको पत्र लिखें तो उनके उत्तर बराबर मिलेंगे ही, यह आवश्यक नहीं है और अगर मिलें भी तो अक्सर ऐसा देखा गया है कि अन्तमें व्यथा और वेदना ही पत्र लिखनेवाले के हाथ लगती है। किन्तु ईश्वरको, जो भक्तकी कल्पनाके अनुसार मन्दिरोंमें रहता है, पत्र लिखनेमें न कागज, न स्याही

और न कलमकी जरूरत पड़ती है — यहाँतक कि वाणीकी भी नहीं। उसकी तो मूक प्रार्थना ही उसका पत्र होती है और उसका उत्तर उसे निश्चित रूपसे मिलता है। यह सारी विधि श्रद्धाका एक सुन्दर क्रियागत रूप होती है। इसमें कोई प्रयास निष्फल नहीं होता, हृदयको कोई व्यथा नहीं सहनी पड़ती, गलत समझे जानेका कोई भय नहीं होता। पत्र-लेखकको मन्दिर, मसजिद या गिरजेमें पूजाके सीधे-सादे अर्थको समझनेकी कोशिश करनी चाहिए, यदि वे यह समझ लें कि ईश्वरके इन विभिन्न प्रकारके निवास-स्थलोंमें मैं कोई अन्तर नहीं करता तो मेरा आशय वे ज्यादा अच्छी तरह समझ सकेंगे। ये स्थल वैसे ही तो हैं जैसा हमारी श्रद्धाने उन्हें बनाया है। ये किसी प्रकार अदृश्यतक पहुँच पानेकी मनुष्यकी पिपासाके परिणाम हैं।

तीसरे प्रश्नसे यह प्रकट होता है कि पत्र-लेखकने, शायद हिन्दू अवतारोंके सिद्धान्तको समझनेकी कोशिश नहीं की है। श्रद्धालु हिन्दूके लिए तो उसकी कल्पनाका अवतार सर्वथा दोष-रहित ही है। हिन्दू भक्तोंका कृष्ण एक सर्वथा निर्दोष और पूर्ण व्यक्तित्व है। आलोचना करनेवालों की तीखी बातोंका उनपर कोई असर नहीं होता। कृष्ण और रामके लाखों भक्तोंके जीवन इन्हीं नामोंसे ईश्वरकी उपासना करते-करते बिलकुल बदल गये हैं। यह कैसे होता है, मुझे नहीं मालूम। यह एक रहस्य है। मैंने इसे सिद्ध करनेकी कोशिश भी नहीं की है। यद्यपि मेरी बुद्धि और हृदयने बहुत पहले ही यह समझ स्वीकार लिया है कि ईश्वरका सबसे बड़ा गुण और उसका नाम सत्य है, लेकिन मैं सत्यको रामके नामसे भी जानता हूँ। मेरी परीक्षाकी कठिनतम घड़ीमें इस एक नामने ही मेरी रक्षा की है और वह आज भी कर रहा है। हो सकता है, इसका कारण मेरा बचपनका संस्कार हो; सम्भव है, इसकी वजह तुलसी-दास द्वारा मेरे मनमें रामके प्रति उत्पन्न किया गया तीव्राकर्षण ही हो। लेकिन, जो प्रबल तथ्य है वह तो है ही। और ये पंक्तियाँ लिखते हुए भी मेरे मनमें बचपनकी वह स्मृति ताजा हो आई है जब मैं अपने पैतृक घरके निकट स्थित राम-मन्दिरमें जाया करता था। तब मेरा राम वहीं निवास करता था। उसने मुझे अनेक तरहके भय और पापोंसे बचाया। मेरे लिए वह अन्धविश्वास नहीं था। वहाँकी मूर्तिकी देख-रेख करनेवाला आदमी भले ही बुरा रहा हो। मुझे उसके किसी दोषकी जानकारी नहीं है। हो सकता है, उस मन्दिरमें कुकृत्य भी किये जाते रहे हों। मगर मुझे उसकी भी कोई जानकारी नहीं है। इसलिए मुझपर उनका कोई प्रभाव पड़नेवाला नहीं है। जो बात मुझपर लागू होती थी और होती है, वही करोड़ों हिन्दुओंपर भी लागू होती है। मैं चाहता हूँ कि मेरे हरिजन भाई भी, यदि वे चाहें तो, अपने करोड़ों सहधर्मियों, तथाकथित हिन्दुओंके साथ मन्दिरोंमें पूजा करनेमें शरीक हो सकें। अपने मन्दिरोंके द्वार अपने हरिजन भाइयोंके लिए खोलनेका कर्तव्य उन सवर्ण हिन्दुओंका है। मन्दिरोंमें पूजा करना मानव जातिकी एक आकुल आध्यात्मिक आवश्यकताकी पूर्ति करता है। उसमें सुधारकी गुंजाइश अवश्य है, किन्तु वह कायम तो मानवके अस्तित्व पर्यन्त रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-३-१९३३

१२६. अनुकरणका भय

मैं दर्शन-शास्त्रका एक विनम्र अध्येता हूँ और इसलिए मनुष्य-जातिके एक हिस्सेकी प्रगतिके मार्गमें आजतक बाधा बनी अस्पृश्यताको मिटानेके आन्दोलनके औचित्यको भली-भाँति समझता हूँ। मैं उपवासके द्वारा प्रायश्चित्त करने की विधिको भी समझ सकता हूँ, लेकिन मेरी एक ही उलझन है। 'भगवद्-गीता' में कहा है कि "श्रेष्ठजन जैसा आचरण करते हैं, अन्य जन भी वैसा ही करते हैं।" सो यदि आप जैसा महात्मा उपवासका उदाहरण प्रस्तुत करता है तो क्या ऐसा खतरा नहीं है कि अपने आचरणके समर्थनमें आपका उदाहरण देकर वे आपका अन्धानुकरण करें? फिर, आप अन्तरात्माके निर्देशकी भी बात कहते हैं। इस हालतमें तो हर आदमी अन्तरात्माके ही निर्देशके नामपर बोलने का दावा करने लगेगा और फिर जो अन्तर्जातीय विवाह और खान-पानका सिलसिला चलनेपर समाजमें विशृंखलता आयेगी उसके लिए इस अन्तरात्माके निर्देशवाली बातको ही जिम्मेदार माना जायेगा। और जब अन्तरात्माके निर्देश की आड़में ऐसी घोर अनुशासनहीनताका बोलबाला हो जायेगा तो फिर आप सामान्य जनोंका, विशेषकर अस्पृश्योंका स्तर ऊपर कैसे उठायेंगे?

यह तो बता ही देना चाहिए कि मैंने लेखकके काफी लम्बे पत्रको यहाँ बहुत संक्षेपमें पेश किया है। किन्तु, मुझे पूरा विश्वास है कि पत्रका संक्षेप करनेसे पत्र-लेखककी बातका सार किसी तरह छूट नहीं पाया है। मेरा उत्तर सीधा-सादा है। उन्होंने 'गीता' का जो श्लोक उद्धृत किया है, उसकी शिक्षाको मैं स्वीकार करता हूँ। निश्चय ही इस श्लोकमें समाजके नेताओंको ऐसे आचरणके खिलाफ चेतावनी दी गई है जिसका अनुकरण करनेसे समाजको हानि हो सकती है। यह ऐसे आचरणपर लागू नहीं हो सकता जिसका समझदारीसे अनुकरण करनेपर हानि होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। क्योंकि अगर यह उसपर भी लागू हो तो उसका मतलब तो प्रगतिका बिलकुल बन्द हो जाना और किसीके द्वारा कोई अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करनेके क्रमकी समाप्ति ही होगा। जिस आचरणके विरुद्ध कुछ कहा ही नहीं जा सकता हो, ऐसे आचरणके बारेमें भी यह खतरा बराबर रहता है कि लोग उसका गलत अर्थ निकालकर गलत तरीकेसे उसका प्रयोग कर सकते हैं, किन्तु जो सही काम है वह तो गलत अर्थ लगाये जाने और गलत तरीकेसे प्रयुक्त किये जानेके खतरेके बावजूद करना ही है और सदासे किया ही जाता रहा है। अपने उपवासको मैं सब तरहसे अच्छा और अपना कर्तव्य-रूप मानता हूँ। अगर उस उपवासके साथ जुड़ी शर्तोंका खयाल रखते हुए सम्पूर्ण मानव-जाति भी उसका अनुकरण करे तो भी उससे कोई हानि नहीं हो

सकती। जिस उपवासका उद्देश्य एक बड़े आन्दोलनको कल्याणकारी ढंगसे प्रभावित करना था उसे केवल इस डरसे कि कुछ लोग उसका दुरुपयोग कर सकते हैं, छोड़ा नहीं जा सकता था। प्रायश्चित्तके लिए उपवास करना, निस्सन्देह, एक अच्छी प्रथा है।

और अन्तिम बात यह कि उपवास तो अपने-आपमें ऐसी चीज है जो अपने दुरुपयोगकी सम्भावना नहीं छोड़ता। बहुत ज्यादा लोग उपवास करना नहीं चाहेंगे और चाहकर भी वैसा करनेवाले लोग तो और भी कम होंगे।

अन्तरात्माकी आवाजके सम्बन्धमें भी बहुत-कुछ यही बात कही जा सकती है। मेरे जानते तो इस सम्भावनासे किसीने भी इनकार नहीं किया है कि कुछ लोगोंको परमात्माकी आवाज सुनाई दे सकती है; और अगर एक भी व्यक्तिका यह दावा वास्तवमें सिद्ध किया जा सकता है कि वह जो-कुछ कह रहा है, अन्तरात्माकी आवाजके इंगितपर कह रहा है तो वह संसारके लिए एक उपलब्धि है। दावा तो बहुत-से लोग कर सकते हैं, किन्तु वे सबके सब उसे सिद्ध नहीं कर सकते। किन्तु, झूठे दावेदारों को रोकनेके लिए उसे दबाया नहीं जा सकता और न दबाना चाहिए। अगर अन्त-रात्माकी सच्ची आवाज बहुत-से लोग भी सुन सकें और वे ईमानदारीके साथ तदनुसार आचरण करें तो कोई खतरा नहीं है। लेकिन, दुर्भाग्यवश पाखण्डको मिटानेका कोई उपाय नहीं है। सद्गुणको इस भयसे दबाना नहीं चाहिए कि बहुत-से लोग सद्गुणी होनेका स्वांग रचेंगे। अन्तरात्माकी आवाजके अनुसार बरतनेका दावा करनेवाले लोग तो संसार-भरमें सदासे रहे हैं। किन्तु, उनके थोड़े दिनोंके क्रिया-कलापसे दुनियाको कोई हानि नहीं हुई है। कोई भी आदमी दीर्घकाल तक काफी कड़े प्रशिक्षणके बाद ही उस आवाजको सुननेकी क्षमता प्राप्त कर सकता है, और जब वह आवाज सुनाई पड़ने लगती है तो उसमें किसी तरहकी भूलकी गुंजाइश नहीं रह जाती। दुनियाको सदाके लिए मूर्ख नहीं बनाया जा सकता। इसलिए यदि मुझ-जैसा कोई तुच्छ व्यक्ति इसके लिए तैयार न हो कि उसे दबाया जाये और जब उसे यह विश्वास हो कि वह अन्तरात्माकी आवाज सुन रहा है तो उसके तदनुसार बरतनेका साहस करनेसे दुनियामें अव्यवस्था फैल जानेका डर नहीं है। वातावरणमें स्वैरताकी प्रवृत्ति अवश्य व्याप्त है। चाहे धर्म हो या कोई अन्य क्षेत्र, सर्वत्र अशान्ति दिखाई देती है। स्वतन्त्रताकी भावना तीव्र रूपमें फैली हुई है। युवा समुदाय सदासे ऐसा रहा है कि ऐसी बातोंका प्रभाव उसीके मानसपर सबसे अधिक होता है। इसलिए वह स्वभावतः उस भावना का शिकार हो गया है, और स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेकी जल्दीमें इस केन्द्रीभूत तथ्यको भूल गया है कि स्वतन्त्रता पारस्परिक निर्भरता और सहिष्णुतासे ही मिल सकती है और यह आत्मसंयमके दीर्घ प्रशिक्षणका ही सुफल है। वह यह भूल ही गया है कि स्वतन्त्रताका मतलब स्वैरता नहीं होता। इसलिए युवा समुदायकी उच्छृंखलताके लिए आजके समयकी भावना ही दोषी है। लेकिन यदि कोई आत्म-संयमके सजग अभ्यास और इस बातका उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रयत्न करनेके बाद कि वह अपने अन्दर बैठे ईश्वरकी इच्छाका, जिसे उस अभ्यास और प्रयत्नके उपरान्त अन्तरात्माके

आदेशकी संज्ञासे अभिहित किया जाता है, निर्द्वन्द्व भावसे पालन करे, सच्ची स्वतन्त्रता का दावा करता है तो युवा वर्गकी उच्छृंखलताके लिए उसके इस व्यवहारको जिम्मेदार ठहराना गलत होगा।

इन विनम्र दार्शनिक भाईके तीसरे प्रश्नका उत्तर देना अब शायद काफी आसान हो गया होगा। हरिजनोंके स्तरको ऊपर उठानेका एकमात्र रास्ता यही है कि हरिजन-सेवक प्रार्थना तथा प्रायश्चित्त-रूप उपवास करके और अपनी श्रवण-शक्तिको अन्तरात्मा की आवाज सुननेका प्रशिक्षण देकर स्वयं अपना स्तर ऊपर उठायें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १८-३-१९३३

१२७. पत्र : डॉ० मुहम्मद आलमको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० आलम,

पक्की बात है कि आपने मुझे ऐसा काफी मसाला दे दिया है जिससे मैं आपके घरमें खासा झगड़ा खड़ा करा सकता हूँ; लेकिन मैं चूँकि अहिंसाका हामी हूँ, इसलिए आपको कोई खतरा नहीं है। बेगम आलम आपकी गद्दारीके बारेमें जो भी कहें, लेकिन आपने मुझपर सचमुच एक अहसान ही किया है — इसलिए कि अनवरको देकर आपने मुझे उर्दूमें खत लिखनेवाला एक और बहुत ही बढ़िया लड़का दे दिया है। इसलिए खुदगरजीके खयालसे भी मैं आपके और बेगम आलमके बीच झगड़ेका कारण नहीं बनना चाहूँगा।

यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि आप अब अच्छे हो रहे हैं और जल्द ही इलाज पूरा करानेके लिए कलकत्ता चले जायेंगे। उम्मीद है कि आगे फिर कभी इस तरह नहीं जाना पड़ेगा। आपको जानकर खुशी होगी कि हम सब भले-चंगे हैं और अकसर अपने आपसी दोस्तोंकी याद करते रहते हैं।

हृदयसे आपका,

डॉ० शेख मुहम्मद आलम
३, बहावलपुर रोड
लाहौर

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३०) से।

१२८. पत्र : टी० अमृतलिंगम्को

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। मैंने वर्ण-धर्मके बारेमें जो-कुछ लिखा है, यदि आप उसे पढ़ें तो देखेंगे कि मेरी व्याख्या और मेरा सुझाव मान लेने पर फिर ऊँच-नीचकी कहीं कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० अमृतलिंगम्
डिण्डीगल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१३) से।

१२९. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

१८ मार्च, १९३३

श्रीमती नरगिस कैप्टेन,

आपका खत मिला। भगवान्ने आपको कैसा नाजुक शरीर दिया है! पर हमें उसका शुक्रिया अदा करना चाहिए कि हालाँकि आपका शरीर अकसर साथ नहीं दे पाता, लेकिन दिमाग हमेशा तरोताजा ही बना रहता है।

आशा है, आप बम्बई लौटते हुए मुझसे मिलती जायेंगी।

मैं समझता हूँ कि गरमीके महीने आप पंचगनीमें ही बितायेंगी। गरीबोंकी तरह हरिजनोंका साथ भी आपको हर जगह मिलता रहेगा, कहीं भी जायें; इसलिए पंचगनीमें भी हरिजनोंके बीच रहने और उनकी सेवा करनेका सुयोग मिल जायेगा। खम्भाता भी महाबलेश्वरमें दो महीनोंके अपने प्रस्तावित वासके दौरान यही करनेका विचार कर रहे हैं।

मैं डाकघर द्वारा लौटाया हुआ एक पत्र[2] इसके साथ रख रहा हूँ। यह मैंने आपको कुम्बकोणम्के पतेपर भेजा था।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०१६२) से।

१. ९ मार्चका। अमृतलिंगम्ने सुझाव रखा था कि वर्ण-व्यवस्था ईश्वरीय विधानके विरुद्ध है, इसलिए उसका उन्मूलन किया जाना चाहिए

२. यह उपलब्ध नहीं हुआ।

१३०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

'हरिजन'को भेजा गया आपका तार मुझे अच्छा नहीं लगा। शास्त्रीको उसके आगे-पीछेकी कोई जानकारी नहीं थी और न मुझसे पूछनेका समय ही उसके पास था, इसलिए उसने अपने ही विवेकसे काम लिया और उसे प्रकाशित कर दिया था। यदि तार मेरे पास आता, तो मैं उसे रोक लेता। ब्रिटिश भारतीय संघको दिये गये अपने उत्तरकी प्रति[1] मैं इसके साथ आपको भेज रहा हूँ। इससे आपको मेरे विचारों का पता चल जायेगा। आप देखेंगे कि वह पत्र भी प्रकाशनके लिए नहीं है। मेरा खयाल है कि जबतक सामने कोई खतरा ही न दिखने लगे तबतक हमें परिवर्तनवादियों के साथ बहस-मुबाहिसे करके ही उनकी राय बदलनेका तरीका अपनाना चाहिए; लेकिन हमें अपनी तरफसे उनके साथ सार्वजनिक रूपसे विवाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे स्थितिमें सुधार होनेके बजाय तनाव ही बढ़ेगा। हाँ, यदि हमें विवाद के लिए विवश ही हो जाना पड़े, तो उसमें भाग लेनेसे हिचकना भी नहीं चाहिए। अपने आचरणके बारेमें हमें यही ध्यानमें रखना है।

अब आपकी दलील लेता हूँ। आप कदापि यह नहीं कह सकते कि मद्रासकी अपेक्षा बंगालमें अस्पृश्यताका अभिशाप ज्यादा बड़ा है। इसका अर्थ तो यह हुआ कि बंगालमें पाई जानेवाली अस्पृश्यता, मद्रासकी अपेक्षा अधिक विषाक्त है, लेकिन यह तो निश्चय ही सही नहीं है। वास्तवमें मद्रासकी तरह बंगालमें मात्र स्पर्श करने या देखने या छाया पड़ने-भरसे छूत लगना नहीं माना जाता। बंगालमें प्रचलित अस्पृश्यताका एक अपना प्रकार है और वह जलके स्पर्श पर प्रतिबन्ध लगानेतक ही सीमित है। वैसे यह भी काफी बुरी चीज है, लेकिन मद्रासमें अस्पृश्यताके नामपर जैसे बेहिसाब अत्याचार किये जाते हैं, उनसे यह काफी भिन्न किस्मकी है। यदि आप अपनी दलील इसी ढंगसे पेश करते, तो उसकी सार्थकता खत्म न हो जाती। इसलिए जरूरत सिर्फ इस बातकी थी कि आप इस आपत्तिजनक वाक्यको हटा देते : "मैं फिर कहता हूँ . . . मद्रास।" और क्या आपका यह कहना सही है कि सरकार द्वारा की जानेवाली परिभाषा हरिजन सेवक संघ द्वारा की गई परिभाषासे मिलती-जुलती है? तब फिर आप इस तथ्यको अनदेखा नहीं कर सकते कि बंगाल सरकारने अस्पृश्योंकी परिभाषामें जिन लोगोंको शामिल किया है, उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो उसमें स्वयंके सम्मिलित किये जानेका विरोध करते हैं। लगता है कि आपका यह भी खयाल है

१. देखिए "पत्र: ब्रिटिश भारतीय संघको", ९-३-१९३३।

कि विधायकगण पूरे समझौते[1] (पैक्ट)से ही इनकार करके सब-कुछ पहले-जैसा ही बना देना चाहते हैं। उनकी माँगके बारेमें मेरी दृष्टि ऐसी नहीं है। यदि ऐसा है, तो बड़ी ही खेदजनक स्थिति हो जायेगी। मैं तो समझता हूँ कि वे सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि बंगालमें हरिजनोंके लिए निश्चित स्थानोंकी संख्या कुछ घटा दी जाये। वे जब इसको लेकर समझौतेसे सम्बन्धित पक्षोंके पास जायेंगे, तब इस दिशामें कार्रवाई करनेका उपयुक्त समय होगा। हम अहिंसामें अपना विश्वास प्रकट करते रहते हैं और मैं समझता हूँ कि उसके कारण हमें तबतक अपना मत समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित करानेमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए जबतक कि हम समाचार-पत्रोंकी शरणमें जानेके पहले समझौतेके अन्य सभी साधनोंको प्रयोग करके न देख लें और वे निष्फल सिद्ध न हो जायें।

मैं तो यही समझता हूँ। लेकिन हो सकता है कि आपने जिस प्रकारके कड़े शब्दोंका प्रयोग करते हुए वह तार भेजा है उसका आपके पास पर्याप्त औचित्य मौजूद हो।

बंगला 'रामायण' की आपकी लिखी प्रस्तावनाका हिन्दी अनुवाद मैंने पढ़ लिया है। सचमुच बड़ी सुन्दर है, भक्ति-भावनासे ओतप्रोत। बाकी प्रूफ मिलनेका मुझे इन्तजार है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१८) से।

१३१. पत्र : डॉ० गोपीचन्द भार्गवको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० गोपीचन्द,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद। आशा है, आप स्वस्थ और प्रसन्न होंगे। आपने हिसारमें बुनाईके संगठनके सम्बन्धमें जो भी लिखा है, मैं उस सबका महत्त्व समझता हूँ और जानता हूँ कि आप वही करेंगे जो यथासम्भव सर्वोत्तम होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१०) से।

१. बंगाल विधान परिषद्ने १४ मार्चके पूना समझौतेके विरुद्ध एक प्रस्ताव पास किया था।

१३२. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१८ मार्च, १९३३

गृह-सचिव
बम्बई सरकार

प्रिय महोदय,

कल मेजर भण्डारीसे यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ कि म० प्रा० में सिवनी जेलके एक बन्दी, सेठ पूनमचन्द राँकाको उनका कथित उपवास त्याग देनेकी सलाह देते हुए मैंने वर्धाके सेठ जाजूजी के नाम जो तार भेजा था, उसे सरकारने रोक लिया है।[1] म० प्रा० सरकारके गृह सदस्यके नाम मेरा एक इसी प्रकारका तार भी रोक लिया गया था। मैंने सोचा कि इसका कारण तो मैं समझ सकता हूँ। परन्तु सेठ जाजूजी को भेजे गये इस तारको रोकनेका कारण मेरी समझमें नहीं आया। १९२२ से[2] ही सरकार यह मानती रही है कि उसे मेरी मानवीयतापरक सेवाओंपर किसी तरहका कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए[3], क्योंकि प्रकृतिने मुझे ऐसी योग्यता प्रदान की है और कुछ अन्य कार्योंके साथ-साथ इस सेवाके लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है। यह तार इसीके अनुरूप था। सेठ पूनमचन्द मेरे सहकर्मी हैं। उन्होंने बहुधा मेरा मार्ग-दर्शन स्वीकार किया है। मुझे पक्का भरोसा है कि सरकार बन्दियोंके जीवनको भी उतना ही मूल्यवान समझेगी जितना कि जनताके जीवनको और इसलिए वह उनको बचानेके लिए वैधानिक रूपसे दी जा सकनेवाली किसी भी सहायतासे उनको वंचित नहीं करेगी। मुझे इस बातकी कतई कोई जानकारी नहीं कि सेठ पूनमचन्दकी हालत इस समय कैसी है। पर सरकारसे मेरा सादर अनुरोध है कि वह अपने निर्णयपर पुनःविचार करे और मेरा तार उनके पास जाने दे। चूंकि इस मामलेमें समय ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, इसलिए मेरा अनुरोध है कि इसका उत्तर शीघ्रसे-शीघ्र दिया जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८१) से। बम्बई सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) ए, पृष्ठ ५५ से भी।

१. देखिए "तार : बच्छराजको," ११-३-१९३३।

२. यहाँ १९२३ होना चाहिए।

३. गांधीजी को अपने साथी कैदियोंसे मिलकर तथा उनपर अपना प्रभाव डालकर उपवास बन्द करानेकी अनुमति दी गई थी; देखिए खण्ड २३; पृष्ठ १८२-८३ और १९६

१३३. पत्र : एच० कादिर खाँको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'लाइट'[१] नामक अख़बारकी एक कतरनके लिए मैं आभारी हूँ। आप जितनी सोचते हैं, मेरी कठिनाई उससे कहीं गम्भीर है। मैं धर्मोंकी कभी आलोचना नहीं करता, इसलिए कि संसारके सभी महान् धर्मोंके प्रति मेरे मनमें उतना ही सम्मान है जितना कि हिन्दू धर्मके प्रति। मेरा विश्वास है कि सभी धर्म मानवताकी विभिन्न आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं, और यदि हम इस सारभूत तथ्यको भली-भाँति समझ लें तो फिर हम विभिन्न धर्मोंकी परस्पर तुलना करनेके बजाय उनका अध्ययन करनेमें लग जायेंगे और उस अध्ययनसे हमें अपने लिए अनेक उपयोगी बातें मिल जायेंगी। मैं सभी धर्मोंको विशुद्ध धार्मिक दृष्टिसे देखता हूँ और इसलिए उनमें निहित सौन्दर्यको समझनेके लिए ही उनका अध्ययन करता हूँ। आपको मेरी सलाह है कि आप भी ऐसा ही करें, और यदि आप ऐसा करेंगे तो आपको मेरे लेखोंमें ऐसे मार्ग-दर्शनके लिए पर्याप्त सामग्री मिल जायेगी कि संसारके अन्य धर्मोंके प्रति हमें क्या दृष्टि रखनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

एच० कादिर खाँ साहब
अर्कलगौड, डाकघर
(दक्षिण भारत)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०९)से।

१. लाइटके लेखमें कहा गया था कि गांधीजी अस्पृश्योंको "थोड़ा दूर ही" रखना चाहते हैं और "जाति-व्यवस्था न हटे, इसलिए उनके साथ अन्तर्जातीय भोजों और अन्तर्जातीय विवाहोंकी अनुमति देनेको भी तैयार नहीं हैं।"

१३४. पत्र : सी० नारायण मेननको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मेनन,

इस मासकी ९ तारीखका आपका पत्र मुझे पसन्द आया। आपका तर्क मान लेनेमें मुझे एक ही संकोच है, लेकिन वह भी काफी बड़ा है। आपका तर्क पर्वतों-जितना ही पुराना है। यदि संसार उसके ही अनुसार चला होता तो कहीं कोई प्रगति न हो पाती। क्या आपका तर्क परिपाटीका, चिर-व्यवहार-सिद्धताका तर्क नहीं है? परन्तु चिर-व्यवहार किसी गलत बातको सही सिद्ध नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यवहार सारे संसार द्वारा स्वीकृत, सार्वभौमिक नैतिकताकी कसौटीपर कसा जाना चाहिए। तथाकथित दैवी वचन भी किसी ऐसे व्यवहार या विश्वासके काम नहीं आ सकता, उसकी रक्षा नहीं कर सकता, जो मानवजाति द्वारा स्वीकृत मूलभूत मूल्योंके प्रतिकूल पड़ता हो; और अस्पृश्यताकी प्रथाके समर्थनमें मुझे आजतक ऐसा कोई भी तर्क नहीं मिला जो इस सार्वभौमिक दृष्टिकोणपर आधारित हो।

मन्दिर-प्रवेश विधेयकसे सम्बन्धित आपके तर्कका खण्डन करनेकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं दिखाई पड़ती, क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप नियमित रूपसे 'हरिजन' के पृष्ठोंका पारायण करते हैं। इसी तरह आपके पत्रके दूसरे अनुच्छेदोंका उत्तर देनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं समझता। मैं आपको एक अन्वेषी मानता हूँ और इसलिए मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि आप देर-सबेर सत्यको पा ही लेंगे और यदि मेरी समझमें कोई गलती न हो तो आप देरसे नहीं, बल्कि जल्द ही सत्यतक पहुँच जायेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० नारायण मेनन, एम० ए०, पी-एच० डी०
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१४) से।

१३५. पत्र : डॉ० टी० एस० एस० राजन्‌को

१८ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० राजन्,

अभी उस दिन श्रीयुत गणेशन् मद्रासमें एक थियोसॉफिकल हरिजन पाठशालाको बन्द करनेकी स्थिति पैदा हो जानेके बारेमें बात कर रहे थे। इतने अरसेसे चली आ रही एक पाठशालाको यदि बन्द कर देना पड़े या उसका प्रबन्ध सार्वजनिक संस्था के हाथसे निकल जानेकी स्थिति आ जाये तो सचमुच बुरा होगा। इसलिए यदि पाठशालाकी स्थिति सचमुच वैसी है जैसी मुझे बतलाई गई है तो मैं समझता हूँ कि उसे बचानेके लिए कोई भी कोशिश उठा नहीं रखनी चाहिए। श्रीयुत गणेशन्‌का कहना है कि आपके पास सारे आँकड़े पहुँच चुके हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१९) से।

१३६. पत्र : के० कुन्ही रमणको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। आपने वर्ण-धर्मके उद्भवके सम्बन्धमें ठीक उद्धरण दिया है; परन्तु मैं उसकी व्याख्या आपसे सर्वथा भिन्न ढंगसे करता हूँ। चार वर्णोंकी तुलना एक ही शरीरके चार अंगोंसे करना बतलाता है कि चारों अंगोंके अपने काम अलग-अलग रहते हुए भी वे चारों परस्पर समान हैं। निश्चय ही आपका यह कथन तो सरासर गलत है कि मस्तिष्क हाथोंसे या हाथ जंघाओंसे और ये तीनों अवयव पैरोंकी तुलनामें श्रेष्ठ हैं। ये सब अपनी-अपनी जगह समान रूपसे उपयोगी हैं और प्रत्येक अवयवको शेष सभी अवयवोंका ध्यान रखना पड़ता है।

१. १०-३-१९३३ का। कुन्ही रमणके अनुसार गांधीजी ने लिखा था कि सच्चा वर्णाश्रम हिन्दू धर्मका एक अविभाज्य अंग है और आज डॉ० अम्बेडकरकी कल्पनाके वर्णाश्रमपर अमल हो रहा है।

मेरा आपसे आग्रह है कि और अधिक जानकारीके लिए, यदि आपमें धीरज हो तो, हर सप्ताह 'हरिजन'के अंक पढ़ते रहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० कुन्ही रमण
'नारायण विलास'
ईवान्स रोड
कालिकट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६०८) से।

१३७. पत्र : रा० को[1]

१८ मार्च, १९३३

प्रिय रा०,

आशा है, तुम इस पत्रका, और इसको बोलकर लिखानेकी बातका भी बुरा नहीं मानोगे। नी० के साथ काफी देरतक बातचीत करनेसे मेरे मनपर कुछ ऐसी छाप पड़ी है कि उसके असरमें आनेवाले तुम और तुम्हारे युवा साथियोंने उसके सम्पर्कसे सचमुच कोई लाभ नहीं उठाया, बल्कि तुम अपने और उसके पतनमें सहायक ही बने। उसने मुझे तुम्हारा एक पत्र दिखाया था। मुझे तुम्हारे पत्रमें प्रयुक्त अनुचित आत्मीयता-भरा सम्बोधन और उसमें कही गई बातें भी अच्छी नहीं लगीं। मुझे बड़ी आशंका है कि तुमने उसके साथ ऐसा स्वच्छन्द व्यवहार किया है जैसा कि आत्मसंयमी युवकोंको किसी अजनबीके साथ करना कदापि शोभा नहीं देता। नी० ने बतलाया है कि तुम उसके साथ ऐसे आध्यात्मिक विवाहों या आध्यात्मिक मैत्रियोंकी बातें करते रहे हो, जो लगभग वैवाहिक सम्बन्ध ही हैं। यह आगसे खिलवाड़के अतिरिक्त और कुछ नहीं। यह एक अत्यन्त प्रच्छन्न वासनाकी ही अनुगूंज है। इसलिए मैं बड़ी उत्कटताके साथ तुम और अन्य युवकोंसे आग्रह कर रहा हूँ कि आगसे खिलवाड़ करना बन्द कर दो, और चेतन या अवचेतन रूपसे नी०की नैतिक प्रगतिमें बाधक मत बनो; इधर हाल ही में तो उसने समझना शुरू किया है कि उसका पिछला जीवन कितना अनैतिकतापूर्ण था। तुमको यह समझ लेना चाहिए, उसका स्वभाव ऐसा है कि उसे सहज ही किसी बातपर राजी किया जा सकता है। वह तो अबतक इतना भी नहीं समझ पाई है कि वह पहले जो भी कर रही थी, वह घोर मिथ्याचार और अनैतिकता ही थी। आशा है कि तुम मेरे पत्रका कोई गलत अर्थ नहीं लगाओगे। मेरा खयाल है कि कुछ वर्ष पहले मैं जब बंगलोरमें बीमारीके बाद स्वास्थ्य-लाभ कर रहा था, तब मैंने तुम सब युवकोंको देखा था, लेकिन देखा हो

१. यहाँ पत्र-प्रापकका नाम छोड़ दिया गया है।

या न देखा हो, तुम लोगोंके प्रति मेरा भाव सिर्फ वही है जो माता-पिताका अपने बच्चोंके प्रति होता है, और यह पत्र मैं स्वयं ही अपने ऊपर ऐसा दायित्व लेकर इस आशासे लिख रहा हूँ कि यदि मैं अपनी बात तुम्हारे मनमें बैठा सका तो तुम लोग स्वयं अपनेको सही रास्तेपर ले आओगे, और नी०के साथ अन्तरंग सम्बन्ध स्थापित करनेसे अपनेको रोककर उसे उसके पिछले जीवनसे ऊपर उठनेमें मदद दोगे।

यह पत्र तुम अपने साथियोंको दिखा सकते हो और मैं चाहूँगा कि इसे तुम नी०को पढ़वा दो। मेरे हृदयमें उसके लिए बड़ी सहानुभूति है, क्योंकि मुझे विश्वास है कि मिथ्याचारिता और पिछले अनैतिक जीवनके बावजूद उसके अन्दर त्याग तथा सेवाकी अद्भुत क्षमता मौजूद है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६२४) से।

१३८. पत्र : श्रीप्रकाशको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय श्रीप्रकाश,

आपका पत्र मिला और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि शारीरिक स्वास्थ्य-लाभके साथ-साथ आप अपने मनमें घिर आये नैराश्यसे भी बाहर निकलते आ रहे हैं और मुझे पूरा भरोसा है कि पर्याप्त विश्राम और अन्य सभी बातोंको सर्वथा भूलकर आप उससे पूरी तरह छुटकारा पा लेंगे। मैं समझता हूँ कि इस मामलेमें अंग्रेज लोग हमसे कहीं आगे हैं, हालाँकि हम गीता-धर्मके अनुयायी माने जाते हैं, जिसका उपदेश है कि हमें किसी भी बातकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए और फल सर्वशक्तिमान्पर छोड़ देना चाहिए। मुझे याद है कि लॉर्ड एस्क्विथ युद्धके सबसे घमासान दौरमें भी डाक्टरोंकी सलाहपर किस तरह भूमध्य सागरमें स्वास्थ्य-लाभके लिए जल-विहारको चले गये थे; उन्होंने राज्य-सम्बन्धी सभी चिन्ताओंका भार पूरे तौरपर अपने उत्तराधिकारियोंपर छोड़ दिया था।

वर्गीकरणके[1] बारेमें हालाँकि मेरे विचार अत्यन्त दृढ़ हैं, फिर भी मुझे यहाँ उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इस विषयपर चर्चा करनेकी अनुमति नहीं है।

मैं बाबूजीको[2] विश्राम करनेके लिए लिखूँगा, पर मैं जानता हूँ कि उनका मन तो पूर्णतः अस्पृश्यता-विरोधी संघर्षमें लगा हुआ है।

१. बन्दियोंका।

२. डॉ० भगवानदास, श्रीप्रकाशजी के पिता।

हाँ, शिवप्रसादका[1] साप्ताहिक बुलेटिन मेरे पास आता रहता है। हम सब हर सप्ताह उसकी राह देखते हैं। जमनालालजी का स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। उनकी आँखोंका कष्ट पूरे तौरपर ठीक नहीं हो पाता। सरदार, महादेव और छगनलाल जोशी भी साथमें आपको स्नेह-निवेदन कर रहे हैं। छगनलाल जोशीसे शायद आपकी मुलाकात न हुई हो, हालाँकि आपने आश्रममें उनको देखा जरूर होगा।

सप्रेम,

हृदयसे आपका,

[अंग्रेजीसे]

श्रीप्रकाश पेपर्स, फाइल नं० जी०-२; सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय। एस० एन० २०६२३ से भी

१३९. पत्र: जी० सुब्रह्मणियन्‌को

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत नहीं कि मैसूर राज्यमें हरिजनोंमें काम करनेके लिए आपके अतिरिक्त कोई और कार्यकर्त्ता है ही नहीं। मेरी जानकारी तो इसके बिलकुल विपरीत है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० सुब्रह्मणियन्
प्रचारक,
श्रृंगेरी पोस्ट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६१७) से।

१. शिवप्रसाद गुप्त, वाराणसीके कांग्रेसी नेता और समाजसेवी

१४०. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

आपकी हिसार-यात्रा और उस क्षेत्रमें पड़े अकालके बारेमें आपका जो पत्र आया है, उस पर ११ फरवरीकी तिथि दी हुई है, जो मेरा खयाल है, ११ मार्च होगी। अब मेरे पास डॉ० गोपीचन्दका भी एक पत्र आ गया है। मैं समझता हूँ कि डॉ० गोपीचन्दके कथनमें काफी वजन है। यह तो सम्भव नहीं कि हम सभी जगह बुनाई केन्द्र खोल दें और फिर बुनकरोंसे उम्मीद करें कि वे जैसे-तैसे काते घटिया सूतसे कपड़ा बुनें। अन्य सभी उद्योगोंकी भाँति इस हस्त-उद्योगके लिए भी ऊँचे दरजेका तकनीकी कौशल, और सच पूछिए तो कताई-बुनाई मिलोंके लिए अपेक्षित कौशलसे कुछ मायनोंमें कहीं ऊँचे दरजेका कौशल, दरकार है। उन मिलोंमें तो हर क्रियाका मानकीकरण हो जाता है, पर हस्त-शिल्पमें किसी भी चीजका पूर्ण मानकीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि प्रत्येक कारीगर द्वारा निर्मित वस्तुकी एक अपनी ही विशिष्टता होती है और जब इस तरहके हजारों कारीगरोंका उनके अपने-अपने ढंगका काम सामने आये तो कुशलसे-कुशल संगठनकर्त्ताको भी उनकी पटरी बैठाना मुश्किल पड़ जाता है। इसलिए सभी धन्धोंकी तरह, बुनाई और कताईके धन्धेके जरिये लोगोंको सहायता पहुँचानेके कामकी अपनी एक मर्यादा भी है, भले ही उसमें सहायता-कार्यकी संभावनाएँ अन्य सभी धन्धोंसे अधिक व्यापक हों। यदि हमारे पास एक ऐसी संस्था हो जो हजारों विशेषज्ञोंके विशेष ज्ञानका उपयोग कर सकती हो और जिसके पास इसके लिए पर्याप्त वित्तीय साधन हों, तो हम हर जरूरतमन्दके लिए अच्छा पैसा कमाने लायक काम जुटा सकते हैं। यह उस जरूरतमन्द व्यक्तिके साथ-साथ उस संस्थाके लिए भी अन्य धन्धोंकी तुलनामें कहीं अधिक लाभकारी सिद्ध होगा। लेकिन दुर्भाग्यकी बात है कि हमारे पास न तो इतनी बड़ी संख्यामें विशेषज्ञ हैं और न ऐसे वित्तीय साधन ही सुलभ हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११५) से।

१४१. पत्र : डी० वलीसिन्हाको

१८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और 'महाबोधि जर्नल'की एक प्रतिके लिए मेरा धन्यवाद लीजिए।[1]

मैं हिन्दू धर्मके स्थानपर अन्य कोई धर्म लानेके लिए नहीं, बल्कि हिन्दू धर्ममें ही सुधारके लिए प्रयत्नशील हूँ। मेरा अपना विश्वास है कि गौतम बुद्ध स्वयं भी कोई पृथक् धर्म या सम्प्रदाय स्थापित नहीं करना चाहते थे; वे हिन्दू धर्ममें से उन बातोंको छाँट देनेके लिए ही प्रयत्नशील थे जो उनके लेखे बुराइयाँ थीं। जो भी हो, मेरा अपना विश्वास है कि हिन्दुओंको धर्म-परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वलीसिन्हा
महामन्त्री
महाबोधि सोसाइटी
४-ए, कॉलेज स्क्वेयर
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६२१) से।

१४२. एक विचारणीय योजना

भंगी भाई स्वच्छ रह सकें, इस उद्देश्यसे श्री हीरालाल शाहने एक योजना प्रकाशित की है। योजना विचारणीय है। भंगियोंके प्रति जो घृणा है वह उनके धन्धेकी वजहसे है। निस्सन्देह इसमें सारा दोष तथाकथित उच्च वर्णके हिन्दुओंका है। किन्तु दोषारोपण करनेके विचारसे मैं यह लेख लिखने नहीं जा रहा हूँ। आज हमारा क्या कर्तव्य है, हमें तो इसीपर विचार करना है और इसमें हमें श्री हीरालालकी योजनासे मदद मिलती है। योजना यह है: मैला उठाते समय भंगियोंके लिए पहननेकी खास पोशाक होनी चाहिए और मैला उठा चुकनेके बाद उन्हें स्नान करने और कपड़े बदलनेके लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। दोनोंमें से एक भी काम वे स्वेच्छासे तुरन्त नहीं करेंगे। उन्हें समझाकर तथा इसके लिए आवश्यक सुविधाओंकी

१. डी० वलीसिन्हाने **महाबोधि जर्नल**में प्रकाशित अपने एक लेखके बारेमें गांधीजीकी राय जाननी चाही थी। उस लेखमें उन्होंने यह "दिखानेकी कोशिश की थी कि बौद्ध धर्म किस प्रकार इस समस्या [अस्पृश्यता] को सबके लिए संतोषजनक ढंगसे हल कर सकता है।"

व्यवस्था करके ही यह काम पूरा किया जा सकता है। इस कामको बड़े पैमानेपर तो नगरपालिकाएँ ही कर सकती हैं, लेकिन छोटे पैमानेपर भंगियोंसे सेवा लेनेवाला हरएक गृहस्थ यह काम कर सकता है। वे अपने-अपने भंगीको अपनायें, उससे नहानेको कहें और नहानेका ठीक इन्तजाम कर दें और अपनी तरफसे उसके लिए अलगसे पोशाक बनवा दें। एक भंगी-कुटुम्ब बहुत-से घरोंकी टहल करता है। जिसने इस सुधारका मूल्य समझ लिया है, वह अपने भंगीके द्वारा अन्य सम्पन्न गृहस्थोंके नाम मालूम करके उनसे भी पोशाक बनवानेमें मदद ले तो उस पोशाकका खर्च किसीको भार-स्वरूप न लगेगा। इस तरह यदि कुछ समयतक यह कार्य चलता रहे तो भंगीको खुद ही स्वच्छ रहनेकी आदत पड़ जायेगी। और जिस हदतक यह घृणा छुआछूतका कारण है उस हदतक तो अस्पृश्यता नष्ट हो जायेगी। जो काम सब लोगोंके करनेका है वह किसी एक व्यक्तिका नहीं, इस सनातन दोषके वशीभूत होकर आसानीसे हो सकनेवाले इस सुधारकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। जिससे हो सके वह इसे आरम्भ कर दे और दूसरोंको भी इस ओर आकर्षित करे।

इसके साथ-साथ दो और सुधार तुरन्त हो सकते हैं—टट्टियों और मैला उठाकर ले जानेकी रीतिमें सुधार। तथाकथित उच्च वर्णके हिन्दुओंने भंगियोंको दूर रखा। उसका परिणाम यह हुआ कि उनके पाखाने नरककी खान जैसे रहते हैं और भंगीको बिलकुल बेढंगी और निर्दय रीतिसे मैला उठाना पड़ता है। पाखानोंमें बहुत आसानीसे सुधार हो सकता है। इसके लिए खासकर सूखी मिट्टीकी जरूरत है। मैलेके टोकरे सिरपर उठानेका रिवाज बन्द कर देना चाहिए। यह आन्दोलन मथुरा और प्रयागमें शुरू हो गया है।[1] वहाँ मैलेको सिरपर उठानेके बजाय छोटी-सी ठेला-गाड़ीमें ले जानेकी व्यवस्था की गई है। जहाँ ठेला न जा सके या न मिल सके वहाँ लकड़ी पर मैलेकी बालटी लटका कर ले जा सकते हैं। वजन ज्यादा न हो तो छोटी-सी बालटी हाथसे उठाकर ले जाई जा सकती हैं। मैला सिरपर ढोनेकी प्रथा एकदम बन्द हो जानी चाहिए।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१. देखिए "इन अन्त्यजोंके प्रति भी", १८-३-१९३३।

१४३. पत्र-लेखकोंको उत्तर

शुद्धि-संस्कार करके प्रवेश करने दो[1]

हरिजनोंका शुद्धि-संस्कार करनेका अर्थ यह मान लेना है कि हरिजन हिन्दू नहीं हैं। किन्तु हमारा पूरा आन्दोलन यह मानकर ही चलाया जा रहा है कि हरिजन हिन्दू समाजका एक महत्त्वपूर्ण अंग हैं। अतः जो-कुछ भी करना हो सो सब अस्पृश्यताको मिटानेके बाद ही किया जा सकता है। फिर शुद्धि कौन किसकी करेगा? शुद्धि तो अन्तरकी होनी चाहिए। आन्तरिक शुद्धि तो शुद्ध अर्थात् परिपूर्ण मनुष्य ही करा सकता है। अतः किसी संस्कार विशेषके अनुसार शुद्धि करानेका विचार भी मेरे लिए असह्य है। चाहे जो हो, अस्पृश्यताको मिटानेकी शर्त यह शुद्धि तो कदापि नहीं हो सकती।

किन्तु आपने जो सुझाव दिया है उसपर अमल करनेसे मैं आपको या अन्य किसीको रोक नहीं सकता। यह स्पष्ट है कि मैं इस सुझावका समर्थन नहीं कर सकता। जैसा कि आप कहते हैं उस ढंगसे शुद्धि कराकर यदि आप अपने इलाकेके हरिजनोंको श्रीरंगम्में प्रविष्ट करा सकते हों तो मैं उसका विरोध नहीं करूँगा।

हमारी पवित्रतासे सब सिद्ध होगा[2]

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कठिनाइयोंका कोई अन्त नहीं है। मुझे इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि इन कठिनाइयोंको धैर्यपूर्वक हल किया जा सकता है। हमारे साधन अत्यन्त पवित्र होने चाहिए। धर्मके नाम पर अस्पृश्यता फैली है। जबतक विशुद्ध धर्मके द्वारा सामना नहीं किया जायेगा तबतक उसका नाश नही होगा। हम कोई नया पंथ नहीं चला रहे बल्कि जो-कुछ हमारे सामने है, उसके दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। जिसे दोष दिखाई देते हैं उसे स्वयं दोषरहित होना चाहिए। अतः जिस हदतक हम स्वयं पवित्र होंगे उस हदतक हम आगे बढ़ते जायेंगे। ढेढ, भंगी आदि 'अस्पृश्यों' के बीचकी आपसी बाड़ें तभी टूटेंगी जब हम अस्पृश्यताको दूर कर देंगे। अत्यधिक सावधानी और उतने ही प्रेमसे काम लेना। सनातनियोंके रोषको प्रेमसे ठंडा करना। जितना काम आप कर सकें उतना ही लें, किन्तु जितना लें उसे भली-भाँति करें। तेते पाँव पसारिये जेती लांबी सौर।

१. एक पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि यदि गांधीजी मन्दिर-प्रवेशके पहले हरिजनोंका शुद्धि-संस्कार करानेको सहमत हों तो श्रीरंगपट्टम्का मन्दिर उनके लिए खोला जा सकता है।

२. यह पत्र अपने कार्यक्षेत्रसे ऊबे और आसपासके वातावरणसे घबराये हुए एक कार्यकर्ताको लिखा गया था।

आधुनिक कैसे ?[1]

मैं यह कदापि नहीं मानता कि अस्पृश्यता सनातन कालसे चली आ रही है या इसका सनातन धर्मसे कोई सम्बन्ध है। शौचाचारके लिए आवश्यक थोड़ी-बहुत अस्पृश्यता प्रत्येक देश, प्रत्येक सभ्यतामें विभिन्न रूपोंमें बरती जाती रही है। किन्तु मैं यह कदापि नहीं मानता कि अस्पृश्यताके कलंकको हम आज जिस रूपमें देखते हैं उसी रूपमें वह प्राचीन कालमें भी था। अन्य किसी भी धर्ममें यह नहीं है। यदि ऐसी अस्पृश्यता सनातन धर्मका अंग हो तो उक्त धर्म मेरे किसी कामका नहीं। ऐसे सनातन धर्मके लिए प्राण न्योछावर करनेकी मूर्खता मैं नहीं करूँगा।

सनातन धर्मको मैं जैसा मानता हूँ उसका उसी रूपमें वर्णन करता हूँ। यदि समूची जनता इस वजहसे मुझे त्याग देगी तो हिन्दू होनेका मेरा दावा रद्द हो जायेगा।

क्या आप मन्दिरोंमें विश्वास करते हैं ?[2]

मैं मन्दिर-प्रवेशकी कोई आज नई बात नहीं कह रहा हूँ। किन्तु बरसों पहले जब अस्पृश्यता निवारणके लिए मैंने सार्वजनिक रूपसे आमरण अनशनकी प्रतिज्ञा की थी तब भी मैंने यह घोषणा की थी कि हरिजनोंके लिए मन्दिर-प्रवेश अस्पृश्यता-निवारणका महत्त्वपूर्ण अंग है। मैंने स्वयं बहुत-से मन्दिरोंको खोलनेकी क्रिया सम्पन्न की है और इसके लिए जमनालालजी को भी प्रेरित किया है। मन्दिर, मस्जिद या गिरजेमें मैं कोई भेद नहीं करता। मनुष्य-मात्र किसी एक रूपमें नहीं तो दूसरे रूपमें प्रतिमाकी पूजा करता ही है। प्रत्येक व्यक्ति, भले अलग-अलग भाव और अलग-अलग ढंगसे, अपनी प्रतिमाके द्वारा उस परमेश्वरकी ही पूजा करता है। आपको शायद पता न हो कि मैं अपने जीवनमें अधिक नहीं तो हजारेक बार — कभी शिष्टाचारवश तो अनेक बार भक्ति-भावपूर्वक — तो मन्दिरोंमें गया ही हूँगा। मैं यह नहीं जानता था कि आप इतने अधिक असहिष्णु हैं और मन्दिरोंको अस्पृश्यताकी अपेक्षा कहीं अधिक बुरा मानते हैं। आज करोड़ों लोगोंको मन्दिरोंसे जो आश्वासन मिलता है, मन्दिरोंको ध्वस्त करके उन्हें उससे वंचित कर दो और फिर देखो कि कितना भयंकर परिणाम निकलता है। मन्दिर-प्रवेशको आप नरक-प्रवेश कहते हैं तो क्या आप यह मानते हैं कि भारतभूषण मालवीयजी, जिनके घरमें अपना मन्दिर है और जो नियमित रूपसे पूजा करते हैं, प्रतिदिन नरकमें प्रवेश करते हैं और वे भगवान्‌की दृष्टिमें मेरी और आपकी अपेक्षा हलके हैं? इस सम्बन्धमें आप जरा गहराईसे विचार करें।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१. एक पत्र-लेखकने गांधीजी से पूछा था कि वे अस्पृश्यताके पहले "आधुनिक" विशेषण क्यों लगाते है। उसका कहना था कि यह तो अनादिकालसे चली आ रही है और उतनी ही पुरानी है जितना कि सनातन धर्म।

२. गांधीजी द्वारा चलाये जा रहे हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेश सम्बन्धी आन्दोलनके बारेमें आश्चर्य व्यक्त करते हुए एक मित्रने पूछा कि वे कबसे मन्दिरोंमें विश्वास करने लगे हैं और हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवाकर वे उन्हें कौन-सा लाभ पहुँचाना चाहते हैं क्योंकि ऐसा करना तो कुएँसे निकलकर खाईमें गिरना है।

१४४. हिन्दू-मन्दिर क्या हैं ?

एक हरिजन-सेवक लिखता है :[1]

यह पत्र निर्मल भाव और शुभ उद्देश्यसे लिखा गया है और बहुतोंके तो नहीं पर कुछ नवयुवकोंके विचारोंको दरसानेवाला है अतः मैं इसे प्रकाशित कर रहा हूँ।

किन्तु मेरे विचारसे इस पत्रमें आक्रोशके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। लेखकने मन्दिरोंके बारेमें जो-कुछ कहा है, उसके समर्थनमें उसके पास कोई प्रमाण नहीं है। सम्भवतः उसने काशी विश्वनाथ, पुरी या गुरुवायूरके मन्दिरोंके दर्शन नहीं किये हैं। इन मन्दिरोंमें यदि अनाचार चलता भी हो तो लाखों हिन्दू यात्री और दर्शनार्थी उससे अनजान और अलिप्त हैं। हम सब जहाँ जो चीज लेनेकी इच्छासे जाते हैं वहाँ वही पाते हैं। पिता अपनी पुत्रीको पुत्रीके रूपमें देखेगा, उसका पति स्त्रीके रूपमें, उसका पुत्र माताके रूपमें और व्यभिचारी उसे अपने शिकारके रूपमें देखेगा। व्यभिचारीके अस्तित्वके कारण क्या पिता, पति और पुत्रको उसका त्याग करना चाहिए? मैं स्वयं काशी विश्वनाथ और पुरी, दोनों मन्दिरोंमें गया हूँ। मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि मैं श्रद्धासे प्रेरित होकर दर्शन करने वहाँ नहीं गया था किन्तु असंख्य निर्दोष लोगोंको भक्तिभावसे जाते देखकर मुझे उनपर तरस नहीं आया बल्कि उनके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ और मैं उनके भक्तिभावको समझ पाया। उक्त मन्दिरोंमें यदि किसी तरहका अनाचार होता भी हो तो इन असंख्य भक्तोंको उसकी जानकारी तक नहीं थी। इतना याद रखना चाहिए कि गुप्त रीतिसे अनाचार किया जाता है और बहुत कम लोगोंको ही उसकी जानकारी होती है। भक्तगण भगवान्‌में पूर्णताका आरोपण करते हैं। भक्तोंका भगवान् सदा निर्दोष और पूर्ण होता है। अभक्तोंका भगवान् दोषोंका पुंज होता है। असंख्य हिन्दुओंके कृष्ण पूर्ण अवतार हैं। आलोचकोंके कृष्ण व्यभिचारी, जुआरी और असत्यवादी आदि हैं। मन ही मनुष्यके बन्धन और मोक्षका कारण है। यह जो त्रैकालिक शाश्वत सत्य है उसे इस नवयुवकको जानना और समझना चाहिए। जिस प्रकार देहधारी देहके बिना आत्माकी कल्पना नहीं कर सकते उसी प्रकार मन्दिरोंके बिना धर्मकी कल्पना नहीं की जा सकती। मन्दिरोंके बिना हिन्दू धर्म नहीं चल सकता। मन्दिरोंमें अनाचार नहीं है। कुछ व्यक्ति अनाचारी हो सकते हैं किन्तु सभी कदापि नहीं। पूजाकी विधिको किसी तरह

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकका तर्क था कि मन्दिर-प्रवेशकी प्रवृत्तिसे हरिजनोंका कल्याण होनेकी बजाय उन्हें और ज्यादा नुकसान पहुँचेगा क्योंकि मन्दिर भगवान्‌का घर नहीं बल्कि बुराइयोंको पोसने और बढ़ानेका स्थान हैं। सनातनी हिन्दुओंने हरिजनोंके साथ दुर्व्यवहार करते हुए उनका एक हित जरूर किया कि उन्हें मन्दिरोंमें नहीं घुसने दिया। हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार दिलानेके लिए कानूनकी मदद लेनेका प्रयत्न गांधीजी की नासमझी है।

पूरा-भर करनेवाले के लिए मूर्ति पत्थरका टुकड़ा है किन्तु भक्तके लिए वह चेतन है। मन्दिरोंमें सुधारकी गुंजाइश है। मन्दिरोंको तोड़ डालना उचित नहीं। मन्दिरोंको तोड़ा नहीं कि धर्म टूटा।

इसके अतिरिक्त सभी मन्दिरोंमें अनाचार नहीं चलता। अनेक ग्रामीण मन्दिरोंमें अनाचार नहीं होता। ग्रामीणोंमें जो तरह-तरहके वहम हैं उसका मन्दिरोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मन्दिर विभिन्न धर्मोंकी सभ्यताके संग्रहालय हैं। पुराने जमानेमें मन्दिरोंमें देव था, वहाँ देवत्व था; वहाँ पाठशाला और धर्मशाला थी तथा वहाँ गाँवके प्रमुख व्यक्तियोंकी बैठक जमती थी। ऐसे मन्दिर आज भी बहुत-से स्थानोंपर देखनेमें आते हैं। हरिजनोंके मनमें मन्दिर इस प्रकार बसे हुए हैं कि वे अपने जैसे-तैसे मन्दिर खड़े कर लेते हैं। इन मन्दिरोंमें हमें उनकी दीनताके दर्शन होते हैं। जबतक हरिजन सवर्ण हिन्दुओंके मन्दिरोंमें नहीं जा पाते तबतक उनकी दीनता कभी नहीं मिट सकती, उनका हिन्दुत्व अपूर्ण रहेगा और वे हिन्दू धर्मकी छठी अँगुली बनकर बहिष्कृत ही रहेंगे। किसी हिन्दूको इस बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं होना चाहिए कि हिन्दू धर्ममें हरिजनोंको सम्मान प्राप्त होनेका प्रथम और व्यापक लक्षण मन्दिर-प्रवेश ही है। यह मानना घोर अज्ञानका सूचक है कि मन्दिरोंमें प्रवेश न कर पानेके कारण ही हरिजनोंका भला हुआ है। मन्दिरोंसे बाहर रहनेके कारण हरिजन सभी चीजोंसे बाहर रहे हैं। और आज भी सनातनी उन्हें मन्दिरोंमें प्रविष्ट होनेसे रोकनेका प्रयत्न कर रहे हैं जिससे पता चलता है कि वे हरिजनोंका बहिष्कार जारी रखना चाहते हैं।

अतः प्रस्तुत पत्रका भाव शुद्ध होनेके बावजूद वह दुःखद है। उससे अपनेको सुधरा हुआ माननेवाले आधुनिक नवयुवककी दयाजनक स्थितिकी झलक मिलती है। नवयुवक तो शायद मेरे इस वाक्य पर क्रोध भी करें और मुझे तथा मेरे-जैसोंको दयाका पात्र मानें। किन्तु मेरा अनुभव ऐसे नवयुवकके अज्ञानको प्रत्यक्ष रूपसे प्रकट करता है।

मैं बचपनमें बहुत-से मन्दिरोंमें गया हूँ और उनका मुझपर तनिक भी बुरा असर नहीं पड़ा। आज भी मैं अपने अनेक स्नेहियोंको मन्दिरोंमें जाते देखता हूँ। वे मन्दिरोंके दोषोंको नहीं जानते किन्तु मन्दिर जानेवालों के दोषोंका उन्हें भान है। अतः वे लोग पूर्णतः अलिप्त हैं। मैं मन्दिर नहीं जाता इसमें मैं अपनी कोई बड़ाई नहीं मानता या देखता। मुझे इन मन्दिरोंकी भूख नहीं रही इसलिए मैं वहाँ नहीं जाता। हरिजनोंके लिए मन्दिर-प्रवेशकी छूट प्राप्त करनेका अर्थ उन्हें मन्दिरमें ले जाना नहीं है। जिसकी इच्छा होगी, वह जायेगा। जो वहाँ जायेगा उसे कोई दोष नहीं लगेगा। इसकी सम्भावना अवश्य है कि जो नहीं जायेगा वह कुछ गँवायेगा।

अब दो शब्द कानूनके बारेमें। जिस प्रकार लेखकने आक्रोशमें बिना किसी प्रमाण या नगण्य प्रमाणके मन्दिरोंकी निन्दा की है उसी आक्रोशमें उसने कानूनके बारेमें भी अपना अज्ञान प्रकट किया है। मुझसे थोड़ा-बहुत परिचय होनेके बावजूद उसने यह नहीं सोचा कि मेरे-जैसा व्यक्ति जो कानूनका कमसे-कम सहारा लेता है, वह यदि मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी कानूनकी आवश्यकता महसूस करता है तो उसका कोई-न-कोई

सबल कारण होना चाहिए। अब वह उस कारणको समझ ले। आज कानून कहता है कि कोई भी सार्वजनिक मन्दिर हरिजनोंके लिए खुला नहीं है और जो न्यासी उनके लिए मन्दिर खोलेगा वह दण्डका भागी होगा। ऐसी हालतमें इस स्थितिसे उबरनेके लिए यदि हम कानूनकी माँग नहीं करेंगे तो हरिजनोंके लिए मन्दिर कभी खुलेंगे ही नहीं। कानूनकी मदद अनिवार्य है। बुरा कानून तो अच्छे कानूनसे ही रद्द हो सकता है। अन्य कोई उपाय नहीं है। हमने कानून द्वारा हस्तक्षेप करनेकी माँग नहीं की, बल्कि कानून जो हस्तक्षेप करता आ रहा था उसे दूर करनेकी माँग की है। बुरे कानूनको रद्द करवानेके लिए भी कानूनकी जरूरत होती है, जो इस बातको मानता है वह यह समझ सकता है कि हरिजनोंसे सम्बन्धित कानून बनवानेका जो आन्दोलन चल रहा है वह इसी प्रकारका है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१४५. वर्ण-धर्म

यह प्रश्न[1] एक हरिजन-सेवकने किया है। मेरी बात इसलिए समझमें नहीं आती क्योंकि आज हम जिसे वर्ण-व्यवस्था मानते हैं, उसे मैं नहीं मानता। आजकी वर्ण-व्यवस्थाका मतलब छुआछूत और रोटी-बेटी-व्यवहारकी पाबन्दियाँ हैं। आजकलकी छुआछूतको मैं अखा भगतकी भाषामें 'फालतू अंग' मानता हूँ, और उसे त्याज्य मानता हूँ। रोटी-बेटी-व्यवहारकी पाबन्दीको वर्ण-व्यवस्थाका हिस्सा माननेके लिए रूढ़िके सिवा शास्त्रोंका कोई आधार नहीं है।

इसके विपरीत वर्णका आजीविकाके साधनके साथ नजदीकका सम्बन्ध है। जिसका जो धन्धा हो वह उसका स्वधर्म है। जो उसे छोड़ देता है वह वर्ण-भ्रष्ट हो जाता है और उसका नाश हो जाता है; अर्थात् उसकी आत्मा मर जाती है। वह आदमी वर्णोंका संकर करता है और इससे समाजको नुकसान पहुँचता है, सामाजिक व्यवस्था टूट जाती है। जब सभी अपना वर्ण छोड़ देते हैं, तो सामाजिक कुव्यवस्था बढ़ जाती है, अराजकता फैल जाती है और समाज नष्ट हो जाता है। यदि ब्राह्मण वर्ण विद्या देनेका काम छोड़ दे तो उसका पतन हो जाता है। यदि क्षत्रिय प्रजाकी रक्षाका काम छोड़ दें तो वे वर्ण-भ्रष्ट हो जाते हैं। वैश्य द्रव्योपार्जन करना छोड़ दें तो वे अपने वर्णसे गिर जाते हैं। यदि शूद्र सेवा करना छोड़ दें तो उनका पतन हो जाता है। सभी अपने-अपने धर्मके पालनमें लगे रहकर बराबरीके बने रहते हैं। जो

१. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। हरिजन-कार्यकर्त्ताने गांधीजी से पूछा था कि एक ओर तो वे ऊँच-नीच और छोटी-छोटी जातियोंको मिटाने तथा अन्तर्जातीय विवाह और खान-पानकी हिमायत करते हैं किन्तु दूसरी ओर वर्ण-व्यवस्थाको तोड़ना नहीं बल्कि उसमें सुधार करना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें यह सवाल उठता है कि वे किस हदतक अन्तर्जातीय विवाह और खान-पानको स्वीकृति देंगे।

अपना धर्म छोड़ देता है, उसीका पतन होता है। स्वधर्मको छोड़नेवाले ब्राह्मणसे स्वधर्मका पालन करनेवाला शूद्र अच्छा है।

इस वर्ण-व्यवस्थामें किसी प्रकारके विशेषाधिकारकी गुंजाइश नहीं है। यह सिर्फ धर्म है, कर्त्तव्य है। जहाँ कर्त्तव्यकी बात है, वहाँ ऊँच-नीचकी भावनाकी गुंजाइश ही नहीं हो सकती।

आजकल वर्ण-धर्म लुप्त हुआ दिखाई दे रहा है। यदि कोई एक वर्ण भी अपना धर्म छोड़ देता है तो पूरी वर्ण-व्यवस्था मिट जाती है। आज तो ब्राह्मणोंने ब्राह्मणत्व, क्षत्रियोंने क्षत्रियत्व और वैश्योंने वैश्यत्व छोड़ दिया है। कोई यह शंका कर सकता है कि रुपया कमानेकी आकांक्षा तो सबको है, उसके लिए तो सभी मेहनत करते हैं, इसलिए वैश्यत्व अब भी बना हुआ है ऐसा माननेमें क्या दोष है? मगर ऐसा कहना ठीक नहीं। आजके वैश्य अपने ही लिए रुपया पैदा करते हैं, इसलिए 'गीता'की भाषामें वे चोर माने जायेंगे। वैश्यका धर्म रुपया पैदा करके उसमें से अपने गुजारे लायक लेकर बाकी समाजके काममें लगाना है। ऐसे वैश्य धर्मका पालन करनेवाला कोई मुश्किलसे ही नजर आता है। इसलिए वैश्यका वर्ण भी मिट ही चुका है।

अब रह गया शूद्रका धर्म। इसका पालन करनेवाले कितने शूद्र निकलेंगे? बेमनसे की हुई मजदूरी सेवा नहीं है। धर्ममें जबरदस्तीकी गुंजाइश नहीं होती। धर्म समझकर स्वेच्छासे समाजकी उन्नतिके लिए की हुई मजदूरी ही सेवा कहलायेगी। अतः दुःखके साथ यह मानना ही पड़ेगा कि वर्ण-धर्मका बिलकुल नाश हो गया है। शूद्रको मजदूर बताकर व्याख्याकारने उसकी बेइज्जती की है और हिन्दू धर्मको नुकसान पहुँचाया है।

लेकिन वर्ण-धर्म हिन्दुओंकी रग-रगमें पैठा हुआ है। बिना समझे उन्होंने भले ही उसका सम्बन्ध रोटी-बेटी-व्यवहार और छुआछूतके साथ जोड़ दिया हो। वर्ण-धर्म की कल्पनाके बिना हिन्दुओंको चैन नहीं पड़ता। इसलिए उसका पुनरुद्धार होना सम्भव है। तपके बिना धार्मिक जागृति या उसका उद्धार करना नामुमकिन है। तप ही एक ऐसी महान् शक्ति है, जिसके द्वारा धर्मकी रक्षा और संस्थापना की जा सकती है। ज्ञानके बिना तप, तप नहीं बल्कि शरीरको दुख देना ही है। तप और ज्ञानका मेल तो ब्राह्मण धर्ममें ही सम्भव है। जो ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिए परिश्रम करे वह ब्राह्मण होने लायक है। यदि आज ऐसा प्रयत्न किया जाये तो किसी दिन हिन्दू धर्म अर्थात् वर्ण-धर्मका उद्धार हो सकेगा। सौभाग्यसे ऐसा प्रयत्न करनेवाला एक छोटा-सा वर्ग आज मौजूद है। अतः मुझे अटल विश्वास है कि हिन्दू धर्म — शुद्ध सनातन धर्म — फिर अपना तेज प्रकट करके जगत्‌को कल्याणका मार्ग दिखायेगा।

मेरा हिन्दू धर्म सर्वव्यापक है। उसकी किसी धर्मके साथ दुश्मनी नहीं और न वह किसीका अपमान करता है। सब धर्म एक-दूसरेमें गुँथे हुए हैं। सबमें कोई-न-कोई विशेषता पाई जाती है। किन्तु कोई भी धर्म दूसरे धर्मसे श्रेष्ठ नहीं है। मेरा ऐसा विश्वास है कि सब धर्म एक-दूसरेकी कमी पूरी करते हैं। इसलिए किसी धर्मकी विशेषता दूसरेके विरुद्ध नहीं हो सकती, जगत्‌के सर्वमान्य सिद्धान्तोंकी विरोधी नहीं

हो सकती। वर्ण-धर्मको इस दृष्टिसे देखनेपर उसका वही अर्थ निकल सकता है जो मैंने किया है। और इतिहास बताता है कि हिन्दू धर्मके अनुयायी किसी समय स्वेच्छासे उसका पालन करते थे।

इस वर्ण-धर्मके पालनको फिरसे सम्भव बनानेके लिए सबको स्वेच्छासे शूद्रोंका धर्म स्वीकार करनेकी जरूरत है। शूद्र मुख्यतः शारीरिक श्रम द्वारा सेवा करता है। यह धर्म सबके लिए सुलभ है। अतः सबके लिए ऐसा कर पाना सम्भव है। इसके सिवा, ऐसी मान्यता फैली हुई है कि शूद्र नीच हैं। सब अपनेको शूद्र समझें तो ऊँच-नीचका भाव जाता रहे।

कोई कहेगा, 'अगर सब अपनेको शूद्र मानें तो हरिजन ही क्यों न मानें?' मैं इस आग्रहका तनिक भी विरोध नहीं करूँगा लेकिन धर्ममें पाँच वर्ण नहीं हैं, और छुआछूत तो मिट ही रही है। इसलिए मैं 'शूद्र' शब्दका व्यवहार करता हूँ। मालवीयजी महाराजकी अध्यक्षतामें हिन्दू जातिके नामपर बम्बईमें ली गई प्रतिज्ञाके[1] बाद जन्मसे छुआछूतको माननेकी हिन्दू धर्ममें गुंजाइश नहीं रही। इसलिए वर्ण-धर्मके पुनरुद्धारके समय सबकी गिनती हरिजनोंमें करनेकी बात बेमौका समझी जायेगी। यदि हरिजन और अन्य सब लोग शूद्र बनकर रहें तो सहज ही सब हरिके जन हो जायेंगे।

लेकिन सब समझ-बूझकर सेवा-धर्मका पालन करने लगें और अपनेको शूद्र मानने लगें तो फिर यह तो हो ही नहीं सकता कि कोई ब्रह्मविद्या न सीखे। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार कोई ब्रह्मविद्या सीखेगा और सिखायेगा, कोई प्रजाका पालन करेगा और कोई रुपया पैदा करेगा। सबका रहन-सहन लगभग एक-सा होगा। यह हालत नहीं रहेगी कि एक करोड़पति हो और दूसरा भिखारी। वैश्यका धन प्रजाका धन माना जायेगा। इन तीनों शक्तियोंका उपयोग केवल सामाजिक सेवाके लिए किया जायेगा। सब लोग शूद्र ही माने जायेंगे तो ऊँच-नीचका भेद नहीं रहेगा। इससे स्वभावतः वर्ण-धर्मका पुनरुद्धार होगा।

वर्ण-धर्ममें निश्चय ही परम्पराके लिए स्थान है। उसके बिना सुव्यवस्था असम्भव है। इसलिए अध्यापन करानेवालों की संतान उसी धर्मका पालन करेगी। सबके-सब एकाएक ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकते और हो जायें तो कोई हानि नहीं। क्योंकि ब्रह्मज्ञानी होनेका तात्पर्य तो सेवाकी पराकाष्ठापर पहुँचना है। उसमें घमण्ड अथवा खुदगरजीकी बू तक नहीं हो सकती। और जब अच्छी संख्यामें ऐसे ब्रह्मज्ञानी सामने आयेंगे तो वर्ण-व्यवस्था पुनः स्थापित हो सकती है।

अब दो शब्द रोटी-बेटी-व्यवहारके बारेमें।

जिन्होंने उपर्युक्त अंशको भली-भाँति समझ लिया है, उनके लिए तो असलमें और कुछ लिखनेको बाकी ही नहीं रह जाता। कोई किसीके साथ रोटी खाने या चाहे जिसे अपनी लड़की दे डालनेको बँधा नहीं है। इसलिए स्वाभाविक रूपसे सब अपने जैसे रीति-रिवाज और स्वभाववालों के साथ ही रोटी-बेटी-व्यवहार रखेंगे। मैंने

१. प्रतिज्ञाके पाठके लिए देखिए "हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा", ९-३-१९३३।

अभी एक ही वर्णकी कल्पना की है और हरिजन उससे बाहर नहीं हैं; इसलिए इतना ही कहना काफी है कि सब लोग अपनी सुविधानुसार अपने रिश्ते ढूँढ़ लेंगे और जहाँ उनकी आत्मा संतुष्ट होगी वहाँ खायेंगे-पीयेंगे और उठेंगे-बैठेंगे। छुआछूतके मिट जानेके बाद इस बारेमें ज्यादा कहने-करनेको कुछ नहीं रह जाता।

आखिरमें बहुत बार कही हुई बातें फिर दुहरा दूँ। इस वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका अस्पृश्यता-निवारणके साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। अस्पृश्यता-निवारण हर हिन्दूका परम धर्म है। इसीके लिए हरिजन सेवक संघका अस्तित्व है। उसने अपना क्षेत्र निर्धारित कर लिया है और इस क्षेत्र-निर्धारणमें मेरा खास हाथ है।

वर्ण-धर्म-सम्बन्धी ये विचार अभी तो मेरे निजी विचार हैं। उन्हें जो न माने, उसे भी अस्पृश्यता दूर करनेसे न चूकना चाहिए। मैं उसमें विशेष रूपसे भाग लेता हूँ, इस कारण किसीको भड़कनेकी जरूरत नहीं। वर्ण-व्यवस्था-सम्बन्धी मेरे विचारोंको यदि हिन्दू जाति नहीं मानेगी तो वे मेरे पास ही रह दिया जायेंगे। मैं उन्हें जबरदस्ती नहीं मनवा सकता, मनवानेकी इच्छा भी नहीं है। यदि ये विचार हिन्दू धर्मके विरुद्ध होंगे तो मैं थोथे चनेकी तरह हिन्दू जातिमें से निकाल दिया जाऊँगा। लेकिन छुआछूतको मिटानेकी प्रतिज्ञाका पालन करना तो सभी हिन्दुओंका सामान्य धर्म है। मैं अपने किसी विचारको छिपाकर धोखा देना नहीं चाहता। वर्ण-व्यवस्थाके प्रश्नका छुआछूतके साथ परोक्ष सम्बन्ध है, इसलिए मैं समझ सकता हूँ कि मेरे साथी और अन्य लोग इस बारेमें मेरे विचार जानना चाहते होंगे। इसी कारण मुझे अपने ये विचार विस्तार से बताने पड़े हैं। मगर इन विचारोंके कारण किसीको सोच-विचार या परेशानीमें पड़नेकी जरा भी जरूरत नहीं। धर्मके मामलेमें व्यक्तिकी कोई गिनती नहीं है। वे तो आते-जाते रहेंगे। धर्म सनातन है और वह सदा चलता रहेगा। उसके बारेमें सदा ही विभिन्न प्रकारकी कल्पनाएँ होती रही हैं और भविष्यमें होती रहेंगी। जिस तरह ईश्वरके गुणोंका पार नहीं, उसी तरह धर्मकी मर्यादाका भी पार नहीं है। उसे पूरी तरह किसीने नहीं जाना। सब जितना जानते हैं उतना पालन करते रहें, तो धर्मकी गाड़ी आगे ही बढ़ती रहेगी। इतना समझकर मुझे अलग रखकर ही सब अपने-अपने धर्मकी खोज करें। इसकी खोज करनेकी शर्त जग-जाहिर है। उन शर्तोंका पालन करनेवाले ही किसी हदतक धर्मको पहचान सकेंगे। सारे ज्ञानके पीछे उसे प्राप्त करनेके नियम होते हैं। उसके लिए परिश्रम आवश्यक है। धर्मकी खोजके लिए सबसे अधिक परिश्रमकी आवश्यकता है। और इसीलिए उसकी खोजके आरम्भमें ही अनुभवियोंने यम-नियमोंके पालनकी आवश्यकता बताई है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १९-३-१९३३

१४६. पत्र : एफ० मेरी बारको

१९ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम्हारे दो सुन्दर पत्र मेरे सामने हैं। बात बिलकुल ठीक है कि अनेक अन्य व्यक्तियोंकी भाँति तुमने भी मिशनमें काफी शारीरिक श्रम किया। मैंने उसके बारेमें नहीं कहा था। मेरा आशय तो यही था कि आश्रमवासियोंकी तरह ही व्यवस्थित ढंगसे शारीरिक श्रम किया जाये और विभिन्न शिल्पोंमें सिद्धहस्तता हासिल की जाये। लेकिन मैं इसके बारेमें अधिक विस्तारसे नहीं लिखूँगा। अपने भोजनका खर्च शारीरिक श्रमसे पूरा करना और इस तरह भोजनके लिए शारीरिक श्रम करना — यही आदर्श है जिसे हम आश्रममें रहकर अमलमें लानेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु तुम्हें तो वही करना है जो तुमको पसन्द हो और उसी ढंगसे जो तुम्हें ठीक लगे। मैं नहीं चाहता कि तुम मानसिक तनावकी स्थितिमें कोई काम करो। यदि मैंने पाया कि तुमने आश्रमकी चर्या पूरी करनेके लिए तनावकी मनःस्थितिमें काम किया है, तो मुझे बड़ी पीड़ा होगी। मैं चाहता हूँ कि तुम आश्रमकी भावनासे अनुप्राणित होओ। हर कार्यावधिके बाद हृदयको सन्तोष और हर्षका अनुभव होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब हमारा प्रत्येक क्षण ईश्वरको अर्पित हो और हम हर काम ईश्वरके लिए, उसकी सृष्टिके लिए करें। अब आज अधिक कुछ कहनेका समय नहीं है।

हम सबकी ओरसे सस्नेह।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०००)से। सी० डब्ल्यू० ३३२५से भी; सौजन्य : एफ० मेरी बार

१४७. पत्र : केशवको

१९ मार्च, १९३३

प्रिय ब्रदर केशव,

आपकी योजनाके[1] बारेमें अब मैं अपनी राय दे सकता हूँ। काका साहबकी राय है कि आपको फिलहाल कोई बड़ी रौबीली लम्बी-चौड़ी इमारत दरकार नहीं। साबरमती जानेवाले ब्रदर कोई बहुत अनुभव प्राप्त नहीं कर पाये। आपके यहाँ दो करघे तो हैं ही। फिलहाल उनको ही चलाना चाहिए। आप जितना सूत तैयार कर रहे हैं वह तो उन दोनों करघोंको चालू रखनेके लिए भी काफी नहीं है। इसलिए आपको धीमी लेकिन सुस्थिर गतिसे आगे बढ़ना चाहिए और कामको तभी अधिक फैलाना

१. देखिए "पत्र : केशवको," ७-३-१९३३।

चाहिए जब आपके पास ऐसे प्रशिक्षित कतैयों और बुनकरोंकी एक शुरुआती टोली जुट जाये, जिनको अपने काममें पूरी सिद्धहस्तता प्राप्त हो और जो बाजारमें खपने लायक सूत तथा खादी तैयार करने लायक हों। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपका भी वही हाल होगा जो कई और संस्थाओंका हुआ है। मैं जानता हूँ कि उन्होंने बड़े ही ऊँचे और उदात्त लक्ष्यको सामने रखकर काम शुरू किया था, लेकिन कार्यक्षमता और अध्यवसायके अभावमें वे ठप हो गईं। यह एक ऐसा उद्यम है जिसके लिए उतना ही तकनीकी कौशल, अध्यवसाय और समय दरकार है जितना कि अन्य किसी भी उद्योगके लिए होता है। सच पूछिए तो इसके लिए कुछ अधिक ही चाहिए, कम तो किसी भी तरह नहीं।

इसलिए मैं तो आपसे यही कहूँगा कि आप इस सार्वजनिक अपीलको वापस ले लें और बिना किसी दिखावेके चुपचाप अपने कामका विकास करते जायें; और जब आप इतना कर लेंगे तो देखेंगे कि उसके विस्तारके लिए आपको धन भी सहज ही सुलभ है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६२६) से।

१४८. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

१९ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

इसी मासकी १३ तारीखके आपके पत्र संख्या ९२१ का उत्तर दे रहा हूँ।

मैं तो समझता हूँ कि आपकी शिकायतसे अपने-आपको बरी करनेके लिए मैं आपके सुझाये उस आसान-से तरीकेकी आड़ नहीं ले सकता। जब मैंने यह वाक्य लिखाया था कि "पता नहीं, आप 'हरिजन' का अंग्रेजी संस्करण पढ़ते भी हैं या नहीं,"[1] तब मेरा आशय ठीक यही था। मैं जानता हूँ कि आप कैसे लगनवाले कार्यकर्ता हैं। सामान्यतया मुझे आपसे ऐसी अपेक्षा नहीं ही रखनी चाहिए कि संघकी[2] ओरसे प्रकाशित सभी पत्र-पत्रिकाएँ आप पढ़ ही लें। यह तो किसी भी संस्थाके मन्त्रीके बसका काम नहीं होगा। स्थिति यह है कि इस संघके तत्त्वावधानमें प्रकाशित होनेवाले समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और अन्य प्रकाशनोंकी मात्रा इतनी अधिक नहीं है। परन्तु जितना प्रकाशन होता है, उस सबको भी पढ़ लेनेकी अपेक्षा आपसे नहीं रखी जा सकती और यदि आप ऐसी कोशिश भी करेंगे तो कहीं अधिक उपयोगी कार्योंकी बलि देकर ही कर पायेंगे। परन्तु मैं 'हरिजन' के अंग्रेजी और हिन्दी संस्करणको विशेष

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५७५।

२. हरिजन सेवक संघ।

स्थान दे रहा हूँ -- अंग्रेजी संस्करणको इसलिए कि उसमें अपने सभी विचारोंको लिखित रूप देता रहता हूँ और वे आपके लिए भी उतने ही होते हैं जितने कि हरिजन-कार्य करनेवाले अन्य कार्यकर्ताओंके लिए होते है; और ऐसा मैं इसलिए करता हूँ कि संघकी नीति निर्धारित करने और उसका मार्ग-दर्शन करनेका काम मेरा ही माना जाता है। इसलिए मैंने विनम्रतापूर्वक वह प्रश्न पूछकर आपको यही सुझाना चाहा था कि अंग्रेजी संस्करणको आप एक विशिष्ट स्थान दें और उसे पढ़नेका समय अवश्य निकाल लिया करें। हिन्दी संस्करण तो आपको पढ़ना ही है, क्योंकि वह आपके यहाँसे ही निकलता है और उसमें सबसे हालकी सामग्री भी दी जा सकती है, जबकि दूरीके कारण अंग्रेजी संस्करणमें वह नहीं दी जा सकती। हिन्दी संस्करण तथ्यों और आँकड़ोंसे ठसाठस भरा रहना चाहिए। स्थिति यह होनी चाहिए कि मैं उससे तथ्य और आँकड़े उद्धृत करूँ और ऐसा करना मुझे बड़ा अच्छा लगेगा। उसके जरिये आप असंख्य कार्यकर्ताओं तक अपनी बात पहुँचा सकेंगे और उनको ठीक-ठीक हिदायतें दे सकेंगे। और अगर यह नहीं होता तो उसे निकालना ही बेमतलब है। हिन्दी 'हरिजन' में लेख और निबन्ध आदि देनेकी जरूरत नहीं। उसमें तो मेरे सन्देशोंका अनुवाद और मुख्य कार्यालयसे प्राप्त चुनी हुई प्रामाणिक सूचनाएँ तथा कार्यकर्ताओंके लिए हफ्तेवार हिदायतें ही रहनी चाहिए। तभी वह अपने प्रकाशनका औचित्य सिद्ध कर सकेगा।

अब आपके पत्रके दूसरे अंशको लेता हूँ। मैं बतला ही चुका हूँ कि अन्य संगठनोंके बारेमें मेरा क्या दृष्टिकोण है। हमें उनको अपने ही संगठन मानकर चलना चाहिए -- यह इसलिए नहीं कि हम उनको अपने इशारोंपर चला सकें, बल्कि इसलिए कि उनकी सहायता-सेवा कर सकें और यदि वे हमें अपना सहयोग दें तो उनकी सेवाओंका उपयोग कर सकें। पर इस बातकी सबसे ठीक जानकारी तो आपको ही है कि उन संस्थाओंसे सम्पर्क करनेकी कोई जरूरत भी है या नहीं और यदि है तो कैसे सम्पर्क किया जाये। सचमुच लाला मोहनलालके[1] विरुद्ध मेरे मनमें कोई बात न तो थी और न हो ही सकती है। लेकिन मेरे अपने खयालके मुताबिक मेरा और आपका काम यही है कि हम अच्छी-बुरी या निरुद्देश्य सभी शिकायतोंकी जाँच करें, जिससे कि जहाँतक आदमीसे बन सकता है, उनमें गलतियों या शिकायतोंकी कोई गुंजाइश हमारी ओरसे न छूट पाये।

अब आपके पत्रके अन्तिम अंशको जिसमें ऊपरी खर्चकी बात उठाई गई है, लेता हूँ। आप और मैं दोनों आरम्भसे ही कार्यकर्ता रहे हैं और अनेकानेक संस्थाओंके साथ हमारे सम्बन्ध रहे हैं। सचमुच मैं स्वयंको अपने ही ढंगसे एक विशिष्ट अर्थशास्त्री और संगठनकर्ता मानता हूँ। यदि हम यह नहीं दिखा सकेंगे कि हमारी अपनी उगाही हुई राशिका अधिकांश हरिजनोंकी जेबोंमें पहुँचा है, तो मौजूदा पीढ़ी नहीं तो आगे आनेवाली पीढ़ियोंको हक होगा ही कि वे हमें जी-भरकर कोसें। इसलिए ऊपरी खर्चोंपर दस प्रतिशत खर्च कर देना मैं ज्यादती समझता हूँ। प्रचार तो हमें करना ही चाहिए और काफी करना चाहिए तथा हरिजनों और सवर्णों,

१. हरिजन सेवक संघकी पंजाब शाखाके मन्त्री।

दोनोंके बीच करना चाहिए। लेकिन हमें अपने प्रचार-कार्यको, विशेषकर सवर्णोंके बीच किये जानेवाले प्रचार-कार्यको, ऐसा बनाना चाहिए कि वह अपना खर्च खुद ही लगभग पूरा कर ले, बाहरसे उसकी पूर्ति न करनी पड़े। मेरी रायमें सर्वोत्तम प्रचार तो हरिजनोंके बीच रचनात्मक कार्य करना ही है। उसका असर हरिजनोंपर ही नहीं, सवर्णोंपर भी पड़ेगा। फिलहाल आप दो मदोंके लिए चन्दे ले सकते हैं — एक तो रचनात्मक कार्यकी मदमें और दूसरा प्रचारकी मदमें। पहले चन्देकी राशि सीधे हरिजनोंकी जेबोंमें जायेगी। सच तो यह है कि प्रचार-कार्यका खर्च हमारे साप्ताहिक पत्रों और अन्य साहित्यकी बिक्रीसे निकलना चाहिए, जिससे कि अन्य प्रकारसे इकट्ठी की गई सारी-की-सारी राशियाँ हरिजनोंको मिल सकें। इसलिए हमारे सवर्ण कार्यकर्ता या तो स्वयंसेवक होने चाहिए या फिर उनको गुजारे लायक पैसा ही लेना चाहिए और हमें जितने भी जुट सकें, उतने हरिजन कार्यकर्ताओंको आगे लाकर उनको काफी अच्छा वेतन देना चाहिए। हो सकता है कि फिलहाल वे कोई बहुत अच्छा काम करके न दिखा सकें, पर मुझे उसकी चिन्ता नहीं; मैं तो उनको काम करनेका ढंग सिखानेपर ही ध्यान दूँगा। यह सब काम तभी हो सकता है जब हमारे कार्यकर्ता धार्मिक विचारोंके हों, वे इस आन्दोलनको मुख्यतः धार्मिक आन्दोलन मानकर इसमें धार्मिक भावनासे भाग लें। तब आप देखेंगे कि हमें कमसे-कम विरोध का सामना करना पड़ रहा है और विरोध कितना ही सामने आये, हमारा आन्दोलन फूलता-फलता चलेगा। यदि हमें अपना आन्दोलन चलाने और ऐसी भावनासे ही चलानेके लिए पर्याप्त संख्यामें कार्यकर्ता नहीं मिल पाते, तो कमसे-कम मैं यह कहनेमें तनिक भी संकोच नहीं करूँगा कि हमें संगठन कायम नहीं रखना चाहिए। उस संगठनके बिना भी आपके सामने अपना और मेरे सामने मेरा अपना महान् कार्य तो है ही। संगठनकी स्थापना इसी विश्वाससे की गई थी कि जनताको उसकी जरूरत है। मेरा अपना विश्वास आज भी यही है, लेकिन उसे वास्तवमें जरूरत है या नहीं, यह तो मैंने जो कसौटी रखी है, उसीसे सिद्ध हो सकता है।

मेरे दिमागमें जो विचार-प्रवाह चल रहा है, उसकी मात्र रूपरेखा मैंने आपको बतलाई है। यह पत्र आप श्रीयुत घनश्यामदासको दिखला दीजिए; और यदि लाभकारी समझें तो इस पूरी चीजपर बातचीत करनेके लिए आप यहाँ आ सकते हैं। लेकिन यदि आपने मेरे पत्रकी भावना ठीक-ठीक समझ ली हो और आप उसे ठीक मानते हों तो आनेका कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं।

अन्तमें मैं, यही कहता हूँ कि आप इस पत्रमें कही गई किसी भी बातपर सिर्फ इसलिए अमल न करें कि वह मैंने लिखी है। आप सिर्फ उस बातपर अमल करें जो आपको ठीक जँचे, अन्यथा नहीं। अपने विचार आपके सामने रखकर मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६३३)से।

किये किन्तु इसमें उसे सफलता नहीं मिली। वह कल मुझे . . . के[१] साथ मिला। उसकी उदारता . . . से[२] कम नहीं है। मेरे प्रति उसका प्रेम इतना अधिक है कि मैं उसके बोझसे दबा जाता हूँ। मैं देखता हूँ, मुझसे नाराज होनेके बजाय मेरे प्रति वह अब भी उससे कहीं अधिक प्रेम रखती है जितनी कोई लड़की अपने पिताके प्रति रखती है। दूसरी ओर . . . की[३] बात सोचकर तो मैं काँप उठता हूँ . . .[४] तो अब ऐसा कहता है कि उसका . . . से[५] विवाह करनेका कोई विचार ही नहीं था। वह तो उसकी परीक्षा ले रहा था। यह बात सच हो तो मुझे अच्छा लगेगा। मैं चाहता हूँ कि ऐसा ही हो। यद्यपि यह भी अनुचित तो था ही। किन्तु उसकी इस बातपर विश्वास नहीं बैठता। कोई उसे स्वीकार नहीं करता। यदि . . .[६] अभी भी धोखा दे रहा है तो कहना होगा कि वह अप्रत्याशित नीचता दिखा रहा है। वल्लभभाईका . . .[७] पर मोह था; उनका मोह भी अब उतर गया मालूम होता है। मैं स्वयं उसके मनकी थाह नहीं पा सका। 'दिशो न जाने न लभे च शर्म' ऐसी मेरी स्थिति कही जा सकती है[८]। मेरे सामने कर्तव्य पड़ा हुआ है, इसलिए मेरी सब वेदनाओंको वह दबा सकता है। किन्तु मेरे हृदयमें दु:खकी ऐसी आग जल रही है जिसे मैं भी नहीं जानता।

जेलसे बाहर होता तो कह नहीं सकता कि मैं इसका क्या प्रायश्चित्त करता। यहाँ रहते हुए इस सम्बन्धमें मेरा क्या धर्म है, सो मैं जानता नहीं। . . . का[९] कोई दोष है, इस बात पर मेरा विश्वास नहीं बैठता। वह तो बिलकुल भोली लड़की है जो किसीका भी विश्वास कर लेती है। यह पत्र पण्डितजी, चिमनलाल, कमलाबहन, दुर्गा, लक्ष्मीबहन और तोतारामको तो दिखाना ही। जिन अन्य लोगोंको दिखाना तुम्हें ठीक लगे उन्हें भी दिखा देना। इस सम्बन्धमें उन्हें जो कहना हो सो वे मुझे लिखें। . . .[१०] वहाँ हों तो वह भी अवश्य बाँचें। उसे तो मैंने परसों ही पत्र लिखा है . . . के[११] साथ और बातचीत करनेके लिए मैंने काका साहबसे कहा है। वह . . .[१२] जानेवाला था। काका साहबसे मैंने उसे रोकनेको कहा है। इस विषयपर तुम जो भी प्रकाश डाल सको डालना। मैं तो इस समय और अधिक नहीं लिख सकता, क्योंकि मैं 'धर्म सम्मूढ़ चेतस' हूँ।

धर्मको मैं छोड़ नहीं सकता और मेरा विश्वास है कि सदाकी भाँति इस संकटमें से निकलनेका मार्ग भी ईश्वर मुझे दिखायेगा। इसलिए यद्यपि इस पत्रमें तुम मेरी व्यथा देखोगे तथापि ऐसा मानना कि मेरा मन शान्त है।

बापू

१ से ७. यहाँ नाम छोड़ दिये गये हैं।
८. **भगवद्गीता,** अध्याय ११, श्लोक २५।
९ से १२. यहाँ नाम नहीं दिये गये हैं।

[पुनश्च :]

इसके साथ सन्तोकबहन और लक्ष्मीदासभाईके लिए पत्र रख रहा हूँ।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३३७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१५१. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

आज सवेरे कुछ पत्र डाकमें छोड़नेके लिए दिये थे। वे मिल गये होंगे।

लक्ष्मीदासको लिखा गया पत्र यहीं रह गया था, अब उसे बारडोली भिजवाया है।

आनन्दीकी तबीयत ठीक होती जा रही है। कमजोरी है, थोड़ा बुखार भी रहता है। ऐसा खयाल है कि बुखार ऑपरेशनके कारण रहता होगा। परिचर्या ठीक हो रही है।

परचुरे शास्त्रीके निर्णयका समाचार अब मिल गया होगा।

सुरेशके पत्रमें एक वाक्य इस प्रकार है : "सब संस्थाओंमें लोग धनिकोंका ही सम्मान करते हैं, गरीबका कोई नहीं करता।" मैंने उससे पूछा है कि क्या यह बात आश्रमपर भी लागू होती है? उसे लिखा हुआ पत्र पढ़ना। यदि आश्रमके सम्बन्धमें उसका ऐसा ही अनुभव हो तो उससे प्रेमपूर्वक उसके इस कथनका प्रमाण माँगना। यदि हममें यह दोष हो तो हमें इसे सुधारना चाहिए।

वालजीभाईका 'यीशु चरित' वहाँ पहुँचा है क्या? पहुँचा हो तो जिसने उसे पढ़ा हो वह मुझे उसके सम्बन्धमें अपना मतामत लिखे[1]। न पहुँचा हो तो मैं पुस्तककी एक प्रति यहाँसे भेजूँगा।

बापू

पत्रोंकी कुल संख्या २२।

[पुनश्च :]

ये २२ पत्र एक साथ बँधे हुए हैं। २३ वाँ पत्र जो प्रभुदासके[2] नाम है, अलग है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३३८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. पुस्तकके विषयमें गांधीजी के विचारोंके लिए देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ २७५-७७।

२. नारणदास गांधीके भतीजे और छगनलाल गांधीके पुत्र।

१५२. पत्र : विद्या आनन्द हिंगोरानीको

१९ मार्च, १९३३

चि० विद्या,

अब तो तुमको महादेव[1] मिला फिर मुझे पत्र कैसे लिखोगी। साफ-साफ कह दे ना 'महादेव'के घरमें प्रगट होने कारण पत्र लिखनेमें देर होती है इसलिए क्षमा नहि मांग सकती। बच्चोंको कबझसे बचा लेना आवश्यक है। नित्य भी थोड़ा-सा एरंडीका तेल दे सकती है सिर्फ दस टीपे काफीसे अधिक हो जायगे। जब लिखो तब आनंदको आशीर्वाद दे दो।

दा० महेताको फिर मिलनेका नहि हुआ है।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इण्डिया और आनंद टी० हिंगोरानी

१५३. पत्र : रमाबहन जोशीको

१९ मार्च, १९३३

चि० रमा,

नारणदासको मैंने लिखा था जिसके उत्तरमें वह लिखता है :

यमूजी द्वारा रमाबहनकी क्लास लेनेकी सूचना मैं आपको दे चुका हूँ। वह तो क्लास आरम्भ होनेके पहले ही नाराज हो गई होगी। आशा है अब उसकी नाराजगी दूर हो जायेगी। यह कैसे हो सकता है कि मैं उसके पास कभी न जाऊँ? ऐसा तो मुझे सोचना भी नहीं चाहिए। मैंने उसकी क्लास लेनेकी व्यवस्था की और उससे कुछ देर बातचीत की। और अब तो उसके घर, बालमन्दिर आदिमें भेंट होती ही है। यदि उसे विश्वास न हो तो मुझे उसका विश्वास प्राप्त करनेका प्रयास करना चाहिए।

तो फिर तुम्हारी हार हुई न? या अब भी 'मेरी मुर्गीकी डेढ़ टाँग' ही है? अपनी पढ़ाईकी प्रगतिका विवरण मुझे भेजती रहना। तुम्हारा हाथ कैसा है?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४४) से।

१. हिंगोरानीके पुत्र।

१५४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

तू व्यर्थ शंका करती है। जैसे तू शुद्ध भावसे अपनी इच्छानुसार आलोचना करती है वैसी ही महादेवने की है। मैंने उससे पूछा। बार-बार 'महात्माजी के लिए' पर जोर देनेसे महादेवको उसमें तिरस्कारकी गंध आई। उन्हें जैसा लगा वैसा उन्होंने कहा। तूने उत्तर दिया इसलिए मामला निबट गया। तुझे सहन-शक्ति बढ़ानी चाहिए, अधीरता मिटानी चाहिए। थोड़ी विनोदी प्रकृति बनानी चाहिए। जगत्की सारी आलोचनाको सोनेके ही काँटेसे नहीं तोलना चाहिए; लोहा या पत्थर तोलनेकी तराजूका उपयोग करना चाहिए। उसमें मन-आध-मनका तो हिसाब तक नहीं होता। तू ऊपरसे नाजुक नहीं दीखती, लेकिन तेरा मन बहुत नाजुक मालूम होता है। अब तू उसे कठिन या सहनशील बना ले। अब तुझसे अनुरोध करनेके बजाय आज्ञा देनेका इरादा कर रहा हूँ। भले ही तू उसका अनादर करे। दूसरोंकी आज्ञाओंका अनादर करनेकी तो तुझे इजाजत नहीं मिलती, इसलिए तू मेरी आज्ञाओंका अनादर किया करना। यह अनादर सविनय माना जाये अथवा अविनय, दीवानी माना जाये या फौजदारी, यह देखा जायेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३०) से। सी० डब्ल्यू० ६७७० से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

१५५. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

१९ मार्च, १९३३

भाईश्री परीक्षितलाल,

तुम्हारा निर्मल पत्र मुझे मिल गया है। अपने दृष्टिकोणसे मुझे तुम्हारा आँकड़ा भयंकर लगता है किन्तु यदि मैं सामनेवाले के दृष्टिकोणको स्वीकार कर लूँ तो तुम्हारा आँकड़ा उत्तम है। तुम्हारा काम सिपाहीका है। कार्यकी जो भी पद्धति तय हो तुम्हें उसपर अमल करना चाहिए। पद्धति तय करनेका काम तुम्हारी स्थानीय या प्रान्तीय (अथवा इसे वे जो कहते हों) समितिका है। मेरा काम केवल पथ-प्रदर्शन करना है। परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए उनमें से जो अनुकूल जान पड़े उसपर अमल करना चाहिए। मेरे सुझावोंपर आँख मूँदकर अमल करनेसे उसका उलटा परिणाम

निकलनेकी पूरी सम्भावना और भय है। इसलिए तुम्हारा पहला काम यह है कि तुम अपने अनुभवकी दृष्टिसे मेरे सुझावको तोलो। यदि वह हलका उतरे तो उसे बिलकुल भूल जाना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि तुम्हें उसमें कुछ वजन दिखाई दे तो उसे अपनी समितिके सामने रखना चाहिए। यदि समितिको भी वह पसन्द आ जाये तो उसे ठक्कर बापाके सामने रखना चाहिए और वे भी पास कर दें तो उसपर अमल करना चाहिए। इससे अधिक यहाँ और कुछ नहीं लिखूँगा। अपने सुझावोंके बारेमें अब मैं अंग्रेजी-गुजराती 'हरिजन' में चर्चा करूँगा। उससे तुम्हें उनके बारेमें जानकारी मिल जायेगी।

तुम्हारे विचार करनेके लिए दो नियम लिख रहा हूँ:

१. प्रचार-कार्यके लिए आवश्यक पैसा उसीमें से निकलना चाहिए अर्थात् उसे स्वावलम्बी होना चाहिए।

२. रचनात्मक कार्य ही सच्चा प्रचार-कार्य है। उसमें लगाये हुए पैसेका पूरा लाभ मिलेगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६२९) से।

१५६. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

१९ मार्च, १९३३

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। यदि तू 'गीता' और संगीत सचमुच सीखना चाहती होगी तो जरूर सीख लेगी। किन्तु जो भी सीखे उसको पूरी तरह सीखना।

यदि खेतोंमें काम करनेमें सबको आनन्द आता हो तो उन्हें मेरी बधाई।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७४) से। सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

१५७. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२० मार्च, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

मैं आपको एकाधिक बार सरदार वल्लभभाईकी नाककी हालत बतला चुका हूँ। आप यह भी जानते हैं कि वे स्वयं इसके बारेमें बात करनेमें कितना संकोच अनुभव करते हैं। लेकिन उसकी जानकारी रखनेवाले हम लोगोंको चिन्ता हो रही है। उसका दौरा पड़नेके समय उनको भयंकर पीड़ा होती है। आपने और मेजर मेहताने जितने भी उपचार बताये, सबका प्रयोग करके देख लिया है, पर कोई लाभ नहीं हुआ। अब दौरे भी ज्यादा जल्दी-जल्दी पड़ते हैं और ज्यादा पीड़ाजनक होते जा रहे हैं। पिछले शनिवारको सबसे बुरा दौरा पड़ा था। तीस घंटोंसे भी अधिक समयतक नाक बहना और छींकें आना जारी रहा। आँखें और स्वाभाविक ही था कि नाक भी बिलकुल लाल हो गई थी। उन्होंने दिन-भर कुछ नहीं खाया, बस सुबह चाय और शामको फल, दूध तथा उबली हुई सब्जियाँ ली थीं। वे अपना आहार नहीं ले पाते। मैं समझता हूँ, अब समय आ गया है कि उनके अपने विशेषज्ञ पूरे तौर पर उनकी परीक्षा कर लें। डॉ० देशमुख उनके परामर्शदाता हैं और वे जिसे ठीक समझें उस नाक-विशेषज्ञको बुलानेका काम मैं उनपर ही छोड़ना चाहूँगा। डॉ० दामानी सामान्यतया उनकी नाककी चिकित्सा करते रहे हैं, लेकिन मुझे पता चला है कि उनको चेचक निकल आई है, इसलिए वे सुलभ नहीं होंगे।

आप इसे सरकारके पास भेजकर शीघ्र ही निर्णय करानेकी कृपा करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८२)से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्सट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०)(१) ए, पृष्ठ ३ से भी

१५८. पत्र : भाऊ पानसेको

२० मार्च, १९३३

प्रिय भाऊ,

तुम्हारा फिलहाल वहीं बने रहनेका निश्चय बिलकुल ठीक है। कोष्ठबद्धतासे पूरी तरह छुटकारा पा लेना वांछनीय है। क्या तुम वहाँके किसी काममें हाथ बँटाते हो? तुम्हें कभी-कभी राजकोटके आसपासके गाँवोंमें घूम आना चाहिए। कुछमें तो यों ही घूमते-फिरते जाया जा सकता है।

शामके समय किसानोंको कहानी सुनानेका कार्यक्रम रखा है तो क्या उनके साथ ही रह जाते हो?

मैं तुम्हारा पत्र दुबारा पढ़ गया। उससे मुझे मालूम हुआ कि जमनादास तुमसे वहाँका कोई काम नहीं लेता। कुछ नये लोगोंसे जान-पहचान की है क्या?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७५४)से। सी० डब्ल्यू० ४४९५से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

१५९. पत्र : जमनादास गांधीको

२० मार्च, १९३३

चि० जमनादास,

तू पत्र लिखनेमें आलस्य क्यों करता है। तेरा स्वास्थ्य अब भी ठीक हुआ नहीं लगता। ठीक नहीं होगा क्या?

सरूपबहन उस ओर आयी थीं। उनके बारेमें क्यों नहीं कुछ लिखा। मैं तुझसे [इस घटनाके] विवरणकी आशा रखता था।

भाऊका तेरा क्या अनुभव रहा? वहाँके हरिजन-कार्यका पूरा हाल लिखना।

खुशालभाई[1] कैसे हैं? प्रभुदासने लिखा है कि कानसे मवाद बहता है। देवभाभी[2] कैसी हैं?

क्या भाई कुछ मदद करते हैं?

कान्तिने[3] लिखा है कि बुआ[4] मिलनेके लिए आना चाहती हैं। उनसे कहना कि मिलनेका मोह छोड़ दें। मैं अच्छी तरह हूँ। फिर उनकी मर्जी। उनकी आँखें कैसी हैं? सुशीला और भाऊके लिए पत्र इसके साथ रख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं देखता हूँ कि तू भाऊसे कोई काम नहीं लेता। इसका खर्च आश्रमसे मंगा लिया कर।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४७) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. खुशालचन्द गांधी, गांधीजी के चचेरे भाई।
२. खुशालचन्द गांधीकी पत्नी।
३. हरिलाल गांधीके पुत्र।
४. सम्भवतः गांधीजी की बहन, रलियातबहन।

१६०. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

२० मार्च, १९३३

चि० मणिलाल तथा सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले। आशा है मेरे पत्र भी मिलते रहे होंगे। इसके साथ शान्तिको [1] भी पत्र लिख रहा हूँ। सीताके फोड़े बहुत दिन बने रहे। जालभाईकी लड़कीका किस्सा पढ़कर आश्चर्य हुआ। क्या वह कोई परिचित आदमी था? वह लड़की उसके सम्पर्कमें आई कैसे? और फिर उससे छुटकारा कैसे मिला? सोराबजीका कैसा चल रहा है?

गत मंगलवारको लक्ष्मीका मारुतिसे विवाह हो गया। अभी तो ऐसा लगता है कि यह सम्बन्ध सफल सिद्ध होगा। लक्ष्मी और मारुति मंजुके साथ रहते हैं। यह पता चलने पर कि आनन्दीको आंत्रपुच्छ है, उसका ऑपरेशन हुआ है। वह त्रिवेदीजी के यहाँ है। वेलाबहन यहीं है। आनन्दी मजेमें है। रामदास और जमनालालजी यहीं हैं और साथ-साथ रहते हैं। दोनों अच्छे हैं। आशा है अंग्रेजी और गुजराती 'हरिजन' मिलते होंगे। राजाजी और देवदास दिल्लीमें हैं। बा मीराबहनके साथ है और अच्छी है। आशा है, मणिलालको अब न्यासी नियुक्त कर दिया गया होगा। छापेखानेके बारेमें तुम्हारी वेस्टसे बातचीत हुई होगी। इस बातचीतका कोई परिणाम निकले या न निकले, तुम्हें वेस्टसे अपने सम्बन्ध बनाने चाहिए।

हम चारों लोग आनन्दमें हैं।

ऐसा लगता है कि अब सुशीला कुछ-कुछ पत्र लिखना सीख गई है। यदि जालभाईने सीताको 'खेल' सिखा दिया तो क्या ऐसा नहीं कहा जा सकता कि मैंने सुशीलाको कुछ-कुछ ढंगसे पत्र लिखना सिखा दिया?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०८) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।

१६१. पत्र : शान्तिलाल जे० मेहताको

२० मार्च, १९३३

चि० शान्ति,

तुझसे पत्र पानेकी आशा करना तो कुछ ज्यादा ही माना जायेगा न?

यदि तू फीनिक्समें ही रहनेकी सोच रहा हो तो फिर तुझे [वहाँ जो कुछ हो रहा है उसके सिवा] कोई इतर कार्य करनेका या बहुत-सारा पैसा कमानेका मोह छोड़ देना चाहिए या फिर फीनिक्सको ही अविलम्ब छोड़ देना चाहिए। जो लोग सेवा और स्वार्थ, दोनोंको साधनेकी कोशिश करते हैं वे दोनोंको ही बिगाड़ते हैं। मैं तुझसे कुछ ज्यादा अच्छा करनेकी आशा रखता हूँ।

तेरी पत्नी तुझसे सहमत होगी, ऐसा मानता हूँ। उसे अपना ज्ञान बढ़ानेमें प्रोत्साहन देना। अपना रहन-सहन खर्चीला मत बनाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म, (एम० एम० यू०/२२) से

१६२. पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं उसके बारेमें 'हरिजन' में लिखनेकी सोच रहा हूँ।[1] लेकिन मैं चाहूँगा कि आप अपने इस कथनके समर्थनमें मुझे कुछ ठोस सबूत जुटा दें कि ब्राह्मणवादके विरुद्ध प्रचार चल रहा है। यदि मुझे मालूम हो जाये कि उस कथनके पीछे आपका मंशा क्या था और आपके पास क्या सबूत था, तो मैं इस प्रश्नके बारेमें अधिक विस्तारसे लिख पाऊँगा[2]।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० आर० चक्रवर्ती
प्रोफेसर, नरसिंह दत्त कॉलेज
१२९, बेलिलिअस रोड
हावड़ा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४१) से।

१. देखिए "ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार", २५-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र: आर० आर० चक्रवर्तीको", १-४-१९३३।

१६३. पत्र : ईश्वरसिंहको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका १५ तारीखका पत्र मिला। आप 'हरिजन' के अंग्रेजी संस्करणका उर्दू अनुवाद अपनी ही जिम्मेदारीपर, उसकी विषयवस्तुके साथ किसी भी रूपमें मेरा नाम जोड़े बिना, कर सकते हैं। यदि अन्तमें आप इसी निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि 'हरिजन' के उर्दू अनुवादका प्रकाशन आप करेंगे, तो मैं यही अपेक्षा रखूँगा कि आप इस बातका पूरा ध्यान रखें कि अनुवाद सही और यथातथ्य हो; और ज्यादा अच्छा होगा, यदि आप हरिजन सेवक संघकी प्रान्तीय शाखाके सहयोगसे उसका प्रकाशन करें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ईश्वरसिंह
प्रबन्धक, लाजपतराय एण्ड सन्स
लाहौरी गेट, लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४४) से।

१६४. पत्र : के० आर० कृष्ण अय्यरको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जिस विवाहका[1] उल्लेख किया है, उसका अछूतोद्धार आन्दोलनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। वह तो बरसों पहले पक्का हो चुका था। मुझे मालूम नहीं कि बच्चीका पति किस वर्णका है। एक आश्रमवासी उस अनाथ बालकको ले आये थे और उन्होंने उसे अपने ही बच्चेकी तरह पाला-पोसा है।

और वर्णाश्रमके बारेमें तो मैं 'हरिजन' के पृष्ठोंमें अपने विचार पहले ही प्रकट कर चुका हूँ। उनमें मैं अपना यह विश्वास प्रकट कर चुका हूँ कि अन्तर्जातीय विवाहों और खान-पानपर प्रतिबन्ध लगाना वर्ण-धर्मका कोई आवश्यक अंग नहीं

१. एक हरिजन बालिका लक्ष्मीका मारुतिके साथ विवाह सम्पन्न हुआ था, उसीका उल्लेख है।

है और हिन्दू धर्मके स्वर्ण-कालमें नहीं था।[1] उसमें मैंने अपना यह मत भी प्रकट किया है कि आजकल भारतमें वास्तवमें एक ही वर्ण सम्भव है और वह है शूद्र वर्ण, दूसरे शब्दोंमें, सेवा करनेवालों का वर्ण। लेकिन 'हरिजन' के पृष्ठोंमें आपको मेरे विचार अधिक विस्तृत रूपमें मिल जायेंगे।

अन्तमें यही कहूँगा कि हरिजन सेवक संघके कार्यक्रमपर अमल करना तो सभी अछूतोद्धार कार्यकर्ताओंके लिए अनिवार्य है, लेकिन मेरे निजी विचारों या कार्योंके अनुसार काम करना किसीके लिए भी अनिवार्य नहीं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० आर० कृष्ण अय्यर
कल्लडाइकुरिची (एस० आई० आर०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४५) से।

१६५. पत्र : एम० मैअप्पाको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके इसी १७ तारीखके पत्रके लिए आभारी हूँ। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने गरीब हरिजनोंमें खादी वितरितकी और अस्पृश्यताविरोधी एक सभाकी अध्यक्षता भी की। आप और भी बहुत-से काम कर सकते हैं। 'हरिजन' के पृष्ठोंमें आपको ऐसे कामोंका विवरण मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एम० मैअप्पा
वेत्रीयूर
वाया शिवगंगा (एस० आई० आर०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४७) से।

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४९६-८।

१६६. पत्र : मोहनलालको[1]

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मोहनलाल,

आपका पत्र मुझे अत्यन्त मर्मस्पर्शी लगा। उसके लिए सफाई देनेकी कतई कोई जरूरत नहीं, और न मेरे लेखे आप कोई अभियुक्त ही थे। मैं जानता था कि आप लालाजी की संस्थाके सदस्य थे। लेकिन कार्यकर्ताओंको सभी तरहके आरोपोंके उत्तर तटस्थ भावसे देने पड़ते हैं। आपको शायद मालूम नहीं कि स्वयं लालाजी को कैसे-कैसे आरोपोंके उत्तर देने पड़े थे। इनके बारेमें मेरी उनके साथ काफी लम्बी बातचीत चली थी। मैंने 'आत्मकथा'में दादाभाईपर लगाये गये आरोपोंका उल्लेख किया है। इसलिए आप इतने बड़े-बड़े लोगोंकी कोटिमें शामिल रहे हैं। खैर, आपने मेरी इच्छा और अपेक्षाके अनुसार पत्र लिखा है।

हृदयसे आपका,

लाला मोहनलाल
मार्फत–हरिजन सेवक संघ
लाजपतराय भवन
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४८) से।

१६७. पत्र : एन मेरी पीटर्सनको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मेरी,

बस एक-दो पंक्तियाँ लिख रहा हूँ आपके पत्रके मिलनेकी सूचना देने और यह बतलानेके लिए कि अस्पृश्यता-सम्बन्धी मामलोंके सिलसिलेमें मुझसे मुलाकात करने-वालों के लिए अधीक्षककी अनुमति लेनेकी आम तौरपर जरूरत नहीं रहती, क्योंकि सरकार ऐसा एक सामान्य आदेश पहले ही निकाल चुकी है। अधिकृत रूपमें उत्तर मिलनेमें विलम्ब भी हो सकता है, इसी खयालसे मैं आपको यह बतलानेके लिए लिख रहा हूँ कि यदि आप रविवारको छोड़कर—हाँ आपसे बन सके तो बुधवार

१. मोहनलालने अमृतलाल वि० ठक्करके कहनेपर अपने १५-३-१९३३ के पत्र (एस० एन० २०५१८)में अपने ऊपर स्वात्मदास द्वारा लगाये गये आरोपोंके उत्तर दिये थे। देखिए "पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको", १६-३-१९३३ भी।

और गुरुवारको भी छोड़कर — अन्य किसी भी दिन ऐसी मुलाकातोंके लिए निर्धारित समयके अन्दर — अर्थात् दोपहर एक बजेसे लेकर चार बजे तक — आयें, तो आपको प्रवेश मिल जायेगा। रविवारको प्रशासनकी और बुधवार तथा गुरुवारको 'हरिजन' के लिए मेरे कामकी सुविधाके खयालसे छोड़ देना चाहिए।

आप जितनी जल्दी यहाँसे निबटकर जायें और अपने थके हुए शरीरको विश्राम दे सकें आपके और आपके परमार्थ-कार्यके लिए उतना ही अच्छा रहेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४६) से।

१६८. पत्र : रामपालसिंहको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय राजा साहब,

आपके द्वारा हस्ताक्षरित एक परिपत्र मुझे मिला था। उससे पता चला था कि सं० प्रा० धर्म-रक्षण सभा मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके बारेमें पण्डितोंके मतामत संग्रह कर रही थी। क्या उस सिलसिलेमें आगे भी कोई कार्रवाई की गई है, और यदि की गई हो तो उसका क्या परिणाम निकला?

हृदयसे आपका,

माननीय राजा, सर रामपाल सिंह, के० सी० आई० ई०
अध्यक्ष
सं० प्रा० धर्म-रक्षण सभा
लखनऊ

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६४९) से।

१६९. पत्र : स्वामी श्यामानन्दको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए मैं आभारी हूँ। मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि मन्दिर जानेवाले लोगोंको ही यह तय करनेका अधिकार होना चाहिए कि उनके मन्दिरोंमें किन लोगोंका प्रवेश वर्जित होगा।

हमारे मन्दिरोंमें मध्यवर्गके लोग नियमित रूपसे जाया करें — इसकी आवश्यकता या वांछनीयता तो एक बिलकुल ही दूसरा प्रश्न हो जाता है। लोग स्वेच्छासे मन्दिरोंमें जाने लगें, इसके लिए मन्दिरोंमें होनेवाली पूजन-विधिमें काफी सुधार करना पड़ेगा। और मैं समझता हूँ कि सुधार आयेगा भी, लेकिन वह अपनी ही गतिसे आयेगा।

हृदयसे आपका,

स्वामी श्यामानन्द
मार्फत — रामकृष्ण मिशन
रंगून

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६५०) से।

१७०. पत्र : सुदर्शन वी० देसाईको

२१ मार्च, १९३३

प्रिय मावो,

तेरा पत्र मिला। तुझे अक्षर अच्छी तरह लिखना सीखना चाहिए। तू पहले सीधी रेखा, त्रिभुज और वृत्त खींचना सीख लेगा तभी अक्षरोंको अच्छी तरह लिख सकेगा। क्योंकि इन तीनोंसे अक्षर बनाना कठिन है। मैं यह बात तुझे कैसे समझाऊँ?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ५७६४) से; सौजन्य : वा० गो० देसाई

१७१. पत्र : नारणदास गांधीको

२१ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा १८ तारीखका पत्र कल मिला। रमाबहनके सम्बन्धमें तुमने जो लिखा है वह सर्वथा तुम्हारे योग्य है। यही धर्म है। आशा है, डंकनकी तबीयत अब ठीक हो गई होगी।

परचुरे शास्त्री अब वहाँ लड़केके साथ शीघ्र ही पहुँचेंगे। उनकी पत्नी तो अभी वहाँ नहीं आयेंगी। इसलिए उसके निर्वाहके लिए हमें प्रति माह अधिकसे-अधिक ३० रुपये भेजने पड़ेंगे। उसके पास जितने जेवर थे वे सब खा-पीकर बराबर हो गये। परचुरे शास्त्रीके साथ अच्छी तरह परिचय कर लेना।

शान्ता पानवेलकरका पत्र तुम्हें वापस भेज रहा हूँ, उसे सँभालकर रख लेना। मुझे लगता है कि उसे हमें २० रुपया देना चाहिए। किन्तु तुम और प्रेमा इस विषयमें ज्यादा समझते हो। मैंने तो उसे देखा भी नहीं है। इसलिए यदि तुम्हारी राय मेरी रायके विरुद्ध हो तो वह पत्र शान्ताको मत भेजना। हाँ, यदि तुम्हारी सहमति हो तो मण्डलकी अनुमति लेकर भेज देना। केवल अपनी दोनोंकी जिम्मेदारी पर भी ऐसा न करना। . . .का[1] अनुभव यहाँ तो बहुत कड़वा आ रहा है। बिलकुल ही गिर गया लगता है। अपना दोष ढकनेकी बहुत कोशिश करता मालूम होता है। काकासाहबके साथ बातचीत कर रहा है। देखूँगा क्या होता है। इस बीच इस सम्बन्धमें तुम सब लोगोंके विचार तथा अनुभवकी राह देख रहा हूँ। . . .को[2] अभी रोक लिया है। . . .[3] वहाँ हो तो उसे यह पत्र पढ़वा देना।

बापू

[पुनश्च :]

इसके साथ शान्ताका मूल पत्र, उसका उत्तर तथा डंकन, वालजीभाई और मावोके नाम लिखे पत्र रख रहा हूँ।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३३९से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१, २ और ३. यहाँ नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

१७२. पत्र : दिवाकर सिंहको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय दिवाकर,

आपका पत्र मिला। ऊपरी दिखावे और टीम-टामपर आप जितना कम ध्यान दें, निस्सन्देह, आपके लिए उतना ही अच्छा रहेगा और आपके काममें उतना ही स्थायित्व आयेगा।

आपके पत्रका अन्तिम अनुच्छेद पढ़कर बड़ा खराब लगा। आप कहते हैं: "सार्वजनिक सड़कोंपर झाड़ू लगानेका काम अनियमित हो गया है।" ऐसा नहीं होना चाहिए। काम एक बार शुरू कर देनेपर आपको उसे बाकायदा, बिलकुल ठीक ढंग और नियमित रूपसे करना चाहिए। सड़कोंकी सफाईमें अनियमितता आने पर जनता आपके कामसे बिलकुल भी प्रभावित नहीं होगी। आपने देखा ही कि कामका उद्घाटन किस तरह ढोल पीटकर किया गया; और मुझे यह पढ़कर खुशी हुई थी कि मैला ढोनेके लिए आप विशेष किस्मकी गाड़ियाँ और ठेले तैयार करा रहे हैं। परन्तु यह सब तो उसी दशामें आवश्यक होगा जब आप अपना हर कार्य सम्यक् रीतिसे करें। यदि एक काम पूरा किये बिना आप दूसरेको हाथमें लेनेके लिए दौड़ते रहे तो व्यर्थ ही में अपनी शक्तिका अपव्यय करेंगे और कोई भी काम पूरा नहीं हो पायेगा। यदि कोई बढ़ई एक मेज अधूरी छोड़कर कुछ और बनाने बैठ जाये, तो क्या होगा? क्या आप उसे शक्तिका अपव्यय करना नहीं कहेंगे? धर्मार्थ शुरू किये जानेवाले कामोंमें आम तौर पर बिलकुल यही होता है। मैं चाहता हूँ कि आप इस गलतीसे बचनेकी कोशिश करें। आप यदि सड़कोंकी सफ़ाईका काम हाथमें लेते हैं तो आपको सड़कोंका नक्शा सामने रखकर अपने स्वयंसेवकोंकी संख्याके आधारपर एक कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए और एक सड़क पर काम शुरू कर देनेके बाद उसे तबतक नहीं छोड़ना चाहिए जबतक कि इसके किनारे रहनेवाले लोग स्वयं सफाई नहीं करने लगते। उनको स्वयं सफाई करनेकी आवश्यकता समझानेके लिए आपको उनके साथ विनम्रता और धैर्यसे काम लेना चाहिए और आपका सफाईका काम इतना त्रुटिहीन और पूर्ण होना चाहिए कि लोग उससे खुश हों और उसकी तारीफ करने लगें। ऐसा होनेपर आप स्वयं देखेंगे कि प्रथा चल पड़ी है, लेकिन इसके लिए आपको अपना सारा ध्यान तबतक उस एक ही कामपर लगाये रखना होगा जबतक उसे देखनेवाले दूसरे लोग खुद ही न कह उठें: "बहुत बढ़िया तरीकेसे किया गया है।"

आपने हरिजन बालकोंको उपहारमें फुटबाल दिया है। यह मुझे ठीक नहीं लगा। भारत-जैसे देशमें चार-पाँच रुपयेका बाल एक काफी खर्चीली चीज हो जाती है। हरिजन बालकोंको उनके संरक्षकोंसे फुटबाल मिल जायेंगे। सेवकोंको अपने

सेवा-कार्यके दौरान अधिकसे-अधिक सावधानी और विवेकसे काम लेना चाहिए, खास तौरसे तब जब चुनाव उनको ही करना पड़े।

आप नौकरोंकी श्रेणीके कर्मचारियोंके लिए बनाये घरोंमें से किसीमें रहने लगे हैं, यह बहुत अच्छा किया है। वहाँ यदि आप अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखते हुए हरिजनोंकी जितनी ही सादगीसे रहें तो उत्तम रहेगा।

हृदयसे आपका,

कुँवर दिवाकर सिंह
हॉलैंड हॉल
इलाहाबाद

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६५६) से। सौजन्य : नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद। एस० एन० २०६५८ से भी

१७३. पत्र : प्रकाशको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय प्रकाश,

आपका पत्र पाकर और यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपके फेफड़ोंमें कोई भी खराबी नहीं थी। यदि आप पहले आमिषाहारी रहे हैं तो अब मांससे परहेज करके अपना स्वास्थ्य चौपट मत कीजिए। यदि आपका धार्मिक विश्वास हो कि मांसाहार गलत है तो बात और है। फिर, अगर आप मांसाहारको त्यागनेपर तुले हुए ही हों, तो आपका शरीर तभी पनप सकता है जब आप जितना पचा सकते हों उतना दूध और मक्खन लें, माँड़युक्त आहार कभी-कभी ही लें और यदि हो सके तो कोई भी दाल कभी न लें। आदर्श और पूर्ण आहार होगा — गेहूँके चोकरयुक्त आटेकी चपातियाँ, डबल रोटी, हरी सब्जियाँ, रसदार ताजे फल, दूध और मक्खन।

मेरी सलाह है कि आश्रमके बारेमें अपने ब्योरेवार विचार और सुझाव आप नारणदासको भेजें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रकाश
मार्फत — अनन्तचरण राय
जेलर
पटना कैम्प जेल

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६६६) से।

१७४. पत्र : एम० सी० राजाको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय रावबहादुर,

आपका पत्र मिला और साथमें कन्नप्पार निःशुल्क वाचनालयके लिए चन्देकी अपील भी। भरोसा रखिए, उसके लिए मैं जितना बन पड़ेगा, अवश्य करूँगा[1]।

मेरा खयाल है कि आपके 'बिल' के सिलसिलेमें मेरा पिछला पत्र आपको मिल गया होगा। हाँ, उसमें कुछ ऐसा तो था नहीं जिसके लिए उसकी प्राप्ति-सूचना भेजना जरूरी हो, और न अब उसकी प्राप्ति-सूचना भेजना दरकार है। उसके न मिलनेकी सूचना देनेवाले किसी पत्रका आपकी ओरसे न आना ही मेरे यह मान लेनेके लिए पर्याप्त होगा कि आपको मेरा पत्र मिल गया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६०) से।

१७५. पत्र : डॉ० टी० एस० एस० राजन्‌को

२२ मार्च, १९३३

प्रिय डॉ० राजन्,

कन्नप्पार निःशुल्क वाचनालयसे सम्बन्धित कुछ कागजात भेज रहा हूँ।

कृपया लिखिए कि इस सिलसिलेमें आप कितना-कुछ कर सकते हैं और क्या-कुछ मुझे करना होगा। अपने उत्तरके साथ ये कागजात लौटा दीजिएगा।

हृदयसे आपका,

संलग्न पत्र[2]

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६१) से।

१. देखिए अगले दोनों शीर्षक।
२. ये उपलब्ध नहीं हैं।

१७६. पत्र : कन्नप्पार वाचनालयके मन्त्रीको

२२ मार्च, १९३३

मन्त्री
कन्नप्पार निःशुल्क वाचनालय
रायपुरम्, मद्रास

प्रिय मित्र,

आपका गत २४ जनवरीका पत्र मुझे रावबहादुर एम० सी० राजाके सौजन्यसे कल प्राप्त हुआ।

मैं यह पता लगानेके लिए शीघ्र ही कार्रवाई कर रहा हूँ कि मैं उस मामलेमें क्या-कुछ कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६५९) से।

१७७. पत्र : पी० आर० साठेको

२२ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। मैं ठीकसे समझ नहीं पाया कि आप कहना क्या चाहते हैं। मद्य-निषेध और सफाईसे रहनेकी आदतोंको यदि अस्पृश्यता-निवारणकी एक शर्त न बना दिया जाये तो उनके लिए प्रचार करनेमें तो मुझे कोई हर्ज नहीं दिखाई देता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० साठे
वकील
गोंदिया, म० प्रा०

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६२) से।

१७८. पत्र : जाति-नाशिनी सभाके मन्त्रीको

२२ मार्च, १९३३

मन्त्री

जाति-नाशिनी सभा

कन्नानूर

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप तो मेरे लेखमें से अपना मन पसन्द अर्थ निकाल सकते हैं, परन्तु मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं इतना ग्रहणशील नहीं कि आपके लिखे शब्दोंमें अपना मनपसन्द अर्थ तलाश सकूँ। इसमें सन्देह नहीं कि आप यह स्वीकार करते हैं कि मैं ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं मानता। परन्तु क्या आप उसी तरह यह भी स्वीकार करते हैं कि प्रत्येक व्यक्तिको अपना पुश्तैनी पेशा ही अपनाना चाहिए, जिससे राष्ट्रकी शक्ति और प्रतिभा सुरक्षित रह सके, सम्पदाके असमान वितरण तथा तीव्र प्रतियोगितासे बचा जा सके? यदि करते हों तो आपको अपनी सभाके उद्देश्यों और प्रयोजनोंको बदल देना होगा, लेकिन अगर प्रस्तुत विचारके अनुरूप सभाके उद्देश्यों और प्रयोजनोंमें परिवर्तन करनेको आप तैयार न हों तब तो आपको मेरे इस विचारसे शायद सहमत होना चाहिए कि आप अपने उद्देश्यों और प्रयोजनोंको जिस प्रकार कार्यरूप दे रहे हैं, उसे अगर अस्पृश्यताके सवालसे जोड़ देंगे तो लोगोंके मनमें उलझन और सन्देह पैदा होगा। क्या आपने इस बातपर ध्यान नहीं दिया है कि मैं तो वर्णधर्मके सुधरे हुए रूपको भी अस्पृश्यताकी समस्याके साथ नहीं जोड़ता? मैंने तो केवल अपना मत व्यक्त कर दिया है, जिससे कि गलतफहमी पैदा न हो और इससे भी महत्त्वपूर्ण यह कि मुझपर ऐसा आरोप न लगाया जा सके कि मैंने अधिकाधिक लोगोंको अस्पृश्यता-निवारणका समर्थक बनानेके खयालसे अपनी रायको पूरी तरह व्यक्त नहीं किया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६५) से।

१७९. पत्र : लीलावती आसरको

२२ मार्च, १९३३

चि० लीलावती,[1]

तू मूर्ख लड़की है। यदि मैं ऐसा कहूँ कि तू अच्छी लड़की है इसीलिए तुझे मैंने स्वीकार किया है, बुरी हो तब तो मैं तुझे त्याग दूँ, तो क्या तुझे मेरी इस बातसे दुःख होगा? यदि इस बातसे दुःख न हो तो जो मैंने कहा, उससे दुःख क्यों हुआ? मैंने जो-कुछ कहा वह तो प्रेमसूचक ही था। तेरी भावना अच्छी है, इसलिए तेरी अस्थिर चित्तताके बावजूद मैं तुझे अपने पास रख रहा हूँ — ऐसा कहकर मैंने तेरे प्रति प्रेम ही व्यक्त किया है, किन्तु तूने इसका उलटा ही अर्थ लगाया। इस प्रकार जो अपना अहंकार प्रकट करे उसका क्या किया जाये?

तू यह अच्छी तरह समझ ले कि कोई धन्धा या अक्षरज्ञान सीखकर तू स्वावलम्बी तो हो सकती है परन्तु इससे यह निश्चित नहीं हो सकता कि तू इससे अच्छी भी अवश्य बन जायेगी। किन्तु यदि तू अच्छी, दृढ़ संकल्पवाली और शरीरसे स्वस्थ बनती है तो तेरे चरित्रका विकास होगा। और तू स्वावलम्बी भी अवश्य हो जायेगी। इसका यह अर्थ नहीं कि तू अपना अक्षरज्ञान न बढ़ाये अथवा कोई उद्योग न सीखे। यह सब तू आश्रममें रहते हुए समयकी सुविधाके अनुसार जितना सीख सके उतना सीख और उतनेसे सन्तोष मान। कर्तव्यपरायणतामें सब आ जाता है, इस सुनहरे नियमको हृदयमें अंकित कर ले। इसलिए अभी तो मुझे इतना ही कहना है कि नारणदास जो कहें सो पूरी श्रद्धाके साथ करती जा; अपने पैसेको अपना मत समझ; तू उसकी ट्रस्टी-मात्र है। इसलिए इस पैसेका उपयोग तू मेरे लिए फल खरीदनेमें भी नहीं कर सकती क्योंकि मुझे फल दूसरोंसे मिल जाते हैं। इसकी जरूरत तो हरिजनोंको है। इसे उनके लिए रख।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९५७२) से।

१. एक बालविधवा जो साबरमती आश्रममें १९३० में आई थी। बादमें बम्बईमें चिकित्सा-शास्त्रका अध्ययन कर अस्पतालोंमें कार्य किया और राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लिया।

१८०. पत्र : नारणदास गांधीको

२२ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी भारी डाक मिली।

[चमार] बालकोंने भैंसका मांस खाना छोड़ दिया, यह एक बड़ी बात हुई। किन्तु इसके पीछे हिंसा हो सकती है। यदि उन्होंने डरके कारण ऐसा किया हो तो ठीक नहीं हुआ। उनके लिए तो यह उनके आहारकी वस्तु थी। इसलिए यदि उनकी इच्छा हो तो उसकी जगह हमें उन्हें कोई दूसरी चीज देनी चाहिए थी। अतः तुम्हें अथवा किसी अन्य जिम्मेदार आश्रमवासीको जाकर उनसे पूछ लेना चाहिए। यदि उन्होंने [मांस] स्वेच्छासे दे दिया हो और अब वे मांस छोड़ देनेके लिए तैयार हों तो बहुत अच्छी बात है। न छोड़ें तो हमें धीरज रखना है।

उनसे या जो हमारे सम्पर्कमें आये हों, ऐसे किन्हीं दूसरे 'चमारोंसे हमें यह जान लेना चाहिए कि एक [मृत] ढोरकी कीमत क्या होती है। उसके चमड़ेकी अँतड़ियों, हड्डियों आदिकी अलग-अलग क्या कीमत मिलती है। उनका वे क्या उपयोग करते हैं। यह सारी जानकारी मिल सके तो प्राप्त करना।

डंकनको जैसी उलटी हुई वैसी यदि किसी औरको हो तो तुरन्त पेड़ू पर गरम सेक करना चाहिए, और बर्फ चूसनेको देनी चाहिए। नींबू देना चाहिए। एक-एक चम्मच करके ठंडा पानी देना चाहिए। बहुत बार ऐसा करनेसे उलटी शान्त हो जाती है। यदि कोई विषाक्त पदार्थ पेटमें न गया हो तो उलटीसे डरनेका कोई कारण नहीं है। ऐनिमा लेनेसे भी उलटी शान्त हो सकती है। आश्रमवासियोंको यह सब बता देना जरूरी है।

. . .[1] और . . .[2] के बीच मलिन कोटिका प्रेम उत्पन्न हो गया था। दोनोंने इस बातको काफी समय तक छिपाया। फिर अकस्मात् मुझे उस बातकी जानकारी मिली। वे दोनों लोगोंकी निगाह बचाकर एक-दूसरेसे मिलते थे और एक-दूसरेको गुप्त रूपसे पत्र भी लिखते थे। उनके मनकी थाह मुझे अभी तक नहीं मिली है। . . .की यह मलिनता कहाँतक जा पहुँची थी, यह मैं नहीं जान सका हूँ। दोनोंने अभीतक अपने मनका मार्जन किया नहीं दिखता। आश्रममें जो लोग आश्रमवासीके रूपमें रहते हैं उन्हें सगे भाई-बहनोंकी तरह रहना चाहिए, ऐसा हमारा निरपवाद नियम है। यह सम्बन्ध इस रेखाका उल्लंघन कर गया था। आश्रममें स्त्री-पुरुषोंको एकान्तमें मिलनेका निषेध है। इन दोनोंने इस नियमको भी भंग किया। इसके सिवा

१ और २. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

पूरे आश्रमको धोखा देनेका सफल प्रयत्न तो उन्होंने किया ही; अर्थात् इस तरह उन्होंने एक बुनियादी सत्यका भंग किया। इस प्रकार उन्होंने आश्रमके तीन महत्त्वपूर्ण नियमोंको भंग किया है।

. . . पर मेरा अपार विश्वास था। उसे मैंने प्रथम श्रेणीका ब्रह्मचारी माना था। मैंने अभिमानपूर्वक ऐसा मान लिया था कि मुझे तो वह कभी नहीं ठगेगा। . . . को मैंने भोली, निर्मल और निर्विकार लड़की माना था। उसे मैंने अपनी पहली लड़की माना था। उसे समझनेमें मुझसे भूल हुई। जो व्यक्ति सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यका पालन करता है उसके निकट असत्य छिपा नहीं रह सकता। विकारी व्यक्तिको वह तुरन्त पहचान लेता है और हिंसा उसकी सन्निधिमें शान्त हो जाती है। मैंने निरन्तर इन व्रतोंके पालनका प्रयत्न किया है, किन्तु मैं इस परीक्षामें विफल हो गया माना जाऊँगा। मेरा यह कथन अभिमानका सूचक नहीं है। मैं यह बात सत्यके अनुरोधसे कह रहा हूँ। . . . को मुझे पहचान सकना चाहिए था, किन्तु मैं नहीं पहचान सका। यह इस योगकी मेरी साधनाकी एक कमी है। मैं उसमें उपर्युक्त तीन गुणोंकी कमी देखता हूँ। अपनी इस आध्यात्मिक गरीबीको मैं पहचानता हूँ। मेरे अनजानेमें अवश्य ही मेरे भीतर कहीं असत्य, हिंसा और विकार छिपे हुए हैं।

इसलिए अपने ऊपर मुझे जितना क्रोध आता है . . .के और . . .के ऊपर उतनी ही दया आती है। उनका न्याय मैं नहीं कर रहा। हममें से कोई भी वैसा न करे। तथापि उनके प्रति मेरा व्यवहार अब बदला हुआ ही दिखेगा। वस्तुतः बदले हुए तो वे दिखेंगे। बीमारके प्रति बीमारके जैसा और तन्दुरुस्तके प्रति तन्दुरुस्तके जैसा व्यवहार ही समान व्यवहार है। दोनोंमें सत्य और प्रेम होना चाहिए। दोनोंमें उस दूसरे व्यक्तिके प्रति कल्याणकी भावना होनी चाहिए। मेरा व्यवहार इसी नियमके अनुसार होगा। मैं उन्हें बीमार मानकर उनकी सार-सँभाल करूँगा। हम सब वैसा ही करें। यह किस तरह किया जा सकता है, सो मैं बादमें बताऊँगा।

इस घटनासे हम सब लोगोंको सीख लेनी चाहिए। लड़के और लड़कियाँ सावधान हो जायें। जो अपने मनमें विकार उत्पन्न हुआ देखें वे कह दें। इसमें लज्जाका कोई कारण नहीं है। मुझे अपने बिस्तरमें सर्प दिखे तो इसमें मेरा दोष नहीं माना जायेगा। देखनेके बाद मुझे उसे दूर करना चाहिए। विकार शरीरमें पाया जानेवाला सर्प ही है, वह दिखे तो प्रकट करनेमें शर्मकी कोई बात नहीं है, बल्कि वह तो धर्म है। उसे रखना और उसका पोषण करना ही पाप है। उसका त्याग धर्म है। कोई भी लड़की या युवक विवाह करना चाहे तो उसे वैसा करनेकी आजादी है। हाँ, इस मर्यादाका अवश्य पालन करना होगा कि भाई-बहन आदि आपसमें विवाह न करें। मैंने कई बार यह चेतावनी दी है कि किसीको भी छिपा हुआ पत्र-व्यवहार नहीं करना चाहिए। सबको अपने पत्र मन्त्रीके हाथमें खुले देने चाहिए। आश्रम एक कुटुम्ब है; सत्यमें गोपनीयताके लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। इतने नियमका पालन जो करेगा वह अनेक आपत्तियोंसे बच जायेगा। तथापि इस नियमका पालन जोर-जबरदस्ती नहीं कराया जा सकता। वयस्क व्यक्तियोंके पत्रोंके साथ अभी तक जो कुछ किया जाता रहा है, वैसा ही किया जाता रहेगा।

पत्रका इतना अंश सबके लिए है। इसमें यदि तुम कोई परिवर्तन सुझाना चाहो या सबको पढ़कर न सुनाना चाहो तो अभी मत सुनाना और मुझे लिखना कि क्या करना ठीक होगा। . . .[1] की अनियमितताके विषयमें, उसके आलस्यके विषयमें तुमने मुझे सावधान किया था। . . .[2] के साथ उसके अति-परिचयके विषयमें तो मुझे कई लोगोंने चेताया था। किन्तु मैं नहीं चेता। देखना है कि ऐसा मूढ़ और आग्रही मैं अब कितना सुधरता हूँ।

तुम्हारी यह इतनी भारी डाक मामूली लिफाफेमें आती है। यहाँ पहुँचते-पहुँचते वह बिलकुल फट जाता है। किसी दिन लिफाफेमें से कुछ गुम हो जायेगा। या तो तुम मजबूत लिफाफेमें भेजने पर खर्च करो या इसी लिफाफेको बुकपोस्टकी तरह बाँध कर भेजो और उसपर वही टिकिट लगाओ जो सामान्य लिफाफेपर लगाये जाते हैं। बाँधकर भेजनेमें डरका कारण यहाँ इस आफिसमें है। हो सकता है कि कोई पत्र निकल जाये। खर्च ही बचाना हो तो वहाँ किसीको इसके लायक मजबूत लिफाफा बनाना चाहिए। रोज एक बने तो भी काफी होगा। तुम्हारे पास वहाँ मजबूत ब्राउन कागज तो आता ही होगा। और इसी तरह ऐसी खादी भी वहाँ बहुत होगी जो पहनने लायक नहीं रह गई है। इससे ऐसे मजबूत लिफाफे आसानीसे बन सकते हैं जिनके एक ओर कपड़ा हो।

क्या वहाँ परसरामके सिवा हिन्दी और अंग्रेजी ठीक-ठीक जाननेवाला कोई और है? हो तो उनके नाम लिख भेजना।

बापू

[पुनश्च :]

धीरूके नाम लिखा पत्र पढ़ना, और उससे बातचीत करके मुझे लिखना। कलका लिखा पत्र मिल गया होगा। उसमें मैंने शान्ता पानवेलकरके बारेमें लिखा है। . . .[3]का पत्र पढ़ गया हूँ। मुझे नहीं लगता कि उसे जैसे भी हो आश्रममें रखना हमारा कर्तव्य है। आश्रमको हम अपाहिजोंके रहनेका स्थान नहीं बना सकते। वह अपने माँ-बापके भरण-पोषणका खर्च भी माँगता है। यह हम नहीं दे सकते, उसे समझा देना। हाँ, उसे अस्पतालमें जाना हो तो जरूर जाये। उसकी माँको कोई उद्यम करना चाहिए। उसके गाँवके किसी आदमीको लिखा जा सकता है। किन्तु हम उसे नहीं रख सकते, मुझे तो यही लगता है।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू० / १) से। सी० डब्ल्यू० ८३४० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१, २ व ३. यहाँ नाम छोड़ दिया गया है।

१८१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२३ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

तुम्हारा पत्र और कटिंग मिले। तुम जबतक ऑपरेशनके लिए समय निकालोगे नहीं तबतक तुम्हें समय नहीं मिलेगा। कार्यव्यस्त आदमियोंका ऐसा ही होता है। इसलिए स्वास्थ्यकी बातको भी व्यापारकी बात जैसा समझना आवश्यक है। मैं यह कोई दार्शनिक तथ्य नहीं, बल्कि एक ऐसा व्यावहारिक सत्य बता रहा हूँ जिसका प्रयोग मैंने स्वयं अपने जीवनमें भी किया है और दूसरोंके जीवनमें भी। इसलिए मुझे आशा है कि तुम इलाजके लिए एक महीना अलग निकाल लोगे और डाक्टरोंके साथ उसके लिए पहलेसे ही समय तय कर लोगे — इस दृढ़ निश्चयके साथ कि डाक्टरको दिया हुआ वक्त टल न जाये।

कलकत्तेके कार्यके सम्बन्धमें जो लिखा सो जाना।

श्री डेविडकी योजनाके[1] सम्बन्धमें मैं और अधिक सुननेकी आशा करता हूँ।

ज्यों ही मैं हिन्दी 'हरिजन'को अभीष्ट स्तरपर पहुँचा देखूँगा कि मैं उसके सम्बन्धमें अंग्रेजी 'हरिजन'के स्तम्भोंमें तुरन्त लिखूँगा। इस सम्बन्धमें मैं ठक्कर बापा और वियोगी हरिको अपनी बात पूरी तरह समझाकर लिख ही चुका हूँ, इसलिए यहाँ दुहराना अनावश्यक है। तुम उसके लिए जितना समय दे सकते हो दोगे, और उसे आवश्यक जानकारी तथा मार्गदर्शक सूचनाओंसे इतना भर दोगे कि किसी कार्यकर्ताका काम उसके बगैर न चले।

तुम कहते हो कि केन्द्रीय बोर्डको दिया जानेवाला रुपया मैं बम्बईमें तुम्हारी फर्मके पास भेज दूँ।[2] इस तरह कमीशन कैसे बचेगा? यदि नोट किसी बम्बई आते-जातेके हाथ भेज दिये जायें तो बात दूसरी है, पर उसमें रुपया खो जानेका भी तो भय है। मुझमें इतना साहस नहीं है।

यरवडा पैक्टको बंगाल कौंसिलने धिक्कारा है, पर उससे मैं विशेष उद्विग्न नहीं हुआ हूँ, न मेरा यही खयाल है कि यह समय जवाबी प्रचार-कार्य आरम्भ करनेका है। जबतक सारे दल राजी न होंगे, पैक्टमें हेरफेर असम्भव है। जब दलोंके साथ बाकायदा मशविरा कर लिया जायेगा तो बंगालके विरोधकी ओर ध्यान देनेके लिए काफी समय मिलेगा। मेरी सलाह ली गई थी, और मैंने अपनी राय भेज दी है।[3]

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १६-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ९-३-१९३३।
३. देखिए "पत्र : ब्रिटिश भारतीय संघको", ९-३-१९३३।

साथमें उसकी नकल भेजता हूँ। परन्तु बंगालमें क्या करना उचित होगा, यह तो मेरी अपेक्षा तुम और सतीश बाबू ही ज्यादा अच्छी तरह समझ सकते हो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६७१) से। सी० डब्ल्यू० ७९३३ से भी; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१८२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

आपका १२ तारीखका पत्र मिला। मेरी रायमें 'अस्पृश्य' शीर्षकके अन्तर्गत हम 'पैक्ट' (समझौते) के मुताबिक सिर्फ उन लोगोंको शामिल कर सकते हैं जिनके स्पर्शसे छूत लगती है और जो अस्पृश्य होनेके कारण कुछ निर्योग्यताओंसे पीड़ित होते हैं; परन्तु यदि समझौतेकी व्याख्या दूसरे ढंगसे की जा सके और उसमें तथाकथित पिछड़े वर्गोंके लोगोंके साथ-साथ सभी दलित समझे जानेवाले और जो वास्तवमें दलित हैं, उन लोगोंको भी शामिल किया जा सके तो मुझे खुशी होगी। मुझे तो बड़ी खुशी होगी, यदि समझौतेमें यह गुंजाइश भी रखी जाये कि जो भी चाहे वह अपने-आपको अस्पृश्य वर्गमें शामिल करा सकता है। परन्तु इसमें मुझे अनेक बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ दिखती हैं। अस्पृश्योंकी श्रेणीमें यदि जन्मतः अछूत लोगोंके अलावा दूसरों को भी शामिल किया जायेगा तो जन्मसे अछूत लोग उसका इस आधारपर विरोध करेंगे कि तब उन दूसरोंको भी आरक्षित स्थानोंके लिए संसदीय चुनावोंमें खड़े होनेका अधिकार मिल जायेगा और इस प्रकार जन्मतः अछूत लोगोंका चुना जाना आजकी तरह निश्चित नहीं रह जायेगा। उनका यह तर्क सर्वथा उचित होगा, और आजके इस नैतिक बलको तोड़नेवाले वातावरणमें मुझे नहीं दिखाई पड़ता कि लोग सच्चे विवेक और उदार भावनाओंसे पूरा-पूरा या तनिक भी काम लेंगे।

मेरी अपनी राय और शंकाओंका आधार इससे आपकी समझमें आ जायेगा। फिलहाल मैं अपनी राय सार्वजनिक रूपसे इसलिए व्यक्त नहीं करता कि वैसा करना अप्रासंगिक होगा और असामयिक भी। उपयुक्त समय आनेपर मैं उसे व्यक्त करनेमें कोई संकोच नहीं करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७९) से।

१८३. पत्र : एस० सी० घोषको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

इस तरहके प्रश्न मुझसे पूछनेसे फायदा क्या? महत्त्वकी बात यह नहीं कि मेरी क्या आस्था है, बल्कि यह है कि आपकी क्या आस्था है और आपकी अपनी आस्था प्रार्थना और ईश्वरके सिरजे प्राणियोंकी सेवाके जरिये ही आपके अन्दर पैदा होगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० सी० घोष
९६, बेलतल्ला रोड
कालिघाट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७३) से।

१८४. पत्र : गिरधारीलालको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

आपके पत्र मिले और सरूप आपकी भेजी हुई मिठाइयाँ ठीक तरहसे ले आया है। इसके लिए पूरे परिवारकी ओरसे धन्यवाद स्वीकार कीजिए। मैं प्रसन्न हुआ कि लगातार सुधार हो रहा है। मैंने डॉ० अग्रवालका इलाज नहीं आजमाया है। मैंने उनके पत्र और उनकी भेजी पुस्तककी प्राप्ति-सूचना-भर भेज दी है। ऐसी प्राकृतिक चिकित्साके प्रति मुझे सदासे एक आकर्षण रहा है और इसीलिए मैंने लिख दिया था कि मैं इलाजको आजमाकर देखना चाहूँगा। परन्तु खेद है कि मुझे समय नहीं मिल पाता।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६६९) से।

१८५. पत्र : एन० के० गोगटेको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके[१] लिए धन्यवाद। आपकी दलीलमें जो वजन है, उसे मैं समझता हूँ। स्वयं भी अद्वैत दर्शनको मानता हूँ। परन्तु उस दर्शनमें ऐसा तो कुछ नहीं जो मन्दिरोंमें हमारे विश्वासको गलत बतलाये।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० के० गोगटे
चालीसगाँव

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७२) से।

१८६. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

२३ मार्च, १९३३

सेवामें
गृह-सचिव
बम्बई सरकार

प्रिय महोदय,

अपने १८ तारीखके पत्रका[२] उत्तर मुझे सरकारकी ओरसे अभी-अभी मिला है। मुझे आशंका है कि सरकारी उत्तरमें एक महत्त्वपूर्ण मसला फिर उठाया गया है, जब कि मेरा खयाल था कि सरकार उस मसलेको १९२२ में[३] अन्तिम रूपसे तय कर चुकी है। सरकारने अब जो एक सिद्धान्त पेश किया है, उसने १९२२में ठीक इसी सिद्धान्तसे अलग हटकर काम किया था। उन दिनों भी यही सहयोगी बन्दियों द्वारा किये गये उपवासका प्रश्न था। तब मेजर जोन्स सुपरिंटेंडेंट थे। मुझे जब उपवासकी बात मालूम हुई, मैंने बन्दियोंको परामर्श देनेके खयालसे उनसे मुलाकातकी अनुमति माँगी थी। मेजर जोन्सने मेरे प्रस्तावपर कान ही नहीं दिया। तब मुझे तत्कालीन गवर्नर महोदयको लिखना पड़ा था। मुझे साथी बन्दियोंसे मिलनेकी अनुमति मिल गई थी और उसके बहुत ही अच्छे परिणाम निकले थे।[४] १९३० में जब

१. इसमें गांधीजी के ११-३-१९३३ के "क्या मन्दिर जरूरी हैं?" शीर्षक लेखकी चर्चा की गई थी।
२. देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १८-३-१९३३।
३. यहाँ १९२३ होना चाहिए था।
४. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ १८२-८३ और १९६।

मुझे दूसरी बार जेल हुई तब भी ठीक यही प्रश्न उठा था।[1] मेजर मार्टिन सुपरिंटेंडेंट थे और वे भी एक उपवासी बन्दीसे मुलाकात करनेके मेरे अनुरोधको सुननेके लिए भी तैयार नहीं थे। मैंने सरकारके साथ लिखा-पढ़ी की और उसे बताया कि मैं सबसे पहले तो मानवतावादी हूँ और इस रूपमें अपने प्रभावका इस्तेमाल करना जहाँ कहीं भी सम्भव है, वहाँ उसका इस्तेमाल किये बिना मैं जीवित ही नहीं रह सकता। और इस मामलेमें मेरा तनिक भी मंशा नहीं था कि जेलके अनुशासनमें कोई व्यवधान पड़े। अन्तमें मेरी बात मान ली गई और सरकारने मुझे उन बन्दियोंसे हर सप्ताह मिलनेकी अनुमति दे दी, जिससे कि मैं उनके विचार जान सकूँ और जब भी जरूरी लगे उनको उपयोगी सुझाव दे सकूँ। जहाँतक मेरी जानकारी है, मुझे इस प्रकारकी स्वतन्त्रता देनेके सरकारी निर्णयके कारण मेजर मार्टिनको कभी भी दुःखी नहीं होना पड़ा। इस बार जेल आनेपर भी मेरी वह स्वतन्त्रता बरकरार रही, हाँ, इतना प्रतिबन्ध अवश्य लगाया गया कि मैं एक पखवारेमें एक निश्चित संख्यामें ही बन्दियोंसे मिल सकता हूँ। मेरी जानकारीमें तो मेजर भण्डारीको इसके कारण कोई असुविधा नहीं हुई। जिन सुपरिंटेंडेंटोंके अधीन मैं जेलमें रहा हूँ वे, और जेलोंके इन्स्पेक्टर जनरल शायद इस बातकी ताईद करेंगे कि मैंने आवश्यकता पड़नेपर जहाँ-जहाँ भी कोई हस्तक्षेप किया है, वह उपयोगी ही रहा।

मैंने अब जो यह अनुरोध किया है उसका भारत सरकारके उन विशेष आदेशोंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं जो अस्पृश्यतासे सम्बन्धित मामलोंके बारेमें निकाले गये हैं। सरकारसे मेरा अनुरोध है कि इतने पहले १९२२ में किये गये अपने ही एक ऐसे निर्णयको वह पलटकर न रख दे जिसकी उसने पूरी तरह सोच-विचारकर १९३० में पुष्टि भी कर दी थी और जिसपर वह मेरे वर्तमान कारावासके दौरान भी अमल करती रही है। मैं यह कहनेका साहस करता हूँ कि इस दौरान ऐसी कोई भी नई परिस्थिति पैदा नहीं हुई जिसके कारण उस निर्णयपर पुर्नविचार करना जरूरी हो गया हो। मैंने कोई नया मुद्दा भी पेश नहीं किया है। सचमुच मुझे यह जानकर बड़ा ही दुःख और आश्चर्य हुआ कि सेठ पूनमचन्द राँकाके कथित उपवाससे सम्बन्धित मेरे तारको रोक दिया गया है। इसलिए मैं फिर अनुरोध करता हूँ कि बजाज[2] (वर्धा)के नाम मेरा तार अविलम्ब भेज दिया जाये और मैंने १९२२ तथा १९३० के जिन निर्णयोंका उल्लेख किया है उनकी पुष्टि की जाये, जिससे मेरे मनको शान्ति मिल सके।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८३) से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), ए, पृष्ठ ७३ से भी

१. देखिए खण्ड ४४, पृष्ठ १५५-५७।

२. लगता है बच्छराजके स्थानपर भूलसे यह लिखा गया है।

१८७. पत्र : वि० दा० हुलयालकरको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप जो भी प्रचार-कार्य इस समय कर रहे हैं, उसमें मैं कुछ ठोस काम भी जोड़ना चाहूँगा; जैसे कि हरिजन बच्चोंको पढ़ानेका काम। मैं यह मान लेता हूँ कि आप 'हरिजन' खूब ध्यानसे पढ़ते हैं।

अब आपके प्रश्न लेता हूँ।

१. देवदासी प्रथाकी समस्या बहुत छोटी-सी है, परन्तु आप अपने जीवनकी पवित्रता कायम रखकर और धैर्यपूर्वक प्रयत्न करके इस बुराईको और भी कम करनेमें सफल हो जायेंगे। मुझे तो एक ही कारगर दलील सूझ पड़ती है; वह यह कि हरिजनोंको महसूस करना चाहिए कि अपनी एक पुत्रीको देवदासी बनानेके लिए अलग रखनेकी प्रथामें कोई धर्म नहीं है, जिसका सीधा-सादा कारण यह है कि अन्य लाखों हिन्दू परिवार ऐसा नहीं करते और इस तरह अपनी एक पुत्रीको देवदासी बनानेके लिए अलग रखना अपवित्र कार्य मानते हैं। और जो लोग अनैतिक जीवनमें फँस ही चुके हैं, वे उसे केवल तब त्यागेंगे जब हरिजन लोग उसे शर्मनाक समझने लगेंगे। आपके इस प्रकार व्यग्र होनेसे कोई लाभ नहीं होनेका।

२. यदि आप अपना प्रचार-कार्य पूर्ण विनम्रता और सज्जनताके साथ करते हुए अपने रचनात्मक सेवा-कार्यके बलपर हरिजनोंके प्रेम और श्रद्धाके पात्र बन जायेंगे तो वे लोग कीचड़-पानीका खेल छोड़ देंगे।

३. इससे अच्छी तो कोई बात ही नहीं कि हरिजन लोग शाकाहारी बन जायें, लेकिन यदि वे नहीं बनना चाहते तो कमसे-कम गोमांस और मुर्दार मांसका भक्षण तो त्याग ही दें।

४. सही है कि उनको दिनके समय घरोंमें पाना कठिन होता है। इसलिए आपको निश्चय ही उनसे रातमें या बड़े सुबह जाकर मिलना चाहिए। हाँ, बड़े सुबह वे आपकी बात ठीकसे सुननेकी मन:स्थितिमें नहीं होंगे।

५. यदि आप हरिजनोंके अपमानके खिलाफ लगातार खड़े होते रहेंगे तो वे भी अपमानका बुरा मानना सीख जायेंगे।

६. सभी बातोंको देखते हुए, मांस और सब्जियोंके मिले-जुले भोजनकी अपेक्षा एक संतुलित शाकाहारी भोजन कहीं अच्छा रहेगा, यदि उसके साथ थोड़ा खालिस दूध भी लिया जाये।

७. निश्चय ही, विश्रामके लिए तमाखू पीना जरूरी नहीं है। जहाँ मजदूर संगठित ढंगसे काम करते हों, वहाँ उनके मालिकोंसे आग्रह करना चाहिए कि एक

निश्चित अवधिके बाद उन सबको विश्राम करनेका समय दिया जाये — तमाखू पीनेवालों को भी और न पीनेवालों को भी।

८. मेरा खयाल है कि यह तर्क सही ही है कि दफ्तरोंमें चपरासी वगैरहके कामकी अपेक्षा मेहनत-मजूरीके कामसे पैसे ज्यादा मिलते हैं, हालाँकि चपरासियों वगैरहके कामके लिए मोटे तौरपर शिक्षित होना भी एक अनिवार्य शर्त है। और इसीलिए हरिजन लोग तबतक अपने बच्चोंको पाठशालाओंमें भेजनेके लिए आसानीसे तैयार नहीं होंगे जबतक कि उनको यह न समझा दिया जाये कि ऐसा करना आगे चलकर उनके लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

९. किसमें पहले और किसमें बादमें — ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं उठता; जागृति तो हरिजनों और सवर्ण लोगों, दोनोंमें एक साथ, सामान्य रूपसे आनी चाहिए।

१०. निश्चित बात है कि सत्य और अहिंसाको ही सदा सफलता मिलेगी। ईंटका जवाब पत्थरवाला नियम मानवीय नहीं, पाशविक है।

११. मुझे इसमें तनिक भी शंका नहीं कि वर्तमान हरिजन आन्दोलन हिन्दू धर्ममें चौमुखी सुधार लायेगा और समाजमें अशान्तिके कारणोंको दूर करेगा और विघटनको रोकेगा।

१२. हरिजन सेवकोंसे सब तरहके सवाल पूछनेका सभी लोगोंको हक है, हरिजन माता-पिताओंको तो इसका और भी ज्यादा हक है; इसलिए सवालोंके जवाब धैर्य-पूर्वक तथा शिष्टताके साथ दिये जाने चाहिए।

१३. यदि आपने सोमवारको मौन तथा उपवास रखनेका व्रत लिया हो, तो आप उसे किसी भी कारण भंग नहीं कर सकते। हाँ, आपने ऐसी कोई गुंजाइश व्रतमें छोड़ रखी हो, तो बात दूसरी है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विष्णु दामोदर हुलयालकर
फ्रीडम हाउस
जामखण्डी (एस० एम० सी०)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७४) से।

१८८. पत्र : पी० आर० लेलेको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,

आपका २० तारीखका पत्र मिला। मैं आपका मुद्दा और आपकी मुश्किल समझता हूँ। अब आपको उसके बारेमें चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। मैं आम किस्मकी कोई हिदायतें जारी नहीं कर सकता, क्योंकि मुझे उसका अधिकार नहीं है। ऐसी हिदायतें तो केन्द्रीय बोर्ड, अर्थात् ठक्कर बापाकी ओरसे ही दी जानी चाहिए। मैं तो अपनी विनम्र राय ही दे सकता हूँ; और मैं यह भी समझता हूँ कि बाहरकी दुनियासे सम्पर्क न रहनेके कारण मैं इसमें भयंकर गलतियाँ भी कर सकता हूँ। इसलिए आम तौर पर मैं सामान्य सिद्धान्तोंकी चर्चा करके ही रह जाता हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७५) से।

१८९. पत्र : एस० टी० मिश्रको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

'आज'के परिशिष्टांकमें एम० श्रीधर शास्त्री और उनके मित्रकी राय[1] प्रकाशित हुई थी। उसकी एक प्रति महामहोपाध्यायको भेजनेके लिए श्रीयुत हरिभाऊ पाठकको दी गई थी। यह कुछ दिन पहलेकी बात है।

हृदयसे आपका,

पण्डित एस० टी० मिश्र
मुगलई बाजार
धूलिया

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७७) से।

१. अस्पृश्यताकी समस्याके बारेमें।

१९०. पत्र : एन० वाई० नाडकर्णीको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और उसमें दी गई जानकारीके लिए मेरा धन्यवाद। यदि सुधारक लोग अपने प्रयत्नोंमें धैर्यपूर्वक जुटे रहें तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि सनातनियों पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० वाई० नाडकर्णी
फोर्थ कान्ट्रैक्टर्स चाल
चर्नी रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६७८) से।

१९१. पत्र : बॉयड टकरको

२३ मार्च, १९३३

प्रिय बॉयड,

आपकी बातोंसे मुझे खीझ कभी नहीं हो सकती, क्योंकि आप मेरे बोले या लिखे हर शब्दमें, मेरे हर काममें जो रुचि ले रहे हैं उसकी मैं कद्र करता हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि आप व्यर्थके वाद-विवादकी भावनासे कोई तर्क पेश नहीं करते। मैं आपकी कठिनाई समझता हूँ। आप चीजोंका बस एक पक्ष देखते हैं, या मुझे ही ऐसा लगता है। जैन दर्शनके अनेकांतवादमें मेरी गहरी आस्था है। वह वस्तुओंके मात्र एक पक्षके स्थानपर, उसके अनेक सम्भावित पक्षको सामने रखनेका सिद्धान्त है। इस प्रसिद्ध सिद्धान्तको दृष्टान्त द्वारा समझानेके लिए एक कथा भी सर्वविदित है — 'एक हाथी और सात अंधोंकी कथा।' उनमें से प्रत्येकने उस एक हाथीका वर्णन अलग-अलग ढंगसे किया था। कवि अन्तमें यह कहकर उसे समाप्त करता है कि वे सब वर्णन सच थे और वे सब वर्णन झूठे थे। और हम इसमें जोड़ सकते हैं — 'एक ईश्वर ही सच है, उसके अतिरिक्त कोई भी पूर्णतः सच नहीं हो सकता।'

ऐसी दृष्टि रखनेके कारण मैं आपके दृष्टिकोणको समझ सकता हूँ, उसकी पैरवी कर सकता हूँ, परन्तु साथ ही मैं अपने दृष्टिकोणकी पैरवी भी कर सकता हूँ। यदि मन्दिर-प्रवेशके प्रश्नके बारेमें मेरे दृष्टिकोणसे संसार अपने नहीं बल्कि मेरे ही ढंगसे प्रभावित होता है, तो उसकी नैतिक सुरक्षाके बारेमें मेरे मनमें कोई शंका नहीं रह जायेगी।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि एक महाराष्ट्री सज्जनने आपके दृष्टिकोणका पूरी तरह पक्ष लेते हुए और मेरे उत्तरसे बिलकुल असहमति प्रकट करते हुए एक बड़ा जोशीला पत्र[1] लिखा है। और आपने इस समस्यापर गुरुदेवका शानदार पत्र देखा ही होगा। वह मुझे ऐसे वक्त मिला जब 'हरिजन' के इस अंककी सामग्री पूरी तैयार हो चुकी थी। इसलिए अब अगले सप्ताह उसे देनेकी आशा कर रहा हूँ[2]। मेरा खयाल है कि गुरुदेवने उसे प्रकाशनके लिए ही भेजा होगा। पर आप उनसे पूछ लीजिए। यदि वह प्रकाशन न चाहें, तो जाहिर है, मैं उसे प्रकाशित नहीं करूँगा। वैसी स्थितिमें आप तुरन्त तार द्वारा सूचित कर दीजिए। आशा है, गुरुदेव भले-चंगे होंगे। हम सबकी ओरसे उनको सादर-सप्रेम।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६८४) से।

१९२. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

२३ मार्च, १९३३

सुज्ञ भाईश्री,

शायद आपको याद होगा, आपके द्वारा स्वीकृत [विधेयकका] प्रारूप सरूप-बहन उर्फ विजयलक्ष्मी बहनने मुझे दिखाया है। क्या मैं उसे प्रकाशित कर सकता हूँ? यदि आप अनुमति देंगे तो मैं उसे प्रकाशित कर दूंगा। वह अच्छा जान पड़ता है। उसमें रियासतके मन्दिरोंमें से एक मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल देनेकी बात है। उसके बादके पत्रमें आपने लिखा है कि इस तरह मन्दिर खोलनेका विचार छोड़ दिया गया है क्योंकि उससे जनमत-संग्रह (रेफरेंडम) जैसा हो जानेका भय है और वैसा होनेपर सवर्ण हिन्दू जनता मन्दिरमें जाना बन्द कर देगी जिससे उलटा असर पड़नेका डर है। किन्तु मैं कहूँ, धर्म-कार्य करनेमें भय कैसा? भले कोई अन्य सवर्ण उस मन्दिरमें न जाये किन्तु आप तो जायेंगे, रमाबहन तो जायेंगी? महाराजा, रानी साहेबा आदि तो जायेंगी न? कुछ अन्य सुधारक तो जायेंगे ही। हरिजनोंको इस तरह यदि एक ही मन्दिरका लाभ मिले तो भी अच्छा है। आपने जो वजह बताई है यदि वही वजह हो तो मेरा अनुरोध है कि काफी जोखिम उठाकर भी आप

१. देखिए "क्या मन्दिर जरूरी हैं?" ११-३-१९३३।
२. देखिए "यह संघर्ष आवश्यक है", १-४-१९३३।

कमसे-कम एक अच्छा मन्दिर खोल दें। आपके पत्रसे जान पड़ता है कि भावनगरमें ही राज्यके अधिकारमें चार-एक मन्दिर हैं। यदि उनमें से एकमें हरिजनोंका प्रवेश हो तो सनातनियोंको भी यह असह्य नहीं होना चाहिए। आशा है मेरा इससे पहलेका पत्र मिल गया होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२७) से। सी० डब्ल्यू० ३२४३ से भी; सौजन्य: महेश प्र० पट्टणी

१९३. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

२३ मार्च, १९३३

चि० ब्रजकिसन,

तुमारा खत मिला। जन्मदिनके बारेमें मेरे आशीर्वाद है ही। ईश्वर तुमको अनासक्ति और समता देगा। दूसरे साथी भी यही इच्छामें शामिल है। सब भाइओं को हमारे सबके तरफसे यथायोग्य कहो। तुम दोनोंका सद्भाग्य है कि ऐसे साथियोंका सहवास तुम दोनोंका[1] मिला है। राधा ऐसी ही है। कुसुमके भी अच्छे हाल तो नहिं है। हम सब तो अच्छे हैं। जमनालालजी ठीक हैं।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २३९९) से।

१९४. पत्र : अमतुस्सलामको

२३ मार्च, १९३३

प्यारी बेटी,

तुम्हारा खत मिला है। मैंने तुमको खत लिखा है सो मिल जाना चाहिए। तुम्हारे निराश नहीं होना (है)। खुदा चाहता है वही करता है। हम इलाज करके खामोश रहें। डॉ० शर्माको मैंने आश्रमके जानेके बारेमें लम्बा खत[2] लिखा है। वह मिलना चाहिए। उसके साथ तुम्हारे लिए खत था। लक्ष्मीकी शादीका तो तुमने सुन ही लिया होगा। वह बारडोली चली गई है।

बापूकी बहुत दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८०) से।

१. ब्रजकृष्ण चाँदीवाला इन दिनों मुल्तान जेलमें थे, जहाँसे वे मईके शुरूमें रिहा हुए थे।
२. देखिए "पत्र: डॉ० हीरालाल शर्माको", १४-३-१९३३।

१९५. पत्र : जमनादास गांधीको

[२३ मार्च, १९३३ या उसके पश्चात्][1]

चि० जमनादास,

तेरे दोनों पत्र मिले। मैंने मन्दिरके बारेमें कल जो तार दिया था, आशा है वह मिल गया होगा। यदि यह मन्दिरका काम हो जाये तो मैं इसे एक अच्छा कदम मानूंगा।

मुझसे अनुमति प्राप्त करनेके बारेमें भी तूने जो लिखा है वह बिलकुल ठीक है। किन्तु मेरी रायके लिए इस प्रकार इन्तजार करना ही नहीं चाहिए। भावनगरका एक मन्दिर खुलवानेके लिए मैंने पट्टणीजी से बहुत अनुरोध किया है। जहाँ जितने मन्दिर खुलवाये जा सकें उतने अवश्य खुलवाने चाहिए। यदि कोई ऐसा नया मन्दिर बनवाये जिसमें सभी लोग जा सकें और सनातनी भी उसमें सहायता दें तो यह बहुत ही अच्छा होगा।

तू अपनी तबीयतके बारेमें कुछ लिखता ही नहीं। ऐसा मत कर।

बुजुर्गोंके बारेमें तूने जो-कुछ लिखा है उसे मैं समझता हूँ। उन्हें यह कौन समझा सकता है कि अब उन्हें सिर्फ फलोंके रसपर रहना चाहिए; इससे उनका शरीर शुद्ध और शान्त रहेगा; ताकतके लिए अन्य किसी चीजकी जरूरत उन्हें नहीं है। किन्तु यह उनकी जानकारीके लिए नहीं बल्कि तेरी ही जानकारीके लिए है ताकि तू अभीसे यह जान ले कि तुझे बूढ़ा होनेपर क्या करना चाहिए और यदि ईश्वर मुझे उस स्थितिमें पहुँचा दे और मैं उस समय उपवासके लिए तैयार न हो सकूँ तो वह मुझे आखिर फलोंके रसपर रहनेकी इच्छा और शक्ति दे। मुझे इस बारेमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जब शरीरके अधिकांश अंग शिथिल पड़ जाते हैं तो हवा-पानी ही खुराक होती है। किन्तु यह सब तो भविष्यके गर्भमें छिपा हुआ है। तेरा मसविदा इसके साथ वापस भेज रहा हूँ।

बापू

[पुनश्च :]

सुशीला और भाऊको लिखे पत्र इसके साथ भेज रहा हूँ।[2] हरिजन-कार्य सम्बन्धी जेठालालका पत्र मुझे मिला हो ऐसा नहीं लगता।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६२५) से।

१. भावनगरमें हरिजनोंके लिए मन्दिर खुलवानेके उल्लेखसे यह तारीख निश्चित की गई है। देखिए "पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको", २३-३-१९३३।

२. ये पत्र उपलब्ध नहीं है।

१९६ पत्र : नी० को

२३/२४ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारे दो पत्र मिले थे। मुझे अच्छे लगे। उनमें से एक में जो काव्यका पुट था, वह बहुत ठीक चस्पाँ हुआ था।[१] आशा है, मेरा तार[२] तुम्हें मिल गया होगा। उसे मैंने तुम्हारा पत्र पढ़ते ही भेज दिया था और उसमें तुम्हारे गाँव जाकर हरि-जनोंके बीच रहनेके विचारसे सहमति प्रकट की थी। अगर तुमने खूब सोच-समझकर यह तय किया हो तो यह योजना तो बहुत अच्छी है। लेकिन, अब तुम्हें कोई भी कदम जल्दी या उतावलेपनमें नहीं उठाना चाहिए। जबतक सत्य तुम्हारे लिए एक स्वाभाविक वस्तु नहीं बन जाता है, तबतक तो तुम्हें जीवन कठोर लगेगा ही और तुम्हें ऐसे अनुभव भी होंगे जो निराशाओं जैसे लगेंगे। जब मनुष्य सत्यसे आप्लावित हो जाता है तब उसके लिए निराशा-जैसी कोई वस्तु रह ही नहीं जाती। तब तो उसके मनमें सत्यका आलोक भर जाता है और फिर उससे उसका समस्त जीवन आलोकित हो उठता है।

रुद्रमणिके विषयमें और भी बताना। तुम्हारा ईश्वर अर्थात् सत्यके अतिरिक्त और कोई मार्गदर्शक नहीं होना चाहिए। मैं नहीं चाहता कि तुम आगे भी किसीके जादूमें रहो। यदि कोई तुम्हारी सहायता कर दे और वह सहायता स्वीकार करना तुम्हारे लिए उचित हो तो तुम उसके लिए उसका आभार भले ही मान लो। और सहायताके तौर पर तुम्हें कोई भी सिवा इसके और क्या दे सकता है कि तुम्हारी जरूरतका भोजन तथा जीवनके लिए आवश्यक अन्य वस्तुएँ जुटा दे? सेवककी, और विशेषतया हरिजनोंके सेवककी आवश्यकताएँ इससे अधिक नहीं होतीं। इस सेवासे अधिक उदात्त और प्रेरणाप्रद वस्तुकी तो मैं कल्पना ही नहीं कर सकता। यह कर्ताको सम्पूर्ण सन्तोष देती है।

साथमें सि०[३] के नाम एक पत्र है। उससे वे चन्द पंक्तियाँ लिखवाकर तुमने बहुत अच्छा किया, और यह तो बड़ी अच्छी बात रही कि बचे हुए पैसेका उपयोग तुमने जैसा लिखा है, उस तरहसे किया। उसका वर्णन पढ़कर मेरी आँखें नम हो आईं।

हृदयसे तुम्हारा,

१. अपने २१ मार्चके पत्रमें नी० ने लिखा था कि "... मैं हर कठिनाईको झेलकर आपके बताये रास्तेपर चलती रहूँगी। सिवा सत्यके, जिसका रूप यह सुन्दर और विस्तृत ब्रह्माण्ड है, मेरे लिए इस धरतीपर या स्वर्गमें भी अब और कोई गुरु नहीं है।

२. यह मिल नहीं सका।

३. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया।

२४ मार्च, १९३३

[पुनश्च :]

आज तुम्हारा बहुत अच्छा पत्र मिला है। ऊपरका हिस्सा मैंने कल लिखाया था। तुम्हारा परिवेश सत्यमय हो, तुम्हारा जीवन सत्यसे आप्लावित हो, यही मेरी कामना है।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६८९) से।

१९७. पत्र : मीराबहनको

२४ मार्च, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र कल आया। इस समय सुबहके सवा तीन बज रहे हैं।

जानकर खुशी हुई कि तुमको कब्जसे छुटकारा मिल गया है। तुम अगर सिर पर भीगी पट्टी लगातार रखती रहो तो तुम्हें गरमी बिलकुल भी नहीं महसूस होगी। इससे पूरे शरीरमें ठंडक पहुँचती है। मुझे पता नहीं कि वे लोग तुम्हें कैसा दूध देते हैं। दूधको यदि दुहनेके बाद तुरन्त छान लिया जाये या बोतलमें भरकर उसे अच्छी तरह कार्कसे बन्द करके गीले कपड़ेमें लपेट दिया जाये, तो वह दूध कई घंटोंतक ठीक बना रहेगा और उसे उबाले बिना वैसा ही पिया जा सकता है। मैंने उबला दूध लेना बिलकुल बन्द कर दिया है और मुझे उससे कोई नुकसान भी नहीं हुआ है। उससे मुझे सारे पोषक तत्त्व मिल जाते हैं और उस पौंड-भर दूधसे मुझे जितनी शक्ति मिल जाती है उतनी शायद उससे अधिक मात्रामें लिये जानेपर भी उबले दूधसे नहीं मिलेगी। मेरा आहार अब भी दूध, पपीते, संतरे और खजूर ही हैं। संतरे मैं एक बार ही लेता हूँ। लगता है कि यह काफी है, शायद जरूरतसे ज्यादा ही। लेकिन मैं तुम्हें यह बतलाना चाहता हूँ कि यदि तुम बिना उबाला दूध पीनेका इन्तजाम कर सको, तो तुम्हें गरमीसे कम परेशानी होगी। दूधकी बोतल इस तरह बन्द होनी चाहिए कि उसमें जहाँतक सम्भव हो, हवा न जा सके और उसे गीले कपड़ेमें लपेटकर रखना चाहिए। गीले कपड़ेमें वह बर्फ-जैसा ठण्डा बना रहता है। तुम उसे अपने सामने कपड़ेसे छान सकती हो। छाननेके बाद तुरन्त ही कपड़ेको और बोतलको भी अच्छी तरह धो लेना चाहिए। इतना किया जाये, तो तुम्हारे बिना उबाला दूध लेनेपर भी मैं निश्चिन्त रहूँगा। आशा है, मैंने अपनी हिदायतें काफी स्पष्ट शब्दोंमें बतला दी हैं। यदि तुम तरीका बदलना न चाहो और वैसे अपने-आपको भली-चंगी महसूस करती हो, तो ऐसी तब्दीली करनेकी जरूरत भी नहीं।

मेरा वजन १०४ पौंड ही बना हुआ है। समझमें नहीं आता क्यों। हालाँकि मैं आसक्तिरहित[1] ढंगसे रहनेकी कोशिश करता हूँ, परन्तु निस्सन्देह कुछ ऐसी चीजें हैं जो अनजाने ढंगसे मुझपर प्रभाव डालती हैं। तुम जानती हो कि . . .के[2] लिए मेरे मनमें कितना सम्मानभाव है। आश्रममें वह मेरा सबसे दृढ़व्रत ब्रह्मचारी और सत्यनिष्ठ बालक रहा है। तुम यह भी अच्छी तरह जानती हो कि . . .के[3] लिए मेरे मनमें इतनी गुंजाइश थी कि उसे पक्षपात भी कहा जा सकता था। लेकिन देखो तो ये दोनों मेरे विश्वास और भरोसेका बेजा फायदा उठाकर एक-दूसरेसे प्रणय-व्यापार करते पाये गये हैं। ये दोनों शादी करनेकी योजना भी बनाते रहे हैं। . . .के[4] पत्र मेरे हाथ पड़ गये हैं। . . . को मैं ठीक ढंगकी एक हरिजन बालिकाकी तरह विकसित होते देखनेकी आशा लगाये था। पर मैं नहीं कह सकता कि . . . और . . . का अब क्या होगा। मैं इन फूटे बर्तनोंको जोड़नेकी कोशिश कर रहा हूँ। परन्तु मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि मुझे इसमें कहाँतक सफलता मिलेगी या ये दोनों मेरे साथ इसमें कितना सहयोग करेंगे। लेकिन सोचनेकी यह पूरी शैली अनासक्तिकी नहीं, आसक्तिकी ही है। अनासक्तिकी भाषा मैं जानता हूँ। लेकिन मैं चूँकि उसपर अमल नहीं कर रहा हूँ, इसलिए उसके अनुरूप भाषाका प्रयोग करना सत्यनिष्ठ नहीं होगा। मैं इन दोनोंको इतनी आसानीसे अपने दिमागसे नहीं निकाल पाता। आशा है, कुछ समय बीतनेपर ऐसा कर सकूँगा। सामने जो काम पड़े रहते हैं, उनके कारण मुझे उनके पतनके बारेमें सोच-सोचकर परेशान होनेका समय तो नहीं मिल पाता, लेकिन तुमको यह सब लिखनेके दौरान मैंने स्पष्ट देख लिया है कि मेरी मन:स्थिति क्या है। तुम इसे लेकर चिन्तित मत होना। इस तूफानके बावजूद मैं भला-चंगा हूँ। ईश्वर मुझे भला-चंगा रखता है। मैंने अपने अन्तरमें चलनेवाला द्वन्द्व तुम्हारे सामने खोलकर रख दिया है। पर यह सब क्षणिक है। आश्रम धूलमें मिल जाये और मेरी सभी उपास्य मूर्तियाँ खण्ड-खण्ड हो जायें, तो भी सत्य तो कायम रहेगा ही। . . .का[5] व्यवहार शानदार रहा है। और कौन कह सकता है कि इस सबका पता चलनेका परिणाम यह नहीं होगा कि अब हर तरफ पहलेसे अधिक स्वच्छ वातावरण बनानेका प्रयत्न किया जायेगा। इसलिए तुमको इससे दु:खी नहीं, बल्कि खुश होना चाहिए। यहाँ सवा चार बजे प्रार्थना शुरू हुई थी। प्रार्थनाके बाद कुनकुने पानीके साथ शहद लिया और अब पौने पाँच बज रहे हैं। राजकुमारी एरिस्टार्शी हर हफ्ते 'हरिजन'के प्रति प्रेम-भरा पत्र भेजती रहती हैं। वे 'हरिजन' के कार्यके लिए उपवास और प्रार्थना और बचत कर रही हैं। तुम यदि चाहोगी तो मैं उनके भेजे हुए और अधिक कार्ड बड़ी खुशीसे तुमको भेज दूँगा। वे और मेडेलीन रोलाँ तुम्हारे प्रति अपना स्नेह निवेदन करती हैं। लगता है कि कठिन शीत और जर्मनीमें लोकतंत्र तथा व्यवस्था ठप हो जानेके बावजूद ऋषिकी[6] मन:स्थिति काफी ठीक बनी हुई है। वे सब तुमको अपना स्नेह भेजते रहते हैं। यों तो यूरोपसे जो भी पत्र लिखता है,

१. साधन-सूत्रमें यहाँ 'अनासक्ति' अंग्रेजी पर्याय है, जो स्पष्टत: भूल है।
२, ३, ४, और ५. यहाँ नाम नहीं दिये जा रहे हैं।
६. रोमाँ रोलाँ।

तुम्हारे प्रति अपना स्नेह निवेदन करता ही है। लेकिन तुम जानती ही हो कि ऐसे स्नेह-संदेश तुम तक पहुँचानेके प्रति मैं कितना उदासीन रहता हूँ। बा से कहना कि मैं उसे शायद हर हफ्ते पत्र न लिख सकूँ।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७२) से। सौजन्य: मीराबहन

१९८. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी इच्छानुसार माल्कम मैकडॉनाल्डको 'हरिजन' पहुँचता रहेगा। अगाथाने कुछ और नाम भी दिये हैं। उनको भी जाता रहेगा। यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि 'हरिजन' शीर्षकका अक्षर-लेखन लोगोंको काफी पसन्द आया।

बनारसीदासके बारेमें दिया गया सुझाव ठीक-ठीक समझमें नहीं आया। निश्चय ही वे एक अग्रणी कार्यकर्ता हैं और इतने ही अग्रणी हिन्दी-लेखक भी। ऐसे काममें वे जी-जानसे जुटे हुए भी हैं। पर उनसे विशेष काम क्या लिया जा सकता है? 'हरिजन' का एक हिन्दी-संस्करण घनश्यामदास और अमृतलाल ठक्करकी सीधी देखरेखमें दिल्लीसे निकलता है। इसके बंगला, तमिल और गुजराती संस्करण भी निकलते हैं। गुरुदेव सहयोग कर रहे हैं। इसी सप्ताह उनका एक बड़ा सुन्दर पत्र[1] और एक कविता[2] मुझे मिली। वह कविता उनकी अपनी ही बंगला कविताका खुद उन्हींका किया अनुवाद थी। तुम्हारे पास कोई और सुझाव या कुछ और है?

हम सब अच्छी तरह और स्वस्थ हैं; अपनी शक्ति-भर काम कर रहे हैं।

हम सबकी ओरसे सप्रेम।

मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९८२) से।

१. पत्रके पाठके लिए देखिए "यह संघर्ष आवश्यक है", १-४-१९३३।

२. **हरिजन**के २५-३-१९३३ के अंकमें "पवित्र स्पर्श" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित।

१९९. पत्र : राजकुमारी एफी एरिस्टार्शीको

२४ मार्च, १९३३

आपके सभी पत्र मर्मस्पर्शी हैं। मैं आपके निस्स्वार्थ प्रेम तथा आपकी सचमुच हृदयसे उद्भूत प्रार्थनाओंकी बड़ी कद्र करता हूँ और मुझे इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि शुद्ध हृदयोंसे निकली प्रार्थनाएँ सदैव फलीभूत होती हैं। इसलिए आपका यह कथन सोलहों आने सही है कि हरिजनोंके लिए की गई अपनी प्रार्थनाओंको फलीभूत बनानेके लिए आवश्यक है कि आप अपने अन्दर अधिकसे-अधिक पवित्रता पैदा करें। इसलिए आपको अपने लम्बे-लम्बे पत्रोंके लिए कोई सफाई देनेकी जरूरत नहीं। मुझे वे पत्र इतने लम्बे नहीं लगते। यदि आपके पत्र मिलनेके दिनों मैं अत्यधिक व्यस्त होता हूँ तो मैं उनपर एक सरसरी नजर डालकर उनको जरा फुरसतके समय ध्यानसे पढ़नेके लिए अलग रख लेता हूँ।

मुझे जानकर बड़ी खुशी हुई कि 'हरिजन' आपको पसन्द है। यदि आप किसीको 'हरिजन' की मानार्थ प्रतियाँ भिजवाना चाहती हों, तो लिखनेमें कोई संकोच मत कीजिए।

मेरे पास मीराके पत्र हर सप्ताह आते रहते हैं। मैं उसे आपकी ओरसे स्नेह लिख देता हूँ और वह अपनी ओरसे आपको लिखवाती रहती है। पर मैं ऐसे स्नेह-सन्देशोंके वाहकके रूपमें बहुत लापरवाह हूँ। मैं तो सोचता हूँ कि मित्रोंको अपने बीच ऐसे परस्पर स्नेहका अस्तित्व तो मानकर ही चलना चाहिए, जिसे व्यक्त करनेकी जरूरत ही नहीं।

राजकुमारी एरिस्टार्शी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६९८) से।

२००. पत्र : डॉ० हैरी जे० एर्लिखको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। एक पुस्तकका नाम है—'कीनर विजन विदाउट ग्लासेज'। इसके लेखक हैं—बेंजामिन गेलॉर्ड हाउसर, और मिलनेका पता है—टेम्पो बुक्स इनकॉरपोरेटेड, ५८०, फिफ्थ एवेन्यू, न्यू यॉर्क।

हृदयसे आपका,

डॉ० हैरी जे० एर्लिख
८४, चर्च स्ट्रीट,
न्यू ब्रुंसविक, न्यू जर्सी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७००) से।

२०१. पत्र : आर० बी० ग्रेगको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय गोविन्द,

तुम्हारा पत्र मिला और पुस्तक[1] भी मिल गई थी। मैं आजकल इस पुस्तकको पढ़ रहा हूँ। मैं उसमें बतलाये गये तरीकेको आजमाकर जरूर देखना चाहता हूँ, और यदि मैं बरसोंके इस्तेमालके बाद अब इस चश्मेसे छुटकारा पा सकूँ तो मुझे सचमुच बड़ी खुशी होगी। काकासाहब यहीं हैं। उन्होंने इस तरीकेकी अबतक आजमाइश नहीं की, लेकिन अब शायद करें।

आशा है कि 'हरिजन' के अंक तुम्हें नियमित रूपसे मिल रहे होंगे। मैं चाहता हूँ कि तुम और राधा[2] उसे आलोचनात्मक दृष्टिसे पढ़ो और अपने सुझाव मुझे लिख भेजो।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत गोविन्द
५४३, बॉयल्स्टन स्ट्रीट
बोस्टन, मास० सं० रा० अ०

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०६९९)से।

१. बेंजामिन गेलॉर्ड हाउसर-कृत **कीनर विजन विदाउट ग्लासेज**।

२. आर० बी० ग्रेगकी पत्नी।

२०२. पत्र : एस्थर मेननको

२४ मार्च, १९३३

रानी बिटिया,

थोड़ी प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा विस्तृत पत्र मिला। तुम्हारी सभाका वर्णन काफी रोचक है। अपने शब्दोंमें तुमने जितनी एकाग्रता और जितना आत्मिक बल भर दिया था उसके बाद तो यह असम्भव ही था कि उनमें प्रभावोत्पादकता पैदा न होती।

सामान्य सभाओंमें आम तौरसे सलीबके अर्थकी जैसी संकीर्ण व्याख्या की जाती है, उससे हटकर जब भी उसे एक सार्वभौमिक अर्थ प्रदान किया जाता है, तब निस्सन्देह, सलीबकी प्रेरणा सार्वभौमिक हो जाती है। परन्तु उसके लिए, तुम्हारे अपने शब्दोंमें, हमारे पास अन्तश्चक्षु होने चाहिए, जिनसे उस सार्वभौमिक अर्थको ग्रहण किया जा सके।

यह जानकर प्रसन्न हुआ कि तुम हैदराबादकी एक मुसलमान लड़कीका लालन-पालन कर रही हो। और अच्छी तरह परिचित हो जानेपर मुझे उसके बारेमें ज्यादा लिखना।

मुझे पता ही नहीं था कि वहाँके लोग कभी अपने सिरोंपर बोझे ढोते हैं। तुमने जो देखा है, क्या इंग्लैंडके उस प्रदेशमें उसका आम चलन है? उसका वजन कितना तक होता है और उन बोझोंको किस तरहके पात्रोंमें रखकर ढोते हैं? कितनी दूरीतक ढोते हैं? और क्या उसमें घरका आम कूड़ा-कचरा रहता है?

आशा है कि हैन्स[1] की प्रार्थना फलीभूत हो गई होगी।

अभी उस दिन मेरियाका पत्र आया था। उससे पता चला कि तुम्हारे आनेकी खबरसे वह कितनी खुश है। वह मन और शरीर दोनोंसे हारी-थकी लगती है। बस, जैसे टूटने ही वाली हो और मैं बहुत चाहता हूँ कि इस चलती-फिरती हालतमें ही वह काश्मीर जाकर चन्द महीनोंके लिए अपने मन और शरीरको विश्राम दे। यह उसके लिए बेहद जरूरी है।

हम सबका स्नेह और बच्चोंको प्यार।

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (संख्या १२१) से; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार। एस० एन० २०६९७ से भी

१. हैली ओकमें मेनन-परिवारके साथ रहनेवाला एक जर्मन बालक।

२०३. पत्र : नी० को

२४ मार्च, १९३३

तुम प्रयत्न करो, इतना ही काफी नहीं। यह जरूरी है कि तुममें बल हो। ईश्वरको प्रयत्नसे सन्तोष होता है। पर उसका वचन है कि सच्चे प्रयत्नसे जरूरी बल हमेशा पैदा होता ही है। इसलिए तुम जो परिणाम दिखाओगी, उसके आधारपर ही मैं तुम्हारे प्रयत्नकी कीमत आँकनेवाला हूँ। यह अच्छी तरहसे समझमें आ रहा है न? बुरे भूतकालपर विजय पानेके लिए तुम्हें भयंकर संग्राम करना पड़ेगा। परन्तु यदि सत्य तुममें बस गया होगा, तो डरनेकी कोई जरूरत नहीं। प्रकाश गहरेसे-गहरे अन्धकारका नाश करता है। सत्य घोरतम पापपर विजय प्राप्त करता है। पापका ही दूसरा नाम असत्य है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम अपनी पहरेदार बनो।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी; सौजन्य: नारायण देसाई

२०४. पत्र : रामचन्द्रको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। नी० देवीके वक्तव्यके प्रकाशनको लेकर बहुत अधिक चिन्तित होनेकी जरूरत नहीं। साथके पत्रसे[1] तुमको पता चल जाएगा कि मैंने उसको इसकी एक प्रति भेजनेके लिए लिखा है; यदि तुम्हारे पास हो तो मुझे एक प्रति भेज दो। बुधवारको मैंने उसको तार भेजा था, क्योंकि उसने अपने पत्रमें लिखा था कि वह जल्दी ही हरिजनोंके किसी गाँवमें जा सकती है। आखिरकार, यही तो उसका लक्ष्य है, और यदि अब वह वहाँ जा सकती है तो बेहतर ही है। मैंने उससे पूछा है, लेकिन तुम भी मुझे लिखो कि जब वह गाँव जायेगी तो उसके द्वारा खाली की गई जगह का क्या होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०६९६ ए)से।

१. यह प्राप्त नहीं हो सका।

२०५. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

२४ मार्च, १९३३

प्रिय मार्गरेट,

तुम्हारे पत्र तो घड़ीकी सुईकी-सी नियमिततासे आते रहते हैं। कहनेकी जरूरत नहीं कि अगर एक यहूदिन होनेके कारण तुम्हें वहाँसे निकाल दिया जाये तो उससे तुम्हें घबराना नहीं चाहिए। तुम्हारा क्या हुआ, यह जाननेके लिए अब मैं आतुरतासे तुम्हारे पत्रोंकी राह देखूँगा।

अगर तुम चाहो तो मितव्ययिताका श्रेय ले सकती हो, हालाँकि तुम्हें यह पुरानी कहावत याद रखनी चाहिए कि 'एक कोयलके कूकने से वसन्त नहीं आ जाता,' और इसलिए भोजनके सवालको यदि तुम एकदम महत्त्व देना छोड़ दो तो उसका मतलब यह नहीं होगा कि तुम्हारे लिए समाधान उतना ही सरल है जितना तुम सोचती हो। भोजनको अधिक महत्त्व देनेकी जरूरत नहीं है, लेकिन यह सोचना बिलकुल गलत है कि आदमीके नैतिक विकास, बल्कि शारीरिक विकाससे भी भोजनका कोई सम्बन्ध नहीं है। दुनिया-भरके सन्त-महात्माओंके अनुभवसे यह प्रकट होता है कि उन्होंने इसे महत्त्व दिया है — किसीने कम, किसीने ज्यादा; और उनमें से अधिकांशने यह स्वीकार किया है कि जिसमें जीव-हत्या न करनी पड़े, ऐसा आहार आध्यात्मिक प्रबुद्धताके लिए आवश्यक है।

तुम्हारी शिष्याओंने अहिंसाको समझनेकी क्षमताका परिचय बहुत कम दिया। इससे भी तुम्हें परेशान होनेकी जरूरत नहीं है।[1] मुझे इससे कोई आश्चर्य नहीं होता। वहाँ वातावरण ही ऐसा नहीं है कि लोग अहिंसाकी ओर उन्मुख हों। उन्हें इसको किंचित् भी महत्त्व देनेकी शिक्षा कभी दी ही नहीं गई, बल्कि शायद उन्हें इसको हिकारतकी नजरसे देखना ही सिखाया गया है। तुम्हारे यहाँ जैसा अहिंसा-विरोधी वातावरण है उसमें तुम्हें उन सबसे एकाएक अहिंसाके महत्त्वको समझनेकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

महादेवको तुम्हारे पत्र मिलते रहे हैं और तुम्हारी पुस्तिका भी उसे मिल गई है। चूँकि मैंने 'पार्सीफाल'के बारेमें सुन रखा था और वह थी भी सच्चे अर्थोंमें पुस्तिका ही, इसलिए मैं दो दिनोंमें जबतब मौका मिलनेपर उसे पढ़ गया। पुस्तिका मुझे बहुत पसन्द आई।

१. मार्गरेट स्पीगलने गांधीजी को लिखा था कि वे दो महीनेसे अपनी शिष्याओंके साथ **यंग इंडिया**में प्रकाशित गांधीजी के लेखोंके जर्मन स्कूली संस्करणका अध्ययन करती आ रही थीं। . . . फिर उसका नतीजा कुछ नहीं निकला। २० लड़कियोंमें से एकके भी दिलमें वे अहिंसाको उतार नहीं पाईं।

हाँ, श्री कोदण्डरावको भी तुम्हारा पत्र मिल गया।

हृदयसे तुम्हारा,

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल-पेपर्स। सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। जी० एन० २०७०१ से भी

२०६. पत्र: हरिभाऊ उपाध्यायको

२४ मार्च, १९३३

चि० हरिभाऊ,

अहिंसा-सम्बन्धी तुम्हारा लेख मैंने अभी-अभी पढ़ा। तुम्हारे विचार जहाँतक जाते हैं वहाँतक ठीक हैं। किन्तु वह छपवाने लायक नहीं है। अभी और भी गहराई-में उतरनेकी आवश्यकता है। अहिंसा कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी थाह आसानी से पाई जा सके। उसके सम्बन्धमें लेख लिखनेका प्रयत्न करनेकी अपेक्षा उसपर अमल करते हुए जो नये विचार और कठिनाइयाँ आयें उनका विवरण देना ज्यादा अच्छा होगा। तुम्हारा यह लिखना भी सर्वथा सही नहीं है कि धर्मके रूपमें तो अहिंसा सर्वमान्य है। यह ठीक है कि वह थोड़ी-बहुत हदतक सर्वमान्य है। लेकिन बहुत-से लोग हिंस्र पशुओंका वध करना धर्म मानते हैं। अन्य लोग पापी माने जाने-वाले लोगोंको मारना धर्म मानते हैं।

अपने मानसिक विचारोंको स्पष्ट करनेके लिए तुम ऐसे लेख बार-बार लिखो तो इसमें अनुचित कुछ नहीं होगा।

अब तुम कैसे हो?

लेख वापस लौटा रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७८)से; सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय

२०७. पत्र: गंगाबहन वैद्यको

२४ मार्च, १९३३

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा विस्तृत और सुन्दर पत्र मिला। किससे लिखवाया? जबतक वहाँ रहनेकी आवश्यकता समझो तबतक रहना और समस्याओंको सुलझाना।

रमीबहन[1] अपने मनपर बोझा क्यों लिये फिरती है? उसका संस्कृत और 'गीता'का अध्ययन कहाँ गया?

१. रमीबहन कामदार, गंगाबहनकी बहन।

महावीर और कृष्णमैयादेवीको बिगाड़ मत देना। कृष्णमैयादेवीको काम अवश्य करना चाहिए। महावीरको पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। उसे भिखारी मत बनने देना। 'जो पाता है उसका प्रतिदान उसे अवश्य देना चाहिए। वह परिश्रम करनेका जितना अभ्यस्त होगा उतना ही सुखी होगा। उसे आश्रम के नामका उपयोग नहीं करना चाहिए। नौकरी आदि पानेमें जितनी मदद दी जा सके उतनी अवश्य दो।

हम लोगोंका मिलना तो नहीं हो सकता, किन्तु तुम्हें जो पूछना हो वह पत्र लिखकर पूछ लेना।

मीराबहन बा की आलोचना क्यों करती थी? निःसन्देह उसमें दोष तो हैं, किन्तु उसकी एकनिष्ठताकी कीमत नहीं आँकी जा सकती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बा स्वयंको खूब शोभान्वित करती रही है। बा की दृढ़ता उसके दोषोंको ढक देती है।

तुम्हारी पढ़ी हुई पुस्तकोंकी सूची तो मुझे मिल गई थी। अब मैं तुम्हारे विचारोंके विवरणकी प्रतीक्षा करूँगा।

काका रोज मिलते हैं। उनकी तबीयत अच्छी है। फिलहाल वे सिर्फ दूध और फलोंपर गुजर कर रहे हैं। दूधसे मेरा तात्पर्य दही से है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी डब्ल्यू० ८७९९) से; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य

२०८. टिप्पणियाँ

क्या मन्दिर सूने हो जायेंगे?

एक एम० ए०, एल-एल० बी० सज्जन पूछते हैं:

> **यदि हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशकी अनुमति दे दी जायेगी, तो बहुत सम्भव है कि सवर्ण हिन्दू जनता और पुजारी मन्दिरोंमें जाना छोड़ देंगे। उस हालतमें मन्दिर-प्रवेशके अधिकारका क्या लाभ होगा?**

इस प्रश्नका मेरा यही उत्तर हो सकता है कि प्रश्नकर्ताने स्पष्ट ही मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी आन्दोलनको समझा नहीं है। वह तो सिर्फ उसकी निन्दा करता है। उसके प्रश्नका अन्तर्हित आशय यही है और उसके जिस लम्बे पत्रसे मैंने यह प्रश्न उद्धृत किया है उससे भी यही प्रकट होता है। पर मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी उद्देश्यके लिए मेरा यह उत्तर काफी न होगा।

प्रश्नकर्ता और उन्हींके समान विचारवाले व्यक्तियोंको यह जान लेना चाहिए, कि जिस संयोगकी वे आशंका करते हैं वह आयेगा ही नहीं, क्योंकि इस आन्दोलन का यह मंशा नहीं है कि किसी भी मन्दिरमें हरिजनोंको कानूनन या किसी दूसरी तरह जबरन प्रवेश कराया जाये। कानूनकी सहायता तो सिर्फ इसलिए माँगी जाती

है कि जहाँ जनमत मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें हो, वहाँपर हरिजनोंके लिए मन्दिर खोल दिये जायें। आज तो यह हालत है कि जहाँ जनमत एक स्वरसे मन्दिर-प्रवेश चाहता है, वहाँ भी मन्दिरोंको खोलना असम्भव हो रहा है। इसलिए, जबकि सवर्ण हिन्दू और साथ ही पुजारी भी यह चाहते हैं, कि अमुक मन्दिरोंमें उनके साथ-साथ हरिजनोंको भी जाने दिया जाये, तब तो मन्दिरोंके सूने हो जानेकी बात किसी तरह उठती ही नहीं। जब हरिजनोंके लिए लोग मन्दिर-प्रवेशकी इजाजत इस प्रकार अपनी राजीखुशीसे देंगे, तो मन्दिर तो उनके प्रवेशसे और भी पवित्र हो जायेंगे। यह बात देखनेमें भी आ रही है कि जहाँ लोगोंने अपने किसी मन्दिरमें हरिजनोंको प्रवेशकी आज्ञा दे दी है, वहाँ उस मन्दिरमें न तो पुजारियोंने जाना छोड़ा है और न सवर्ण हिन्दुओंने।

हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान

कटककी श्रीमती रमादेवीने[1] मुझे हिन्दीमें पत्र लिखा है। इस पत्रमें उन्होंने कटककी महिलाओं द्वारा हरिजनोंमें किये जा रहे सेवा-कार्यका ब्योरा दिया है। मैं यहाँ पत्रके कुछ अंशोंका अनुवाद[2] दे रहा हूँ:

> विगत अक्तूबरसे मैं सात अन्य बहनोंके साथ हरिजनोंके बीचमें काम कर रही हूँ। हमने अपना काम कटकतक ही सीमित रखा है। हम सब स्वेच्छ्या-सेविकाएँ हैं। और हरिजन सेवक संघके आश्रयमें उसके निदेशानुसार अपना कार्य कर रही हैं। अलबत्ता, नगरपालिकासे पुस्तकों और दवाओंके रूपमें हमें कुछ आर्थिक सहायता मिलती है। इसके सिवा हमें और कोई आर्थिक सहायता नहीं मिलती। दवाओंमें जो कमी रह जाती है उसकी पूर्ति एक स्थानीय कविराज करते हैं। हमने अपनेको भंगियोंकी चार बस्तियोंमें बाँट लिया है; हर बस्तीमें दो-दो बहनें काम करती हैं। हम लड़कियोंको लिखने-पढ़ने और गणितकी प्रारम्भिक शिक्षा देती हैं; उन्हें भजन गाना सिखाती हैं और सरल धार्मिक पुस्तकें पढ़कर सुनाती हैं। बीमारोंको दवाएँ बाँटती हैं, उनके घरोंकी सफाई करती हैं, उनकी विशेष कठिनाइयोंकी सूचना समितिको देती हैं, और स्त्रियोंको समझाती हैं कि उन्हें गोमांस और मुर्दार मांस खानेकी आदत छोड़ देनी चाहिए। हम जब उनसे पहली बार मिले तो वे हमसे डरती-सी थीं। उन्हें हमारी बातोंका विश्वास ही नहीं हो रहा था और वे हमें सुनना तक नहीं चाहती थीं। किन्तु धीरे-धीरे हमारे प्रति उनके मनमें जो भयका भाव था वह दूर हो गया और अब तो वे हमारी बात कुछ-कुछ सुनती भी हैं। कटक की बहनोंमें से हमें अब कुछ और स्वयंसेविकाएँ मिलनेकी आशा है। कुछ लड़कियोंने तो हमारे साथ काम करना आरम्भ भी कर दिया है।

मैं कटककी इन बहनोंको इस आवश्यक सुधार-कार्यमें अपनी सेवाएँ अर्पित करनेपर बधाई देता हूँ। हमारे जीवनमें जितना-कुछ पवित्र है और धार्मिक है

१. रमादेवी चौधरी। देखिए "पत्र: रमादेवी चौधरीको" ४-४-१९३३ भी।

२. यहाँ उक्त अंग्रेजी अनुवादका हिन्दी अनुवाद ही दिया जा रहा है।

स्त्रियाँ उसकी विशेष रूपसे रक्षा करती हैं। उनमें स्वभावसे परम्पराकी रक्षा और उसके संग्रहकी वृत्ति होती है; इसलिए जहाँ एक ओर वे अपनी अंधविश्वासमूलक आदतोंको बहुत धीरे-धीरे छोड़ती हैं वहाँ दूसरी ओर वे जीवनमें जो-कुछ पवित्र है और उदात्त है उसे भी आसानीसे नहीं छोड़ती। इसलिए इस धर्म-सुधारके संघर्षमें भारतीय नारी-समाजसे आगे बढ़कर हिस्सा लेनेकी उम्मीद की जा सकती है। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि कटककी इन बहनोंका उदाहरण संक्रामक सिद्ध होगा और श्रीमती रमादेवी तथा उनके साथ काम करनेवाली दूसरी बहनोंका यह कार्य उनके मार्गकी सारी कठिनाइयों और निराशाओंके बावजूद जारी रहेगा।

और अधिक क्या करूँ?

दक्षिणसे एक सज्जन लिखते हैं:

> **मैंने और मेरे एक मित्रने २० रु० की खादी खरीदकर हरिजन भाइयोंमें बाँट दी है। अस्पृश्यता-निवारणकी एक सभामें मैं अध्यक्ष भी हुआ और यह कहते मुझे आनन्द होता है कि मेरे मित्र इस दिशामें काम कर रहे हैं। इससे अधिक और क्या करूँ?**

यह विचित्र सवाल है। लेकिन उसका अक्षरार्थ ही मैंने नहीं लिया। मैं मानता हूँ कि लेखकका यह अभिप्राय नहीं है कि इतना करके वे कृतकृत्य हो गये हैं। लेकिन वे कृतकृत्य हुए हों या नहीं, मेरी रायमें, इतने बड़े भगीरथ कार्यमें कोई व्यक्ति अपने थोड़े-से पैसे देकर या किसी सभाका अध्यक्ष होकर सन्तोष नहीं मान सकता। हाँ, उसके पास समय ही न हो तो बात दूसरी है। जब किसीको सुधार की लगन लग जाती है, तब उसे ऐसी सैकड़ों बातें सूझेंगी जिन्हें करके वह हरिजनों की सेवा कर सकता है। लेकिन कोई आदमी खास तौरसे क्या करे, यह बताना मेरा काम नहीं है। उसे तो हरिजन सेवक संघका सारा कार्यक्रम देख लेना चाहिए और अपने दूसरे कर्तव्योंके साथ-साथ उसमें से जो भी बन पड़े वह उसे करना चाहिए। संघका कार्यक्रम भी उदाहरणरूप ही है, सर्वांग-सम्पूर्ण नहीं है। इसलिए अपने स्थानकी विशेष परिस्थितियोंसे निपटनेके लिए यदि कोई चाहे तो इस कार्यक्रममें और भी बहुत-कुछ जोड़कर उसकी पूर्ति कर सकता है।

यूरोपसे

एक यूरोपवासी मित्रसे प्राप्त एक पत्र नीचे इस खयालसे दे रहा हूँ कि उसे पाठक भी पढ़ लें[1]।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-३-१९३३

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था, "आपने मुझे यह याद दिलाकर बहुत ठीक किया कि मैंने आपको समुद्री तार भेजनेमें नाहक इतना सारा पैसा खर्च किया।" उसने वचन दिया था कि वह ऐसी भूल फिर नहीं करेगा और कहा था कि उसने हरिजनोंके लिए पैसा बचाना शुरू कर दिया है।

२०९. ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार

एक बंगाली प्रोफेसरने[1] लम्बा पत्र लिखा है उसमें से निम्न अंश देता हूँ:

आपको यह जानकर दुःख होगा कि देशके कितने ही भागोंमें अस्पृश्यता-निवारणकी हलचल सही रास्तेसे हट गई है और उसने ब्राह्मणत्व और उसके आदर्शोंके खिलाफ नीच और हिंसक प्रचारकी सूरत अख्तियार कर ली है। ब्राह्मण-समाजको लोगोंकी आँखोंमें गिरानेके लिए आधा व पूरा झूठ जान-बूझकर फैलाया जाता है और लोगोंको भरमाया जाता है। क्या अस्पृश्यता की प्रथा अकेले ब्राह्मणोंमें ही है? क्या दूसरे वर्णोंके हिन्दू भी उतने ही गुनहगार नहीं? मान लीजिये कि शास्त्र ब्राह्मणोंके बनाये हुए हैं; पर ऐसा प्रमाण कहाँ है कि आज जिस तरहकी निर्दय अस्पृश्यता हिन्दुस्तानके कुछ हिस्सोंमें पाली जाती है, उसके लिए शास्त्रकी आज्ञा है?

क्या यह सच नहीं है कि अस्पृश्यता-निवारणकी वर्तमान हलचलको सफल बनानेमें ब्राह्मणोंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया है? क्या यह भी सच नहीं है कि (विधान सभाके) जिन सदस्योंने हरिजन-मन्दिर प्रवेश बिलमें बाधा डाली, उनमें से ज्यादातर अब्राह्मण थे? तब, निन्दाकी यह मुहिम ब्राह्मणोंके ही खिलाफ क्यों चलाई जा रही है? वे तो अस्पृश्यताके शापसे पैदा होनेवाली हालतकी गम्भीरताको और लोगोंसे ज्यादा समझते हैं।

देशमें अस्पृश्यता दूर करनेका आन्दोलन शुरू हुआ, उसके बहुत पहलेसे ब्राह्मणोंके खिलाफ हलचल शुरू हो गई थी, और कई सालसे चल रही है। इस आन्दोलनको चलानेवाले पत्रों या पत्रिकाओंके सिवा और कहीं मैंने ब्राह्मणत्वके खिलाफ हिंसक या अहिंसक हमले हुए नहीं देखे। हरिजन सेवक संघका ऐसे आक्षेपोंके साथ कोई सरोकार नहीं है। लेखकका यह कथन बिलकुल सच है कि अगर मुझे पता चले कि अस्पृश्यता-निवारणकी हलचल अपने रास्तेसे हटकर ब्राह्मणत्वके विरुद्ध हीन और हिंसक आक्षेपकी सूरत अख्तियार कर चुकी है तो मुझे दुःख होगा। इसलिए मैंने इन लेखकको लिखा है कि उन्होंने जो गंभीर बात कही है, उसके समर्थनमें उनके पास जो भी सबूत हों वे मेरे पास भेज दें। मगर इस पत्रके सिलसिलेमें मैं ब्राह्मणत्व और ब्राह्मणोंके बारेमें अपनी राय दोहरा देता हूँ।

मैं मानता हूँ कि ब्राह्मणत्वका मतलब है ब्रह्मका दर्शन करानेवाला शुद्ध ज्ञान। मेरी यह राय न हो तो मैं खुद हिन्दू नाम छोड़ दूँ। मगर मनुष्य-समाजके दूसरे लोगोंके साथ-साथ सब ब्राह्मणोंमें भी सच्चा ब्राह्मणत्व नहीं रहा। फिर भी मुझे

१. आर० आर० चक्रवर्ती; देखिए "पत्र: आर० आर० चक्रवर्तीको", २१-३-१९३३।

मानना पड़ता है कि जगत्के इन तमाम वर्गोंमें ज्ञानकी यानी सचाईकी खोज में सब-कुछ निछावर करनेवालों में ज्यादासे-ज्यादा ब्राह्मण ही मिलेंगे। हिन्दू धर्मके सिवा मैंने एक भी ऐसा दूसरा धर्म नहीं देखा जिसमें सिर्फ ब्रह्मज्ञानकी खातिर स्वेच्छासे अकिंचन बनकर रहनेवाला एक अलग वर्ग पीढ़ी-दर-पीढ़ी चला आया हो। ब्राह्मणोंने अपने लिए जो आदर्श ठहराया था, उसे शोभा देनेवाला जीवन वे कायम न रख सके, इसमें उनका दोष नहीं। उनकी अपूर्णतासे इतना ही साबित होता है कि वे और मनुष्योंकी तरह ही स्खलनशील थे। इसीसे हम धर्मशास्त्रके नामसे पहचाने जाने-वाले ग्रंथोंमें सडाँध घुसी हुई देखते हैं। इसीसे हम यह दुःखदायी दृश्य देखते हैं कि जिन ब्राह्मणोंने अपने लिए अत्यन्त निःस्वार्थ नियम बनाये हैं, उन्होंने उन शास्त्रोंमें अपनी संतानका हित-साधन करनेके लिए कई स्वार्थमूलक नियम भी जोड़ दिये है। लेकिन सडाँधके खिलाफ और स्वार्थपूर्ण क्षेपकोंके खिलाफ विद्रोह करनेवाले भी ब्राह्मण ही थे। उन्होंने ही बार-बार अपने और समाजके पाप धो डालनेकी कोशिशें की हैं। मैं मंजूर करता हूँ कि मेरे मनमें ब्राह्मणत्वके लिए सर्वाधिक पूज्य भाव है और मन-ही-मन मैं ब्राह्मणोंका आदर करता हूँ। और यद्यपि यह देखकर मुझे दुःख होता है कि ब्राह्मण कहलानेवाले लोग इस सुधारके आन्दोलनके खिलाफ धाँधली मचा रहे हैं और अपनी शक्तिको विरोधी पक्षमें लगा रहे हैं। फिर भी एक बातसे मुझे तसल्ली होती है और हरएक निष्पक्ष हिन्दूको तसल्ली होगी कि सुधार-आन्दोलनके नेताओंमें भी ऐसे लोग हैं, जो जन्मसे ब्राह्मण होकर भी जन्मका जरा भी अभिमान नहीं रखते। अस्पृश्यता-निवारणका काम करनेवाले सब सेवकोंकी गिनती की जाये, तो यह जान पड़ेगा कि किसी भी तरहका पारिश्रमिक लिये बिना या उदर-पोषणके लिए जितना जरूरी है केवल उतना ही लेकर अपनी सारी ताकत इस हलचलमें लगा देनेवाले सेवकोंमें बड़ा भाग ब्राह्मणोंका ही है। लेकिन मैं मानता हूँ कि ब्राह्मण वर्गका पतन हुआ है। ऐसा न होता और उन्होंने अपने घोषित आदर्शोंका पालन किया होता तो हिन्दू धर्मकी आज जो अवनति हुई है वह न हुई होती। यह कहना कि ब्राह्मणोंने अपना जीवन शुद्ध रखा है फिर भी हिन्दू धर्म आज इस हालतमें आ पड़ा है, परस्पर विरोधी बात समझी जायेगी। ऐसा हो ही नहीं सकता, क्योंकि ब्राह्मणोंने स्वयं ही हमें सिखाया है कि वे ब्रह्मज्ञानके सच्चे रक्षक हैं और जहाँ ब्रह्मज्ञान है वहाँ भय नहीं होता, गरीबी नहीं होती, ऊँच-नीचका भाव नहीं होता, वहाँ लालच, ईर्ष्या-द्वेष, लड़ाई, झगड़े और लूट-खसोट जैसी चीजें नहीं होतीं। ब्राह्मणत्वकी अवनति के साथ ही दूसरे वर्णके हिन्दू भी नीचे गिर गये। और मेरे मनमें जरा भी सन्देह नहीं कि ब्राह्मणत्व पुनरुज्जीवित न हुआ तो हिन्दू धर्म मिट जायेगा। अस्पृश्यताकी बुराई का जड़मूलसे मिटना, मेरी समझसे, ब्राह्मणत्वके यानी हिन्दू धर्मके फिरसे जीवित होनेकी अचूक कसौटी है। जैसे-जैसे मैं हिन्दू धर्मशास्त्रोंका ज्यादा अध्ययन करता जाता हूँ और सभी तरहके ब्राह्मणोंके साथ उनकी चर्चा करता जाता हूँ, वैसे-वैसे मेरा यह विश्वास बढ़ता जाता है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्मपर बड़े-से-बड़ा कलंक है। इस विश्वासका बहुत-से विद्वान् ब्राह्मणोंने समर्थन किया है। इन विद्वानोंका इसमें कुछ भी स्वार्थ नहीं है। वे तो सत्यकी खोजके लिए समर्पित हैं। उन्हें इससे कुछ मिलता

नहीं, अपनी रायके लिए धन्यवादतक नहीं। पर आज ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोरे नाम ही रह गये हैं। वर्णकी संस्थाका मैं जो अर्थ करता हूँ उसकी दृष्टिसे और जैसा कि इसी पत्रमें मैं समझा चुका हूँ आज तो वर्णका पूरी तरह संकर हो गया है। मैं तो चाहता हूँ कि आज तमाम हिन्दू स्वेच्छासे शूद्र नाम धारण कर लें। ब्राह्मणत्वमें रहनेवाली सचाईका दुनियाको दर्शन कराने और वर्ण-धर्मके सच्चे स्वरूपका पुनरुद्धार करनेका यह एक ही रास्ता है। सब हिन्दुओंके शूद्र माने जानेसे ज्ञान, शक्ति और सम्पत्ति मिट नहीं जायेगी, बल्कि वे सब एक सम्प्रदायकी सेवामें काम न आकर सचाई और मानव-जातिकी सेवामें काम आयेंगी। कुछ भी हो, अस्पृश्यताके खिलाफ लड़ाई चलानेमें और इस लड़ाईमें अपनेको होम देनेमें मेरी महत्त्वाकांक्षा सारे मनुष्य-समाजका नवजीवन देखनेकी है। यह निरा सपना हो सकता है, सीपमें चाँदी देखने-जैसा कोरा भ्रम भी हो सकता है। किन्तु जबतक यह सपना चल रहा है, तब तक मेरी दृष्टिमें वह खाली भ्रम नहीं है। और रोमाँ रोलाँके शब्दोंमें कहूँ तो 'जीत ध्येय तक पहुँचनेमें नहीं, बल्कि उसके लिए अथक साधना करनेमें है।'

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-३-१९३३

२१०. आदर्श हरिजन-शिक्षक

मुझसे समय-समयपर पूछा जाता है कि हरिजन-शिक्षकसे मेरी क्या अपेक्षाएँ हैं। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी कसौटी बहुत कड़ी है, पर अनुभवसे मालूम होगा कि स्वेच्छापूर्वक काम करनेवाले के लिए यह कसौटी उतनी कठिन नहीं है। इसके अतिरिक्त, यदि यह मान लिया जाये कि इस आन्दोलनके पीछे केवल धार्मिक भावना ही काम कर रही है, तो मेरी कसौटी ही असली कसौटी हो सकती है। मैं यह भी बता दूँ कि कई वर्ष हुए, चम्पारनमें पूरी सफलताके साथ मैंने यह प्रयोग करके देखा था। मैं चम्पारनमें कुछ ही समय तक ठहरा था[1], इसलिए यह प्रयोग जारी नहीं रखा जा सका और जिन स्वयंसेवकोंने इस कार्यके लिए अपनी सेवाएँ अर्पित की थीं उन्होंने इसका प्रारम्भ-मात्र ही करनेका जिम्मा लिया था। इसके पीछे मूल आशय तो यह था कि हम जैसे चाहते हैं उस तरहके शिक्षक सम्बन्धित क्षेत्रोंमें ही तैयार कर लिये जायें।

अब मैं संक्षेपमें उन शिक्षकों और अपने प्रयोगका वर्णन कर दूँ।

शिक्षकोंमें अवन्तिकाबाई गोखले, आनन्दीबाई, वैशम्पायन, कस्तूरबाई गांधी, मणिबहन पारिख, धरणीधर बाबू, नरहरि परीख, बाबा साहब सोमण, छोटेलाल जैन और देवदास गांधी थे।

वे सभी अपनी-अपनी जिम्मेवारी समझनेवाले लोग थे। इनमें से कुछ वकील और स्नातक भी थे। इनमें कोई भी प्रशिक्षण-प्राप्त शिक्षक न था। और ज्यादातर

१. देखिए खण्ड १३ और १४ तथा खण्ड ३९, पृष्ठ ३१७-९ भी।

तो, सिवा इसके कि टूटी-फूटी भाषासे अपना अभिप्राय दूसरोंको समझा सकें, हिन्दीसे अनभिज्ञ थे। कस्तूरबाई गांधी तो अपढ़ ही थीं, पर उत्साहमें किसी शिक्षकसे पीछे न थीं। चार-पाँच गाँवोंमें ये सब शिक्षक फैले हुए थे। इस समय गाँवोंकी ठीक-ठीक संख्या तो मैं भूल गया हूँ। पढ़ाईका प्रारम्भ उन्हें बच्चोंसे करके अन्तमें प्रौढ़ स्त्री-पुरुषोंको भी शिक्षा देनी थी। लिखना, पढ़ना और हिसाब जोड़ना यह सब तो उस शिक्षाका एक अंग-मात्र था। उनके स्वास्थ्य और चरित्रकी ओर भी उन्हें खास ध्यान रखना पड़ता था। शिक्षकगण किसी भी कारण उन्हें शारीरिक दण्ड नहीं दे सकते थे। उनसे खेल-कूदकी तरह मनोरंजक ढंगसे काम कराना था। बच्चोंसे——बालकों और बालिकाओं दोनोंसे —— इस तरह काम लेना मना था जिससे वे ऊब-थक जायें। प्रत्येक लड़के-लड़कीकी आँखें, कान, दाँत, बाल, नाखून आदि साफ हैं या नहीं, यह जाँच करना और आवश्यकतानुसार उन्हें साफ कर देना शिक्षकका यह प्रथम कर्तव्य था। बच्चोंको सफाईसे रहना सिखाना और इस बातका ध्यान रखना कि वे एक-दूसरेके प्रति उचित व्यवहार करें और आपसमें गन्दी जबानका प्रयोग न करें, यह भी शिक्षकका कर्तव्य था।

यहाँ एक बात मैं और बता देना चाहता हूँ कि हिन्दी न जाननेवाले शिक्षक बच्चोंसे ही हिन्दी सीखते थे। वैसे उन्हें इतनी कम हिन्दी आती थी कि वे केवल इतना ही देख सकते थे कि बच्चे वर्णमाला ठीक-ठीक लिख रहे हैं या नहीं और यथाक्रम गिनती गिन रहे हैं या नहीं। असली बात तो यह थी कि पाठशालाके आसपास संस्कृतिका वातावरण उत्पन्न किया जाये।

घरेलू काम-काजके लिए शिक्षकोंको नौकर नहीं दिये गये थे, रसोई बनाना, कपड़े धोना आदि काम उन्हें स्वयं करने पड़ते थे। जहाँ मकान न थे, वहाँ बाँसके झोंपड़े बनानेमें उन्हें मदद करनी पड़ती थी। साफ खुली जगह पसन्द की जाती थी, और मेरी रायमें, सीधी-सादी ग्रामीण कलाका ही अधिक उपयोग किया जाता था। टीनकी चद्दरोंके मकानों और गोबरके ढेरोंसे तो हम दूर ही रहते थे। एक जगह अपनी पाठशालाके लिए हमें एक मन्दिर मिल गया था। हर जगह पाठशाला तो गाँववालों के लिए एक गौरवकी चीज और संस्कृतिका केन्द्र बन गई थी।

मगर वयस्क और प्रौढ़ स्त्री-पुरुषों पर भी पाठशालाको अपना प्रत्यक्ष प्रभाव डालना था। उन्हें चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता दी जाती थी और इस तरह उन्हें स्वच्छता और स्वास्थ्य आदिके पदार्थ-पाठ मिल जाते थे। शिक्षकोंके रहनेके मकान, पाठशालाओंके नजदीक ही होते थे —— या कहीं-कहीं तो दोनों एक ही साथ होते थे —— जो गाँवके दवाखानेका भी काम देते थे। वहाँ कुनैन, जुलाब के लिए अंडीका तेल और मरहम-पट्टीका सामान रखा रहता थे। बद्धकोष्ठ, मलेरिया और छोटे-छोटे घाव-फोड़ों का उन्हें उपचार करना पड़ता था। भारत-सेवक समाज (सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी) के स्वर्गीय डॉ० देवके प्रबन्धमें ये औषधालय खोले गये थे। सेवाके इस विभागका वे स्वयं निरीक्षण करते और गम्भीर रूपसे बीमार तमाम रोगियोंको देखते थे। ग्रामीणोंके घरोंमें जा-जाकर स्वेच्छासे दी हुई सहायतासे उन्होंने कुछ ही सप्ताहोंमें

कूड़े-करकट और गोबरके ढेरोंसे भरे हुए छोटेसे भीतिहरवा गाँवको स्वच्छ और रमणीय गाँवमें परिणत कर दिया, और जहाँतक मुझे याद पड़ता है, इसमें एक पैसेका भी व्यय नहीं हुआ। डॉ० देव केवल इस कार्यके निरीक्षक ही नहीं थे, बल्कि खुद फावड़ा और कुदाली हाथमें लेकर काम करनेवाले श्रमिकोंमें प्रमुख थे।

डॉ० देवने भीतिहरवामें जो-कुछ स्वयं किया, थोड़ी-बहुत सफलताके साथ वही काम शिक्षकोंने अन्य गाँवोंमें किया। गाँवकी सड़कें और घर साफ किये गये। लोगों की सहमतिसे उनके झोंपड़ोंमें जा-जाकर पहले उनके छोटे-छोटे आँगनोंको साफ किया गया। शिक्षकोंको ग्रामीणोंके साथ हिलमिल जाना था, उनके दुःख-दर्दका साथी बनना था और उन्हें — भारतके उस अज्ञात भागमें रहनेवाले लोगोंको जो कभी जनक और सीताकी भूमि था किन्तु जो आज मलेरिया और अन्धविश्वासोंसे जर्जर था — स्वास्थ्य और सुखका रास्ता दिखाना था। सभ्य संसारसे परे इस भीतिहरवा गाँवमें कस्तूरबाईको पता चला कि बहुत-सी स्त्रियोंके पास अपना तन ढकनेके लिए सिवाय एक फटी-पुरानी साड़ीके और कोई कपड़ा नहीं है। जब एक गरीब, किन्तु गरिमापूर्ण महिलाको नम्रतापूर्वक नित्य नहानेकी सलाह दी गई, तो उसने तेज पड़कर कहा — "पहले मेरे घरमें चलिए, और वहाँ देखिए कि मेरे पास बदलनेके लिए साड़ी है भी या नहीं, और उसके बाद कोई सलाह दीजिए। क्या किसी स्त्रीसे नग्न होकर नहाने की आप आशा रखती हैं?" इस विषयमें और कुछ कहा ही नहीं जा सकता था। जब मैंने इस दर्दनाक कहानीको सुना तो मैं लज्जा और दुःखमें डूब गया और मेरा हृदय रो उठा।

अब अधिक विवरण देनेकी आवश्यकता नहीं है। हरिजनोंके भावी शिक्षक इस ब्योरेको स्वयं सरलतासे पूरा कर सकते हैं।

भारतीय ग्रामोंका यही मेरा प्रथम सजीव अनुभव था; अतः गाँवकी पाठशालाओंमें यही मेरा प्रथम प्रयोग भी हुआ। उस समयसे अबतक पन्द्रह वर्ष बीत गये हैं। मेरा अनुभव तबसे बहुत-कुछ बढ़ गया है। इन वर्षोंमें मैंने सैकड़ों गाँव देखे हैं। मेरा विचार है कि १९१७ की अपेक्षा अब मैं उनकी आवश्यकताओंको कहीं अधिक अच्छी तरह समझ सकता हूँ। अतः हरिजनोंकी आदर्श पाठशालामें मैं दस्तकारी भी जोड़ना चाहता हूँ और उसका प्रारम्भ कातने तथा रुईकी अन्य क्रियाओंसे तो होगा ही। वयस्कों और प्रौढ़ों तथा बच्चोंके लिए भी रात्रि-पाठशालाएँ खुलवाना मैं पसन्द करूँगा। एकदमसे भारी सफलताकी मैं आशा नहीं करता और न आंधी-तूफानके समान कार्य किये जानेका ही प्रयत्न मैं करूँगा। इसके विपरीत, नम्रतापूर्वक और अपने उद्देश्यमें अनन्त श्रद्धा रखकर ही मैं काममें हाथ लगाऊँगा। बच्चों और माता-पिताओं पर शासन करनेका स्वप्न देखनेके पहले, मैं अपने ऊपर उन्हें शासन करने दूँगा। मैं अपनेको प्रेमपूर्वक उनका सेवक होनेके योग्य बनाऊँगा। और मनमें अटल विश्वास रखूँगा कि अन्तमें मैं उनपर नहीं, बल्कि उनके हृदयों पर शासन करूँगा। दो सहयोगी कार्यकर्ताओंके सामने, जिनमें एक हाईकोर्टके वकील हैं और दूसरी एक सुशिक्षित बहन हैं, मैंने इस योजनाका खाका खींच भी दिया है। दोनों ही जानना चाहते थे कि वे सेवा-कार्य तत्काल कैसे प्रारम्भ करें। मैंने उनको पूरे आधे-आधे घंटेका समय देकर

आदर्श शिक्षक बननेको आमन्त्रित किया। अब मैं इसी तरह प्रत्येक हरिजन-सेवकको, जिसे कार्यकी आवश्यकता हो, आमन्त्रित करता हूँ। मैं कोई वेतन नहीं देना चाहता, पर जो लोग गाँवोंका पता नहीं लगा सकते, उन्हें गाँव बता देनेका भार मैं अपने ऊपर लेता हूँ। प्रत्येकको अपना व्यय स्वयं उठाना पड़ेगा, और यदि वह अत्यन्त दरिद्र है, तो उसे अपने मित्रोंसे भिक्षा माँगनी होगी। शिक्षकको हरिजनोंके समान ही रहना होगा। अतः अधिक व्ययकी आवश्यकता ही नहीं होगी। हरिजनों द्वारा दिये गये किसी भी बरामदे या खुली जगहमें पाठशाला होगी। "जहाँ चाह वहाँ राह।"

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २५-३-१९३३

२११. औंध राज्य और अस्पृश्यता

औंध-निवासी प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् पण्डित सातवलेकरसे मैंने औंध राज्यके अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनसे सम्बन्धित तथ्य बतानेका अनुरोध किया था और उसके सम्बन्धमें मुझे अखबारोंमें भी खबरें देखनेको मिली थीं। पण्डित सातवलेकरके पत्रमें पिछले दस वर्षोंमें इस आन्दोलनकी प्रगतिका विवरण देते हुए यह भी बताया गया है कि सुधारकोंके मार्गमें कौन-कौन-सी कठिनाइयाँ हैं। नीचे उनके हिन्दी पत्रका (अंग्रेजी) अनुवाद संक्षिप्त रूपमें दे रहा हूँ:

> इस राज्यमें ७२ गाँव हैं। राजा प्रगतिशील विचारोंवाले एक ब्राह्मण हैं, और वे अस्पृश्यताको मिटाना चाहते हैं। दस साल पूर्व उन्होंने तथाकथित अस्पृश्योंको निम्नलिखित तीन शर्तें पूरी करनेके लिए आमन्त्रित किया, ताकि वे यह घोषणा कर सकें कि वे अन्य हिन्दुओंके बराबरीके दर्जेके हैं और उन्हें मन्दिर-प्रवेशका अधिकार है:
>
> १. मरे पशुओंका मांस खाना छोड़ना,
>
> २. जूठन खाना बन्द करना,
>
> ३. प्रतिदिन स्नान करना।
>
> इन सीधी-सादी शर्तोंकी घोषणा सभी गाँवोंमें की गई। मगर उसपर कोई उत्साहवर्धक प्रतिक्रिया नहीं हुई। प्रत्येक गाँवसे प्रायः यही उत्तर मिला:
>
> १. मरे हुए पशुओंका मांस खाना छोड़ना हमारे लिए कठिन है, क्योंकि वह हमें मुफ्तमें मिलता है। अगर हमें मरे पशुओंके मांसके बदले स्वच्छ मांस दिया जाये तो हम उसे छोड़ सकते हैं।
>
> २. जूठन खाना तो हम बड़ी खुशीसे छोड़ देंगे, लेकिन बदलेमें स्वच्छ भोजन तो दीजिए।
>
> ३. नहाने-धोनेके लिए काफी पानी नहीं मिलता।
>
> ४. मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें हम उदासीन हैं।

सो बातको वहीं छोड़ दिया गया। और तब अस्पृश्यता-उन्मूलनके जबर-दस्त हिमायती श्रीयुत वी० आर० शिन्दे आगे आये। वे उनके घरोंमें जा-जाकर उनसे मिले और उन्होंने उनसे राजा द्वारा रखे गये प्रस्तावका लाभ उठानेका अनुरोध किया। उन्होंने उनसे हरिजनोंके बीच बरती जानेवाली अस्पृश्यताको छोड़नेका भी अनुरोध किया। किन्तु, उन्होंने इसपर भी कान नहीं दिया।

इसके बाद मैंने गाँवकी सफाईका कार्यक्रम शुरू किया। हम प्रतिदिन सुबह गाते हुए प्रभात फेरीको निकलते और जो लोग सफाईके प्रति उदासीन थे उनके घरोंके आँगन और आसपासके हिस्से साफ करनेके लिए अपनी सेवाएँ उनके सामने प्रस्तुत करते थे। परिणाम किसी हदतक उत्साहवर्धक रहा। भंगीका काम करनेवालों के सामने हम साबुन और नहाने-धोनेकी अन्य सुविधाएँ हाजिर करते थे। लेकिन उनका कहना था कि उन्हें तो एक गन्दे पेशेसे अपनी जीविका कमानी है, इसलिए उनसे इस तरह साफ रहनेकी अपेक्षा रखना ज्यादती है।

फिर हमने भजनों, कथाओं और विशेष मेलोंका आयोजन करके प्रचार कार्य शुरू किया। हरिजनोंको धर्मग्रन्थोंसे परिचित करानेके लिए विशेष कक्षाएँ शुरू की गईं। दो-दो शिक्षकों — एक अस्पृश्य और एक स्पृश्य — को लेकर उन्हें पढ़ना, लिखना और हिसाब जोड़ना सिखानेके लिए पाठशालाएँ खोली गईं। कोई भी वयस्क-प्रौढ़ व्यक्ति तो उनमें पढ़ने नहीं आया, लेकिन बच्चे आये और अब भी आ रहे हैं।

आज क्या स्थिति है, उसका विवरण इस प्रकार है:

राज्यकी ओरसे चलाई जानेवाली पाठशालाओंमें सभीको पढ़नेकी सुविधा है और हरिजन लोग इस सुविधाका लाभ भी उठा रहे हैं। हरिजनोंको नहाकर मन्दिर जानेकी भी छूट है और वे इस तरह जाते भी हैं।

पिछले अक्तूबरमें एक स्वास्थ्य-दिवसका आयोजन किया गया था। हर हरिजन बस्तीमें स्वयंसेवक रखे गये और राजाने उदारतापूर्वक यह घोषणा की कि जिनके घर और उनके आसपासके हिस्से स्वच्छताकी कसौटीपर खरे उतरेंगे उन्हें पुरस्कार दिया जायेगा। निश्चित दिवसके केवल महीने-भर पहलेसे लग-जुट कर काम किया गया तो सब-कुछ आश्चर्यजनक रूपसे बदल गया। हर गली और हर हरिजन बस्ती सफाईका नमूना बन गई। सच तो यह है कि औंधके बहुत-से हरिजनोंके घर ब्राह्मणोंके घरोंसे भी साफ दिखने लगे। महाविभवने रानी साहिबाके साथ हर बस्तीका निरीक्षण किया और केवल औंधमें ही १०५ पुरस्कार दिये गये, जिनमें से आधे हरिजनोंने जीते। रानी साहिबाने हर हरिजनके घरमें जा-जाकर उनके घरेलू इस्तेमालके सामान और जरूरतोंके बारेमें पूछताछ की। हरिजन महिलाओंने अपने हाथोंसे उनके भालपर सौभाग्य-कुंकुम लगाकर उनको सम्मानित किया।

इससे आम तौरपर सारे राज्यमें जागृति आ गई। २६ अक्तूबरको भवानी मन्दिरमें पुरस्कार-वितरणके लिए एक सभाका आयोजन किया गया। उसमें बहुत-से स्पृश्य लोग भी शामिल हुए।

हरिजन लोग राजमहलमें बेरोक-टोक जा सकते हैं और रानी साहिबा तथा उनकी लड़कियाँ अकसर हरिजनोंके विवाहोत्सवोंमें शरीक होती हैं। राजा साहबने एक हरिजन चमारको उच्च वर्णके लोगोंकी एक बस्तीमें दुकान खोलनेकी इजाजत दी है। १४ जनवरीको, संक्रान्तिके शुभ दिनपर, रानी साहिबाने हरिजन महिलाओंको राजमहलमें निमन्त्रित किया और उन्हें संक्रान्तिका उपहार दिया। एक प्रसिद्ध मन्दिरमें एक हरिजन कथाकारने प्रवचन किया। उसमें बहुत-से सवर्ण हिन्दू भी आये थे।

इसलिए जहाँतक औंध राज्यका सम्बन्ध है, मैं कह सकता हूँ कि यहाँ अस्पृश्यताको मान्यता नहीं दी जाती। लेकिन हरिजनों या सवर्ण हिन्दुओंमें से किसीने भी इसका पूरा लाभ नहीं उठाया है। मैं अपना मतलब स्पष्ट कर दूँ। इस सुधारके विरोधियोंमें अधिकांश लोग ब्राह्मणेतर जातियोंके ही हैं। खुद मेरे छापेखानेमें छः हरिजन मजदूर हैं। इनमें से जो महार जातिका है वह अपनेको शेष पाँचोंसे, जो मांग जातिके हैं, श्रेष्ठ मानता है। जब वे सब मेरे घर खानेको बैठते हैं तो एक पंगतमें नहीं बैठते।

शहरोंमें तो अस्पृश्यता मिट रही है, लेकिन गाँवोंकी बात अब भी कठिन ही दिखाई देती है। इस प्रसंगमें मुझे फिर मरे ढोरोंका मांस खानेके चलनकी चर्चा करनी पड़ेगी। उसका नतीजा बहुत बुरा हुआ है। यह हरिजनों तथा सवर्णोंके बीच एक अभेद्य दीवारकी तरह खड़ा जान पड़ता है। इसके कारण अकसर झगड़े हुए हैं और कभी खून-खराबी भी हो सकती है। वजह यह है है कि हरिजन लोग गायों, भैंसों और बैलोंको जहर देते हिचकते नहीं हैं और इससे गरीब किसानोंकी बड़ी तबाही होती है। वे सोचने लगते हैं कि इन गो-हत्यारोंसे उनका सम्पर्क भला कैसे हो सकता है। पिछले साल चार महीनेके दौरान १२४ पशुओंको जहर देनेकी वारदातें हुई, जिससे इस अपराधको रोकनेके लिए कानून में विशेष धारा जोड़नी पड़ी।

मेरा अनुरोध है कि आप भावी कार्यके सम्बन्धमें हमारा मार्ग-दर्शन करनेकी कृपा करें।

औंध राज्यमें चल रहे अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनका यह एक सच्चा विवरण है, जिससे बहुत-कुछ जाना-सीखा जा सकता है। पण्डित सातवलेकर अजस्र उत्साहसे काम करते जानेवाले एक पुराने, मौन सुधारक हैं। वे संस्कृतके बहुत बड़े विद्वान् हैं और वेदोंके प्रचार-प्रसारको उन्होंने अपना जीवनोद्देश्य बनाया है। औंधके राजा बड़े उदारमना हैं और अपने राज्यसे अस्पृश्यताको मिटानेके लिए वे और रानी साहिबा बधाईके पात्र हैं। यद्यपि औंधमें परिस्थितियाँ बहुत अनुकूल रही हैं, फिर भी सुधारकी गति बहुत धीमी रही है। प्रगति तो डगमगाती हुई धीमे-धीमे ही होती है और, वह सुधारकके धैर्यकी कड़ी परीक्षा लेती है। पण्डित सातवलेकरने सुझाव देनेको कहा है। वहाँ सारा कार्य इतने सम्यक् ढंगसे किया गया है कि मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि श्रद्धाके साथ काममें लगे रहिए, सफलता निश्चय ही मिलेगी।

मुझे यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पशुओंको जहर देनेवाले हरिजनों पर मुझे तनिक भी क्रोध नहीं है, हमने जैसा बोया, अब वैसा ही काट रहे हैं। यह तो हो ही नहीं सकता कि हम समाजके किसी एक अंगकी उपेक्षा करें तो पूरे समाजकी क्षति न हो। हमने कर्मके महान् सिद्धान्तका सर्वथा गलत अर्थ लगाकर हरिजनोंको लगभग उनके भाग्यके भरोसे छोड़ दिया है। उन्हें हमने अपर्याप्त पारिश्रमिकपर हमारे लिए मेहनत-मशक्कत करनेकी स्थितिमें डाल दिया है। और यह जाननेकी कभी चिन्ता ही नहीं की कि वे कैसे रहते-सहते हैं। आश्चर्य यही है कि वे, जैसा वर्णन किया गया है, उससे भी ज्यादा बुरे क्यों नहीं हो गये हैं।

उनको मरे ढोरोंका मांस खानसे विमुख करनेका मैंने एकमात्र अचूक उपाय सुझाया है। सभी मरे ढोरोंको राज्यकी सम्पत्ति करार देना चाहिए और उनको ठिकाने लगानेकी सभी क्रियाएँ विश्वस्त अधिकारियोंकी देखरेखमें की जानी चाहिए। जो हरिजन उन पशुओंकी खाल उतारने और उनके शरीरोंके अलग-अलग हिस्सोंको निर्देशानुसार हटानेको खुशी-खुशी तैयार हों, उन्हें उचित मजदूरी दी जानी चाहिए। फिर न कोई झगड़ा होगा, न ढोरोंको जहर दिया जायेगा, और न कोई मरे ढोरोंका मांस ही खायेगा। मरे ढोरोंकी खाल और शरीरके दूसरे हिस्सोंसे होनेवाली सारी आमदनीको हरिजनोंके लाभके लिए खर्च किये जानेके लिए अलग रख देना चाहिए। इस प्रकार राज्यपर भी ऐसी शंका करनेकी गुंजाइश नहीं रह जायेगी कि वह लोगोंका शोषण करता है।

अधिक मार्ग-दर्शनके इच्छुक लोगोंको मेरा सुझाव यह है कि वे गत सप्ताहके 'हरिजन' में प्रकाशित मेरा लेख "मरे ढोरोंका निबटारा"[1] ध्यानसे पढ़ें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २५-३-१९३३

२१२. तार : जॉर्ज लैन्सबरीको

२५ मार्च, १९३३

सेवामें
परम माननीय लैंसबरी
बो, लन्दन

मेरी समवेदना।[2]

गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग-४, पृ० २०१

१. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा", १२-३-१९३३।
२. लैन्सबरीकी पत्नीके निधनपर।

२१३. पत्र : बर्नार्डको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय बर्नार्ड,

अगर मैंने अपना हस्ताक्षर 'मो० क० गांधी' किया है तो मेरा खयाल है, निश्चय ही इस बातसे रौब खाकर किया गया होगा कि अब तो तुम जल्दी ही वकालत शुरू करने जा रहे हो।[1] जबतक तुम एक कतैया और बुनकर, बोतलोंकी सफाई करनेवाले और दरबान बने रहते हो तबतक तो मैं अपनेको तुम्हारा 'बापू' कहनेकी जुर्रत कर सकता हूँ, लेकिन गाउन धारण करके वकालत करनेवाला वकील तो कुछ और ही चीज हो जाता है। मुझे इस बातकी खुशी है कि अगर सभी वकीलोंका नहीं तो, कमसे-कम तुम्हारा सौभाग्य उत्पादकोंके सौभाग्यसे जुड़ा हुआ है। उनके बीच झगड़े भड़काकर और फिर आपसमें समझौता करानेका स्वांग रचकर तुम शौकसे उनके उत्पादनमें से एक समुचित अंशके भागीदार बनो। तुम उनके झगड़ों और गरीबीपर फूलो-फलो, इससे अच्छा तो यही है कि केवल उनके झगड़ोंपर फूलो-फलो।

फ्लोरेंसके[2] बारेमें तो तुमने बुरी खबर दी। अब समझ गया कि क्या कारण है कि उसने इधर कोई पत्र नहीं लिखा है। तो तुम पतिके रूपमें अपनी पहली परीक्षामें विफल हो गये हो। आशा करनी चाहिए कि अगली बार विफल न होगे और बेचारी फ्लोरेंसको एक मच्छरदानी देनेमें आना-कानी नहीं करोगे।

उन्हें डाकुओंने मार डाला — यह कैसी दारुण बात है। डॉ० विष्णुराम[3] कहाँ और कैसे मारे गये और उनकी हत्याका कारण क्या था?

मैं तो इस विषयमें तुम्हारी तरह आश्वस्त नहीं हूँ कि अगर तुम्हारा कर्ज चुक गया तो तुम खुशी-खुशी मर सकोगे। कारण, मेरी निश्चित मान्यता है कि एक कर्जके उतरते ही दूसरा सिरपर चढ़ जायेगा, क्योंकि क्या अन्तहीन कर्तव्योंका ही दूसरा नाम जीवन नहीं है? और मुझे पूरा विश्वास है कि तुम उन कर्तव्योंके समुचित निर्वाहके लिए जीना चाहोगे; हाँ, अगर तुम मेरी तरह, जैसा कि मेरे-कुछ आलोचक कहेंगे, 'आमरण अनशन' का शौक लगा लो, तो दूसरी बात है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७०६) से।

१. गांधीजी ने बर्नार्डको लिखे अपने पत्रमें मो० क० गांधी हस्ताक्षर किये थे, जिसपर उन्होंने गांधीजी से शिकायत की थी।

२. बर्नार्डकी पत्नी, जो इन दिनों ज्वरसे पीड़ित थीं।

३. फ्लोरेंसके 'अंकल'।

२१४. पत्र : सत्येन्द्रनाथ गांगुलीको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरी दृष्टिमें तो ईश्वर और सत्य दोनों एक ही हैं, और ईश्वरको हम जितने भी नामोंसे जानते हैं, उनमें से सत्य ही मुझे सदैव उसका सबसे उपयुक्त नाम प्रतीत हुआ है। और मेरे लिए निस्स्वार्थ सेवा ही ध्यान और समाधि है, जबकि तथाकथित समाधि एक प्रकारका भोग हो सकती है। मेरे लिए ईश्वर निराकार है और इसलिए ईश्वरकी मेरी कल्पनामें उसका कोई आकार नहीं है। अगर आप मेरी बातोंको ध्यानमें रखकर 'भगवद्गीता' का अध्ययन करें और उसकी मैंने जो व्याख्या आपके सामने प्रस्तुत करनेकी कोशिश की है उसके अनुसार आचरण करें, तो मेरा खयाल है कि मैं जो-कुछ कह रहा हूँ, उसके मर्मको आप समझ जायेंगे।

भारतमें तो कभी और कहीं भी शुद्ध जैतूनका तेल आपको शायद ही मिले। मुझे बताया गया है कि कश्मीरमें जैतूनके पेड़ हैं और वहाँ उसका तेल पेरा जाता है। मैंने कभी देखा नहीं है। जैतूनका तेल आम तौरपर दवा-फरोशोंके यहाँ मिलता है। मगर वह अकसर साल-साल भर पुराना होता है — छः महीनेसे कम पुराना तो कभी नहीं। इसलिए मैं अब ऐसा नहीं मानता कि वह दूधका विकल्प हो सकता है। सो आप स्वतन्त्र आहारके रूपमें जैतूनके तेलका खयाल अपने मनसे निकाल दें तो हर्ज नहीं। चिकित्सकोंका कहना है कि ताजा तिलका तेल, जो हमें भारतमें खूब मिल सकता है, जैतूनके तेलका अच्छा विकल्प है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सत्येन्द्रनाथ गांगुली
डाकघर – जमालपुर
मैमनसिंह

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०७) से।

२१५. पत्र : अब्दुर्रहीमको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय प्रोफेसर,

आपके इसी १४ तारीखके पत्रके लिए धन्यवाद। मैं आपकी यह बात पूरी तरह मानता हूँ कि सही चीज तो यह है कि स्पृश्यों और अस्पृश्योंका भेद बिलकुल मिटा देना चाहिए और दोनोंके लिए सामान्य नाम 'हिन्दू' का ही प्रयोग करना चाहिए। लेकिन जबतक अस्पृश्योंको स्पृश्योंसे अलग दिखाना है तबतक तो निश्चय ही बेहतर यही है कि अस्पृश्योंके लिए किसी बुरा लगनेवाले नामके बजाय ऐसे नामका प्रयोग किया जाये जिसमें बुरा लगनेकी कोई बात न हो। अपने कर्तव्यकी ओरसे विमुख या असंस्कृत पुत्र अपनी माँको 'बापकी पत्नी' कहकर पुकार सकता है, किन्तु कर्तव्यनिष्ठ और सुसंस्कृत पुत्र तो उसे आदरपूर्वक 'माँ' ही कहेगा।

मन्दिर-प्रवेशपर जरूरतसे ज्यादा जोर दिये जानेकी बातके सम्बन्धमें मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। लेकिन फिर आप मेरी इस बातसे सहमत होनेमें कोई हर्ज नहीं समझेंगे कि अगर अस्पृश्योंको हिन्दू समाजका अभिन्न अंग और सवर्ण हिन्दुओंको बराबरीका साझेदार बनना है तो उनके लिए मन्दिर-प्रवेश आवश्यक है।

अब आपके तीसरे प्रश्नके बारेमें। यों तो गैर-हिन्दुओं द्वारा जितनी भी सहायता मिले, सब स्वागत करने योग्य होगी, लेकिन प्रायश्चित्त तो उन्हींको करना है जिन्होंने पाप किया है। हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशका पवित्र अधिकार उन्हीं लोगोंको देना है जिन्होंने उनसे उसे छीना है, किन्तु निश्चय ही मैं यह बात बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि धर्मकी स्वभाविक सीमा कहाँतक है। मैं इसमें किसी तरहके राजनीतिक मतभेद या राजनीतिक शोषणके प्रश्नको बिलकुल नहीं उठने दूंगा। मेरे लिए यह विशुद्ध रूपसे एक नैतिक और धार्मिक प्रश्न ही है।

हृदयसे आपका,

प्रो० अब्दुर्रहीम
डेल्टा हाउस, ७७/६०, बॉडेल रोड
बालीगंज, कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०३) से।

२१६. पत्र: अमृतलाल वि० ठक्करको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुम्हारे कई पत्र मिले — सब आज ही। पंजाबमें विभिन्न संगठनोंसे तुम्हें जो उत्तर मिलें उन्हें मैं जानना चाहूँगा। पहले चाहे जो हुआ हो, हमें 'पंजाब एलिएनेशन अधिनियम'के सम्बन्धमें चुप नहीं बैठना है। लेकिन सबसे पहले तो हमें उसका पूरा पाठ मिलना चाहिए।

जहाँतक कोषकी रकम खर्च करनेका प्रश्न है, मैं यह चाहता हूँ कि 'हरिजन'में इसके सम्बन्धमें चर्चा चलाऊँ और उसके बाद ही कोई निश्चित नीति तैयार की जाये। अगले रविवारके गुजराती संस्करणमें मेरा लेख[1] देखोगे और आशा करता हूँ कि अंग्रेजी संस्करणके लिए भी कुछ लिखूँगा।[2]

यरवडा-समझौतेको लेकर बंगालमें शुरू हुए विवादके बारेमें मेरा अपना विचार यह है कि सतीश बाबूने चुनौती देकर जल्दबाजी की। उनको मैंने इस आशयका पत्र[3] भी लिख दिया है। 'हरिजन' में उनका तार लापरवाहीके कारण छप गया। शास्त्रीको तार मुझको दिखानेका समय ही नहीं मिला, और जैसा कि उसे जल्दी ही पता चल गया, अपने विवेकका प्रयोग उसने समझदारीसे नहीं किया। मैंने सीधे सतीश बाबूको पत्र लिखकर अपना विचार बताया। ब्रिटिश भारतीय संघको भेजा मेरा उत्तर[4] तो आपने देखा ही होगा। उसकी एक नकल श्रीयुत घनश्यामदासको भेजी है। जब हमसे अपना विचार देनेको कहा जाये तो हमें लाग-लपेटसे काम नहीं लेना चाहिए, लेकिन जबतक विरोधी हमें सम्बोधित न करे तबतक उस ओर ध्यान देनेकी जरूरत भी नहीं है। यह समझौता गम्भीरतापूर्वक किया गया है और सभी पक्षोंकी सहमति लिये बिना इसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

जहाँतक तुम्हारी पुस्तिकाओंका सम्बन्ध है, बेशक उनमें से सभीका विज्ञापन 'हरिजन' में किया जा सकता है। तो तुम एक वर्णनात्मक विज्ञापन भेज दो।

साथमें डॉ० गोपीचन्दका लिखा एक रोचक पत्र[5] भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

संलग्न: १

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११७) से।

१. देखिए "प्रचार बनाम रचना", २६-३-१९३३।
२. देखिए "प्रचार बनाम रचना", १-४-१९३३।
३. देखिए "पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको", १८-३-१९३३।
४. देखिए "पत्र: ब्रिटिश भारतीय संघको", ९-३-१९३३।
५. यह उपलब्ध नहीं है।

२१७. पत्र : टी० टाइटसको

२५ मार्च, १९३३

प्रिय टाइटस,[1]

मैं चाहता हूँ कि आश्रममें लोग बिना उबाले दूधका ही उपयोग करें, इसलिए इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि स्वच्छतामें जरा भी कसर न रहने पाये और दूधको खुली हालतमें यथासम्भव कमसे-कम समयतक रहने दिया जाये। इसलिए निम्नलिखित प्रश्न पूछ रहा हूँ :

१. क्या सभी गायें नीरोग हैं ?

२. उनके थनों और ऐनोंमें किसी तरहके फोड़े-फटन तो नहीं हैं न ?

३. उन्हें दोहनेसे पहले क्या ऐनोंको गरम पानीसे भली-भाँति धो दिया जाता है ?

४. क्या दोहनेवालोंके हाथ कुहनियोंतक अच्छी तरहसे धुले होते हैं ?

५. क्या बरतनोंको इस तरह साफ कर दिया जाता है जिससे उनमें कीटाणु न रहें ?

६. क्या छन्नियोंको भी इसी तरह साफ कर दिया जाता है ?

७. क्या दूधको तुरन्त दूध रखनेके ऐसे टिनोंमें डाल दिया जाता है जिन्हें इस प्रकार साफ कर लिया गया हो कि उनमें कीटाणु न रहने पायें और जिनमें ऐसे ढक्कन लगे हों जिनसे होकर हवा भी न जा सके ?

८. सुबह और शाम किस समय दोहन होता है ?

९. क्या आपके यहाँ, जैसा मैंने बंगलोर दुग्धशालामें देखा था, उस तरहका दोहनका कोई खास स्थान है, और अगर है तो क्या वह अच्छा, और जहाँ हवा और रोशनी काफी आती हो, ऐसा है ?

१०. क्या गोशाला पूरी तरह साफ-सुथरी रखी जाती है ?

११. क्या आप सारे गोबर और मूत्रको बचाकर खादके लिए उनका उपयोग करते हैं ?

१२. प्रत्येक गाय प्रतिदिन औसतन कितना दूध देती है ?

१३. प्रतिदिन कुल कितना दूध होता है और उसमें से कितना बेचा जाता है ?

१४. क्या बछड़ोंको उनके हिस्सेका दूध पीने दिया जाता है ?

१५. आश्रमकी सबसे ज्यादा दूध देनेवाली गाय २४ घंटेमें कितना दूध देती है, और सबसे कम देनेवाली कितना ?

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७०४) से।

१. आश्रम दुग्धशालाके प्रबन्धक

२१८. पत्र : नारणदास गांधीको

२५ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ मैं तुम्हें वे पत्र भेज रहा हूँ जो . . . ने[1] . . . को[2] लिखे थे और जो हमारे हाथ आ गये हैं। ये सब एक ही लिफाफेमें एक ही दिन आये थे। तुम उन्हें देखना चाहो तो देखना। . . . के[3] देखनेके लिए भेज रहा हूँ। वह देख ले, उसके बाद उन्हें . . . को[4] भेज देना। उनकी नकलें मैंने अपने पास रख ली हैं। मैं उन्हें . . . को भज देनेके लिए बँधा हुआ हूँ। इसीलिए उन्हें उसे भेज देना हमारा धर्म है। इन पत्रोंपर उसका अधिकार है, ऐसी बात नहीं है। केवल मेरे वचन-पालनकी बात है।

इस घटनासे मुझे जो घाव लगा है वह अभी सूखा नहीं है। लेकिन ऐसा भी नहीं है कि मैं उसीकी बात सोचता रहता हूँ। मनन तो इस समय अस्पृश्यता-निवारणके सिवा किसी और विषयका हो ही नहीं सकता। यह ऐसा प्रश्न है जिसे सोचते हुए मैं अपने सब दुःखोंको भूल सकता हूँ। लेकिन जब भी . . . के किस्सेका विचार करना जरूरी हो जाता है मेरा घाव ताजा हो जाता है और मुझे याद आ जाता है कि अभी वह मिटा नहीं है।

. . . ऐसे पत्र लिखते रहनेके बावजूद कहता है कि उसके मनमें . . . से विवाह करनेका कोई विचार नहीं था; उसका उद्देश्य . . . की विवाह करनेकी इच्छाका निवारण करना था। पत्रोंसे तो उलटी ही बात सिद्ध होती है, इसे वह स्वीकार करता है; और कहता है कि अपने भावी आचरणसे वह अपनी बात सिद्ध करेगा। मेरा विश्वास तो फिलहाल उसपर नहीं रहा, और यही बात मुझे सबसे ज्यादा दुःख दे रही है।

अब मैंने . . .से कहा है कि तबीयत ठीक होते ही वह तुरन्त आश्रम पहुँचे और आश्रमके नियमोंका सूक्ष्मतासे पालन करे। आजतक वह जिन रियायतोंका लाभ लेता रहा है उनका लाभ तनिक भी न ले और नियमोंके पालनमें सबसे आगे निकलनेका प्रयत्न करे। उसने ऐसा करनेका वचन दिया है। यदि वह अब वैसा नहीं करता है तो आश्रममें नहीं रह सकता। इस चीजपर निगाह रखनेमें तो तुम समर्थ हो ही। तो इसपर निगाह रखना। उसे तुम्हें जो ठीक लगे सो काम सौंपना। वह आश्रमके भोजनालयमें ही खाये और किसी लड़कीसे किसी प्रकारका सम्बन्ध न रखे।

यह तो मेरा अपना मत हुआ। . . . अपने व्यवहारसे आश्रममें रहनेके अयोग्य सिद्ध हुआ है। किन्तु उसकी शुद्धि और परीक्षा आश्रमके बाहर नहीं हो सकती।

१, २, ३ और ४. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

वह इसके लिए अवसर चाहता है। अतः मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि उसे अवसर दिया जाये। किन्तु हो सकता है, तुम्हारा और अन्य सबका इस सम्बन्धमें भिन्न मत हो। इसमें . . . की[1] इच्छाका आदर करना मैं धर्म समझता हूँ। उसका ऐसा खयाल है कि . . .को आश्रममें रखनेमें भय है तो वह आश्रममें कदापि नहीं रह सकता। . . .का यह खयाल हो तो उससे मुझे कोई दुःख नहीं होगा। किन्तु वह मेरे विचारसे सहमत हो तो भी मण्डलकी राय अवश्य लेना। और यदि सब मेरी रायको धार्मिक दृष्टिसे सही मानें तो उसे आश्रममें रखना। . . .के[2] साथ पूरी बात हुई है। . . .ने कहा है कि वह . . .को अपने साथ ही ले जायेगा और आश्रम पहुँचेगा। वह बीमार हो तो भी वह उसे अन्यत्र कहीं नहीं ले जाना चाहता। वह मानता है कि आश्रममें जो इलाज किया जा सकता है उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिए। कहनेकी जरूरत नहीं कि मुझे यह विचार पसन्द है। आश्रमने गरीबीसे रहनेका व्रत अपनाया है, उसकी शोभाकी रक्षा इसी तरह हो सकती है। इसलिए मेरी ओरसे इस बातमें . . .को[3] पूरा प्रोत्साहन मिलेगा। किन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि . . . और . . . दोनों आश्रममें रहेंगे। . . . को[4] इसमें कोई आपत्ति नहीं है। मैं भी इसमें डरका कोई कारण नहीं देखता। . . . दुबारा भूल नहीं करेगा, ऐसा मैं मानता हूँ। और इसके सिवा, अब तो सब लोग सावधान भी रहेंगे न?

इस घटनासे सब लड़के और लड़कियाँ सावधान हो जायें। बड़े भी सावधान हो जायें। यदि कोई किसीके प्रति विकारका भाव रखता हो अथवा किसी प्रकारका गुप्त सम्बन्ध रखता हो तो तुम्हें या तो कहकर बता दे या लिखकर सूचित कर दे। हम सबके पत्रोंकी गोपनीयताकी रक्षा करते हैं। किन्तु आश्रम-धर्मके निर्वाहके लिए मैं यह बात बहुत जरूरी मानता हूँ कि कोई किसीसे भी किसी प्रकारका गुप्त व्यवहार न रखे। मैं तो वर्षोंसे यह अनुभव करता आया हूँ कि गुप्त व्यवहार पवित्रताका विरोधी है। . . . को[5] तो तुमने इस विषयसे सम्बन्धित मेरे सारे पत्र दिखाये ही होंगे। किन्तु मैं चाहता हूँ कि उन्हें दूसरे बड़े लोग भी अवश्य पढ़ लें।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१, २, ३, ४ और ५. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

२१९. टिप्पणियाँ

स्वामीनारायण सम्प्रदाय और जैनोंमें अस्पृश्यता

एक भाई लिखते हैं:[1]

मुझे इस बातकी जानकारी नहीं थी। स्वामीनारायण सम्प्रदायमें अस्पृश्यता नहीं है, मेरी यह मान्यता बचपनसे ही चली आ रही है क्योंकि पिछले बहुत वर्षोंसे गांधी-परिवारका इस सम्प्रदायके अनुयायियोंसे निकटका सम्बन्ध रहा है। किन्तु मैं इस सम्प्रदायका बहुत ही थोड़ा साहित्य देख पाया हूँ। और जैनोंमें तो नामको भी अस्पृश्यता नहीं होनी चाहिए, यह मैंने जैन-साहित्य तथा जैन-मित्रोंके परिचयसे जाना था। किन्तु जैनोंको भी बुरी तरहसे अस्पृश्यताकी छूत लगी हुई है। कविश्री राजचन्द्र कहा करते थे कि जैन मतका प्रसार मुख्यतः वणिक वर्गमें हुआ है अतः जिनमें उत्कृष्ट वीरता होनी चाहिए थी उनमें भीरुता घर कर गई और जिनमें उत्तम ज्ञान होना चाहिए था उनमें शुष्कता आ गई तथा ज्ञानहीन तपका कोई प्रभाव ही नहीं रह गया। जैनोंसे मेरा अच्छा परिचय होनेके कारण इस आरोपमें जो सत्य है, उसका मैं साक्षी हूँ और इसका मुझे हमेशा दुःख रहा है। जैनोंने अहिंसा धर्मपर अपना एकाधिपत्य माना है किन्तु उसका सच्चा स्वरूप सर्वथा ढक गया है। मनुष्येतर प्राणियोंके प्रति दयाने भी गलत रूप ले लिया है और बहुत-से जैन उसपर जबरदस्ती अमल कराते हुए हिचकिचाते नहीं। यदि जैनोंमें अपने शुद्ध रूपमें अहिंसा जीवित होती तो अस्पृश्यता उनमें नामको भी न होती और जैन-मात्र प्रेमकी मूर्ति नजर आता तथा उन्हींमें से ढेरों कार्यकर्ता और कार्यकर्त्रियाँ निकल आते।

ढेढ़ और भंगी

हरिजनोंमें साक्षरताका प्रचार करनेवाले शिक्षकको किन मुश्किलोंका सामना करना पड़ता है, उसे कितनी सावधानीसे काम लेना पड़ता है और उसे किस प्रकार बालकोंके साथ घुल-मिल जाना चाहिए, यह बतानेके लिए मैं नीचे एक हरिजन शिक्षकका पत्र दे रहा हूँ:[2]

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २६-३-१९३३

१. अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकका कहना था कि सामान्यतः मोचियोंको अछूत माना जाता है किन्तु फिर भी स्वामीनारायण सम्प्रदायने उन्हें अपनाया और मन्दिरोंमें जानेकी छूट दी। इसके अतिरिक्त जैनोंमें एक अन्त्यज साधु हुए हैं जिसका नाम मेहतारज मुनि था और जो अपने समयमें बहुत प्रसिद्ध थे।

२. अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने इसमें बताया था कि ढेढ़ लोग भंगियोंको अपनेसे नीचा मानते हैं। भंगी अपने बच्चोंको ढेढ़ बच्चोंके साथ पढ़ानेको तैयार थे किन्तु बुजुर्ग ढेढ़ोंने अपने बच्चोंके साथ भंगियोंके बच्चोंको पढ़ानेका विरोध किया जिससे भंगियोंके बच्चोंके लिए अलगसे कक्षाएँ चलानेकी व्यवस्था करनी पड़ी।

२२०. पत्र-लेखकोंको उत्तर

अटल नियम[1]

ऐसा लगता है कि आप बहुत अधीर हो उठे हैं। मैंने जातपाँत और वर्ण-धर्ममें स्पष्ट भेद किया है। इस वातपर आप बार-बार ध्यान दें। अस्पृश्यता बहुत सारी जातियों और उपजातियोंके कारण है। जब छुआछूत मिट जायेगी तो जातियोंकी आपसी अस्पृश्यता भी अवश्य मिट जायेगी; और इसके साथ-साथ उपजातियाँ भी समाप्त हो जायेंगी। किन्तु वर्णाश्रम धर्ममें तो अस्पृश्यताका नाम-निशान भी नहीं है अर्थात् वर्णाश्रम धर्मका मैं जो अर्थ करता हूँ उसमें। यह तो भौतिक नियमोंकी भाँति आध्यात्मिक नियम है और निरपवाद नियम है। हम इसे स्वीकार करें या न करें फिर भी इस नियमका पालन होता रहेगा। पानी ऑक्सीजन और हाइड्रोजनका मिश्रण है, यह जानकर एक व्यक्ति बैठ रहेगा; दूसरा व्यक्ति पानीके गुण और शक्तिकी खोज करेगा तथा नाना प्रकारसे उसका उपयोग करेगा। रेलके इंजन आदिकी खोज करनेवाला ऐसा ही शोधक था। यही बात वर्णाश्रम धर्मके नियमोंके रहस्यको जाननेवालेके बारेमें लागू होती है। यह कहते हुए मैं कभी नहीं थकता कि वर्णाश्रम धर्मकी मेरी कल्पनामें ऊँच-नीचका भाव ही नहीं है। तो फिर अलगसे यह माँग करनेकी क्या जरूरत है कि उसमें से ऊँच-नीचका भाव निकालो। डॉ० अम्बेडकरको सवर्ण हिन्दुओं पर नाराज होनेका अधिकार है, क्योंकि सवर्ण हिन्दुओंको जितनी सीधी-सच्ची बात करनी चाहिए वैसी वे नहीं करते। किन्तु आपको तो यह समझना चाहिए कि वर्णाश्रम धर्मके विरुद्ध लड़ाई छेड़ना तो अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनको नुकसान पहुँचानेके समान है।

आज एक ही वर्ण है[2]

यदि हम आज वर्णके अनुसार सभी हिन्दुओंका वर्गीकरण करना चाहें तो शूद्र-वर्णके अतिरिक्त अन्य कोई वर्ण नहीं है। और इस वस्तुस्थितिको स्वीकार कर लेना हिन्दू जातिके लिए श्रेयस्कर है। यदि हम इतना मान लें तो उच्च-नीच वर्णका भेद

१. पत्र-लेखकने पूछा था कि क्या डॉ० अम्बेडकरके विचारोंसे अन्य हरिजन सहमत नहीं होंगे? जब कि वास्तवमें इनकी आन्तरिक इच्छा यही होगी कि जात-पाँत और वर्ण-व्यवस्था आदि सबका नाश हो जानेपर ही उनकी गुलामी मिटेगी। क्या आपका भी अन्तिम लक्ष्य यही नहीं है कि सभी प्रकारकी असमानता मिट जाये और ऊँच-नीचकी भावना न रहे?

२. एक अन्य सहयोगी कार्यकर्ताने पूछा था कि आप वर्णाश्रम धर्मको बनाये रखना चाहते हैं तो फिर यह कैसे कह सकते हैं कि हम सभी एक ही शूद्र-वर्णके हैं? और फिर, आज तो हम शूद्र कहलाने लायक भी नहीं हैं।

अपने-आप मिट जायेगा। ऐसा नहीं कि इसके बाद कोई ब्रह्मविद्या या अन्य विद्या प्राप्त करनेका प्रयत्न नहीं करेगा बल्कि इतना तो सही ही है कि सभी अपने परिश्रमसे और शारीरिक श्रम करके अपनी रोटी कमायेंगे तथा अपनी अन्य शक्तियोंका उपयोग जन-समाजकी सेवाके लिए करेंगे। यह ठीक है कि हमने इस प्रकारके वर्णाश्रम धर्मका पालन होते हुए नहीं देखा है। किन्तु मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हिन्दू धर्ममें जिसे सत्ययुग कहा गया है उसमें इसपर अवश्य आचरण किया गया होगा।

केवल मन्दिर-प्रवेशसे क्या होगा?[1]

मैंने तो इस बातको कभी स्वीकार ही नहीं किया कि केवल मन्दिर-प्रवेशसे अस्पृश्यताका प्रश्न हल हो जायेगा किन्तु मैं यह अवश्य मानता हूँ कि हरिजनोंको जबतक सवर्ण हिन्दुओंकी तरह मन्दिरोंमें प्रवेश करनेकी छूट नहीं मिल जाती तबतक छुआछूत कदापि नहीं मिट सकती। और मैं यह भी मानता हूँ कि मन्दिरोंके द्वार खुल जानेके बाद आर्थिक और शिक्षाके साधन उन्हें सहज ही प्राप्त हो जायेंगे। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि एक अत्यन्त शिक्षित और अच्छा कमानेवाला हरिजन भी एक सनातनी हिन्दूके घरमें नहीं घुस सकता। उसकी अस्पृश्यता तो उससे चिपटी ही हुई है। किन्तु उसके लिए मन्दिरोंके खुलते ही अर्थात् धार्मिक एकता मिलते ही उसकी अस्पृश्यता मिट जायेगी। मैंने यह कभी नहीं कहा कि मन्दिर-प्रवेशके पहले कोई रचनात्मक कार्य हो ही नहीं सकता, बल्कि रचनात्मक कार्य ही अस्पृश्यता-निवारण संघोंका मुख्य कार्यक्रम है।

प्रतिज्ञा-पालनका मामला[2]

आप तो भटक गये हैं। सत्यके मार्गपर चलनेवाला क्या परिणामकी चिन्ता करता है? यरवडा-समझौतेके बाद २५ सितम्बरको हुई सभाके प्रस्तावमें हिन्दुओं द्वारा ली गई प्रतिज्ञामें निश्चय ही मन्दिर-प्रवेशका भी उल्लेख है। अन्त्यजोंको भी मन्दिरमें प्रवेश करनेका अधिकार है, फिर भले पूरा समाज उसका विरोध क्यों न करे। किन्तु हमें प्रतिज्ञाके पालनका प्रयत्न करना चाहिए। सत्यार्थीके लिए यह बात दिनके प्रकाशकी भाँति स्पष्ट होनी चाहिए। समाजका विरोध क्षणिक है क्योंकि हमने कहीं जबरदस्ती प्रवेश नहीं किया। अपनी जानकी बाजी लगाकर हमें कर्तव्यका पालन करना है। ऐसी स्थितिमें विरोध कहाँतक टिकेगा?

१. हरिजनोद्धार मण्डलके एक बैरिस्टर अध्यक्षका तर्क था कि सभी समस्याओंका हल मन्दिर-प्रवेश नहीं है तथा हरिजनोंके लिए सबसे पहले शिक्षा और आर्थिक उन्नतिके साधनोंकी व्यवस्था की जानी चाहिए।

२. सनातनियों द्वारा अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके विरोधसे ऊबकर एक अन्य कार्यकर्ताने सुझाव दिया था कि फिलहाल इसे छोड़कर हमें कोई अन्य कार्यक्रम हाथमें लेना चाहिए ताकि सनातनियोंका क्रोध कुछ ठंडा पड़ जाये। इसके अतिरिक्त उसने यह भी जानना चाहा था कि मन्दिर-प्रवेशमें ऐसा क्या है जिसके लिए आप असहयोग-जैसे आन्दोलनको ताकपर रखकर एक विवादास्पद कदम उठा रहे हैं।

उक्त प्रस्तावमें की गई प्रतिज्ञामें कानून बनानेकी माँग करनेका भी उल्लेख है। इस प्रस्तावके द्वारा हिन्दू जातिने वचन दिया है कि जहाँतक हमारी चलेगी वहाँ-तक हम वर्तमान विधानसभाओं द्वारा इतना तो करा ही देंगे। और यदि हम इसमें सफल न हुए तो फिर स्वराज्य कालकी विधानसभाका पहला काम यही होगा। क्या इससे अधिक स्पष्ट प्रतिज्ञा और कोई हो सकती है? मुझे इस बातका आश्चर्य है कि आप यह नहीं देखते कि सहयोग माँगने और सहयोग देने, इन दोनोंमें बहुत अन्तर है। यदि मैं आपको व्यभिचारके अड्डेपर ले जाना चाहूँ तो आप उसमें मुझे सहयोग नहीं देंगे। तो क्या इसका यह मतलब है कि यदि मैं आपको पूजा-गृह ले जाना चाहूँ तो आप मेरा सहयोग नहीं लेंगे और न माँगेंगे? अतः इस बिलके लिए लोगोंका सहयोग माँगना हमारा कर्तव्य था और आज भी है।

एक ही वृक्षकी शाखाएँ[1]

एक ही वृक्षकी शाखाएँ, पत्ते और फल अलग होनेके बावजूद एक-दूसरेके लिए अस्पृश्य नहीं हैं बल्कि वे एक-दूसरेसे एकाकार होकर रहते हैं। मानव-जातिको भी इसी प्रकार रहना होगा। यदि हम किसी शाखाको अस्पृश्य मानकर काटकर फेंक दें तो वह सूख जाती है और उस हदतक वृक्ष कमजोर हो जाता है। यही हिन्दू समाजके बारेमें भी हुआ है।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २६-३-१९३३

२२१. स्त्रियोंका धर्म

ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों अनुभव होता जाता है कि हरिजन-सेवाके कार्यमें स्त्रियोंको बहुत बड़ा योग देना पड़ेगा। समस्त संसारका अनुभव है कि धर्मकी सच्ची रक्षा स्त्री-जातिके ही हाथों होती है। कारण यह है कि स्त्रियोंके स्वभावमें ही संग्रह-भावना होती है। स्त्री जिस प्रकार मिथ्या विश्वासोंका संग्रह करती है, वैसे ही व्रतोंका भी करती है। सहन-शक्ति और धैर्यके बिना धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती। स्त्री सहन-शक्ति और धैर्यकी साक्षात् मूर्ति है। श्रद्धाके बिना एक क्षणके लिए भी धर्मका निभाव नहीं हो सकता। स्त्रीकी श्रद्धाके साथ पुरुषकी श्रद्धाकी कोई तुलना नहीं हो सकती। सही बात तो भाषाशास्त्री ही जानें किन्तु संस्कृत तथा संस्कृत से उत्पन्न देशी भाषाओंमें बहुत-से गुणवाचक नाम 'स्त्रीलिंग'के ही दिखाई देते हैं। श्री, स्मृति, मेधा, धृति, क्षमा, अहिंसा, पवित्रता, शान्ति, दया, नम्रता इत्यादि नाम स्त्रीलिंग हैं। इनमें से अधिकांश गुण सर्वत्र प्रायः स्त्रियोंमें ही अधिक पाये जाते हैं। हाँ, मैं ऐसे महात्माओंको जानता हूँ जो यह कहकर बातको उड़ा देना चाहते हैं कि स्त्री निरक्षर है अतः इन गुणोंका उसमें आभास-मात्र ही है। किन्तु समस्त विश्वका

१. एक पत्र-लेखकने अस्पृश्यता-आन्दोलनको बेरी और आमके वृक्षको एक करने-जैसा निरर्थक प्रयास बताया था।

अनुभव कुल मिलाकर मेरे उपर्युक्त कथनका समर्थन करता है। इन गुणोंका अक्षर-ज्ञानके साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। इनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो धर्मके साथ है। धर्मकी रक्षा यदि पढ़े-लिखे ही कर सकते होते तो धर्मका लोप कभीका हो गया होता। मुद्रण-कलाका आविष्कार हुए अभी बहुत शताब्दियाँ नहीं हुई हैं, परन्तु धर्म तो अनादि कालसे चला आता है। जगत्के महान धर्म-प्रचारक अपनी साक्षरताके कारण प्रसिद्ध नहीं हुए। इन धर्म-प्रचारकोंके अनुयायियोंने तो अभिमानके साथ कहा है कि उनका अक्षरज्ञान तो एक प्रकारसे नहीं के बराबर था। उन्हें जो बुद्धि मिली थी वह ईश्वरदत्त थी। उनकी वाणीमें जो संस्कार दीखता है वह उनके पुस्तकीय ज्ञानका नहीं किन्तु उनके तपोबल और सत्यपरायणताका सुफल था।

यह सब सत्य हो या असत्य, मेरा तो यह पुराना विश्वास है, और भ्रम होते हुए भी जबतक वह दूर नहीं हो जाता तबतक मेरे लिए वह मिथ्या नहीं, शुद्ध सत्य ही है। इसीलिए मैं यह आशा किये बैठा हूँ कि अस्पृश्यता-निवारण रूपी इस विशुद्ध धार्मिक आन्दोलनमें स्त्रियाँ महान् योग देंगी। बिना इनकी इच्छा और सहायताके यह कार्य सिद्ध होना असम्भव है। अतः कटकसे प्राप्त एक बहनके पत्रमें से मैं एक अंश यहाँ देता हूँ:[1]

गुजराती बहनें यह न कहें कि आपने उत्कलका उदाहरण दिया तो इसका कहीं यह अर्थ तो नहीं कि हम कुछ काम नहीं करतीं। गुजराती बहनें एकाएक ऐसा इलजाम शायद मुझपर नहीं लगायेंगी। लेकिन वे यह न समझ बैठें कि सिर्फ गुजराती बहनें ही ऐसा काम कर रही हैं और अन्य बहनें नहीं करतीं। यदि किसीके मनमें ऐसा भ्रम हो तो उसे दूर करनेके लिए ही मैंने उपर्युक्त पत्र प्रकाशित किया है। उत्कलकी बहनोंमें और शायद भाइयोंमें भी अपेक्षाकृत कम जागृति दिखाई देती है। किन्तु उत्कलमें भी बहनें काम कर रही हैं। इससे शायद गुजराती बहनोंको नये सिरेसे प्रोत्साहन मिले। मैं नहीं जानता कि गुजरातमें भी कटककी बहनोंकी तरह गुजराती बहनें काम करती हैं। यदि वे करती हों तो मेरे पास अपने कार्यका विवरण भेज दें और न करती हों तो अब करना आरम्भ कर दें।

बहनों और उसी प्रकार भाइयोंको भी दो प्रकारसे काम करना है: एक तो हरिजनोंमें और दूसरा सवर्ण हिन्दुओंमें। सवर्ण स्त्री-पुरुषोंको धैर्यपूर्वक यह समझाना कि अस्पृश्यता एक महान् पाप है और उनमें से नये कार्यकर्ता और कार्यकर्त्रियाँ पैदा करना। क्षेत्र इतना विशाल है और अस्पृश्यताका मैल इतनी बुरी तरहसे जम गया है कि जबतक बहुत-से भाई-बहन कमर कसकर निकल नहीं पड़ेंगे तबतक उस राक्षसको मिटाया नहीं जा सकता। अगर सौभाग्यसे सच्ची जागृति आ गई हो तो जितने लोगोंमें जागृति आ गई होगी वे सब यह सेवा आसानीसे कर सकेंगे।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २६-३-१९३३

१. पत्रका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है; इसके सारांशके लिए देखिए "टिप्पणियाँ", २५-३-१९३३ के अन्तर्गत उप-शीर्षक "हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान"

२२२. प्रचार बनाम रचना

एक प्रान्तके हरिजनने उस प्रान्तके हरिजन सेवक संघोंके कामकी कड़ी टीका मेरे पास भेजी थी। मैंने उसका सारांश 'हरिजन' में छाप दिया था, जिसका अच्छा असर पड़ रहा है। कार्यकर्ता जाग्रत हो रहे हैं, लेकिन साथ ही वे उलझनमें पड़ गये हैं। हरिजनकी जेबमें पैसे पहुँचानेका मतलब क्या रचनात्मक काम करना — अर्थात् कुछ बालकोंको पढ़ाना, कुछ कुएँ खुदवाना, कुछ मन्दिर खुलवाना है? लेकिन यह तो सदियोंका काम है। प्रचारका अर्थ है — बड़े पैमानेपर लोगोंमें भाषणों द्वारा, पत्रिकाओं द्वारा और प्रीतिभोजों द्वारा अस्पृश्यताके प्रति अरुचि पैदा करना। (पाठक प्रीतिभोज और सहभोजका अन्तर समझ लें। प्रीतिभोजका अर्थ है किसी सम्मेलनमें एक पंक्तिमें बैठकर अपनी-अपनी तश्तरी या पत्तलमें वे चीजें खाना जो हम खा सकते हैं। सहभोजका अर्थ है, एक-दूसरेका पकाया हुआ, एक-दूसरेके घर खाना। जातपाँतकी रूढ़ियोंको माननेवाले ब्राह्मण, वैश्य प्रीतिभोजमें सम्मिलित होंगे, सहभोजमें नहीं।) कहाँ चींटीकी चालसे चलनेवाला रचनात्मक कार्य और कहाँ वायु-वेगसे दौड़नेवाला प्रचार-कार्य। कार्यकर्ताओंके सामने यही उलझन है।

प्रचार-कार्यकी आवश्यकता तो है। किन्तु अकेले प्रचार-कार्यका पानीके बुलबुलेकी तरह क्षणजीवी सिद्ध होनेका डर है। सच पूछा जाये तो शुद्ध रचनामें पूर्ण प्रचार छिपा हुआ है। लेकिन शुद्ध रचना असम्भव-सी है, इसलिए अपूर्ण रचनाकी पूर्तिके रूपमें प्रचारकी आवश्यकता रहती है। शुद्ध रचना अर्थात् केवल धर्मवृत्तिसे प्रेरित, शुद्ध चरित्रवाले, पूर्ण श्रद्धायुक्त योग्य सेवकों और सेविकाओंका रचनात्मक कार्य। किन्तु हम तो अपूर्ण हैं। इसलिए शुद्ध भावना रखते हुए यथाशक्ति रचनात्मक कार्य करें और साथ ही प्रचार भी करते रहें।

यहाँ तो मैं सिर्फ खर्चकी दृष्टिसे इस विषयपर विचार करना चाहता हूँ। यह तो स्वयंसिद्ध-सी बात है कि जितने रुपये हरिजनोंकी जेबमें उचित रीतिसे पहुँचें, उनका सौ फीसदी बदला मिल गया माना जायेगा। लेकिन जो रुपये प्रचार-कार्यमें खर्च होंगे, वे तबतक बीमा माने जायेंगे जबतक उनका कोई फल नहीं निकलता।

इसलिए सभी संघोंको मेरी यह सलाह है कि प्राप्त दानका मुख्य उपयोग रचनात्मक कार्यमें किया जाये। इस तरह खर्च किये गये पैसोंके लिए हमें कभी पछताना नहीं पड़ेगा। यदि हमें सवर्ण हिन्दुओंमें से काफी संख्यामें अवैतनिक या कम वेतनपर काम करनेवाले शिक्षक, लुहार, बढ़ई आदि मिल जायें तो हमारा रचनात्मक कार्य इतनी तेजीके साथ होने लगेगा कि प्रचार-कार्यकी कमसे-कम आवश्यकता रह जायेगी। अर्थात् सवर्ण हिन्दू शिक्षक या कारीगरको पारिश्रमिक देनेमें जो खर्च होगा उसके सिवा बाकी सब रुपया हरिजनोंके पास पहुँच जाएगा। इस तरह चलनेवाली शाला या

कुएँके खर्चको मैं हरिजनोंकी जेबमें जानेवाला पैसा मानूँगा। आदर्श बात तो यही हो सकती है कि हरिजनोंके लिए बने हुए सार्वजनिक कुएँ या पाठशालामें जो मजूरी देनी पड़े, वह सारी हरिजनोंको ही मिले। जबतक हम इस आदर्शतक न पहुँच सकें तबतक नम्रतापूर्वक इससे घटिया वस्तुसे ही सन्तुष्ट रहना होगा। प्रत्येक हरिजन-संस्थाको ऐसे रचनात्मक कार्यका हिसाब अलग रखना चाहिए।

प्रचार-कार्य स्वावलम्बी होना चाहिए। पुस्तिकाएँ मुफ्त न बाँटी जायें। परोपकारी छापेखाने मुफ्तमें या कम दामोंमें ऐसी पुस्तिकाएँ छाप दिया करें। उनका लागत मूल्य लोगोंसे वसूल किया जाये। या तो कोई एक सज्जन अपने जान-पहचानवालों में पुस्तिका बँटवानेके लिए दाम देकर इकट्ठी पुस्तिकाएँ खरीद ले, या जनतामें जो सेवार्थी हों वे खुद पुस्तिका खरीदें। मुफ्तमें मिली हुई पुस्तिकाएँ अकसर व्यर्थ जाती हैं। ऐसा धन्धा तो सट्टा करनेवाला व्यापारी ही करता है। वह भी अपना खर्च बिकाऊ चीजकी कीमतमें जोड़ देता है। हरिजन सेवा संघ-जैसी धार्मिक संस्था ऐसा सट्टा कर ही नहीं सकती। वह इस तरहका खर्च किसके माथे मढ़े? 'एक करोड़ पुस्तिकाएँ बाँटी गईं' ऐसी रिपोर्टसे हमें अस्पृश्यता-निवारणका क्या पता लग सकता है? उसके कारण कितनोंने अस्पृश्यताका कलंक धो डाला, यह कौन कह सकता है? यह भी कौन जानता है कि कितनोंने वे पुस्तिकाएँ पढ़ीं? लेकिन यदि पढ़नेवाले ने पुस्तिकाके लिए एक पाई भी खर्च की हो तो हम अनुमान कर सकते हैं कि उसने उसमें से कुछ तो पढ़ा होगा।

इस रीतिसे प्रचार-कार्य किया जाये तो वह न केवल स्वावलम्बी होगा, बल्कि यदि लोकप्रिय हो तो उससे रचनात्मक कार्य भी हो सकेगा। यदि 'हरिजन' पत्र लोकप्रिय हुए तो उनमें से रचनात्मक कार्यके लिए धन पानेकी लोभ-भरी आशा मैं अभीसे लगाये हुए हूँ। पाठक यह ध्यानमें रखें कि 'हरिजन'का बहुत-कुछ काम तो स्वयंसेवकों द्वारा होता है, और जहाँ दाम खर्च करने पड़ते हैं, वहाँ भी बाजार-भावसे कम ही दिया जाता है। इसका उल्लेख करनेका हेतु यही है कि 'हरिजन' पत्र प्रचार-कार्यका एक रूप है, और स्वावलम्बनके आधारपर चलाये जाते हैं। अंग्रेजी, बंगला, तमिल, गुजराती और हिन्दीमें हरिजन-पत्र निकल रहे हैं। गुजराती स्वावलम्बी बननेको है। हिन्दी अभी स्वावलम्बी नहीं बना। 'हरिजन' पत्रोंकी तरह हरिजन-पुस्तिकाओं, पुस्तकों आदिके भी नियम होने चाहिए।

अब रहा प्रचारकोंका वेतन और सफर-खर्च। प्रचारक मुख्यतः सवर्ण ही होते हैं। लेकिन वे कभी वेतन-भोगी नहीं होते। वेतन लेकर भाषण करनेवाले की बातका भला क्या मूल्य होगा? प्रचारकोंके सफर-खर्चका बोझ संस्थाओंपर नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि जनतापर डाला जा सकता है। अर्थात् जहाँसे उन्हें निमन्त्रण मिले वहाँकी स्वागत-समिति उस खर्चको बरदाश्त करे। स्थायी संस्था सुविधाएँ दे दें, पर स्वयं खर्च न दें। अब रहा दफ्तर, हिसाब रखनेवाला, मन्त्रीका सफर-खर्च, मकान-किराया इत्यादि। यह खर्च भी दस प्रतिशतसे अधिक कदापि नहीं होना चाहिए। जिस संस्थाका प्रबन्ध-खर्च दस प्रतिशतसे अधिक हो उस संस्थाको आत्मघाती और निरर्थक समझना

चाहिए। हरिजन-सेवाकी संस्था, जिसका जन्म ही धर्म-शुद्धिके लिए हुआ है और जो उसीके लिए जीती है, मेरा निश्चित मत है कि वह और किसी रीतिसे नहीं चल सकती। यदि मैं अपने विचारको स्पष्ट कर सका होऊँ तो पाठकोंके मनमें इतनी बात जम जानी चाहिए कि उसमें –

(१) प्रचण्ड रचनाका समावेश है;

(२) प्रचण्ड प्रचारके लिए बहुत अधिक अवकाश है;

(३) लोगोंकी श्रद्धाकी कसौटी और उसका सिंचन है;

अन्तमें, यह बता देनेकी आवश्यकता है कि आजकल कार्य-क्षेत्रमें न रहते हुए भी मैं ये बुद्धिमानीकी बातें कर रहा हूँ। अतएव मेरे विचार भ्रामक होना सम्भव है। इसलिए यदि ये बातें कार्यकर्ताओंको न पटें तो वे ठुकरा देने लायक हैं। यदि ये ठीक मालूम हों तो भी इन्हें अमलमें लाने और उनपर अमल करवानेका अधिकार मुझे नहीं, किन्तु प्रधान संघ और उसकी शाखाओंको ही है।

मेरा धर्म तो सम्मति देकर चुप रह जानेका है। सब संस्थाएँ इस लेखपर विचार करें, और अपनी राय ठक्कर बापाके पास भेजें, और फिर वहाँसे जो सूचना मिले, तदनुसार सब संस्थाएँ काम करें।

[गुजरातीसे]

हरिजनबंधु, २६-३-१९३३

२२३. पत्र : एफ० मेरी बारको

[२६ मार्च, १९३३][1]

चि० मेरी,

तुम दोनोंके नाम लिखे अपने पत्रमें[2] मैंने अपने विचार ही प्रकट किये हैं। जरूरी नहीं कि तुम उन्हें स्वीकार ही करो। तुम्हें तो वही करना है जो तुमको ठीक लगे। मैंने वह पत्र इसलिए लिखा था कि उससे तुम्हें विचार करनेमें सहायता मिले। तुम अधिकसे-अधिक तभी पा सकती हो और तभी दे सकती हो जब जो तुम्हें उचित लगे, तुम वही करो। तुम दोनों तो चीजोंको अपनी आँखोंसे देखने-परखने आये हो, न कि आश्रमके बँधे-बँधाये मार्गपर चलनेके लिए।

मैं जानता हूँ कि तुमने तो नहीं कहा, लेकिन मेरा आशय यह अवश्य था कि बहुत-से आश्रमवासी अनजाने ही आश्रमकी दिनचर्याका पालन यन्त्रवत् कर रहे हैं और इसलिए आश्रमसे अधिकसे-अधिक ग्रहण नहीं कर रहे हैं और फिर, बहुत-से लोग तो अपने चरित्र-निर्माणके लिए और अपनेको किसी योग्य बनानेके लिए आये हैं। तुम्हारा उद्देश्य इससे भिन्न है। वे बिना सोचे-समझे वहाँकी दिनचर्याका पालन कर सकते हैं और इससे उनका कोई नुकसान भी नहीं होता, लेकिन तुम्हें तो ऐसा

१. **महादेवभाईनी डायरी**, भाग-३, पृष्ठ २०२ से।

२. देखिए "पत्र: एफ० मेरी बार और डंकन ग्रीनलीजको", ८-३-१९३३।

नहीं ही करना है। यदि तुम दिनचर्याका पालन भी करो तो सोच-समझकर और मनके पूरा साथ देनेपर ही करो। इसलिए वहाँकी दिनचर्यामें से तुम उतना ही स्वीकार करो जितना तुमको ठीक रास आये।

तुम्हें मलेरियासे बचना चाहिए। तुमको सहज भावसे रहना-सहना चाहिए। पेट ठीक रखना चाहिए। बहुत अधिक नहीं खा लेना चाहिए। जबतक जरा भी कमजोर हो, ठंडे पानीमें स्नान मत करो। दाल नहीं खानी है। थोड़ी डबलरोटी, दूध और हरी सब्जियाँ तथा फल यही तुम्हारा आहार होना चाहिए। शरीरका जितना हिस्सा ढँका न रहता हो उतनेपर थोड़ा पैराफिन तेल लगाया करो। उससे या उसकी गन्धसे घबराओ मत। उससे कुछ गन्दा नहीं होता। पैराफिनसे मच्छर दूर रहते हैं। तनावमें मत रहो। यह तो मनकी एक अवस्था है। 'किसी बातकी चिन्ता मत करो' — यह एक आध्यात्मिक सिद्धान्त भी है और शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे भी अपनाने योग्य सिद्धान्त है।

जीवनकी कठोर वास्तविकताओंके बावजूद 'पंच' तो अपनी जगह ठीक ही है, लेकिन उन वास्तविकताओंमें भी कठोरतम वास्तविकता यह है कि 'हरिजन' के सम्पादन तथा ऐसे ही अन्य कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण किसी और चीजके लिए न तो मुझे और न महादेवको ही मिनट-भरकी भी फुरसत मिलती है। इसलिए हम तो अपने अजस्र कार्यके धागोंमें ही "पंच और जूडी"[1] के तमाशोंका आयोजन करते रहते हैं। और सच मानो, इसमें जो मजा है वह वास्तविक "पंच और जूडी" के तमाशेमें भी नहीं है। चाहो तो यह पत्र अपनी बुआ [या चाची]को भी पढ़नेको देना।

तुम्हारे अलावा और लोगोंने भी मुझसे ईसामसीह पर लिखनेको कहा है। अगर ईश्वरको मुझसे वह काम कराना होगा तो वही उसके लिए समय भी सुलभ करा देगा।

सस्नेह

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९९८) से। सी० डब्ल्यू० ३३२३ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

२२४. पत्र: डंकन ग्रीनलीजको

२६ मार्च, १९३३

तुम इसे प्रलोभन ही समझो। तुम आये तबसे मेरी निगाह तुमपर जमी है। मुझे तो तुम्हें कोई शुद्ध हरिजन पाठशाला सौंपनी है, जिसके द्वारा तुम माँ-बाप और बच्चोंको भी पढ़ा सको।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २०२

१. इंग्लैंडमें प्रचलित कठपुतलीका एक खेल।

२२५. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२६ मार्च, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारा पत्र मिला। आशा है तुमने . . .के[1] बारेमें सुना होगा। इस घटनासे तुम सबको चेत जाना चाहिए। यदि तुम अच्छे बनना चाहते हो, सत्यका पालन करना चाहते हो तो निम्न नियमोंका पालन करना :

१. किसीको कोई बात छिपानी नहीं चाहिए और न किसीके साथ गुप्त रूपसे बातचीत करनी चाहिए।

२. किसीको किसीके साथ एकान्तमें नहीं मिलना चाहिए।

३. लड़कोंको लड़कियोंसे मित्रता नहीं करनी चाहिए क्योंकि यह स्वाभाविक नहीं है। लड़कीको लड़कीके साथ मित्रता करनेके बजाय लड़केके साथ मित्रताकी इच्छा क्यों करनी चाहिए।

४. आश्रममें रहनेवाले लड़के-लड़कियाँ सगे भाई-बहनोंके समान हैं। जिस प्रकार भाई-बहनोंमें विवाह नहीं हो सकता उसी प्रकारसे जो लोग एक ही समय आश्रममें साथ रहते हैं उनमें आपसमें विवाह नहीं हो सकता। भाई-बहनका आपसी सम्बन्ध दोस्तीका नहीं है। यह तो एक निर्मल सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध सारी दुनियाके साथ रखा जा सकता है। भाई-बहन एकान्त कभी नहीं चाहते। भाई-बहनके बीच कुछ भी गुप्त नहीं होता।

५. किसी भी बालक या बालिकाके मनमें जरा भी विकार आ जाये तो उसे तुरन्त अपने गुरुजनोंसे कह देना चाहिए।

मैं चाहता हूँ कि तुम स्वेच्छासे उपर्युक्त नियमोंका पालन करो।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१. नाम छोड़ दिया गया है।

२२६. पत्र : जानकीदेवी बजाजको

२६ मार्च, १९३३

चि० जानकीमैया,

वाह! मेरे पत्रका जवाबतक नहीं दिया। मेरा इतना डर है क्या? हरिजनोंको धन देते हुए[1] दुःख हो तो मुझे लिखो। मुझे संतरे भेजते हुए थैलीका मुँह खुल जाता है, परन्तु हरिजनोंके लिए बन्द रहती है क्या?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

जमनालाल कल बम्बई गये हैं। वहाँ डॉक्टर मोदी उनकी जाँच करेंगे। स्वास्थ्य तो अच्छा ही है; तुम्हारे और अपने सन्तोषके लिए ही गये हैं।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९११) से।

२२७. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी डाक मिली।

. . .के[2] विषयमें कल[3] लिख चुका हूँ। उसके पत्र भी भेज दिये हैं। नरहरिके विषयमें तुम्हारी बात मैं समझा।

परचुरे शास्त्रीको यात्रा-खर्च दिया और उनके कुटुम्बके लिए ३० रु० भेजना तय हुआ, यह ठीक हुआ। संस्कृत सीखना चाहनेवालों के लिए कक्षाएँ चलानेकी व्यवस्था करना, इसी तरह यह भी देखना कि वे मराठी सिखानेके लिए कितना समय दे सकते हैं। उनके सम्बन्धमें अपना अनुभव मुझे बताना। शांतारामके[4] विषयमें लिखना। उसकीबुद्धिका विकास हो तो बहुत अच्छा हो।

टाइटसके नाम अपने पत्रमें[5] मैंने उसे दूधके बारेमें लिखा है। उसे पढ़ लेना। परचुरे शास्त्री कितनी बार दूध लेते हैं? उनके लिए दूध प्रतिदिन एक साफ बोतलमें

१. डेविड योजनाके लिए; देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", १६-३-१९३३।

२. नाम छोड़ दिया गया है।

३. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २५-३-१९३३।

४. परचुरे शास्त्रीके पुत्र।

५. देखिए "पत्र: टी० टाइटसको", २५-३-१९३३।

रखा जाये और उस बोतलको दोहरे या चौहरे भीगे कपड़ेमें लपेट दिया जाये तो वह बर्फ जैसा ठंडा रहेगा और वह कच्चा पिया जा सकेगा। दूध कच्चा ही पिया जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। बोतल और उसका कार्क रोज उबलते हुए पानीसे धोया जाना चाहिए। कार्क मजबूत होना चाहिए। बोतल पूरी भरनी चाहिए जिससे कि उसमें हवा न रह जाये। मेरा खयाल है कि जो लोग दूधका प्रयोग करते हों वे उसे कच्चा ही पियें तो वह ज्यादा लाभकारी होगा। मैं तो पिछले छह सप्ताहसे कच्चा दूध ही ले रहा हूँ। पुरुषोत्तमको मेरी यह राय बताना। उसकी राय अन्तिम मानी जाये। कुसुमको अभी बुखार आ रहा है तथापि वह पहलेसे अच्छी है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि ऐसा हो ही नहीं सकता। यदि बुखार धीरे-धीरे उतर रहा हो तो जरूर वह अच्छी कही जा सकती है।

बापू

[पुनश्च :]

सोनीरामजी, डंकन, मेरी, परचुरे और टाइटस [के नाम लिखे पत्रोंके साथ]।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

२२८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२६ मार्च, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा सुन्दर पत्र मिला। मेरी कामना है कि यह भावना तुझमें स्थिर हो। सूत तो मैंने तेरे लिए रखनेको कहा है न? वह रखूँगा। उसका तिरस्कार करनेकी भी जरूरत नहीं। मुझसे कुछ भी माँगनेका तुझे जरूर अधिकार है। सूतकी माँग निर्मल है। जिस ढंगसे तूने माँग की उसमें दोष था। उसे तूने सुधार लिया; इसलिए अब कहनेको कुछ नहीं रहता।

तू देखती है कि मेरी आशाएँ राख होती जा रही हैं . . .[1] और . . .[2] के बारेमें तो क्या कहूँ? उनके बारेमें मुझे शंका हो ही नहीं सकती थी। उन पर मैंने आशाओंका पहाड़ चुना था, परन्तु वह रेतकी बुनियादपर खड़ा था। आश्रमके आदर्शतक कैसे पहुँचा जाये? कोई किसीकी स्पर्धा किये बिना स्वतन्त्र प्रयत्न करे तो ही पहुँचा जा सकता है। तू ऐसा प्रयत्न कर रही है? ब्रह्मचर्यकी मेरी व्याख्या तू जानती है न? उस व्याख्यातक तू पहुँचेगी? उसमें राग और रोषके लिए बिलकुल अवकाश नहीं है। मुझे तेरी आलोचना नहीं करनी है। तुझे शिक्षा नहीं देनी है। मैं तो भिक्षा माँगता हूँ। जबतक यह भिक्षापात्र नहीं भरता, तबतक आश्रम आश्रम नहीं हो सकता।

१ और २. नाम छोड़ दिये गये हैं।

अपनी तबीयतके बारेमें तूने समाचार दिये यह ठीक किया। कच्ची गोभीको पीसकर खाया जाये तो शायद नुकसान न हो, परन्तु उसे उबालकर खानेमें कोई आपत्ति नहीं है। शाक कच्चा ही खाना जरूरी नहीं है। थोड़ा भी कच्चा खाया जाये तो काफी है। परन्तु मुख्य बात यह है कि तुझे बोलना कमसे-कम कर देना चाहिए। इस नियमका पालन करनेमें जो ढिलाई होती है, वह चिन्ताजनक इस तरह बन जाती है कि बादमें किया हुआ संयम निरर्थक सिद्ध होता है। हर चीज अपने समयपर होनी चाहिए। गलेकी हालत जिस समय नाजुक हो, उसी समय उसे आरामकी जरूरत होती है।

मारुतिके साथ बातचीतका अवसर मिला, यह बहुत अच्छा हुआ। उनके साथ पत्र-व्यवहार जारी रखना। लक्ष्मीको आश्रमकी सहेली चाहिए? कोई भेजने लायक है? यह भी लक्ष्मीदाससे जान लेना कि वहाँ जाकर वह रह सकती है या नहीं।

जमनालालजी कहते थे कि वहाँ उनकी भेजी हुई बहुत-सी महाराष्ट्रीय बहनें हैं। उनमें से किसी-न-किसीको उनके महिला आश्रमके लिए तुझे तैयार करना चाहिए, ऐसा जमनालालजीने तेरे लिए सन्देशा भेजा है। ऐसी कोई बहन है क्या? वह प्रौढ़ और अनुभवी होनी चाहिए। मुझे लिखना। नारणदासके लिए भी यही सन्देश है। उसे यह बात अलगसे नहीं लिखूँगा। उसके पत्रमें उतना ही लिखूँगा जो यहाँ नहीं लिखा जा सका है।

श्वेत पत्रके[1] बारेमें मैं कुछ भी नहीं लिख सकता। जबतक मैं यहाँ हूँ तबतक मेरा वह क्षेत्र भी नहीं है, इसलिए मैंने उसे पढ़ा भी नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३१)से। सी० डब्ल्यू० ६७७१ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

२२९. पत्र : नारणदास गांधीको

२६ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

प्रेमाके पत्रमें[2] जमनालालके जिस संदेशकी चर्चा हुई है यह उसकी पूर्ति है। आश्रमकी बड़ी बहनोंसे हम (लड़ाईके बाद) कोई काम नहीं ले सके, उसका एक कारण आश्रमकी यानी मेरी योग्यताकी अपूर्णता है। जमनालालने जब मुझसे नयी बहनोंकी बात कही तब मुझे उनकी बात तीरकी तरह चुभी। उन्हें भी उसे कहते हुए दुःख तो हुआ था। लेकिन वे क्या करते? उन्होंने [स्त्री-कार्यकर्ताओंकी] माँग इसके पहले भी कई बार की थी किन्तु उस समय मैं कुछ कर नहीं सका। मुझे लगता है कि अब उसके लिए ठीक अवसर है। मेरी नजर पहले लक्ष्मीबहन[3] पर गयी

१. जिसमें भारतमें संवैधानिक सुधारोंके सम्बन्धमें ब्रिटिश सरकारके प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये थे।
२. देखिए पिछला शीर्षक।
३. नारायण मोरेश्वर खरेकी पत्नी।

और फिर दुर्गा[1] पर। महाराष्ट्रमें महिला आश्रम है और वह भी वर्धामें। विनोबाका सहवास और उनकी देखरेखका लाभ तो है ही। वहाँ जानकीवहन भी है। प्रश्न यह है कि लक्ष्मीवहन पंडितजीके विना वहाँ रहना चाहेगी? पंडितजीको यह अच्छा लगेगा? नहीं, तो क्यों नहीं? मथुरी[2] लक्ष्मीवहनके साथ रहेगी ही। वहाँ उसे जो तालीम मिलेगी वह भी आश्रमकी ही तालीम है। यदि लक्ष्मीवहन न जाये या न जा सके तो दुर्गा क्यों न जाये? फिलहाल दुर्गाको [पतिका] वियोग तो सहना ही है और वह शायद कुछ वर्षोंतक। दुर्गाको वहाँ शारीरिक परिश्रम नहीं करना है, देखरेख करनेका काम है। उसका शरीर इस बोझको तो उठा सकता है। वह निर्मला[3] को अपने साथ ले जाना चाहे तो जरूर ले जाये। नारायणस्वामी[4] भी जाना चाहे तो जा सकता है। मेरे मनमें काशी[5] का नाम भी आया था। किन्तु वह तो बिलकुल अपंग है इसलिए उसका खयाल छोड़ दिया। संतोकको[6] भेजनेकी बात अभी नहीं सोच सकता। जमना[7] कितना-क्या कर सकती है, इसकी मुझे ठीक जानकारी नहीं है। लक्ष्मीवहन या दुर्गाको मैं इस कार्यके लिए सबसे ज्यादा उपयुक्त मानता हूँ। मणिवहनको[8] भी मैं जाने लायक मानता हूँ। चम्पारनमें उसने इस तरह का काम किया है। यहाँ मैंने महादेवके साथ इसकी चर्चा नहीं की है। दूसरी बड़ी वहनें मुझे इस कार्यके लिए समर्थ नहीं मालूम होतीं। अब इस सम्बन्धमें निर्णय करनेके लिए मैं तुम्हें काफी सामग्री दे चुका। कोई वहन तैयार हो तो मुझे बताना। और महाराष्ट्रकी जो वहनें आश्रममें अभी नयी-नयी आयी हैं उनमें से कोई जानेके लिए तैयार हो जाये तो वही चली जाये। उनकी जरूरत तो होगी ही। किन्तु प्रमुख का पद सँभालनेके लिए कोई ऐसी अनुभवी वहन अवश्य चाहिए जो सब बहनोंको अपनी लड़कियों-जैसा मानकर उनकी सार-सँभाल करे और आश्रमका संचालन करे। इस कार्यके लिए अनुभवकी प्रौढ़ता, चरित्रकी पवित्रता और सामान्य समझकी जरूरत है। बाकी जो-कुछ करना है वह तो इतना होनेपर हो ही जायेगा।

मोहन[9] अब बिलकुल स्वस्थ हो गया होगा।

धरासनावाले रावजीभाईके बारेमें लिख चुका हूँ इसलिए यहाँ दुबारा नहीं लिखता। मुझे नहीं लगता कि उन्हें [आश्रममें] लेना और रखना हमारा कर्तव्य है। मेरा मतलब यह है कि यह हमारी शक्तिके बाहर है।

१. महादेव देसाईकी पत्नी।
२. नारायण मोरेश्वर खरेकी पुत्री।
३. महादेव देसाईकी बहन।
४. सम्भवतः नारायण देसाई।
५. छगनलाल गांधीकी पत्नी।
६. मगनलाल गांधीकी पत्नी।
७. नारणदास गांधीकी पत्नी।
८. नरहरि परीखकी पत्नी।
९. नरहरि परीखका पुत्र।

भैंसके [मांसके] बारेमें लिख चुका हूँ। सीतलासहायके पत्र आते रहते हैं। किन्तु मैं तो उन्हें यही लिख देता हूँ कि वे अपनी बातकी यथार्थताकी प्रतीति तुम्हें करायें। क्या महावीरके पत्र आते हैं? मुझे उसने कोई पत्र नहीं लिखा है। गंगाबहनने महावीरको २५ रु० की नौकरी[1] दिला दी है और वे लिखती हैं कि कृष्णमैयादेवीको भी कोई काम दिला देंगी। मैत्री और दुर्गाका कैसा चल रहा है? . . . का[2] कोई पत्र नहीं है। इससे मेरे मनमें सन्देह पैदा होता है—कहीं फिर न फिसल गयी हो।

बापू

[पुनश्च :]

प्रवचनोंकी[3] पुस्तक प्रभावतीको नहीं मिली। भेज देना। आजकी, यानी ता० २५ की डाक मिली। अमीनाके पत्रका जवाब इसके साथ ही अलगसे भेज रहा हूँ। मोहनकी बीमारीका डाक्टरने क्या निदान किया है? जमनाका पत्र आया है। उसे इतना ही कहना है: पुरुषोत्तमपर विश्वास रखकर प्रयोग करती जाये।[4] उससे उसकी तबीयत अच्छी होनी ही चाहिए।

बापू

[पुनश्च :]

पुस्तकोंकी सूची और तारोंका चार्ट अलग हैं। १९ पत्र एक साथ बँधे हुए हैं; अमीनाका अलग है।[5]

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू ८३४३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

२३०. पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको

२६ मार्च, १९३३

चि० पुरुषोत्तम,

तेरा पत्र मिला। पुस्तकोंकी सूची लौटा रहा हूँ। जिनमें मैंने चिह्न लगाये हैं वे फुरसतमें पढ़ जाने योग्य हैं। जो शब्द समझमें न आयें उन्हें डॉ० तलवलकर या डॉ० हरिप्रसादसे समझ लेना। सच्ची बात तो यह कि शरीर-रचना और शरीर-

१. देखिए "पत्र : गंगाबहन वैद्यको", २४-३-१९३३।

२. नाम छोड़ दिया गया है।

३. गांधीजीने इसे १९३० में यरवडा जेलमें आश्रमवासियोंके लिए लिखा था; देखिए खण्ड ४४। ये प्रवचन **मंगलप्रभात** शीर्षकके अतंर्गत अलग-अलग छपे थे।

४. देखिए "पत्र : पुरुषोत्तम गांधीको", १२-३-१९३३।

५. साधन-सूत्रके अनुसार, इसमें पत्रोंकी सूची दी हुई थी।

विज्ञानपर छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ जाओ तो वहुत अच्छा रहेगा। तब जो चीजें तुझे अभी समझमें नहीं आ रही हैं, वे समझमें आ जायेंगी। तुझमें धीरज है इसलिए तू इस विषयपर अधिकार कर लेगा। कच्चे दूधका प्रयोग करने योग्य है। गौरी-शंकरसे पूछना। क्या तुझे कब्ज रहता है? चमनलाल और जमनाके प्रयोगके परिणामकी सूचना मुझे देते रहना।

बापू

[पुनश्च :]

तेरा पत्र मिला। उलटी बन्द करनेके लिए २० ग्रेन सोडा पानीमें मिलाकर बूँद-बूँद करके एनिमा लेना चाहिए। इसे बूँद-बूँद करके लेनेमें आधा घंटा लगता है। बूँद-बूँद गिरानेके लिए एक विशेष साधन आता है, उसे लगानेपर पानी बूँद-बूँद ही उतरता है। मिसेज लाजरस बतायेंगी।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९१०)से; सौजन्य : नारणदास गांधी

२३१. पत्र : भगवानजी पु० पंड्याको

२६ मार्च, १९३३

चि० भगवानजी,

मुझे तुम्हारा विवरण मिला। गीताको शीतला निकली थी, तब तुमने बिना किसी घिनके जिस प्रेमसे उसकी सेवा की थी, यदि वैसा ही प्रेम तुम इन लोगों पर बरसाओगे तो तुम्हें उनकी इस गंदगीमें से भी सुगन्ध आयेगी। रोगियोंके लिए तुम दवाई ले जाते होगे। यदि तुम मेरुके समान धीरजके काम लोगे तो तुम्हें निराशा नहीं होगी। जो काम कर रहे हो इसमें तुम अकेले ही नहीं हो। देशके दूसरे भागोंमें अन्य लोग भी यह कार्य कर रहे हैं। मैंने उनके बारेमें अभीतक लिखा नहीं है पर कार्य चल रहा है। हमारे लिए यह कार्य सामान्य हो जाना चाहिए।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५४)से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्ड्या

२३२. पत्र : मीठूबहन पेटिटको

२६ मार्च, १९३३

चि० मीठूबहन,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अपने सिरपर बहुत बड़ा काम उठा लिया है। जिन बहनोंके हस्ताक्षर तुमने भेजे हैं, वे बराबर काम करनेवाली हों, अन्ततक तुम्हारा साथ देनेवाली हों, धार्मिक भावना रखनेवाली हों और तपस्विनी हों तो ही यह कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो सकता है। शक्तिसे अधिक भाग-दौड़ मत करना। यदि तुममें शक्ति है तो तुम्हारी विजय होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एन० २०३०८)से।

२३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२६ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदास,

दो तीन बात अभी लिखता हूँ, बाकी पीछे।

हिन्दी 'हरिजन'में पढ़नेके लायक हम एक ही चीज पाते हैं, वह तुम्हारे लेख। तुम्हारी भाषा मीठी और तेजस्विनी है। लेकिन इतने ही से मुझे संतोष नहीं हो सकता है। जबतक वहाँ अच्छा प्रबन्ध नहीं हुआ है तबतक ज्यादातर यहींसे लेख भेजे जायेंगे। महादेव और मैं अनुवाद करेंगे. वियोगीजी हम लोगोंकी हिन्दीको दुरुस्त कर लेवें। उसके उपरांत संघकी तरफसे नोटिस, सूचना, प्रान्तीय खबरें इत्यादि आनी चाहिए। तब तो हिन्दी 'हरिजन' की हजारों कापियां बिकनी चाहिए। सेवा संघका यह मुख्य गजट बन जाना चाहिए। रामदासजी को और किसीको अनुवादके लिए यहांसे लेख भेजनेका मैंने इनकार किया है। ऐसे 'हरिजन' चल नहीं सकता है। हिन्दीमें अनुवाद न मिले, या वियोगीजी खुद न कर सकें और कोई दूसरा प्रबन्ध न हो सके तो हिं० सं० बन्द करना आवश्यक समझता हूं।

कलकत्तेकी बस्तीके बारेमें कुछ ज्यादा कार्य होनेकी आवश्यकता देखता हूँ।

डेविड योजनाके बारेमें मैं समझता हूँ कि इसका चिन्तन किया जाय। मैं अधिक लिखूंगा। परीक्षक बोर्ड बनाओ।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ७९३४)से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

२३४. पत्र : सुलोचनाको

२६ मार्च, १९३३

चि० सुलोचना,

तुमारा पत्र मिला है। लग्नके बारेमें पिताजी से तुमारे यह कहना चाहिए। अब तो तुमारा अभ्यासकाल है। अभ्यास पूर्ण होनेके बाद अगर तुमारी इच्छा लग्नकी हुई तो पिताजी से कह देगी। सब लड़कीयों के लिये लग्न आवश्यक तो हो नहिं सकता है। जगतमें अनेक स्त्रीयां हैं जिन्होंने कभी लग्न नहि किये हैं।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९१३३)से।

२३५. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

२७ मार्च, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

डाक्टरी जाँचके लिए सेठ जमनालालजी के आर्थर रोड जेलमें तबादलेके सम्बन्ध में क्या आप सरकारसे यह मालूम करेंगे कि चूँकि उनके यहाँ रहते हुए मुझे उनसे प्रतिदिन मिलनेकी अनुमति प्राप्त थी, इसलिए अब क्या मैं उनको बिना किसी प्रतिबन्ध के पत्र लिख सकता हूँ और उनके पत्र बेरुकावट पा सकता हूँ? कहनेकी जरूरत नहीं कि उन पत्रोंमें केवल उनके स्वास्थ्य और अस्पृश्यताकी ही बातें रहेंगी।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८४)से। बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग-४, पृ० २६१ से भी

२३६. पत्र : भाईलालको

२७ मार्च, १९३३

भाई भाईलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो जानकारी दी है उसका उपयोग करनेका मेरा इरादा है।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२९९) से।

२३७. पत्र : नानालाल का० जसानीको

२७ मार्च, १९३३

भाई नानालाल,[१]

मगनलालका[२] पत्र और तार मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। मैंने जो उत्तर दिया है वह भी तुम तारके फार्मपर लिखा पाओगे।

मुझे लगता है कि अब तो बँटवारा कर ही देना पड़ेगा। इस सम्बन्धमें भी सभीके दस्तखत कराने पड़ेंगे। इसलिए मैं मगनलालको यहाँ बुला रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि बँटवारेके लिए तो छगनलाल[३] भी तैयार ही होगा। और लगता है कि चम्पा[४] भी यही चाहती है। यदि ऐसी ही बात हो तो शायद तुम मगनलालका यहाँ आना आवश्यक ही न समझो। यदि ऐसा हो तो तुम वहाँसे उसे न आनेका तार दे देना। किन्तु मेरे साथ यदि तुम भी यही सोचते हो कि यहाँ तीनों भाइयोंकी उपस्थिति आवश्यक है तो मगनलालको आनेके लिए तार दे देना।

चम्पा और रतिलालकी[५] मुझे चिन्ता है। चम्पा तो स्वभावतः वही करेगी जो उसके पिता कहेंगे और आजकल रतिलाल चम्पाके कहेमें चलता जान पड़ता है। प्रभाशंकर[६] पर मेरा तनिक भी विश्वास नहीं रह गया है। उसकी मनोवृत्ति मुझे तनिक भी अच्छी नहीं लगती। उस दिन उसने सच-झूठ, विनय-अविनयमें भेद नहीं किया। मुझे ऐसा लगा कि वह पैसेकी खातिर अपनी बेटी और दामादके हितोंको हानि पहुँचानेके लिए तैयार था। ऐसी स्थितिमें मैं उसके पक्षमें राय नहीं दूँगा अर्थात्

१. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी रंगून स्थित पेढ़ीके भागीदार और मुनीम।

२, ३, और ५. डॉ० प्राणजीवन मेहताके पुत्र।

४. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी पुत्रवधू; रतिलालकी पत्नी।

६. चम्पाके पिता।

उसे संरक्षक बनानेमें मैं अपनी सहमति नहीं दूँगा। किन्तु मैं यह कदापि नहीं मानता कि डाक्टरका एकमात्र हितेच्छु मैं हूँ। तुम्हें और रतुभाईको[1] भी मैं उतना ही हितेच्छु मानता हूँ। अतः यदि तुम प्रभाशंकरको संरक्षक बनाना चाहो तो अवश्य बना सकते हो। सरदार मुझसे सहमत हैं। मैंने यह पत्र उन्हें दिखाया है। जो निर्णय होगा उसमें मैं आड़े नहीं आऊँगा। यह तो तुम समझ ही जाओगे कि मैंने अपनी भावना व्यक्त की है। यदि तुम्हारे मनपर इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती तो तुम इसे अनदेखा कर देना। मैंने अपना हृदय साफ रखनेकी दृष्टिसे यह लिखा है। यह पत्र प्रभाशंकरको दिखानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है बल्कि मैं तो यह चाहता हूँ कि तुम उन्हें भी पढ़वाओ। मुझे तो यही उचित जान पड़ता है कि जो-कुछ मेरे मनमें है उसे वे भी जान लें। चम्पा-रतिलालको यह सब लिखनेकी मेरी इच्छा नहीं होती। उन्हें बताना कर्तव्य भी नहीं है। जिस प्रकार प्रभाशंकरके बारेमें उनके मनमें बुरे भाव पैदा करनेमें मुझे दुःख होता है उसी प्रकार यदि तुम्हें अपने विचार न बताऊँ तो यह द्रोह होगा।

यह काम लटका हुआ है और उलझता जाता है, यह अच्छा नहीं लगता। तुमसे जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४०) से।

२३८. पत्र : लक्ष्मी जेराजाणीको

२७ मार्च, १९३३

चि० लक्ष्मी[2],

आखिर तेरा पत्र मिल ही गया। मैंने तो तुझे पत्र लिखा था। आशा है, तेरा स्वास्थ्य ठीक होगा। आजकल तेरा दैनिक कार्यक्रम क्या है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

क्या मैं ऐसा मान लूँ कि काका अब बिलकुल ठीक हैं?

चि० लक्ष्मी जेराजाणी
खादी भण्डार
कालबादेवी[3], बम्बई

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१४) से; सौजन्य : पुरुषोत्तम डी० सरैया, बम्बई

१. छगनलालके ससुर।
२. बम्बईके एक खादी-कार्यकर्ता विट्ठलदास जेराजाणीकी भतीजी।
३. साधन-सूत्रमें "कालका देवी" है।

२३९. पत्र : परीक्षितलाल एल० मजमूदारको

२७ मार्च, १९३३

भाई परीक्षितलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। गुजराती 'हरिजन' में लेख पढ़नेके बाद जो पूछना चाहो सो पूछना। अंग्रेजी 'हरिजन'के लिए भी वैसा ही लिखा है। वह जल्दी ही प्रकाशित होगा। तुम्हें मासिक खर्चके लिए कुछ मिल जाता है, यह मैं जानता हूँ। इसमें कोई दोष नहीं है। यदि यह मूल खातेमें से निकाला जाये तो इसमें कोई तात्त्विक दोष नहीं दिखता। यदि मूल खाता यह भार सहन न कर सके तो इस खातेसे निकालनेमें भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। इस गरीब देशमें हमें जो भी सेवक मिलेंगे वे सब अवैतनिक होंगे, इसे मैं संभव नहीं मानता। किन्तु तुम्हारे-जैसा सेवक किसी संस्थाके लिए भार रूप नहीं होगा।

बापूके आशीर्वाद

श्री परीक्षितलाल मजमूदार
अस्पृश्यता निवारण संघ
ऐलिसब्रिज
अहमदाबाद
बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३९९५)से।

२४०. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

२७ मार्च, १९३३

चि० नर्मदा,

तेरा पत्र मिला। तूने वह मांस अपने हाथों मिट्टीमें गाड़ दिया, वह बहुत अच्छा किया। उसे तूने उन लोगोंसे उन्हें कुछ बुरा-भला कहकर तो नहीं लिया था? यह याद रख कि किसीसे जबरदस्ती कुछ नहीं कराना है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७५)से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

२४१. पत्र : प्रभावतीको

२७ मार्च, १९३३

चि० प्रभावती,

तुमको मैं तो बराबर खत लिखता रहता हूं। तुमको न मिले उसका मैं क्या उपाय कर सकता हूं। तुमने लिखा था इस परसे मैंने गुजरातीमें खत लिखा था। तुमको क्यों नहिं मिला? यह खत था भी लंबा। तुम्हारे [सभी प्र][1]श्नोंका उत्तर दिया था।

. . . [प] हरेदारी इ० नहिं लिखा सो . . . हुआ।

[खत] नियमित नहिं मिलते हैं, नियमित कोई मिलनेके लिये नहिं आते हैं उस कारण तुमारे दोनों बंध करनेकी कोई आवश्यकता नहिं है। कोई न आवे खत न मिले तो भी तुमारे खुश रहनेकी कला सीख लेनी चाहिये। आवे तो अच्छी बात है, न आवे तो भी अच्छी बात समजो। न आवे तो इतना समय कुछ उद्यमके लिये बचाया मानो। मेरे खतके लिये विश्वास रखो कि मैं कितना भी काम होगा तो भी तुमको खत लिखनेका समय अवश्य बचाऊंगा।

प्रवचनके[2] बारेमें नारणदासको लिखुंगा।

मेरा वजन १०४ रतल है। अच्छा है। एक रतल दूध (कच्चा गरम नहिं) प[पीता] नारंगी और खजूर लेता हूँ। . . . है। दो बार लेता हूं। प्रातः . . . उठता हूं। सारा दिन हरिज[न] [कार्यमें] जाता है ऐसा कहा जाय।

कांता जानती है ना कि मैं जान[बूझ] कर उसको खत नहिं लिखता हूं जिससे वह दूसरे खत पा सके। चिन्ता सब छोड़ो।

लक्ष्मीके लग्न मारुतीके साथ किये।[3] करीब सो हरिजन अहमदाबादसे आशीर्वाद देनेको आये थे। सबको फलाहार करवाया। मारुती लक्ष्मीदासके साथ बारडोली में रहता है।

बापुके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ३३०५)से।

१. कागज जगह-जगहपर फटा हुआ है।

२. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", २६-३-१९३३।

३. देखिए "सन्देश: लक्ष्मी और मारुतिके विवाह पर", ८-३-१९३३।

२४२. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२७ मार्च, १९३३

अब हरिजनोंके लिए सभी निजी मन्दिरोंके द्वार खुलवानेके लिए ऐसी जोरदार कोशिश करनी चाहिए जैसी पहले कभी नहीं की गई।

यह पूछनेपर कि क्या विधान-सभामें विधेयकको राय जाननेके लिए परिचालित करनेका प्रस्ताव पास न हो सकनेसे मन्दिर-प्रवेशका प्रश्न ठप्प हो गया है, उन्होंने नकारात्मक उत्तर देते हुए कहा :

नहीं, इसका यह मतलब नहीं है कि मन्दिर-प्रवेशका प्रश्न ठप्प हो जायेगा, लेकिन यह तो है ही कि गत सितम्बर महीनेमें दिये गये वचनकी दृष्टिसे हरिजनोंको जो-कुछ देना चाहिए था वह नहीं दिया गया है और इसलिए उस वचनको पूरा करनेके लिए हरचन्द कोशिश करनी चाहिए। इस बीच लोकमत तैयार करने और हरिजनोंको मन्दिरोंमें प्रवेश दिलानेके जो और उपाय हैं उन्हें आजमा कर देखना चाहिए। और इस सम्बन्धमें मुझे स्वभावतः जो एक बात सूझती है वह यह है कि सभी निजी मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये जायें।

निजी मन्दिरोंके सम्बन्धमें ऐसी कोई प्रथा प्रचलित नहीं है जिसकी आड़ लेकर कोई तीसरा पक्ष हरिजनोंको उनमें प्रवेश करनेसे रोक सके। इसलिए उनके द्वार तो हरिजनोंके लिए खोल ही दिये जाने चाहिए और जिनके पास ऐसे मन्दिर नहीं हैं उन्हें सामान्य रूपसे सभी हिन्दुओंके लिए मन्दिर बनवाने चाहिए। इन मन्दिरोंका प्रबन्ध आदर्श ढंगसे होगा और इनमें आदर्श पुजारी काम करेंगे और इस प्रकार ये आदर्श मन्दिर हिन्दू धर्मकी सच्ची अभिव्यक्ति होंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २८-३-१९३३

२४३. पत्र : वेरियर एलविनको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय वेरियर,

यद्यपि मैंने अकसर पाया है कि सत्य चाहे जितना कुरूप दिखे, वास्तवमें वह कल्याण ही करता है, तथापि मैं मानता हूँ कि ए०[1] तुम दोनोंके अधिक निकट आ गई थी। सच तो यह है कि अगर एक पक्ष भी शुद्ध हो तो दूसरे सभी पक्ष शुद्धताकी ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। लेकिन जब दूसरे भी उसी दिशामें चलनेकी कोशिश कर रहे हों, तब एककी सफलता दूसरोंकी सफलताकी लगभग निश्चित गारंटी होती है।

मैंने उससे यह नहीं कहा कि तुम अनजाने ही अपने-आपको छल रहे हो। उसका कहना है कि उसका मंशा यह नहीं था कि तुम उसकी बातका ऐसा मतलब लगाओ। मेरे पास इस बातका कोई प्रमाण नहीं था कि तुम खुद अपने द्वारा छले जा रहे हो। मैंने जो बात सचमुच कही थी वह यह है कि हम सबके खुद अपने द्वारा छले जानेकी सम्भावना रहती है, लेकिन तुम जान-बूझकर झूठ नहीं बोल सकते और इसलिए अगर तुमने कभी वादा किया होगा तो तुम वैसा तुरंत स्वीकार कर लोगे।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह तुम दोनोंको प्यार करती है और तुम्हारे साथ काम करना चाहती है। वह अभी हरिजन-सेवाका कुछ काम कर रही है। मैंने उससे कहा है कि अभी तो असम्भव ही है, लेकिन अगर सबकुछ ठीकठाक चला तो कोई कारण नहीं कि वह आगे चलकर तुम्हारे साथ काम न कर सके।

अब मेरी[2] के सम्बन्धमें। मुझे तो यह आवश्यक लगता है कि कुछ समयके लिए तुम दोनोंको अलग होकर देखना चाहिए कि तुम लोगोंकी मनःस्थिति कैसी रहती है। मेरी या तुम अल्मोड़ा या साबरमती अथवा वर्धा या जहाँ ठीक समझो वहाँ जाकर अस्थायी ढंगका कोई हरिजन-सेवाका कार्य कर सकते हो। अगर तुमने एकान्त प्रेम बिलकुल त्याग दिया हो, तो तुम जितने सुखी संयोगमें रहोगे उतने ही वियोगमें भी होगे, और अभी तो वियोगमें निश्चित आनन्दका अनुभव होना चाहिए। इस तरहके सभी मामलोंमें — और ऐसे अनेक मामले हुए हैं — यह चीज मैंने नितान्त आवश्यक पाई है। तुम्हें इसपर विचार करना चाहिए और अगर इसमें कुछ सार नजर आये तो इसपर तत्काल आचरण करना चाहिए।

और अब तुम्हारे स्वास्थ्यके विषयमें।

१. अल्ला; देखिए "पत्र : वेरियर एलविनको", ११-३-१९३३।
२. मेरी जिलेट।

सुबहके ३-४५ बजे हैं और अब मुझे तुमको ईश्वरकी हिफाजतमें छोड़ना पड़ेगा। उसका संरक्षण ही सच्ची हिफाजत है। मनुष्य अपनी जो हिफाजत करता है वह उसी हदतक कारगर रहती है जिस हदतक वह ईश्वरके हिफाजत करनेसे मेल खाती है। इसलिए तुम मेरे सुझावोंमें से केवल उतना ही अंश स्वीकार करना जितना तुम्हारे मनको ठीक जँचे। मैं तो क्षण-क्षण विनीत ही होता जाता हूँ और हर क्षण इस परम तथ्यका मुझे अधिकाधिक बोध होता जाता है कि मनुष्यका सच्चा प्रयत्न तो ईश्वरकी, जो सत्य ही है, इच्छा जाननेमें निहित है।

तुम्हें अपने सभी साथियोंका प्रेम प्राप्त है।

हार्दिक स्नेह-सहित,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२७) से।

२४४. पत्र : आभाको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपके प्रश्न बड़े विचित्र हैं। यदि मैं जान पाता कि सचमुच मैं कौन हूँ तो यह बहुत ही बड़ी उपलब्धि होती। मेरा लक्ष्य तो सबकी सेवा करना है।

राधा और कृष्ण-विषयक आख्यानको मैं अलौकिक मानता हूँ।

मैं आपको सलाह दूँगा कि आप मुझको नहीं, बल्कि ईश्वरको समझनेका प्रयास करें, क्यों कि सत्यरूप वही है।

हृदयसे आपका,

श्रीमती आभा,
१८-बी, हर्तकीबागान लेन
डाकघर – बीडन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२८) से।

२४५. पत्र : अमूल्यकुमार बसुको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप जिसे अपना कर्तव्य समझते हैं उसे करने पर आपको क्षमा माँगनेकी बिलकुल जरूरत नहीं है। अपने उद्देश्यके विषयमें जिस प्रामाणिकताका दावा मैं अपने लिए करता हूँ उसी प्रामाणिकताका श्रेय मैं दूसरोंको भी देता हूँ। इसलिए मैं आपसे केवल इतनी ही अपेक्षा करूँगा कि आप सत्यसे कभी विचलित न हों, जिस लक्ष्यको आप वांछनीय मानते हों उसकी सिद्धिके लिए भी नहीं। तब अगर आप मेरा विरोध करेंगे तो उसपर आपको मेरी ओरसे बधाई मिलेगी, और कौन जानता है कि तब शायद आप ही, अगर मैं अन्धकारमें होऊँ तो, मुझे प्रकाशके दर्शन करायें। इसलिए मैं आपके पत्र[1] के प्रति मैत्रीपूर्ण भावना रखूँगा, और अगर मुझे उसमें कहीं भी असत्य, अनौचित्य या कटुता दिखाई दी तो मैं आपका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट करूँगा, और मैं चाहूँगा कि अगर आपको 'हरिजन' में कोई असत्य या अतिरंजना अथवा मुझसे भिन्न विचार रखनेवालों के प्रति कोई अशिष्टता दिखाई दे तो आप भी उस ओर मेरा ध्यान दिलायें। मैं अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका सबसे बड़ा अभिशाप मानता हूँ — चाहे मेरा ऐसा मानना सही हो या गलत। इसलिए उस अभिशापसे मुक्ति पानेके लिए मैं कुछ भी उठा नहीं रख रहा हूँ। लेकिन अगर यह वरदान है और कोई मुझे यह समझा सके कि यह वास्तवमें वरदान है, तो उसे मैं अपना मुक्ति-दूत मानूँगा, क्योंकि वैसा करके वह मुझे ऐसी भूलसे बचा लेगा जिसे मैं लगभग पिछले पचास वर्षोंसे अपने मनमें पोसता आया हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यकुमार बसु
५, अक्षयकुमार बसु लेंन
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३१)से।

१. **सनातनी,** एक अंग्रेजी साप्ताहिक।

२४६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२८ मार्च, १९३३

भाई घनश्यामदासजी,

मैंने परसों, २६ तारीखको हिन्दीमें जो पत्र[1] लिखा था, आशा है, वह तुम्हें मिल गया होगा। हमें कलकत्तेकी बस्तियोंकी समस्याको सामूहिक रूपसे हल करनेका उपाय ढूँढ़ना होगा, एक-एक, दो-दो बस्तियाँ करके नहीं। इसलिए अब जब कलकत्ता जाओ तो वहाँ कारपोरेशनके प्रमुख कौंसिलरोंकी एक अनौपचारिक बैठक बुलवाकर उनसे मिलना। इस समस्याके साथ कुछ व्यक्तियोंके स्वार्थ जुड़ गये हों तो उससे क्या? हमें इन स्वार्थोंपर प्रहार करना होगा और समस्याको हल करना ही होगा। तुमने मुझे जो-कुछ लिखा है उससे मैं तो यही समझता हूँ कि सबसे सस्ता उपाय बस्तियोंको तोड़ देना है। पाखाना सफाईकी ज्यादा मानवतापूर्ण पद्धति जारी करनेका विरोध मुझे बिलकुल ही व्यर्थ मालूम होता है। उन्नत साधनोंके उपयोगसे आरम्भमें तो अधिक खर्च होता है, पर अन्तमें वे मितव्ययितापूर्ण सिद्ध होते हैं। इस समस्याको हल करनेमें जो कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं उनके पीछे सामान्यत: उन लोगोंकी उदासीनता छिपी होती है, जो मुँहसे तो सुधारकी आवश्यकता बताते हैं, पर उसके लिए किसी प्रकारका त्याग करनेको तैयार नहीं होते हैं, तुम्हें इस उदासीनताको सक्रिय सहानुभूतिमें परिणत करना है और तब मार्ग अपने-आप निकल आयेगा।

हिन्दी 'हरिजन' के सम्बन्धमें मैं तुम्हें परसों लिख चुका हूँ कि पहले लेखको छोड़कर यदि कोई लेख पढ़ने योग्य थे तो वे तुम्हारे लेख थे। तुम्हारी शैली मनोहर, सीधी-सादी और मुहावरेदार है। विषयका तुम्हारा विवेचन सरल, सीधा और सुबोध होता है। मेरे लेखोंका अनुवाद दोषपूर्ण अवश्य था, पर अब यह कठिनाई नहीं रहेगी क्योंकि अनुवाद यहींसे भेजे जायेंगे। हाँ, उनकी हिन्दी वहाँ परिष्कृत करनी होगी। इसमे खर्च भी कम होगा और पत्रका स्तर भी ऊँचा होगा।

डेविड-योजनाकी चिन्ता मत करो। उसके सम्बन्धमें मुझे क्यों लिखना पड़ा, यह तो मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। पर तुम्हारी कठिनाईको मैं समझता हूँ। यदि जरूरत हुई तो केन्द्रीय कोषका सहारा तो लेना ही पड़ेगा। परन्तु पहले देख लें कि पूरी रकम देनेवाले आधे दर्जन दाता भी मिलते हैं या नहीं। मैं निराश नहीं हुआ हूँ, पर सुन्दर पत्र तैयार करनेका समय ही नहीं मिलता है। पर इधर मैं समय निकालूँगा। जहाँ एक-दो नाम मिले कि उनके साथ तुम्हारे नामकी भी घोषणा कर दूँगा।[2]

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", २६-३-१९३३।

२. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १६-३-१९३३।

तुम्हारे इस योजनाको उत्साहपूर्वक उठा लेनेसे हमारे कामको नुकसान पहुँचनेका तो सवाल ही नहीं था।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :][1]

रामानंद संन्यासीके वारेमें तुमारे साथ जो बातें हुई थी वह याद होगा। इस परसे मैंने उनको लिखा था कि उनके चारित्र्यके लिए मैंने शिकायत सुनी थी। इसका जो उत्तर आया वह इसके साथ रखता हूँ। अब उनका खत आया है कि उनको उर्दू 'हरीजन' निकालनेको तुमने कहा है।

बापु

अंग्रेजीकी प्रति (सी० डब्ल्यू० ७९३५) से; सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला। जी० एन० २०७३२ से भी

२४७. पत्र : अविनाशचन्द्र दासको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं उन कठिनाइयोंको जानता हूँ, जो आपको झेलनी पड़ रही हैं। मैं आशा करता हूँ कि अस्पृश्यता अब अधिक दिन चलनेवाली नहीं है और ईश्वरसे यही प्रार्थना करता रहता हूँ। जो भी हो, ऐसे बहुत-से सवर्ण हिन्दू हैं जो अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका अभिन्न अंग नहीं मानते और इसके उन्मूलनके लिए अपना जीवन उत्सर्ग करनेको तैयार हैं। मैं आशा करता हूँ कि तथाकथित अस्पृश्योंके बीच भेद-भावकी दीवारें खड़ी करके आप उस गलतीको नहीं दोहरायेंगे जो सवर्ण हिन्दुओंने की है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अविनाशचन्द्र दास
वंगीय झल्ल मल्ल खत्रिय सभा
१४, नरेन्द्रसेन स्क्वेयर
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३०) से।

१. यह अंश हिन्दीमें है।

२४८. पत्र : गिरधारीलालको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

मैं डॉ० त्रिपाठीको नहीं जानता और न अन्य तीनोंमें से ही कोई जानता है। आप उनको पत्र तो नहीं लिखवाना चाहते न?

यदि डाक्टर आपको कूने स्नानकी, जिसे कटिस्नान भी कहते हैं, अनुमति दे तो अम्हौरियाँ आसानीसे ठीक हो सकती हैं। कटि-स्नानमें कटि-प्रदेश पानीके अन्दर और पैर बाहर रखे जाते हैं। शायद आप इसे जानते भी हों।

हृदयसे आपका,

लाला गिरधारीलाल
१०९–ए, महेन्द्र मैंशन
एस्प्लेनेड रोड, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२९)से।

२४९. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

२८ मार्च, १९३३

बम्बई सरकारके सचिव
गृह विभाग

प्रिय महोदय,

इसी २३ तारीखके अपने पत्रके सिलसिलेमें मैं साथमें 'बॉम्बे-क्रॉनिकल' की एक कतरन भेज रहा हूँ, जिसमें सेठ पूनमचन्दके उपवासकी खबर छपी है। इस खबरको ध्यानमें रखते हुए मैं सादर अनुरोध करूँगा कि कल शामतक उत्तर भेज दिया जाये। यद्यपि मैं कैदी हूँ, फिर भी मैं सरकारसे यह अनुरोध करूँगा कि वह मेरी भावनाओंको समझे। एक कैदीकी हैसियतसे अधिकारियोंकी आज्ञाका पूर्ण पालन करते हुए अपने मनकी शान्ति प्राप्त करनेकी अपनी समस्त इच्छाके वावजूद, मैं अपने अन्दरके मानवतावादीको दबा नहीं सकता; अपने जीवनके उद्देश्यका परित्याग नहीं कर सकता। मैं सरकारसे यह समझनेका भी अनुरोध करूँगा कि मैं — यदि यथोचित विनयके साथ कह सकूँ तो कहूँगा — सैंकड़ों पुरुषों और स्त्रियोंके लिए पितृ-तुल्य हूँ। वे मुझसे ऐसी अपेक्षा नहीं कर सकते कि यदि मुझसे बने तो सेठ पूनमचन्दको बचानेकी कोशिश न करूँ और उन्हें यों ही मर जाने दूँ।

मैं कर्नल डॉयलसे इस पत्रका मजमून आपको तार या टेलीफोनसे सूचित करनेको कह रहा हूँ[1]।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

संलग्न पत्र – १

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) ए, पृष्ठ ८७

२५०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको[2]

२८ मार्च, १९३३

इस मामलेमें इतनी जल्दी कार्रवाई करनेकी जरूरत है कि मेरे लिए इन्तजार करना अत्यन्त कठिन है। अभी तो जो स्थिति है उसमें मेरा मन भारी यन्त्रणा सह रहा है। अगर सेठ पूनमचन्दको कुछ हो गया तो मुझे सारी जिन्दगी इस बातका मलाल रहेगा कि मैं सरकारसे समयपर उनसे सम्पर्क स्थापित करनेकी अनुमति नहीं पा सका। इसलिए मेरे सामने तत्काल उत्तर देनेका अनुरोध करनेके अलावा कोई चारा नहीं है।[3] मेरा सुझाव यह है कि बम्बई सरकार अपनी ही जिम्मेदारीपर मुझे मध्य प्रान्तके गृह-सदस्यकी मार्फत सेठ पूनमचन्दसे सम्पर्क करनेकी अनुमति दे दें[4]।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) ए, पृ० ९१

१. कर्नल डॉयलने बम्बई सरकारको टेलीफोनपर पूरी स्थितिसे अवगत कराया। उत्तरमें कहा गया : "हम भारत सरकारसे सम्पर्क कर रहे हैं। क्या गांधी परसोंतक इन्तजार नहीं कर सकते ?"

२. यह बम्बई सरकार द्वारा दिये गये पिछले पत्रके उत्तरपर लिखा हुआ था।

३. यह ३० मार्च, १९३३ को प्राप्त हुआ था; देखिए **महादेवभाईनी डायरी**, भाग–३, पृष्ठ २०६।

४. गांधीजीने जेल-अधिकारियोंसे अनुरोध किया था कि इसका मजमून भी टेलीफोनपर सूचित किया जाये।

२५१. पत्र : रा० को

२८ मार्च, १९३३

प्रिय रा०,

तुम्हारे दो पत्रोंके लिए धन्यवाद, लेकिन साथ ही यह अवश्य कहूँगा कि उनसे मुझे कोई सन्तोष नहीं मिला। मैंने जल्दबाजीमें नहीं लिखा[1] था। मैंने तो जो-कुछ नी० देवीने मुझे बताया और बादमें लिखा भी था, उसीके आधारपर तुम्हें लिखा था। तुम्हारे पत्रसे भी मेरा यह सन्देह पुष्ट होता है कि तुम्हारी प्रवृत्तियोंमें कहीं प्रच्छन्न भावुकतापूर्ण प्रेम मौजूद है। यह प्रेम अवांछनीय है और अपवित्र प्रेमकी सीमाका स्पर्श करने लगता है। इस बातको मैं इससे ज्यादा नरम ढंगसे नहीं कह सकता था। और तुम्हारे वे गुरु यदि वही सज्जन हैं जिनके बारेमें नी० देवीने मुझे बताया है तो उनके बारेमें भी मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। यहाँ मेरी स्थिति जरा नाजुक है, क्योंकि मैं उनके बारेमें कुछ नहीं जानता और हो सकता है, यह सब कहकर, मैं उनके साथ बहुत बड़ा अन्याय कर रहा होऊँ। अपने साथियोंकी जिम्मेदारी लेनेसे तुम इनकार नहीं कर सकते। तुम सब एक साथ काम कर रहे थे और सबका आकर्षण-केन्द्र नी० देवी थी, जो तब कोई पवित्रताकी स्रोत नहीं थी। उस अवधिमें जो-कुछ हुआ, उसके दायित्वसे तुम अपनेको बचा नहीं सकते। इसलिए मैं चाहूँगा कि अबतक तुमने जितना किया है उससे कुछ अधिक आत्मचिन्तन करके देखो और मुझे बताओ कि क्या भंगीका काम जिस तरह शुरू हुआ था उसी तरह बिना रुके चल रहा है और अगर चल रहा है तो कार्यकर्ता कौन-कौन हैं, वह कैसे किया जा रहा है, नेता कौन है और अब तकका परिणाम क्या सामने आया है। काम अगर बन्द हो गया है तो बताना कि क्यों।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३५) से।

१. देखिए "पत्र: रा० को", १८-३-१९३३।

२५२. पत्र : नी० को

२८ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारे २३ और २४ तारीखके पत्र मिले। मैं समझता हूँ कि तुम अपने इरादेके मुताबिक रविवारको गाँवके लिए रवाना हो गई होगी। मेरी यही कामना है कि वहाँ सत्यनारायण तुम्हारी रक्षा करें!

मैं निजी अनुभवसे यह जानता हूँ कि अगर काफी पानी न हो तो मोटी खादी धोना कितना मुश्किल है। आम तौर पर धुलाई सिलाईसे पहले ही की जाती है, लेकिन अगर एक ही कपड़ेको धोनेकी भी जरूरत हो और सीनेकी भी तो निस्सन्देह पहले सिलाई ही की जाती है, क्योंकि इससे समय बचता है। धोनेसे जहाँ मरम्मत की जरूरत हो वहाँ कपड़ा ज्यादा फटता है, इसलिए अगर धुलाईके बाद सिलाई की जाती है तो उसपर ज्यादा समय देना पड़ता है। जब तुम अपनी पोशाकके सजावटवाले हिस्सेको बिलकुल छोड़ दोगी और उसे ऐसी बना दोगी कि वह सिर्फ तुम्हारे शरीरकी रक्षा कर सके और आसपासके चलनसे मेल खाती हो तो खुद तुम्हारी पोशाकमें ही कुछ परिवर्तनकी जरूरत पड़ सकती है। गिनतीमें बहुत कमकी जरूरत है और वहाँ जो चलन है वह तो गरीबसे-गरीब लोगोंवाला चलन ही है।

सर टॉड हंटरका पत्र तुम्हें मिला, यह जानकर खुशी हुई।

रा० के पत्रोंसे मैं तनिक भी सन्तुष्ट नहीं हूँ। पुराना मोह कहीं अब भी छिपा हुआ है और पत्र पढ़ते हुए उनमें अतीतका औचित्य सिद्ध करनेकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। मैंने उसको पत्र[1] लिखा है और उसमें हलकेसे उसके पत्रोंकी कमी की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किया है। दुर्गादासका पत्र तो मुझे और भी कम रुचा। सम्बोधनका ढंग अक्षम्य है। वह तुम्हारा मार्ग-दर्शक, मित्र या भाई नहीं बन सकता। जैसा कि उसने खुद ही बताया है, वह जानता था कि तुम एक पतित स्त्री थीं, फिर भी अपनी बहनका उद्धार करनेकी उसने जरा भी कोशिश नहीं की। तुम्हारी ओरसे पत्र-व्यवहार फिर शुरू करनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अभी तो तुम्हारा सारा सम्पर्क सीधे तुम्हारे और सत्य-रूप ईश्वरके बीच ही होना चाहिए। तुम्हारे और उसके बीच और किसीको, किसी भी चीजको नहीं आना चाहिए। मैं बीचमें इसलिए आता हूँ कि तुमने अपने स्रष्टाको जो वचन दिया है उसका मैं साक्षी हूँ और फिर इसलिए कि मैं तुम्हें, मेरे विचारसे, संसारके सबसे अधिक दलित जनसमुदाय — हरिजनों, — की सेवाके कार्यमें अपनी स्थायी सहयोगिनी कह सकना चाहता हूँ; किन्तु

१. देखिए पिछला शीर्षक।

मेरे खयालसे हम — मैं या तुम — तबतक इस सेवाकार्यके योग्य नहीं बन सकते जबतक सत्यके साथ हमारा ऐसा प्रत्यक्ष सम्पर्क पूर्णतः स्थापित नहीं हो जाता और हमपर एक धुन-जैसी सवार नहीं हो जाती कि मनुष्यके लिए जितना शक्य है उतने अधिकसे-अधिक पवित्र बनकर ही हम दम लेंगे।

तुम्हें ठंडसे सावधान रहना चाहिए।

अगर तुम्हें चोकर समेत गेहूँका आटा मिले तो तुमको चावल बिलकुल नहीं लेना चाहिए। तुम्हें चपाती बनाना सीख लेना चाहिए। यह बेहद सरल काम है। चार औंस साफ गेहूँका आटा लो, उसमें पानी मिलाकर उसे ठीकसे गूँधो, फिर उसे बेलनसे — साफ-सुथरे रूलरसे भी काम चल जायेगा — लकड़ी या पत्थरके चिकने चकले पर गत्तेसे जरा पतला बेल लो और तवेपर उलट-पलटकर सेंक लो। चार औंस आटेसे तुम छः-छः इंच व्यासकी छः चपातियाँ बना सकती हो। ये बिलकुल सुपाच्य होंगी। लेकिन मुझे यकीन है कि तुम घर या झोंपड़ी जहाँ भी रहती होगी, उसकी मालकिनको यह सीधा-सादा काम जरूर आता होगा। दाल बिलकुल नहीं लेनी चाहिए। कच्चा नारियल, अगर वह खूब कच्चा हो तो, हर रोज एक ले सकती हो और कहनेकी जरूरत नहीं कि उसके सारे पानीका भी उपयोग करो। तुम्हें कुछ फल और सब्जियाँ, आलू वगैरह नहीं, बल्कि साग, लौकी, ककड़ी, कद्दू वगैरह लेना चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३३) से।

२५३. पत्र : रामचन्द्रन्‌को

२८ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्रन्,

इतने महीनोंके बाद तुम्हारे हस्ताक्षर देखकर खुशी हुई। लेकिन, तुम कहाँ क्या करते रहे हो, इससे मैंने अपनेको अवगत रखा है।

नारायण अय्यरको मैं उनकी 'परमानेंट हिस्ट्री ऑफ भारतवर्ष' के कारण अच्छी तरहसे जानता हूँ और, जहाँतक मेरा विचार है, मैं उनसे त्रिवेन्द्रम्‌में मिला भी हूँ। वे विद्वान् हैं, बहुत सुलझे हुए पर विचारक नहीं। उनकी पुस्तक 'परमानेन्ट हिस्ट्री' से मेरे मनपर यही छाप पड़ी है। लेकिन वे उत्साही व्यक्ति हैं। फिर भी, मैं उनकी पुस्तिकाएँ पढ़नेकी कोशिश करूँगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३४) से।

२५४. पत्र : मोतीलाल रायको[1]

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

मुझे आपके दो पत्र मिले, जिनमें से एकके साथ श्री पंचानन तर्करत्नके पत्रका अनुवाद भी था। आपने अपने पत्रमें जिन प्रश्नोंकी चर्चा करनेका इरादा जाहिर किया है, उनके बारेमें आप अपने समय और सुविधाके अनुसार लिखें। मैं धैर्य रखूंगा। समय मिलते ही, मैं आपका भेजा हुआ न्यासपत्र पढ़कर, उसके विषयमें कोई टीका-टिप्पणी करनी हुई तो वह आपको लिख भेजूंगा।

आपकी आँखोंको क्या हुआ है? कृपया मुझे ठीक-ठीक वताइए कि क्या खराबी है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२५) से।

२५५. पत्र : डी० वलीसिन्हाको

२८ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपकी पत्रिकाकी एक प्रति मिली।

कैदी होनेके कारण, अस्पृश्यताके सिवा और किसी विषयपर मेरे सन्देश भेजनेपर पाबन्दी लगी हुई है। इसलिए आपको मैं जो सन्देश भेज सकता हूँ, वह यदि आपके किसी कामका हो तो इस प्रकार है : जिन चीजोंके कारण गौतम बुद्धके जीवनमें मेरी श्रद्धा है, उनमें से एक यह है कि उन्होंने अस्पृश्यता अर्थात् ऊँच-नीचके भेद-भावको पूर्ण रूपसे मिटा दिया था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वलीसिन्हा
प्रबन्ध सम्पादक, 'महाबोधि'
होली इसीपट्टन, सारनाथ
बनारस

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३६)से।

१. चन्द्रनगर स्थित प्रवर्तक-संघसे सम्बद्ध।

२५६. पत्र : भाऊ पानसेको

२८ मार्च, १९३३

चि० भाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। अभी तो तुम्हें वहीं रहना है। लोगोंमें घुलना-मिलना सीख लेना चाहिए किन्तु इसके बावजूद अलिप्त रहना चाहिए। वहाँ पाखानोंकी सफाई आदि करनेका जो काम सामान्यतः अन्य लोग नहीं करते वह तुम्हें प्रसन्नता-पूर्वक करना चाहिए। अपने मनमें आश्रम[1] लौटनेकी इच्छा बनाये रखना; ऐसा करनेसे नियमबद्ध रह सकोगे। किन्तु फिलहाल इस इच्छाको दबाये रखना और वहाँ रहते हुए अपने शरीरको खूब स्वस्थ बना लेना। हमें तो जहाँ रहना है वहीं सेवा करनी है। वहाँ भी तुम्हें सेवा करनेका अवसर तो मिला ही है। यह बहुत ही अच्छी बात है कि तुम्हें मजदूरोंके सम्पर्कमें आना पड़ा।

मुझे नियमित रूपसे लिखते रहना। तुम्हें सप्ताहका कोई दिन निश्चित कर लेना चाहिए और उस दिन पत्र अवश्य लिखना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६७५२)से। सी० डब्ल्यू० ४४९५ से भी; सौजन्य : भाऊ पानसे

२५७. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२८ मार्च, १९३३

. . . शुक्रवार कुटम्बके मेल-मिलापका दिन होगा। . . .[2] आना चाहते हैं। यदि तू भी आना चाहे तो उस दिन आ जाना। दिलीपको[3] हरिजनोंके विषयमें सिखाना। उसे तुम्हारे साथकी जरूरत है। तारामतीको[4] शिक्षिका बनना चाहिए।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी, पृष्ठ १२२

१. भाऊ पानसे उन दिनों राजकोटमें थे; देखिए "पत्र : भाऊ पानसेको", २०-३-१९३३।

२. साधन-सूत्रमें नाम नहीं दिया गया।

३. मथुरादास त्रिकमजी के पुत्र।

४. मथुरादास त्रिकमजी की पत्नी।

२५८. पत्र : बाबूलालको

२८ मार्च, १९३३

भाई बाबुलाल,

(१) माताका विरोध होते हुए भी अस्पृश्यता निवारणको धर्म मानते हो तो जहाँतक संभवित है वहांतक माताको राजी रख कर धर्मका पालन करना कर्तव्य है।

(२) हरिजनोंके लिए साफ पानीका प्रवंध नहिं है। ऐसी जगह प्रथम कर्त्तव्य पानीका प्रवंध करनेका है। इसलिए उन लोगोंके लिये अच्छा कुआं बनाया जाय जिसका उपयोग सब लोग कर सके। लेकिन ऐसी जगहपर हो जहां उनको सुविधा हो और उस पर स्पष्ट लिखा जाय कि यह कुआ स्पृश्य-अस्पृश्य दोनोंके लिये हैं। पहेले हक्क अस्पृश्योंका है।

(३) इसीके साथ २ दूसरे कुअेके उपयोगके बारेमें आंदोलन चलते रहना चाहिये।

हिन्दीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७३७) से।

२५९. पत्र : नागरिक मंडल, वाराणसीके मंत्रीको

२८ मार्च, १९३३

मंत्री महोदय,
नागरिक मंडल
बनारस

हरिजन बालकोंको कपड़े और मिठाई बांटनेमें कोई बड़ा दोष न हो सही लेकिन उसका कोई असर मेरे दिलपर नहीं पड़ता है। उनको इन चीजों कि आवश्यकता थी? अगर थी तो तो बटाई भले हुई। अगर नहीं थी तो मुझे संदेह है। इससे अस्पृश्यता नहिं निकलेगी। इससे आत्मवंचना हो सकती है। ऐसा दान करके हम अपना सच्चा कर्त्तव्य है उसको भूल तो नहिं जाते हैं? ऐसे प्रश्न मेरे मनमें उपस्थित होते हैं। लेकिन मैं आपके कार्यका काजी बनना नहिं चाहता हूं। और जिस चीजमें पू० मालवीयजी खूद शामेल थे उसके बारेमें टीका करनेका मुझको अधिकार नहिं है। ऐसा बहुत बार होता है। मेरा मतलब आप समजे होंगे।

हिन्दीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७२४)से।

२६०. भेंट : एसोसिएटेड प्रेसके प्रतिनिधिको

२८ मार्च, १९३३

यरवडा जेलमें श्री गांधीके उपयोगके लिए जो आँगन है उसमें दो बड़े-बड़े दूर-वीक्षण यन्त्र[1] रखे हुए थे। जेलके परिवेशकी कड़ी सादगीके बीच वे एक असाधारण दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। . . .

[श्री गांधीने कहा :]

ये मेरे लिए हैं।

उन्होंने बताया कि खगोल-विज्ञानमें मेरी रुचि सदासे रही है, लेकिन इस बार जेल आनेके बादसे मैं इसमें और अधिक रुचिके साथ लगा हुआ हूँ। उन्होंने आगे कहा :

अब तो मुझे इसकी धुन सवार हो गई है। मैं अपने अवकाशके एक-एक क्षणका उपयोग इसीमें करता हूँ। यह विषय बड़ा रोचक है और ईश्वरकी रहस्य-मयता तथा उसकी सृष्टिकी भव्यताका जितना बोध मुझे यह कराता है उतना और कोई विषय नहीं। तारों-भरी रातमें खुले आकाशके नीचे पीठके बल लेटे-लेटे उसकी एकके-बाद-एक सृष्टिके अपरिमेय विस्तारका अवलोकन करते हुए आप ईश्वरके पुजारी बने बिना नहीं रह सकते; ऐसा करते हुए मेरा मन तो हर्षसे कुलाँचे भरने लगता है। आहा, कितना भव्य है यह सब।

श्री गांधीने आगे कहा कि इसके लिए उच्चतर गणितके अध्ययनकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि खगोल-विज्ञानमें मेरी रुचि किसी पेशेवर खगोल-शास्त्रीकी-सी नहीं है। मैं इस विषयपर बहुत-सी पुस्तकें पढ़ता रहा हूँ। और इन संयन्त्रोंकी मददसे मैं अपनी आँखोंसे उन सृष्टियोंकी और अधिक झाँकी देख सकूँगा। इनका प्रयोग मैं आसानीसे समझ गया, क्योंकि इनको ठीक-ठीक जमानेमें बारीकी तो है, फिर भी वह है बहुत सरल।

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ३-४-१९३३

१. रिपोर्टके अनुसार ये यन्त्र गांधीजी को पूना निवासिनी लेडी प्रेमलीला ठाकरसीने दिये थे।

२६१. पत्र : पी० आर० लेलेको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय लेले,

आपने एक स्कूलके उद्घाटन-समारोहके सम्बन्धमें 'फ्री प्रेस' से एक कतरन मुझे भेजी है। मैं तो चाहूँगा कि आप मुझे उद्धृत करनेके लिए अखबारकी कतरनें भेजनेके वजाय खुद अपनी ओरसे एक प्रामाणिक विवरण भेज दें, जिसे मैं प्रान्तीय बोर्डकी ओरसे उसके नामसे प्रकाशित कर सकूँ। श्रीयुत अंजारियाको अन्धेरीमें स्कूलके उद्घाटनका ऐसा विवरण आपको दे सकना चाहिए था।

इस विवरणमें कहा गया है कि सभामें मुख्यतः हरिजन पुरुष और बालक शामिल थे। क्या यह सच हो सकता है? प्रामाणिक विवरणमें यह भी वताया जाना चाहिए कि स्कूल चलानेमें कितना खर्च वैठनेकी सम्भावना है और उसके लिए कितना चन्दा जमा किया जा चुका है; इमारतका भी कुछ वर्णन होना चाहिए। फिर, किसी अकेली घटनाका विवरण छापना पड़े तो ठीक नहीं लगता। विवरणमें एक अवधि विशेषके दौरान स्वयं बोर्डकी अथवा उसके अधीन चलनेवाली प्रवृत्तियोंका सिलसिलेवार वर्णन होना चाहिए।[1] क्या आप ऐसा नहीं मानते?

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४३) से।

१. इसके उत्तरमें पी० आर० लेले ने गांधीजी को आश्वस्त करते हुए अपने १-४-३३ के पत्र (एस० एन० २०७९८) में लिखा कि फ्री प्रेसकी रिपोर्टमें "अखबारोंको भेजे प्रामाणिक विवरणको ठीक-ठीक उद्धृत किया गया है"।

२६२. पत्र : नी० को

२९ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारा इसी २६ तारीखका पत्र मिला। तुम्हारा कहना ठीक है। बेशक, मैं यही चाहता हूँ कि मेरे लिखे हरएक शब्दसे सत्य और प्रेमकी आभा छिटके, और अगर ऐसा नहीं होता तो उसका कारण यह नहीं है कि मैं पूरी कोशिश नहीं करता। इसलिए तुम्हें इस तरहकी कोई आशंका रखनेकी जरूरत नहीं कि रा० को मैं जान-बूझकर बुरी लगनेवाली बातें लिखूँगा। कल उसको एक पत्र[1] लिखा है, जिसमें मैंने वैसी ही बातें कहीं हैं जैसी कि तुमने अपने इस पत्रमें कहीं हैं। उसने एक लिफाफेमें मुझे दो पत्र भेजे, लेकिन दोनों असन्तोषजनक थे। उन परसे मैं देख सकता था कि अबतक उसे सत्यका बोध नहीं हुआ है।

अपनी नई परिस्थितिका — अर्थात् अपने परिवेश, पड़ोसियों, गाँवकी आबादी, गाँवमें खरीदी जा सकनेवाली चीजों, मैसूर या बंगलोर अथवा किसी बड़ी जगहसे उसकी दूरी, निकटतम रेलवे स्टेशनसे उसकी दूरी, पानी मुहैया करनेके इन्तजाम, वहाँकी आबादीके जाति-धर्म आदि सब कुछका — वर्णन जितने विस्तारसे कर सको करना। यह भी बताना कि वहाँ तुम्हें अच्छा दूध मिल सकता है या नहीं। गाँवमें कौन-से पशु पाले जाते हैं? अगर तुम्हें गायका अच्छा दूध न मिले और वहाँ बकरियाँ हों तो सि० के[2] लिए बकरीका दूध लेनेमें संकोच न करना। तुम्हें खुद ही बकरी दोहना सीख लेना चाहिए और बकरीको अपने यहाँ मँगवाना चाहिए ताकि तुम आश्वस्त हो सको कि जो दूध मिले, शुद्ध हो; और अगर वहाँ गायें हों तो गाय दोहना भी सीख लो। अगर तुम्हें कमजोरी महसूस हो या यह लगे कि पाचन-यन्त्र जैसा चाहिए वैसा ठीक नहीं रहता है, तो मैं चाहूँगा कि तुम फिरसे दूध और मक्खन लेना शुरू कर दो, लेकिन मक्खन उतना नहीं जितना कि दूध लो। मुझे तो तुमने बिना उबाला दूध लेते देखा ही था। उसी तरह तुम भी बिना उबाला दूध लो। फिर तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें मुझे कोई चिन्ता नहीं रह जायेगी।

मैं यह तो जरूर चाहता हूँ कि तुम गरीबसे-गरीब हरिजनका जीवन व्यतीत करो, लेकिन यह नहीं चाहता कि जो असम्भव हो वह करो, और इसलिए तुम्हारे स्वास्थ्यके लिए जो चीजें बहुत जरूरी हों, वे अगर माँगनेसे मिल जायें तो तुमको अवश्य लेनी चाहिए। अगर तुम्हें वे चीजें सम्मानजनक ढंगसे न मिल सकें, तो फिर ईश्वर तुम्हें अभावजनित कष्ट और कठिनाई सहनेकी भी शक्ति देगा, लेकिन तब भी तुम स्वास्थ्यको अनुकूल न पड़नेवाली ऐसी-वैसी चीजें न लेना। जो आहार पचे

१. देखिए "पत्र: रा० को", २८-३-१९३३।

२. नी० के पुत्र।

नहीं या जो शक्ति न दे वैसा आहार लेनेसे अच्छा तो उपवास करना है। वैसी जरूरत पड़नेपर कुछ थोड़े-से सूखे खजूर या मुनक्के अथवा अंजीर अच्छी तरहसे धोकर लेनेसे तुम्हारा, बल्कि सि० का भी काम चल सकता है। लेकिन मुझे पूरा भरोसा है कि यदि सत्यमें तुम्हारी जीवन्त श्रद्धा है तो वह तुम्हारी इतनी कठिन परीक्षा नहीं लेगा जिसे तुम सह न सको।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५१) से।

२६३. पत्र : आर० एफ० पाइपरको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपसे न मिल सका, इसका खेद है। आपके प्रश्नोंके[1] उत्तर ये रहे :

१. मशीनसे आपका तात्पर्य निस्सन्देह कृत्रिम शक्ति-चालित मशीनसे है। भारत की करोड़ोंकी आबादीकी दृष्टिसे विचार करें, तो ऐसी मशीनें उनकी भौतिक समृद्धि के लिए अनिवार्य नहीं हैं।

२. मानव-समाजने धर्मको किसी-न-किसी रूपमें अपने अस्तित्वके लिए अपरिहार्य पाया है। इसलिए ऐसा मानना उचित ही होगा कि मानव-समाजको धर्मकी आवश्यकता पड़ती रहेगी और मैं तो धर्मके बिना मानव-समाजके नैतिक विकासकी कल्पना ही नहीं कर पाता।

३. ईसाई धर्म, या यों कहिए कि खुद अपने धर्मके अतिरिक्त किसी भी धर्म के बारेमें कोई फतवा देना मेरी अनधिकार चेष्टा होगी।

४. सतत और प्रार्थनापूर्ण प्रयत्न द्वारा।

५. मैं तो ऐसा कोई तरीका नहीं जानता जिससे मनुष्यको नेक बनाया जा सकता हो, लेकिन अगर किसी हदतक उसे नेक बनाना सम्भव भी है तो वह व्यक्तिगत उदाहरण प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० एफ० पाइपर
दर्शनशास्त्रके आचार्य
सिराक्यूज विश्वविद्यालय
सिराक्यूज, न्यूयॉर्क

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७५०) से।

१. प्रश्न इस प्रकार थे :

(१) क्या मशीन भारतके भौतिक विकासके लिए आवश्यक नहीं हैं? (२) मानवकी प्रगतिमें धर्म क्या योग दे सकता है? (३) ईसाई धर्ममें क्या दोष हैं और क्या गुण? (४) आप किस प्रकार अपनी बुनियादी खोजें करते हैं या अन्तर्दृष्टि प्राप्त करते हैं? (५) मनुष्यको नेक कैसे बनाया जा सकता है?" (एस० एन० २०६६७)

२६४. पत्र : पंचानन तर्करत्नको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय पण्डितजी,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मोतीबाबूने मेरे लिए उसका अनुवाद कर दिया है।

देखता हूँ, एक ओर तो आप अस्पृश्यताको अतीन्द्रिय वस्तु मानते हैं और दूसरी ओर उसपर केवल लौकिक परिस्थितियोंको ही लागू कर रहे हैं। खुद मैं तो अस्पृश्यताको अतीन्द्रिय वस्तु नहीं मानता। जिसे इन्द्रियोंसे सिद्ध किया जा सकता हो, ऐसी किसी भी वस्तुको मैं अतीन्द्रिय नहीं मानता। उदाहरणके लिए ईश्वरके अस्तित्वके प्रश्नको तो मैं अतीन्द्रिय मानूंगा, लेकिन पृथ्वीके रूपाकारको नहीं, और जैसा कि हमारे शास्त्रोंकी सीख है, भौतिक पदार्थोंके तत्त्वोंका पता लगाने या उनको सिद्ध करनेके लिए आध्यात्मिक प्रतिभाका प्रयोग करना उसका दुरुपयोग ही है। शास्त्रोंमें अस्पृश्यताका जैसा वर्णन किया गया है, उसकी दृष्टिसे तो वह विशुद्ध रूपसे भौतिक है। उसमें अतीन्द्रिय कुछ भी नहीं है। इसलिए यदि मैं सामान्य वस्तुओंकी जाँच-पड़तालपर लागू होनेवाले आम नियमोंको इसपर लागू कर रहा हूँ, तो शास्त्रोंके साथ कोई अन्याय नहीं कर रहा हूँ।

इस तरह विचार करें तो शास्त्रोंमें चाहे जो कहा गया हो, वंशानुगत अस्पृश्यताका कोई आधार नहीं है और अगर कोई तथाकथित चाण्डाल अपने जन्मके बारेमें न बताये तो ऐसी कोई कसौटी नहीं है जिससे उसे अन्य लोगोंसे भिन्न बताया जा सके। जो बात उसपर लागू होती है वह उसके वंशजोंपर और भी ज्यादा लागू होती है।

मुझे ऐसी आशंका है कि आपने रेड इंडियनों, आस्ट्रेलियाई इंडियनों तथा ऐसी ही अन्य जातियोंके जो उदाहरण दिये हैं वे भारतीय परिस्थितियोंपर लागू नहीं होते और यह कहना कि भारतमें जातियोंका सम्मिश्रण हुआ ही नहीं, ऐतिहासिक दृष्टिसे झूठ है। इसके विपरीत, इस बातके अकाट्य प्रमाण उपलब्ध हैं कि मनुष्यको जबसे अतीतकी जानकारी है तभीसे भारतमें जातीय सम्मिश्रण बराबर चलता रहा है।

जहाँतक उन पण्डितोंका सम्बन्ध है जिनके प्रमाण मैंने दिये हैं, उनमें से मेरी व्याख्याकी पुष्टि करनेवाले कई ऐसे लोग हैं जिनको जाननेका भी सौभाग्य मुझे नहीं मिला है। उन्होंने भी उसी प्रमाणको स्वीकार किया है जिसको आप उद्धृत कर रहे हैं। फर्क इतना ही है कि उन्होंने उसकी व्याख्या भिन्न प्रकारसे की है।

यथोचित विनयके साथ मैं यह दावा करता हूँ कि यद्यपि मैं संस्कृतके ज्ञानका दम नहीं भरता, किन्तु मैं इतनी संस्कृत अवश्य जानता हूँ और मैंने धर्मग्रन्थोंको इतना अवश्य पढ़ा है कि मेरे सन्मुख प्रस्तुत की गई शास्त्रोंकी परस्पर-विरोधी व्याख्याओंके सम्बन्धमें मैं अपना एक मत स्थिर कर सकूँ।

जहाँतक आपके लड़केका सवाल है, मुझे साफ याद है कि वे आपके प्रतिनिधि की हैसियतसे मुझसे कोई धार्मिक शास्त्रार्थ करने नहीं, बल्कि ऐसी चर्चा करनेके लिए आनेवाले थे जिससे वे आपका दृष्टिकोण मेरे सम्मुख प्रस्तुत कर सकें और मैं उसे समझ सकूँ, ताकि अगर सम्भव हो तो हममें दृष्टि-साम्य स्थापित हो सके।[1]

निश्चय ही वह उद्देश्य परस्पर-विरोधी विचारधाराओंके माननेवालों के बीच एक निश्चित विवाद-गोष्ठीमें, जिसका नियमन करनेके लिए विशेष निर्णायकोंकी व्यवस्था रही हो, भाग लेनेके लिए आनेवाले पण्डितोंके उद्देश्यसे भिन्न था। आपके लड़केके ऐसे शास्त्रार्थीके रूपमें आनेमें और उन पण्डितोंको जिन नियमोंके अधीन विवाद करना था उन नियमोंसे मुक्त आपके प्रतिनिधिके रूपमें आनेमें अन्तर था। वे उन पण्डितोंमें से एक थे, यह बेशक कोई गलत चीज नहीं थी, लेकिन उस तरहसे आपका वादा तो पूरा नहीं हो सकता। अगर उन्हें मुझसे मैत्रीपूर्ण और व्यक्तिगत ढंगसे चर्चा करनी थी तो वे उसके बाद भी वैसा कर सकते थे। अगर वे कभी आ सकें तो मैं उनसे सहर्ष मिलूँगा और उन्हें जो-कुछ भी कहना हो उसे धैर्य और प्रसन्नताके साथ सुनूँगा। मैं आपको यह भरोसा दिला सकता हूँ कि आधुनिक अस्पृश्यताको हिन्दू धर्मका अभिन्न अंग माननेवाले पक्षकी ओरसे अब भी जो-कुछ कहना हो उसे सुननेको मैं तैयार हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४४) से।

२६५. पत्र : मोतीलाल रायको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय मोतीबाबू,

पण्डित पंचानन तर्करत्नको अपना जवाब[2] साथमें भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

संलग्न : १

श्रीयुत मोतीलाल राय
प्रवर्त्तक संघ
चन्द्रनगर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४४) से।

१. देखिए "पत्र : पंचानन तर्करत्नको", ९-३-१९३३।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

२६६. पत्र : केदारनाथ तिवारीको

२९ मार्च, १९३३

प्रिय तिवारी,

आपका पत्र मिला। मुझे अच्छी तरह याद है कि आपसे और आपकी पत्नीसे दिल्लीकी छोटी लाइनकी गाड़ीमें मेरी मुलाकात हुई थी।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आपने हरिजनों-सहित सभी लोगोंको एक कुएँके उपयोगकी छूट दे दी है। मैं आशा करता हूँ कि हरिजनोंके साथ-साथ आम जनता भी उसका उपयोग कर रही होगी।

आप दोनोंको स्नेहाभिवादन,

हृदयसे आपका,

पण्डित केदारनाथ तिवारी
द्वारा आर० एस० जंगीराम भाटिया
गवर्नमेंट प्रेसके पीछे
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७४९) से।

२६७. पत्र : अमीना जी० कुरैशीको

२९ मार्च, १९३३

चि० अमीना,

आशा है कुरैशीकी गिरफ्तारीसे दुःखी नहीं हुई होगी। ऐसा लगता है कि तूने अपनी पढ़ाई फिर छोड़ दी है। क्या वहीदका[1] बुखार उतर गया? मुझे तो पत्र लिखती ही रहा कर।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६४)से।

१. अमीना कुरैशीके पुत्र।

२६८. एक पत्र

२९ मार्च, १९३३

आश्रममें रहकर आश्रम-जीवनके बजाय किसी अन्य प्रकारका जीवन-यापन करना भी क्या सत्य ही है? मैं चाहता हूँ कि तू इससे छूट जाये। मेरे साथ रहते हुए असत्यका पालन करनेवाले की अपेक्षा मुझसे करोड़ों कोस दूर रहकर सत्यका पालन करनेवाला मुझे अत्यधिक प्रिय है। जैसे तेरी परीक्षा करनेमें एक बार मैं अनुत्तीर्ण हुआ, उसी तरह सम्भव है तेरा अविश्वास करनेमें भी अनुत्तीर्ण हो जाऊँ। ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि मैं अनुत्तीर्ण हो जाऊँ। यदि ऐसा हो जाये तो पहलेकी असफलता भी मिट ही जायेगी न? अभी तो मुझे लगता है कि तू मुझे धोखा ही दे रहा है।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ २०५

२६९. पत्र : नारणदास गांधीको

२९ मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी भेजी भारी डाक आज मिली। पुरुषोत्तमको विस्तारपूर्वक सुझाव देते हुए मैंने एक पत्र लिखा है, जो इसके साथ है। रमाबहनका ऑपरेशन बहुत जल्दी नहीं कराया जा सकता। उसे हरिभाईको[1] अवश्य दिखाना। मेरा खयाल है कि यह ऑपरेशन आसान नहीं होगा। उसकी आवश्यकताके बारेमें भी मुझे सन्देह है। हाथ इतने वर्षोंतक लुंज नहीं हुए तो अब क्यों हो जायेंगे। मुझे तो यह डर एकाएक नहीं लग सकता।

कनु[2] के बारेमें सावधानीसे विचार कर लेना चाहिए। हरिभाई उसे फिर देख लें। मुझे लिखना, वे क्या करते हैं। हाथका दर्द बहुत समयतक चला माना जायेगा। हो सकता है कि मालिश अच्छी तरह न की जाती हो। हाथके उस हिस्सेको धूपसे सेकनेसे भी लाभ हो सकता है। धूप लाल काँचके द्वारा दी जाये तो ज्यादा लाभ होगा, इस सम्बन्धमें मुझे कोई अनुभव नहीं है। हनुमंतरायका अनुभव ही मेरा अनुभव है। डॉ० शर्माकी पुस्तक वहाँ है; पुरुषोत्तम उसे पढ़ डाले और उसमें

१. डॉ० हरिलाल देसाई।
२. नारणदास गांधीके पुत्र।

वर्णित प्रयोगोंको कर देखे। उससे नुकसान होनेकी संभावना नहीं है और हो सकता है कि फायदा हो जाये।

नरहरिके पत्रके विषयमें तुमने जो लिखा है वह मैं समझ गया। तुम्हें जो [सुझाव] ठीक लगते हों उनके सम्बन्धमें नरहरिके साथ तथा अन्य जिम्मेदार आश्रम-वासियोंके साथ चर्चा करना और मुझे लिखना। मैं ऐसा मानता हूँ कि अधिकांश सुझाव तो पसन्द करने लायक लगे होंगे। तुम नरहरिको सन्तोष दे सकोगे, यह भी तो एक बड़ी बात है।

मोहन अब बीमारीसे मुक्त हो गया होगा। उसकी बीमारी काफी लम्बी चली।

'यीशुचरित'[1] पर केवल विद्वानोंकी टीका चाहिए, ऐसी बात नहीं है; पुस्तक तुमने पढ़ी हो तो तुम्हारी भी चाहिए। बहनोंने उसे पढ़ा हो तो उनकी भी चाहिए। पुस्तक सामान्य पाठकोंको ध्यानमें रखकर लिखी गई है, इसलिए वालजी सबका मत जाननेके लिए उत्सुक हैं फिर चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल।

परचुरे शास्त्रीका उपयोग करना शुरू करना। क्याउनके लड़केको कोई काम दे दिया गया? क्या उसे कुछ आता है? क्या अनुशासन मानता है?

शान्ताके बारेमें तुम्हारे दूसरे पत्रकी राह देखूँगा।

केशूके बारेमें संतोकको लिख चुका हूँ। तुम्हें वहाँसे लिखनेकी जरूरत नहीं है। संतोक और दामोदरदास कल मिलनेके लिए आ रहे हैं। केशूका एक पत्र कल आया है; वह लिखता है कि अब शायद वह वहाँ नहीं आयेगा।

धीरू[2] यदि सेवाभावसे स्वयं चित्रकला सीखना चाहे तो शान्तिनिकेतनमें जाकर [आश्रमके] व्रतोंका पालन करे, वहाँ आदर्श विद्यार्थीकी तरह रहे, और जो-कुछ सीखा जा सकता हो उसे सीखे तो वह उत्तम प्रकारकी सेवा कर सकता है। चित्रकला भी दिव्य और आसुरी, सात्विक और राजसिक तथा नैतिक और अनैतिक हो सकती है। धीरूने जो-कुछ लिखा है उसे मैंने अक्षरशः सत्य मान लिया है। यदि चित्रकलाके प्रति उसे इतना अनुराग है तो हमें उसे प्रोत्साहन देना चाहिए। जिस तरह पण्डितजी ने अपनी कला सेवार्थ अर्पण की है और लोगोंको उसका लाभ मिलता है तथा भविष्यमें और ज्यादा मिलेगा वैसा ही चित्रकलाका भी है। चित्रकला मूक संगीत है। विषय-वासनाको प्रेरणा देनेवाले चित्रोंके अपने अनुभवसे हमारे ध्यानमें यह बात आती है कि यदि कोई विषय-वासनाको दूर करनेवाले चित्र बनाये तो उसका प्रभाव जंगलीसे-जंगली मनुष्यपर भी पड़े बिना नहीं रह सकता। ऐसे अनेक प्रसिद्ध चित्र हैं जो इस दृष्टिसे चित्रित किये गये हैं। ऐसे कलाकार बहुत कम होते हैं। आश्रममें से ऐसा कोई कलाकार निकले, तो हम स्वागत ही करेंगे। तुम्हें शायद ज्ञात न हो कि बालकृष्णको[3] इसी दृष्टिसे शिल्पकारकी तालीम देना शुरू किया गया था। उसने कुछ मूर्तियाँ बनाना शुरू भी किया था। अपनी इच्छासे उसने इसे छोड़ दिया। इस सप्ताहके अपने पत्रमें उसने इसका कारण भी बताया है। चित्रकला सीखते हुए धीरू

१. देखिए खण्ड ५१, पृष्ठ २७५-७७।

२. व्रजलाल गांधीके पुत्र।

३. बालकृष्ण भावे, विनोबाके भाई।

का भी यही हाल हो तो कोई परवाह नहीं। शान्तिनिकेतनमें चित्रकला किस तरह सिखाते हैं, यह मैं नहीं जानता। किन्तु भारतमें इस समय यह कला सीखनेके लिए इससे ज्यादा अच्छा कोई दूसरा स्थान नहीं है। साथ ही यह भी है कि धीरूके उदाहरणका अनुसरण करते हुए कोई दूसरा भी ऐसा ही करना चाहे तो हम इसके लिए बहुत जल्दी राजी नहीं हो सकते। धीरूका इस कलाके प्रति कई वर्षोंका अनुराग है, उसका मन निर्मल है, दूसरी तरह भी योग्य मालूम होता है, उसमें आश्रमके नियमोंका पालन करनेकी शक्ति और इच्छा है, फिर वह आश्रममें कई वर्षोंसे है। यह और ऐसा ही बहुत-कुछ उसके पक्षमें कहा जा सकता है। उसके विषयमें यदि मेरी यह धारणा गलत हो तो उसे नहीं भेजा जा सकता और उसके चरित्रके विषयमें यदि थोड़ी भी शंका हो तो उसे नहीं भेजा जा सकता। उसे तभी भेजा जा सकता है जब वह यह सब समझता हो, उसके नाम अपने पत्रमें मैंने जो शर्तें रखी हैं उन्हें ज्ञानपूर्वक स्वीकार करता हो और तुम सब लोगोंको उसकी प्रतिज्ञा पर विश्वास हो। उस स्थितिमें फिर उसे भेजना हमारा धर्म भी होगा, ऐसा मुझे लगता है। अब इस दृष्टिसे तुम सब इस विषयपर विचार करना और निर्णय करना। इस चर्चामें नरहरिको अपने साथ रखना। . . .की[1] घटनाके बाद हमें सावधान रहना है। भयभीत व्यक्तिको हर जगह भयका कारण दिखाई देता है। यदि धीरू मनमें विषय-वासनाओंका सेवन करता होगा, यदि वह विकारोंका शिकार है तो शायद चित्रकला उसके लिए भयंकर वस्तु साबित होगी। ये कलाएँ मोहक तो होती ही हैं। जगत् ही मोहक है। मोहक जगत्की कला मोहक हो, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। किन्तु जिस प्रकार जगत् मोहक होते हुए भी मनुष्यको मोक्ष-प्राप्तिका अवसर देता है और ईश्वरकी महिमाके प्रदर्शनके लिए क्षेत्र प्रस्तुत करता है उसी प्रकार कला भी ऐसा कर सकती है। हजार कलाकारोंमें से कोई एक भक्त भी निकल आता है। नौ सौ निन्यानवे भोगी निकले हैं, यह तो मैं जानता हूँ। यदि धीरूके बारेमें तुम लोगोंका ऐसा विश्वास हो कि वह हजारमें एककी कोटिका है तो उसे अपने आशीर्वाद देना और भेज देना। फिर तो बात आश्रमके और उसके भाग्यके हाथमें है। उसे भजनेका अपना कार्य भी कृष्णार्पण करके सन्तोष मान लेंगे।

यह पत्र मैंने प्रातःकालकी प्रार्थनाके पहले शुरू किया था। अब चार बज रहे हैं और मैं उसे पूरा करता हूँ। अभी प्रार्थनाके लिए दस मिनट बाकी हैं।

बापू

[पुनश्च :]

आनन्दी अब चलने-फिरने लगी है। दो दिनसे मुझसे मिलने चली आती है। तुम्हें लिखे इस पत्रके साथ कुल नौ पत्र हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३४४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. यहाँ नाम छोड़ दिया गया है।

चीज है। वे दम्पतियोंके रूपमें रहते हैं और सदा इसी रूपमें रहते रहेंगे। इसलिए विवाहावस्था और उसके परिणामोंके प्रति असहिष्णुता शायद अनुचित है। आखिर गौतम बुद्ध, ईसा, जरथुस्त्र, मुहम्मद, राम, कृष्ण, सन्त फ्रान्सिस तथा इनके जैसे अन्य असंख्य नर-नारियाँ इसी विवाहावस्थाकी ही तो देन हैं। धर्मका मर्म केवल हम समझते हैं, ऐसा तो नहीं कह सकते न। हम ईश्वरकी लीलाका पार नहीं पा सकते। इसलिए हमें हर कदमपर उदारतासे काम लेनेकी आवश्यकता है। खुद हमें भी हर क्षण दूसरोंकी उदारताकी जरूरत रहती है। करोड़ों लोगोंके लिए वासना और दुःखके जीवनसे मुक्तिका मार्ग विवाह ही है। वेरियर और मेरीने विवाहका विचार त्याग कर अच्छा किया है, लेकिन अगर उन्होंने विवाह कर भी लिया होता तो मैं उन पर फतवा देने नहीं बैठता। उन दोनोंके लिए जितना करना सम्भव है उतनेकी वे पूरी कोशिश कर रहे हैं। दोनों बहादुर और सच्चे हैं। किसीसे भी अधिकसे-अधिक जितना बन सकता है उससे ज्यादाकी अपेक्षा नहीं की जाती। स्वधर्मका (अर्थात् सम्बन्धित व्यक्तिको धर्माधर्मका जो भी सर्वोत्कृष्ट बोध हो तदनुसार उसका) पालन करना पर-धर्मका पालन करनेकी (व्यर्थ) चेष्टासे कहीं अच्छा है। अपने कर्तव्यका पालन करनेवाला भंगी उस ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है जो अपने धर्मके साथ खिलवाड़ कर रहा है। पता नहीं, यह सब स्पष्ट हो पाया या नहीं। मैं तुम्हें यह उपदेश नहीं पिलाना चाहता था। लेकिन तुमने वेरियर और उन बेचारे मृत जुड़वाँ बच्चोंका जो उल्लेख किया वह मुझे रुचा नहीं और मैंने सोचा कि तुम्हें कुछ चेतावनी दे ही दूँ। इसको लेकर बहुत सोच न करना। ये बातें तुममें क्षणिक रूपसे ही आती हैं। तुम्हारी नींव काफी ठोस है और उसपर हवा-बतासका कोई असर नहीं हो सकता। तुमने यह अच्छा किया कि तुम्हारी बातोंकी मुझपर क्या प्रतिक्रिया होगी, इस संकल्प-विकल्पमें पड़े बिना तुमने अपने गुह्यतम विचार मुझपर साफ-साफ प्रकट कर दिये। मैं तो तुम्हें उसी रूपमें जानना चाहता हूँ जैसी कि तुम वास्तवमें हो। और अब यह ५–३० का बिगुल बज चुका है। आज तो तुमको बस इतना ही। शेष बा की चिट्ठीसे जान लेना।

हम सबका स्नेह।

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ६२६८) से; सौजन्य : मीरबहन। जी० एन० ९७३४ से भी

२७२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

३० मार्च, १९३३

प्रिय सतीशबाबू,

आपका इसी २३ तारीखका पत्र मिला। आपका आशय मैं समझ गया। हाँ, बंगालकी अस्पृश्यताका वर्णन एक अधिक बड़े अभिशापके रूपमें करनेके बाद आपने जो वाक्य लिखे, उन्हें भी मैंने देखा ही। उस वर्णनमें और फिर आपने जो बात कही उसमें कोई तर्कसम्मत तारतम्य नहीं था। उसका वर्णन एक बड़े अभिशापके रूपमें करके, आपने पाठकोंको इस बातका संकेत दे दिया कि वहाँकी अस्पृश्यता अधिक भयंकर है, लेकिन संख्याकी दृष्टिसे अस्पृश्यताके विस्तारके बारेमें इससे उनको कोई संकेत नहीं मिलता। फिर, मेरा खयाल है, आपको इस बातका एहसास नहीं है कि अगर अस्पृश्यताके बंगालवाले वर्णनके अर्थमें देखा जाये तो मद्रासकी कुल हिन्दू आबादी के ९० प्रतिशत लोग अस्पृश्य ही होंगे। कारण, बंगालकी अस्पृश्यताके अर्थमें देखनेसे तो वहाँका हर अब्राह्मण ब्राह्मणोंकी दृष्टिमें लगभग अस्पृश्य ही है। क्या आपको यह मालूम है कि अगर कोई अब्राह्मण किसी ब्राह्मणके भोजनको देख भर लेता है तो वह अपवित्र हुआ माना जाता है? इसीलिए मैं इस बात पर इतना आग्रह रखता हूँ कि हम अपने-आपको अपने विरोधीकी स्थितिमें रखकर, उसके तर्क पर उसके दृष्टिकोणसे विचार करें। मेरे खयालसे बंगालकी यह दलील निश्चय ही कुछ मतलब रखती है कि वहाँ बहुत ही मामूली ढंगकी अस्पृश्यता है और असली अस्पृश्यता केवल भंगियों, मेहतरों आदितक ही सीमित है, जो आखिरकार बाहरसे ही आये हैं। यह सच है कि हमें अस्पृश्यताके हर पक्षसे निपटना है, लेकिन उससे हम निपट तभी सकते हैं जब हम जो भी बात कहें, वह बिलकुल संतुलित हो, और यह संतुलन तभी आ सकता है जब हम अपने विरोधियोंकी दलीलोंको जितना उचित है उससे ज्यादा महत्त्व देनेको भी तैयार रहें। अहिंसाकी देवीकी कसौटी बड़ी सख्त है। वह अपने हाथमें अत्यन्त संवेदनशील तराजू लेकर बैठती है और अगर हिंसा या अनुदारताका परमाणु-भर वजन भी पलड़ेपर आ जाता है तो वह उसकी नजरोंसे बच नहीं पाता। हमारी स्थिति बिलकुल निरापद है। इसलिए हमें उनसे लड़नेकी जल्दी करनेकी जरूरत नहीं है। इसका उपयुक्त समय तो तब होगा जब वे हमारी सीमा पर आ जायेंगे। उनका पक्ष चाहे जितना सुदृढ़ हो, जो वे गलत रास्ते चल कर कमजोर पड़ते जा रहे हैं; मगर इसमें हम उनके लिए कर भी क्या सकते हैं। उन्हें खुद ही अपनी गलती देखनी होगी।

पता नहीं, मैं अपनी बात साफ-साफ समझा पाया हूँ या नहीं। न समझा पाया होऊँ, तो आप मुझसे इसकी चर्चा तबतक जारी रखें जबतक या तो मैं आपकी बात न समझ लूँ या आप मेरी न समझ लें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५६) से।

२७३. पत्र : के० केलप्पनको

३० मार्च, १९३३

प्रिय केलप्पन,

आपके पत्रकी राह म बहुत दिनोंसे देख रहा था। अब जाकर मिला। आपको मुझसे इतना इन्तजार तो नहीं करवाना चाहिए। यह मत समझिए कि गुरुवायूरका मामला समाप्त हो गया। जबतक गुरुवायूर ही नहीं, बल्कि हरएक सार्वजनिक मन्दिर के द्वार हरिजनोंके लिए नहीं खुल जाते तबतक वह समाप्त नहीं होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि मैं आपसे, जिसे गुरुवायूरका मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनका केन्द्र बनानेका मुख्य श्रेय प्राप्त है, सम्पर्क बनाये रखूँ। इसलिए आपके समस्त कार्य-कलापकी पृष्ठभूमि गुरुवायूर मन्दिरमें हरिजनोंका प्रवेश होना चाहिए। लोकमत तैयार किया जाना चाहिए। सनातनियोंका हृदय-परिवर्तन करना चाहिए। हम उनके विरोधके बावजूद मन्दिरके द्वार खुलवाना नहीं चाहते; हम चाहते हैं कि उनका हृदय-परिवर्तन किया जाये। यह तभी हो सकता है जब हम शुद्ध और एकनिष्ठ हों, उनके प्रति हमारा व्यवहार विनम्र और शिष्टतापूर्ण हो और उन्हें यह दिखा सकें कि धर्मको अपने लिए जितना मूल्यवान माननेका दावा वे करते हैं, उतना ही मूल्यवान वह हमारे लिए भी है।

सम्मेलनका हाल मालूम हुआ। अब अखिल भारतीय बोर्डके निर्देशका इन्तजार मत कीजिए, बल्कि आप उनकी समितिके सदस्योंके रूपमें जो नाम सुझाते हों उनकी एक सूची बनाकर अखिल भारतीय बोर्डको भेज दीजिए और एक प्रति मुझको भी। समितिके प्रत्येक सदस्यके सम्बन्धमें थोड़ी-थोड़ी जानकारी दे दीजिए।

आश्चर्य है कि आपको 'हरिजन' की प्रति नहीं मिल रही है। मैं ऐसी व्यवस्था करवाऊँगा जिससे आपको मिलती रहे। अभी आपको श्रद्धानन्द आश्रम, पय्योलिके पतेपर भेजी जाती है। अब पता बदल दिया जायेगा। लेकिन आप उक्त पतेपर पूछ अवश्य लें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० केलप्पन
पक्कनारपुरम्, पय्योलि (उ० मलाबार)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५४) से।

२७४. पत्र : विट्ठल एस० पण्डितको

३० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

मुझे आपका २६ तारीखका दिलचस्प पत्र मिला, जिसमें अस्पृश्यता-निवारणके लिए किये गये आपके कार्योंका विवरण है। आप समय-समयपर प्रगतिके बारेमें मुझे सूचित करते रहिए। आपका विशेष मार्गदर्शन करूँ, इसकी आवश्यकता नहीं है, लेकिन मैं ऐसा मानता हूँ कि आप 'हरिजन'के स्तम्भोंका अध्ययन मनोयोगपूर्वक करते होंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत विट्ठल एस० पण्डित
अवैतनिक मन्त्री
आर० डी० हरिजन सेवा संघ
कुडाल (जि० रत्नागिरि)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७५५) से।

२७५. पत्र : एम० एम० अनन्तरावको

३० मार्च, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे क्षमा करें। जाहिर है कि आपका प्रश्न मेरे ध्यानसे उतर गया था। आप हम दोनोंके बीच हुए पत्र-व्यवहारको जिसको भी चाहें, दिखा सकते हैं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत एम० एम० अनन्तराव
सनातन धर्म कार्यालय
४०, ईश्वरदास लाला स्ट्रीट
ट्रिप्लिकेन, मद्रास

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९५७९) से।

२७६. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

३० मार्च, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

तुमने तो मुझे 'हरिजन' के लिए बड़े मार्केकी कहानी[१] दी है। इस सप्ताह वह छप रही है। इससे यह भासित नहीं होता कि तुम भावुक हो, बल्कि ईश्वरकी कृपा है कि इससे यही प्रकट होता है कि तुममें भावना है। जिसमें भावना हो, ऐसा हर व्यक्ति भावुक ही नहीं होता। हमें ऐसी ही आशा करनी चाहिए कि इसके प्रकाशनसे उसकी नौकरी नहीं छूट जायेगी। हमें यह भी आशा रखनी चाहिए कि इस उदाहरणसे लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रहेंगे।

बेचारे शास्त्री और उनकी पत्नीपर तो इधर बुरी गुजरी। दोनों मलेरियामें पड़े हुए थे और शास्त्रीकी सासका भी स्वास्थ्य ठीक नहीं है। लेकिन अब वे काफी बेहतर हैं।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११८) से।

२७७. पत्र : अब्बास तैयबजीको

३० मार्च, १९३३

प्रिय भर्र्र्,

आपका पत्र मिला। काठियावाड़में अब गर्मी पड़ने लगी होगी, लेकिन आशा है, वह आपके लिए बर्दाश्तसे बाहर नहीं रही होगी। चन्दा उगाहनेमें आप इस बार पहलेसे अधिक भाग्यशाली रहे। अगर ऐसा न हुआ होता तो आपकी सफेद दाढ़ीको काला रँगना ही पड़ता। यह सच है कि उससे आप अपनी उम्रसे काफी कम दिखने लगते, लेकिन मीठा-मीठा गप करके कड़वा-कड़वा थू भी तो नहीं किया जा सकता न। मगर खुशीकी बात है कि अब ऐसे किसी परिवर्तनकी जरूरत नहीं, और अब अपनी चाँदी-जैसी सफेद दाढ़ीको बहुत सारे चाँदीके सिक्के बनाते रहने दीजिए।

१. यह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके एक स्नातककी कहानी थी। वह बंगाली युवक दिल्ली नगरपालिकामें स्थायी तौरपर भंगीका काम करता था। कहानी १-४-१९३३ के *हरिजन*में "स्वीपर बाई चॉयस" (स्वेच्छासे भंगी) शीर्षकसे छपी थी।

हाँ, रेहाना मुझसे मिलने आई थी और उसने मुझे एक हरिजन गीत भी सुनाया। उसके लिए जबतक सम्भव हो, उसे यहाँ रहने दीजिए। उसे शान्त वातावरण और ठंडी हवाकी जरूरत है। वहाँ तो उसकी सलाह चाहनेवाले नौजवानोंसे वह घिरी ही रहेगी। लेकिन इतनी सस्ता सेहत लेकर उसे दादीपना नहीं करना है। कमालमियाँको बेहतर बनना चाहिए, और उसे इस बीचवाली स्थितिसे बाहर निकलना ही चाहिए। बेगम हामिद अलीसे मेरा स्नेह कहिए। मैं चाहूँगा कि बने तो वे मईसे पहले आपको मसूरी ले जायें। देवचन्द पारेख लोभी है। आप चन्दा उगाहने आफ्रिका नहीं जा सकते और सिद्धान्ततः भी यह चीज गलत है। बाहरसे पैसा लेकर अस्पृश्यता-विरोधी कार्य चलाना उचित नहीं है। स्थानीय कार्यका खर्च तो स्थानीय उगाही से ही चलना चाहिए। अगर काठियावाड़की इतनी बड़ी आबादी अस्पृश्यता निवारण-कार्यके लिए पर्याप्त पैसा न जुटा सके, तो यह काम न करना ही बेहतर है। और फिर पैसा तो बुनियादी चीज है भी नहीं। बुनियादी चीज तो चरित्र और लगन है। पैसेसे सनातनियोंके हृदय नहीं बदले जा सकते। अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलन खुदाकी खिदमत है। उस खिदमतके लिए आप शैतानकी मदद तो नहीं ले सकते न। इसलिए जहाँतक काठियावाड़के कामका सवाल है, आपको पैसेके लिए काठियावाड़पर ही निर्भर रहना है।

आप सबको हम सबका प्यार।

आपका,
भर्रर्

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९५८४) से।

२७८. पत्र : पी० एन० राजभोजको

३० मार्च, १९३३

प्रिय राजभोज,

आखिरकार तुम आश्रम आ ही गये। अब मैं चाहता हूँ कि तुम आश्रमके बन जाओ। इसलिए तुम मौन परिश्रमसे काम शुरू करो और हरएकके साथ अपनापन महसूस करो।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८२) से।

२७९. पत्र : नारणदास गांधीको

३० मार्च, १९३३

चि० नारणदास,

राजभोजके विषयमें लिखना भूल गया था। राजभोजका खयाल रखना। उससे उसकी जरूरतोंके बारेमें पूछ लेना। उसे आश्रमके सब नियमोंका पालन करना है; सब कार्योंमें भाग लेना है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

२८०. पत्र : अमीना जी० कुरैशीको

३० मार्च, १९३३

चि० अमीना,

सभी लिखते हैं कि तू तो बहुत बहादुरी और धीरज दिखा रही है। इमाम साहबकी कन्या, जिसका पालन-पोषण फीनिक्स और आश्रममें हुआ हो यदि वह ऐसी नहीं निकलेगी तो और कौन निकलेगा? यदि अन्ततक तेरा धीरज बना रहा तो तू तो जीतेगी ही मैं भी जीत जाऊँगा। मैं सदा तेरे सुन्दर स्वास्थ्यकी कामना करता रहा हूँ और तेरे लिए संयम और परहेजगारी माँगता रहा हूँ। तू यह जानती है न कि संयमका अर्थ ही परहेजगारी है? परहेजगारीके बिना खुदापरस्ती नहीं आती। परहेजगारीकी साधनाके लिए ही इमाम साहब मेरे जीवनसाथी बने थे। उनकी इच्छा तुझे परहेजगार देखनेकी ही थी। और ऐसा लगता है कि तू उनकी इच्छा पूरी करेगी।

आशा है, बच्चे सानन्द होंगे।

मैंने तेरे उपचारके बारेमें पुरुषोत्तमको लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६५) से।

२८१. एक पत्र[1]

३० मार्च, १९३३

यह मैं यहीं समझ पाया कि मणिकी सुघड़ता सरदारसे उत्तराधिकारमें मिली है। मणिकी सुघड़ता देखकर मोतीलालजी चकित हो गये थे। आश्रममें जब मैंने उसकी कोठरी मोतीलालजी को दी तो वे बोल उठे, "ऐसी सुघड़ता तो मैंने आनन्द भवनमें भी नहीं देखी।" इसलिए यह तो तू उससे अच्छी तरह सीख लेना। जिसे वह चाहे उसे अपनी सेवासे आप्लावित कर देनेकी उसमें आश्चर्यजनक शक्ति है। निडरतामें तुम लोगोंमें से कुछ बालाएँ उससे स्पर्धा कर सकती हैं इसलिए इस ओर ध्यान नहीं खींच रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–४ : मणिबहेन पटेलने, पृ० ९८

२८२. पत्र : गोपीकान्त चौधरीको

[३१ मार्च, १९३३ के पूर्व][2]

प्रिय भाई गोपीकान्त,

आपका पत्र मिला। कुओंके उपयोगकी छूट सबको दिलवाएँ। मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें जनमत तैयार किया जाये। रोटी-व्यवहार अस्पृश्यता-निवारणका अभिन्न अंग नहीं है। हरिजनोंका छुआ पानी पीनेमें पाप नहीं है — यह मेरा निजी सिद्धान्त-वाक्य है। जब हम अस्पृश्यताको मिटा देना चाहते हैं तो अस्पृश्योंका छुआ पानी पीनेमें कोई पाप नहीं।

वैसे उनका छुआ पानी पीना या न पीना अपनी-अपनी मर्जीकी बात है। अगर जरूरत पड़े तो आप मुझसे शौकसे मिलिए, आपका सदा स्वागत है।

बापूके आशीर्वाद

एक अंग्रेजी समाचार-पत्रकी कतरन (एस० एन० २०७८५) से।

१. साधन-सूत्रमें बताया गया है कि यह पत्र बेलगाँव जेलमें मणिबहन पटेलकी एक संगिनीको लिखा गया था।

२. समाचार-पत्रकी रिपोर्ट ३१ मार्च, १९३३ की है।

२८३. पत्र : होरेस जी० अलेक्जेंडरको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय होरेस,

तुम्हारा पत्र पाकर बेहद खुशी हुई। फिर कभी मनमें उमंग आये तो यहीं कुछ कर गुजरना।

तुम देखोगे कि 'हरिजन' के इस अंकमें मैंने तुम्हारे पत्रके एक महत्त्वपूर्ण अंश का उपयोग किया है।[1] दूसरा महत्त्वपूर्ण अंश 'हरिजन' में डॉ० अम्बेडकर और सनातनियोंके विचारोंके प्रकाशनसे सम्बन्धित है। ऐसा करना बराबर सम्भव नहीं होता। इसपर मैंने बहुत सोचा। पत्रको स्वावलम्बी बनाना, उसमें कोई विज्ञापन न देना, इस आन्दोलनके प्रवर्त्तककी हैसियतसे हरिजनोंसे सम्बन्धित ताजी घटनाओंके बारेमें अपने विचार यथासम्भव अधिकसे-अधिक विस्तारसे देना — इन सबका निर्वाह एक अखबारमें कर पाना लगभग असम्भव हो जाता है। और फिर सनातनियों और अम्बेडकर विचारधाराके लोगोंके विचारोंका प्रकाशन अधिकांश पाठकोंकी दृष्टिसे अनावश्यक था, क्योंकि वे इस प्रश्नके सभी पहलुओंसे परिचित थे और ये सब दैनिक अखबारोंमें प्रकाशित हो चुके थे। तो इस हालतमें वह विदेशी पाठकोंके लिए ही उपयोगी हो सकता था, मगर ऐसे पाठक तो स्वभावतः गिने-चुने ही हैं। वे थोड़े हों या बहुत, उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, और मैं जानता था कि 'हरिजन' में जितनी सामग्री दी जा सकती है उसके अतिरिक्त भी उन्हें काफी साहित्य दिया जा रहा है। और यह अतिरिक्त अध्ययन तो उन्हें करना ही है, चाहे वे 'हरिजन' के माध्यमसे करें या मूल स्रोतोंसे। सो मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा कि उन्हें मूल स्रोतोंसे ही विभिन्न दृष्टिकोणोंकी जानकारी प्राप्त करने देना चाहिए। और मैंने ऐसा किया, इसीलिए 'हरिजन' को स्वावलम्बी बनाना, यहाँतक कि लगभग आरम्भसे ही, सम्भव हो सका है। जब-कभी दूसरे पक्षोंके विचार देना जरूरी हुआ है, मैंने इस बातका बहुत ज्यादा खयाल रखा है कि उन्हें किसी तरहका रंग-मुलम्मा चढ़ाकर पेश न किया जाये। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता।

इसलिए यद्यपि मैं तुम्हारे पत्रके इस अंशके मुताबिक कार्रवाई करनेकी तुम्हारी ख्वाहिश पूरी नहीं कर रहा हूँ, लेकिन तुम यह तो जानते ही हो कि तुम जो भी कहोगे उसका असर अदृश्य रूपसे मेरे मनपर अवश्य होगा, और इसलिए तुम्हें जो भी बात मुझसे कहने लायक लगे, निस्संकोच कहो। तुम-जैसे मित्र और सहयोगी जितनी ही मुक्त और पूर्ण आलोचना करेंगे, मेरा काम उतना ही हलका और अच्छा

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ३१-३-१९३३ के अन्तर्गत उप-शीर्षक "शब्द-जाल नहीं, कोरे तथ्य"।

हो जायेगा, और ऐसी आलोचना अपने-आपमें हरिजन-कार्यमें तुम्हारा एक महत्त्वपूर्ण योग होगा।

यह पत्र सी० एफ० एन्ड्रयूज, जैक हॉयलैंड तथा अन्य लोगोंको भी पढ़नेको देना।

आशा है, अब तुम इतने अच्छे हो गये होगे कि तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें कुछ पूछनेकी भी जरूरत नहीं रह गई है।

तुम सबको हम सबका स्नेह।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १४२०) से।

२८४. पत्र : एलिजाबेथ एफ० हॉवर्डको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

आपके पत्रने मेरे मनको छू लिया। इटारसीमें आश्रम खोलनेके सम्बन्धमें आपकी दी गई जानकारी शिक्षाप्रद है। मुझे उम्मीद है कि संस्थापकगण जब सचमुच वहाँ आ जायेंगे तो मुझसे सम्पर्क बनाये रखेंगे।

अगर आप दक्षिण आफ्रिकामें कोई अन्तर्जातीय बस्ती बसानेका काम शुरू कर सकें तो बड़ा ही अच्छा हो। मैं जानता हूँ कि यह काम कितना कठिन है, लेकिन हम दुर्बल मानव प्राणियोंके लिए जो बात कठिन है वही ईश्वर जब करना चाहता है तो उसके लिए कठिन नहीं रह जाता।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

कुमारी एलिजाबेथ हॉवर्ड
आर्डमूर
बकहर्स्ट हिल
एसेक्स

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६६) से।

२८५. पत्र : जॉन एस० हॉयलैंडको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय हॉयलैंड,

तुम्हारा पत्र मिला। जिम बिन्दुपर होरेस अलेक्जैंडरको लिखा पत्र समाप्त किया है, वहींसे इसे लिख रहा हूँ।

तुमने पूछा है कि हर शुक्रवारको हम जो मूक प्रार्थना करते हैं, उसके लिए क्या आप हरिजनोंके हितकी दृष्टिसे कोई प्रार्थना सुझा सकते हैं। यह पत्र लिखवाते हुए मुझे जो सूझा है, वह इस प्रकार है:

संसारके सबसे अधिक असहाय जनोंकी सेवामें लगे लोग कभी भी सत्यसे रंच-मात्र विचलित न हों और वे जो-कुछ करें वह विनय-भावसे करें, यही तुमसे प्रार्थना है। और तुम उन्हें सब-कुछ तुमको अर्पित करके करनेकी सुबुद्धि दो।

हम सबका स्नेह।

हृदयसे तुम्हारा,

बापू

श्रीयुत जॉन एम० हॉयलैंड
हॉलैंड हाउस
वुडब्रुक
सेली ओक
बर्मिंघम

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४५०९) से; सौजन्य : वुड ब्रुक कॉलेज, बर्मिंघम, और जेसी हॉयलैंड। एस० एन० २०७६५ से भी

२८६. पत्र : कमलादेवीको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय कमलादेवी,

आपका पत्र मिला। १० अप्रैलको आकर मिल लीजिए। उस दिन लगभग २ बजे आपकी प्रतीक्षा करूँगा। मुझे उस समय सुविधा होगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७८६) से।

२८७. पत्र : गर्ट्रूड एस० केलर-चिंगको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय बहन,

तुम्हारा लम्बा पत्र मिला और यह जानकर खुशी हुई कि तुम उस सभामें गई थीं जिसमें श्री एरिवेजका भाषण हुआ था।

तुम्हारे पत्रमें एक बात ऐसी है जो मुझे ठीक नहीं लगती और इसलिए उसके सम्बन्धमें मैं सही बात कहना चाहूँगा। तुमने कहा है: "मेरी जिन्दगी बहुत भाग-दौड़की जिन्दगी है और इसलिए मुझे प्रार्थना और मननके लिए काफी समय नहीं मिलता।" लोग अकसर ऐसा कहते तो हैं, लेकिन बात सही नहीं है, मेरा खयाल है, लैटिनकी यह कहावत अक्षरशः सत्य है कि "श्रम ही प्रार्थना है।" और अगर तुम जो श्रम करो, केवल ईश्वरके लिए करो, उसीको अर्पित कर दो, तो किसी भी काममें भाग-दौड़ या जल्दबाजी जैसी कोई चीज नहीं रह जायेगी। उस हालतमें तो हमें केवल इतना ही करना होता है कि हम अधिकसे-अधिक जितना कर सकें उतना करके निश्चिन्त हो जायें। फिर, बहुत ज्यादा थकावट महसूस नहीं होती। और जब सारा जीवन ही समर्पित हो जाता है तो वह सतत प्रार्थना और मननका जीवन बन जाता है। मननके लिए किसी खास समयकी जरूरत नहीं है। सच्चा मनन तो वही है जो हमारे प्रत्येक कार्यके साथ गुँथा हुआ हो। इसके मर्मको आजमाकर खुद ही देख लो।

तुमने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें पूछा है। तदर्थ धन्यवाद। मैं सचमुच बहुत ठीक हूँ।

श्रीमती गांधी और मीराबाई एक ही जेलमें हैं। वे स्वस्थ और सानन्द हैं।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीमती गर्ट्रूड एस० केलर-चिंग
विला लैवोसियर
लै सिगनल

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७७९) से।

२८८. पत्र : नी० को

३१ मार्च, १९३३

प्रिय नी०,

रामचन्द्रने मुझे बताया है कि उसने किस तरह तुम्हें अपने गाँवके लिए बिदा किया, किस प्रकार रुद्रमणिने इतनी देर कर दी कि उसे ट्रेन न मिल सकी और किस तरह रामचन्द्रको १० रुपये देने पड़े। रेल-भाड़ा किसको देना था? क्या रुद्रमणिको? मुझे उसके सम्बन्धमें उसकी उम्र, शिक्षा, धन्धे आदिके बारेमें पूरी जानकारी भेजना और उससे मुझे पत्र लिखनेको कहना।

तुम्हें यह पत्र रामचन्द्रके दिये पतेपर भेज रहा हूँ।

फिर, रामचन्द्रने यह भी बताया है: "मैंने उससे विशेष रूपसे कहा कि वह लिबासमें आजकी अपेक्षा कहीं अधिक शालीनता बरते और बिलकुल ग्रामीण महिलाकी तरह रहे।" उसका कहना बिलकुल ठीक है। ऐसा कैसे किया जा सकता है, यह तो तुम जानती ही हो। यह सही है कि अलग-अलग देशों और अलग-अलग जन-समुदायोंकी शालीनताकी कल्पना एक-दूसरेसे भिन्न है और अगर हम अपने परिवेशको छोड़कर दूसरोंके परिवेशको अपना लेते हैं तो जब हम अपने परिवेशके अनुकूल होना और वहाँके लोगोंके साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं, जैसा कि तुम हरिजनोंके साथ करना चाहती हो, तो हमें उस परिवेशकी अपेक्षाओंको पूरा करना पड़ता है। मैं जानता हूँ कि यहाँ खर्चका सवाल उठता है। तुम्हारा क्या इरादा है, यह मुझे साफ-साफ और पूरी तरहसे बताना। तुम जो वक्तव्य प्रकाशित करानेवाली थीं उसकी एक प्रति मुझे भेजना।

रामचन्द्रने इससे आगे कहा है: "कृपया उसे बराबर पत्र लिखते रहकर सम्भव हो तो समझाइए कि वह प्रतिदिन कुछ घण्टे मौन रखे और बातचीत कर-करके दुःखी न हो उठे।" इसका मतलब यह हुआ कि तुम बातें करनेमें खूब समय बर्बाद करती रही हो और अगर ऐसा हो तो रामचन्द्रकी चेतावनी फिर सही ही है। इसमें कोई हर्ज नहीं है कि तुम प्रतिदिन कुछ घण्टे मौन रखो। इस बातकी कोशिश करो कि जबतक बिलकुल जरूरी न हो जाये तबतक तुम बातें न करोगी। अपने सेवा-कार्यको ही लोगोंको दिया गया उपदेश, अपनी बातचीत और अपना आनन्द समझो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७७७) से।

२८९. पत्र : रामचन्द्रको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। तुम्हारा कहना बिलकुल ठीक है। मैं नी० देवीको पत्र लिख रहा हूँ। रुद्रमणिके बारेमें और जानकारी दो। वह कौन है, उसकी शिक्षा कितनी है, उसका व्यवसाय क्या है? क्या उसने तुम्हें १० रुपये वापस कर दिये? किरायेके पैसे वह देनेवाला था या नहीं? क्या उसके पास पर्याप्त साधन हैं?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७७८) से।

२९०. पत्र : एडा वेस्टको

३१ मार्च, १९३३

प्रिय देवी,

मुझे खुशी है कि तुम्हें ऐसी जगह रखा गया है, जहाँ तुम्हें सर्दी लगनेकी सम्भावना कम है। म्यूरियलने मुझे बताया है कि किंग्सले हॉलमें तुमने कितना उपयोगी काम किया। तुमसे अन्यथा अपेक्षित भी नहीं है, भले तुम कहीं भी रहो। मुझे आश्चर्य तो तब होता जब उसने इससे भिन्न बात बताई होती। अगले सप्ताह मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। तभी मैं जान पाऊँगा कि नई जगहमें तुम्हें कैसा लगा।

हृदयसे तुम्हारा,

कुमारी देवी वेस्ट
द्वारा – कुमारी ए० पामर
२१८, व्हिपेनडेल रोड
वॉटफोर्ड, हर्ट्स

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०७७५) से।

२९१. पत्र : रमाबहन जोशीको

३१ मार्च, १९३३

चि० रमा,

तू अब भी अपनी बातका हठ करती जान पड़ती है। करती है तो भले कर।

तुमने अमीनाको अपने पास रखकर बहुत अच्छा किया। वह वहाँ खुश रहेगी। उसके बच्चोंको अपने ही बच्चोंके समान मानना।

पढ़ाई तो अच्छी तरह चल रही है न? हाथमें लिया हुआ काम छूटना नहीं चाहिए। बहुत अधिक काम होने पर थोड़ा ही सही किन्तु तुम्हें प्रतिदिन थोड़ा लिखने-पढ़ने और बोलनेका अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

हमें हाथके बारेमें उतावली नहीं करनी चाहिए। मैंने नारणदासको लिखा है। सरदार यहाँसे डॉ० पटेलसे पुछवायेंगे। उनसे कुछ विस्तारसे जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। ऑपरेशनकी बात सुनकर तुम्हें घबराहट तो नहीं हुई न? क्या आनन्दीका ऑपरेशन देखते-देखते नहीं हो गया था? पूरी जानकारी मिल जानेके बाद मैं तुम्हारे बारेमें भी तुरन्त निर्णय कर लूँगा। चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४६) से।

२९२. पत्र : श्री० दा० सातवलेकरको

३१ मार्च, १९३३

भाई सातवलेकर,

आपका पत्र मिला। मुझको तो गोमांस बारेमें जो उत्तर दिया है वह अच्छा लगता है।[1] राजेंद्रलाल मित्र बहुत बड़े विद्वान थे। उनका मृत्यु बहुत वर्षोंके पहले हुआ। मुझको तो किसी सज्जनने पुस्तिका[2] ऐसे ही भेज दी।

१. सातवलेकरजी ने अपने पत्रमें लिखा था कि शास्त्रोंमें जहाँ गो-भक्षणका जिक्र किया गया है, वहाँ 'गो' शब्दका अर्थ गोरस, घी आदिसे है।

२. इस पुस्तकका नाम **बीफ इन ऐंशेंट इंडिया** था; गांधीजी ने सातवलेकरके पास इस पुस्तकको टिप्पणीके लिए भेजा था।

यद्यपि कोई अखबार मराठीमें न निकले तो भी प्रचार कार्यका सर्वथा त्याग भी नहिं होना चाहिये। सकालादि अखबारमें अस्पृश्यता निवारणका समर्थन तो होता ही है न?

आपका,
मोहनदास

पं० सातवलेकर
स्वाध्याय मंडल
औंध
जिला सतारा

पत्रकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० ४७७४) से; सौजन्य: श्री० दा० सातवलेकर

२९३. टिप्पणियाँ

बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक

मद्रासके एक स्नातकने मुझे 'हिन्द स्वराज्य' से निम्नलिखित उद्धरण भेजा है:

बहुसंख्यक जिसे कहें, अल्पसंख्यक उसे मान ही लें, यह तो अधर्म है, अन्ध श्रद्धा है। ऐसे हजारों उदाहरण मिल जायेंगे जिनमें अधिकांश लोगोंका कहा हुआ गलत निकला और जो थोड़ोंने कहा, वही सही निकला। सभी सुधार बहुमतके विरुद्ध खड़े होकर थोड़े-से लोगोंने ही दाखिल कराये हैं। ठगोंकी बस्तीमें ज्यादातर लोग यही कहेंगे कि ठग-विद्या सीखनी ही चाहिए, तो क्या वहाँ रहनेवाला कोई साधु पुरुष भी ठग बन जायेगा? नहीं, नहीं। जब तक यह भ्रम दूर नहीं होता कि अन्यायपूर्ण कानूनको भी मान लेना चाहिए, तबतक हमारी गुलामी दूर नहीं होगी और ऐसे भ्रमको केवल सत्याग्रही व्यक्ति ही दूर कर सकता है।[1]

इसके बाद वे खुद लिखते हैं:

आपके 'हिन्द स्वराज्य' से उद्धृत उपर्युक्त अंशकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करनेकी धृष्टता कर रहा हूँ। इससे हमें यह मालूम होता है कि किसी समय आपका ऐसा विचार था। लेकिन मन्दिर-प्रवेश समस्याके सिलसिले में तो उसे बिलकुल ताकपर रख दिया गया है। क्या हम यह मानें कि आजकी स्थिति उससे भिन्न है जो आपने तब अपना रखी थी? स्पष्ट ही आपने जो स्थिति अपना रखी है वह असंगत है। आशा है, आप इस विषयमें हमारी शंकाका समाधान करेंगे।

१. देखिए खण्ड, पृष्ठ ४९।

किसी लेखकके लेखोंके अंशोंको सन्दर्भसे अलग करके उद्धृत करना उसके साथ अन्याय करना है। इसके अलावा असंगत दिखनेवाली बातोंके लिए कोई सफाई देनेकी भी फिक्र मुझे नहीं करनी चाहिए। इसे तो खुद पाठकोंके ही निर्णयपर छोड़ देना चाहिए। इस प्रसंगमें यह उद्धरण मुझे एक ऐसे सत्यका प्रतिपादन करता प्रतीत होता है जिसकी लोग प्रायः उपेक्षा कर देते हैं। खैर, मैं तो इसके एक-एक शब्दमें विश्वास करता हूँ। मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंसे नियम भंग नहीं होता। उनमें अल्पसंख्यकोंपर कोई बन्धन नहीं डाला गया है, उन्हें किसी बातके लिए मजबूर नहीं किया गया है। लेकिन अगर बहुसंख्यक हिस्सा अल्पसंख्यकोंसे जबरन अपनी बात नहीं मनवा सकता, तो अल्पसंख्यक लोग भी बहुसंख्यकोंको अपनी इच्छा स्वीकार करनेको बाध्य नहीं कर सकते। किन्तु स्वाभाविक चीज यही है कि जहाँ-कहीं बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकोंके बीच कोई विवाद हो वहाँ अल्पसंख्यक लोग बहुसंख्यकोंके आचरणके औचित्य को स्वीकार किये बिना उन्हें अपनी राह चलने दें; और अगर वे उन्हें गलत मानते हों तो उनके साथ सहयोग न करें। मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंमें से एकमें यही किया गया है — इससे अधिक कुछ नहीं। लेकिन मुझे तो खुद ही अल्पसंख्यकोंके अधिकारों और इच्छाओंकी बहुत अधिक चिन्ता है — कारण भले ही केवल इतना हो कि मैं सदा — कमसे-कम शुरूमें — अल्पसंख्यकोंमें ही शामिल रहा हूँ। इसलिए, जैसा कि पाठकोंको मालूम होना चाहिए, मैंने एक ऐसा रास्ता सुझाया जिससे अल्पसंख्यक लोग भी अपनी इच्छाओंको पूरा करवा सकें। दूसरे विधेयकमें किसीसे कोई अधिकार छीना नहीं गया है। वह तो अस्पृश्यताके प्रश्नको दीवानी कानूनके क्षेत्रसे अलग-भर कर देता है। वह किसीकी अन्तरात्मा या अपने धार्मिक विधि-विधानोंके पालनके आड़े नहीं आता। सच तो यह है कि इन विधेयकोंमें सभीके विचारोंको संरक्षण देनेका खयाल रखा गया है और एकमें यह व्यवस्था की गई है कि मतभेद होनेकी स्थितिमें क्या करना चाहिए। यहाँ मुझे 'हिन्द स्वराज्य'से उद्धृत अंशमें प्रतिपादित नियमके भंग होनेकी कोई बात दिखाई नहीं देती। उसमें यह दिखाया गया है कि अल्पसंख्यक लोग अपनी रक्षा कैसे कर सकते हैं।

शब्द-जाल नहीं, कोरे तथ्य

मैंने एक अंग्रेज मित्रसे[1] 'हरिजन'में सुधारके लिए सुझाव माँगे थे। उन्होंने एक लम्बा और ज्ञानवर्धक पत्र लिखा है। अस्पृश्यता-विरोधी कार्यकर्ताओंके मार्ग-दर्शनके लिए उसका एक अंश मैं नीचे दे रहा हूँ :

> **जो काम किये गये, जितनी प्रगति हुई, उसका सप्ताह प्रति-सप्ताह विवरण दिया जाना मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण लगता है। इसमें केवल मोटी रूपरेखा देनेके बजाय कभी-कभी इसे विस्तृत ढंगसे प्रस्तुत किया जा सकता तो कितना अच्छा होता। . . . मेरे मनमें यह विचार आता रहा है कि क्या नई संस्था यत्र-तत्र स्थानीय तौर पर सर्वेक्षण करके उनके परिणाम प्रकाशित करेगी। विवरणमें**

१. सम्भवतः होरेस जी० अलेक्जेंडर; देखिए "पत्र: होरेस जी० अलेक्जेंडरको", ३१-३-१९३३।

मैं तो इस तरहकी बातें पढ़ना चाहूँगाः . . . ताल्लुकेमें पिछले पखवाड़े इस संस्थाके एक सदस्य द्वारा किये गये सर्वेक्षणके अनुसार गाँवोंके २५ कुओंका उपयोग सभी जातियोंके लोग बिना किसी भेद-भावके कर रहे हैं। इनमें से १२ के उपयोगकी सुविधा तो हरिजनोंको पिछले सितम्बर महीनेसे मिली है। लेकिन अब भी गाँवोंमें १८ कुएँ ऐसे हैं जिनका उपयोग हरिजनोंको नहीं करने दिया जाता। मन्दिरोंसे सम्बन्धित आँकड़े . . . हैं आदि, आदि।

बेशक मुझे यह मालूम नहीं है कि अभी आपके पास ऐसे कामके लिए पर्याप्त स्वयंसेवक हैं या नहीं। स्वभावतः वे सर्वेक्षणके साथ-साथ प्रचार-कार्य भी करेंगे। आप तो जानते ही हैं कि हम ब्रिटेनवाले शब्द-जालके बजाय कोरे तथ्योंको पसन्द करते हैं, या कमसे-कम अपने बारेमें हमारा खयाल ऐसा ही है।

मैं ऐसा सोचनेकी धृष्टता करता हूँ कि केवल ब्रिटेनवालोंके साथ ही ऐसी बात नहीं है कि वे शब्द-जालके बजाय कोरे तथ्योंको अर्थात् कथनीके बजाय करनीको पसन्द करते हैं। हरएक यही देखना चाहता है कि क्या-क्या काम किये गये हैं। कभी-कभी कामके बाद उसे समझानेके लिए शब्दोंकी भी जरूरत पड़ सकती है। कितने और क्या-क्या काम किये गये हैं और सनातनियों तथा हरिजनों, दोनोंके साथ पेश आनेमें क्या-क्या कठिनाइयाँ सामने आईं, इसकी जितनी ही अधिक जानकारी प्राप्त होगी, 'हरिजन' उतना ही उपयोगी बनता जायेगा। पत्र-लेखक द्वारा सुझाये गये ढंगके सर्वेक्षण करनेमें कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। हमें किसीसे कुछ छिपाना नहीं है। अगर हम यह देखें कि किसी खास इलाकेमें एक सौ कुएँ हैं और हरिजनोंको उनमें से केवल एकके ही उपयोगकी सुविधा मिली है, तो हमें इस तथ्यको स्वीकार करनेमें शर्म महसूस नहीं करनी चाहिए। शर्मका विषय तो यह है कि ऐसी स्थिति कायम है। उसे स्वीकार करनेका मतलब उस स्थितिके अन्तका आरम्भ होगा। कठिनाइयोंको जब हम भली-भाँति जानेंगे, तभी हम उनसे निपट सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

२९४. प्रचार बनाम रचना[1]

कुछ दिन पहले हमने हरिजनोद्धारक संगठनोंकी एक हरिजन द्वारा की गई तीव्र आलोचना[1] प्रकाशित की थी। उसको लेकर अब बहुत-सारे दिलचस्प पत्र आ रहे हैं।

उस आलोचना और उसकी प्रतिक्रियास्वरूप आये पत्रोंको ध्यानमें रखते हुए प्रचार और रचनाके पक्ष-विपक्षपर विचार करना तथा यह जान लेना आवश्यक है कि रचनाका ठीक-ठीक अर्थ क्या है।

अस्पृश्यता-विरोधी आन्दोलनके सिलसिलेमें प्रचारके लिए सवर्णोंके बीच इस विषयपर लिखे साहित्यका तत्परतासे वितरण किया जाता रहा है, अस्पृश्यता-सम्बन्धी

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०१-३।

जानकारी दी जाती रही है और उनके बीच सभाएँ भी की जाती रही हैं। गुरुवायूरका जनमत-संग्रह तत्त्वतः इसी प्रकारका प्रचार था। प्रचारका एक और तरीका यह रहा है कि हरिजनोंके सम्मेलन आदि करके उन्हें यह बताया जाता रहा है कि सवर्ण हिन्दू क्या कर रहे हैं और आन्तरिक सुधारके लिए — जैसे कि सफाईके नियमोंके पालन तथा मृत पशुओंके मांस-भक्षण और अन्य अहिन्दू आचरणोंके त्यागके लिए — स्वयं उनसे क्या अपेक्षाएँ की जाती हैं।

ऐसा प्रचार, निस्सन्देह, आवश्यक है। हम किसी प्रकारका विद्वेष पैदा किये विना और झगड़ा खड़ा किये विना ऐसा प्रचार जितना करें उतना ही अच्छा है। उधर सनातनी लोग अपनेको संगठित कर रहे हैं और ऐसा मान रहे हैं कि सुधारकों की प्रवृत्तियोंसे हिन्दू धर्म खतरेमें पड़ गया है अतः सुधारकोंको सावधानीसे काम लेना चाहिए। हम सनातनियोंको नाराज नहीं करना चाहते। इसलिए जहाँ-कहीं वे लोग बहुत क्षुब्ध अवस्थामें हों वहाँ सुधारक लोग अपनी सभाएँ न करें तो अच्छा। हर तरहके झूठ और अतिशयोक्तिका प्रतिवाद करना उनका कर्तव्य है और खुद उन्हें इस विषयमें अत्यन्त सावधान रहना है कि वे क्या बोलते, लिखते या करते हैं। झूठ किसी उद्देश्यकी सिद्धिमें कभी सहायक नहीं होगा और धर्मकी सिद्धिमें तो निश्चय ही नहीं।

ऐसे स्वच्छ प्रचारको स्वावलम्बी भी होना चाहिए। यदि हम इसे स्वावलम्बी बनानेका आग्रह रखेंगे तो यह पवित्र और मर्यादित रहेगा तथा अधिकसे-अधिक प्रभावकारी हो सकेगा। पर्चों तथा अन्य साहित्यकी कीमत मिलनी ही चाहिए और इतनी मिलनी चाहिए जिससे उसीमें से यात्रा वगैरहका भी खर्च निकल आये। पाठक यह न समझें कि मैं विना किसी अनुभवके यह सब लिख रहा हूँ। इसके विपरीत, मैं जो-कुछ कह रहा हूँ वह उस समयके मेरे व्यापक अनुभवपर आधारित है जब मैं 'महात्मा' नहीं बना था और आज जिस परिवेशमें ईश्वरने मुझे रख दिया है उसके लिए मैं परिचित भी नहीं था। समय और पैसे (जो एक ही चीज हैं) के सम्बन्धमें मितव्ययितासे काम लेना मेरा सहज स्वभाव था। जिसका अपने उद्देश्यकी सचाईमें विश्वास है उसे सत्यमय प्रचारके इस सुनहले नियमको लागू करना बहुत आसान लगेगा।

मगर इसका मतलब यह नहीं कि पाठकोंको बराबर पर्चे वगैरह खरीदकर ही पढ़ने चाहिए। यह तो आदर्श स्थिति होगी। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं कि केन्द्रीय संस्था कोई खर्च उठाती ही नहीं। जिन स्थानीय संस्थाओंको पर्चोंकी जरूरत हो उन्हें उनके लिए केन्द्रीय संस्थाको कीमत देनी चाहिए। उधर इन एजेंसियों को भी अपना खर्च निकाल लेनेकी फिक्र करनी चाहिए — कुछ तो पाठकोंसे और कुछ ऐसे पर्चोंके वितरणमें रुचि रखनेवाले धनाढ्य लोगोंसे। इस तरह प्रचारके खर्चेका समुचित वितरण हो जायेगा और वह किसी एक ही के सिर जाकर भारस्वरूप न हो जायेगा। खर्चेमें इस तरह हाथ बँटाया जाना प्रचारकी शक्ति और लोकप्रियताका एक यथेष्ट सूचक होगा। 'हरिजन'के विभिन्न संस्करणोंका उद्देश्य निश्चय ही प्रचार ही है। या तो उन्हें स्वावलम्बी होना है या फिर बन्द हो जाना है। अंग्रेजी और

बंगला संस्करण तो स्वावलम्बी हो भी चुके हैं। हिन्दी संस्करण अब भी इस दिशामें प्रयत्नशील है। तमिल संस्करणका प्रकाशन श्रीयुत गणेशन करते हैं और उसके लिए प्रान्तीय संगठनको कुछ खर्च नहीं करना पड़ता। इन संस्करणोंके फलस्वरूप स्थानीय संस्थाओंके लिए यह आसान हो गया है कि वे अधिक या थोड़े-बहुत खर्चेके बिना भी अपना प्रचार-कार्य चला सकें। 'हरिजन' के विभिन्न संस्करणोंमें सभी रोचक और शिक्षात्मक जानकारी उन्हें मिल सकती है। यह उनका मुखपत्र है।

अब रहा यहाँ-वहाँ जाकर भाषण देनेके सिलसिलेमें होनेवाला यात्रा-व्यय। कहनेकी जरूरत नहीं कि ऐसा काम करनेवाले सभी लोगोंको स्वयंसेवक होना चाहिए। अगर वे पैसेवाले होते हैं तो अपना यात्रा-व्यय स्वयं उठाते हैं। जहाँ ऐसा न हो सके वहाँ यह खर्च भाषणकर्त्ताओंको आमन्त्रित करनेवाली संस्थाओंको उठाना चाहिए। सामान्य नियम तो यह है कि इस प्रयोजनके लिए गठित स्वागत-समितियाँ विशेष चन्दा एकत्र करें और सारा खर्च वहींका-वहीं चुका दे। इस प्रकार स्थायी संगठन, चाहे वे केन्द्रीय हों या स्थानीय, केवल व्याख्यान सुलभ कराते हैं, मार्ग-दर्शन करते हैं और अपने नाम तथा प्रभावका लाभ उठानेकी सुविधा देते हैं, लेकिन आम तौरपर वे कोई खर्च नहीं उठाते।

इस तरहसे देखें तो प्रबन्ध-व्ययमें सिर्फ कर्मचारियोंका खर्च, मकान-किराया, लिखनेका सामान और मन्त्रीका यात्रा-व्यय ही बच रहता है। मुख्य पदाधिकारी तो प्रायः अवैतनिक ही होते हैं या फिर ऐसे स्वयंसेवक होते हैं जो केवल निर्वाहखर्च लेते हैं और बराबर अपने बाजार-भावसे कम पर ही काम करते हैं। और अगर आम कर्मचारियोंमें से सबके-सब या जहाँ तक सम्भव हो, हरिजन ही हों तब तो सवर्ण हिन्दुओंकी जेबोंमें बहुत कम पैसा जायेगा, निश्चय ही वह सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा उगाही गई राशियोंके दस प्रतिशत तक भी नहीं पहुँच पायेगा। इस प्रकार, पंजाब प्रान्तीय शाखाके लाला मोहनलाल कहते हैं :

> **प्रबन्ध-व्ययके बारेमें मुझे संक्षेपमें यह कहना है कि चपरासी और क्लर्कपर होनेवाले ५० रुपये मासिक खर्चके अलावा पंजाब बोर्डको स्थायी अथवा अस्थायी ढंगका भी कोई खर्च नहीं उठाना पड़ा है। मैं इस संस्थाका महामन्त्री हूँ, लेकिन मुझे अपने भत्ते लोक सेवक मण्डलसे मिलते हैं, जिसका मैं आजीवन सदस्य हूँ, मेरा खयाल है, प्रान्तीय संगठनोंको चलानेके लिए कमसे-कम इतने ही कर्मचारियोंकी आवश्यकता है।**

ऊपर सुझाई योजनाके अनुसार चन्देकी अधिकांश राशियाँ रचनात्मक कार्योंके लिए — जैसे कि हरिजनोंके लिए प्रारम्भिक पाठशालाएँ चलाने, छात्रवृत्तियाँ देने, उन्हें कुओं आदिके उपयोगकी सुविधा दिलानेके लिए — उपलब्ध रहेंगी। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि वैतनिक कर्मचारियोंमें से अधिकांश हरिजन ही हों या फिर ऐसे सवर्ण हिन्दू स्वयंसेवक हों जिन्होंने अपनी सेवाएँ मुफ्त या बाजार-भावसे कम पर अर्पित की हों। लेकिन हमारा लक्ष्य यह अवश्य होना चाहिए कि हम सभी सवर्ण हिन्दू कर्मचारियोंके स्थानपर हरिजनोंको भरती करें। फिर इस बातकी पूरी सम्भावना

रहेगी कि चन्देकी राशियोंके दस प्रतिशतके अलावा और सारा पैसा हरिजनोंके हाथोंमें चला जाये। और इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि यह हरिजनों और सवर्ण हिन्दुओं, दोनोंके लिए सबसे अच्छा और सबसे प्रभावकारी प्रचार होगा? सवर्ण हिन्दू स्वयंसेवकों द्वारा किये गये मूक, प्रभावकारी और गरिमामय कार्य सवर्ण हिन्दुओंके हृदयोंको प्रभावित किये बिना नहीं रहेंगे और फलतः समाजमें हरिजनोंका दर्जा ऊपर उठेगा। और कोई कारण नहीं कि सवर्ण हिन्दुओंमें से इस तरहके हजारों युवा-युवतियाँ आगे आकर उन लोगोंके बीच उदात्त सेवा-कार्य करें जिनकी हमारा समाज अनेक पीढ़ियोंसे निष्ठुरतापूर्वक उपेक्षा करता आया है। क्या हमारे बीच ऐसे दृढ़व्रती, त्यागवीर हैं? इन पृष्ठोंमें मैं पहले ही बता चुका हूँ कि इसके लिए कोई बहुत अधिक पढ़े-लिखे लोगोंकी जरूरत नहीं है। हमें तो ऐसे साहसी, दृढ़ आस्थावान और चरित्रबलवाले पुरुष और स्त्रियाँ चाहिए जिन्हें दुनियाका कोई भी प्रलोभन डिगा न सके।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-४-१९३३

२९५. विद्यार्थी और छुट्टियाँ

देहरादूनसे एक विद्यार्थीका हिन्दीमें लिखा पत्र मिला है। उसका सार इस प्रकार है:

> हमारे कालेजके छात्रावासमें अबतक भंगी हमारी जूठन खाते रहे हैं। परन्तु जबसे जागृति हुई है हमने यह रिवाज बन्द कर दिया है और हम उन्हें स्वच्छ चपातियाँ और दाल देते हैं। इससे हरिजन असन्तुष्ट हैं। जूठनमें उन्हें कुछ घी और व्यंजन मिल जाते थे। विद्यार्थी ये चीजें हरिजनोंके लिए अलग नहीं रख सकते थे। और यह कठिनाई भी है कि हमने जो नया रिवाज अपनाया है उसपर हम दृढ़ रह सकते हैं, मगर हरिजन जाति-भोजों वगैराकी जूठन लेना जारी रखेंगे। अब क्या किया जाये? और जब आप इस प्रश्नका उत्तर दें तो साथ ही मैं आपसे यह भी जानना चाहूँगा कि हमारी छुट्टियाँ जो जल्दी ही आनेवाली हैं, उनका हम उत्तम उपयोग कैसे करें?

पत्र-लेखकने जो कठिनाई बताई है वह वास्तविक है। हरिजनोंको जूठनकी ऐसी आदत पड़ गई है कि वे न केवल उसमें कोई असम्मान नहीं मानते, बल्कि उसकी आशा लगाये रहते हैं। उन्हें जूठन न मिले तो इसे वे निश्चित हानि समझेंगे। परन्तु इस दुःखद सत्यसे यही प्रकट होता है कि हरिजन और स्वर्ण हिन्दू दोनोंका कितना पतन हो गया है। विद्यार्थियोंको इस बातकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं कि दूसरे स्थानोंपर क्या होता है। उनके लिए पहली चीज सही रास्तेपर होना है और मैं उन्हें सुझाव दूँगा कि उनके लिए जो खाना आम तौरपर बनता है उसमें से एक जुदा भाग वे निश्चयपूर्वक मेहतरोंके लिए अलग रख दिया करें। देहरादूनके विद्यार्थियोंने

खर्चका प्रश्न उठाया है। मुझे भारत-भरके छात्रावास-जीवनका कुछ ज्ञान है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि विद्यार्थी आम तौरपर व्यंजनों और विलासकी वस्तुओंपर जितना चाहिए उससे कहीं अधिक व्यय करते हैं। मुझे यह भी मालूम है कि वहुत-से विद्यार्थी अपनी थालीमें वहुत-सी जूठन न छोड़ना शानके खिलाफ समझते हैं। मेरा उनसे यह कहना है कि अपनी थालीमें कुछ भी जूठन छोड़ना ही शानके खिलाफ वात है और गरीवोंकी अवहेलनाका चिह्न है। किसीको भी — खास तौरपर विद्यार्थियोंको — यह हक नहीं है कि वे जितना आसानीसे खाया जा सके उससे ज्यादा थालीमें लें। एक विद्यार्थीका यह काम नहीं है कि वह व्यंजनों और विलासकी वस्तुओंकी संख्या वढ़ाये। विद्यार्थी-जीवन हर बातमें संयमका अभ्यास करनेके लिए है और यदि वे संयमका तरीका अपनायें और अपनी थालियोंमें कुछ जूठन न छोड़नेकी स्वच्छ आदत डाल लें, तो वे देखेंगे कि अपने लिए बने हुए मामूली खानेमें से अपने मेहतरोंके लिए उदारतापूर्वक एक भाग अलग रख देनेके बावजूद उनके खर्चमें कुछ बचत ही हो जायेगी।

और फिर इतना करनेके वाद मैं उनसे आशा रखूँगा कि वे हरिजनोंके साथ अपने सगे भाइयों-जैसा वरताव रखें, उनसे प्रेमपूर्वक वोलें और बतायें कि दूसरोंकी थालीकी जूठन खानेकी गन्दी आदत छोड़ देना और अपने जीवनमें दूसरे सुधार करना उनके लिए क्यों जरूरी है। रही वात विद्यार्थियोंके छुट्टियोंका उपयोग करनेकी, सो यदि वे उत्साहसे काम हाथमें लें तो वेशक वहुत-से काम कर सकते हैं। उनमें से कुछ मैं गिना देता हूँ :

१. छुट्टियोंतक के लिए छोटा-सा सुकल्पित शिक्षा-क्रम बनाकर रात और दिनकी पाठशालाएँ चलाना।

२. हरिजन-मुहल्लोंमें जाकर उनकी सफाई करना और हरिजन लोग मदद दें तो ले लेना।

३. हरिजन-वालकोंको सैरके लिए ले जाना, उन्हें अपने गाँवोंके नजदीकके दृश्य दिखाना, उन्हें प्रकृतिका अध्ययन करना सिखाना, आसपासकी चीजोंमें आम तौरपर उनकी दिलचस्पी पैदा करना और वातों-ही-वातोंमें उन्हें भूगोल-इतिहासकी कामचलाऊ जानकारी देना।

४. उन्हें 'रामायण' और 'महाभारत' की सरल कथाएँ पढ़कर सुनाना।

५. सरल भजन सिखाना।

६. हरिजन लड़कोंके शरीरपर जहाँ भी मैल पाया जाये वह सब साफ कर देना और बड़ों तथा बच्चों, दोनोंको स्वास्थ्य-विज्ञानके सरल पाठ सिखाना।

७. चुने हुए क्षेत्रोंमें हरिजनोंकी जनगणना करना और उनकी स्थितिकी विस्तृत जानकारी इकट्ठी करना।

८. बीमार हरिजनोंको डॉक्टरी सहायता पहुँचाना।

हरिजनोंमें क्या-क्या किया जा सकता है, उसका यह एक नमूना है। यह जल्दी-जल्दीमें बनाई हुई सूची है, परन्तु मुझे सन्देह नहीं कि विचारशील विद्यार्थी इसमें बहुत-सी बातें बढ़ा लेगा।

मैंने अभीतक अपना ध्यान हरिजनोंकी सेवा तक सीमित रखा है, परन्तु सवर्णोंकी भी एक सेवा करनी है, जो कम जरूरी नहीं है। सवर्ण कैसे भी हों, इसकी परवाह न करके विद्यार्थी अकसर अत्यन्त कोमल ढंगसे उनमें अस्पृश्यता-निवारणका सन्देश पहुँचा सकते हैं। इतना अधिक अज्ञान फैला हुआ है जिसे प्रामाणिक सत्साहित्य विवेकपूर्वक वितरित करके आसानीसे दूर किया जा सकता है। विद्यार्थी अछूतपन मिटाने और न मिटानेवालों की सूची तैयार कर सकते हैं और उसे तैयार करते समय वे ऐसे कुओं, पाठशालाओं, ताल-तलैयों और मन्दिरोंको दर्ज कर सकते हैं, जो हरिजनोंके लिए खुले हैं और जो नहीं खुले हैं।

यदि ये सब काम वे ढंगसे और लगातार करेंगे, तो उन्हें आश्चर्यजनक परिणाम दिखाई देंगे। हरएक विद्यार्थीको एक नोटबुक रखनी चाहिए, जिसमें उसे अपना काम ब्योरेवार दर्ज करना चाहिए। और छुट्टियोंके अन्तमें अपने कामकी एक सर्वग्राही किन्तु संक्षिप्त रिपोर्ट तैयार करके प्रान्तीय हरिजन सेवक संघको भेजी जा सकती है। यहाँ दिये गये सुझावोंमें से कुछ या तमामको दूसरे विद्यार्थी ग्रहण करें या न करें, मैं अपने पत्र-लेखकसे यह आशा रखूँगा कि जो-कुछ उसने और उसके साथियोंने किया हो उसकी रिपोर्ट मुझे भेज दें।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-४-१९३३

२९६. 'यह संघर्ष आवश्यक है'

बॉयड टकरके एक पत्रके उत्तरमें धर्माचरणके लिए मन्दिरों, गिरजों और मस-जिदोंके महत्त्वपर मैंने एक पत्र[1] लिखा था। उसे पढ़कर गुरुदेवने मुझे जो ज्ञानवर्धक पत्र लिखा है, मैं मानता हूँ कि पाठकोंको भी वह बहुत पसन्द आयेगा। पत्र निम्न प्रकार है:

प्रिय महात्माजी,

कहनेकी जरूरत नहीं कि किसी एक वर्गको शोषणकी सुविधा प्रदान करनेके विशेष उद्देश्यसे ईश्वरको ईंट और गारेकी दीवारोंमें कैद करके रखने का विचार मुझे तनिक भी पसन्द नहीं है। मेरा यह प्रबल विश्वास है कि निश्छल-हृदय लोग समस्त कृत्रिम व्यवधानोंसे रहित, उन्मुक्त परिवेशमें खुले आकाशके नीचे भी ईश्वरकी उपस्थितिका अनुभव कर सकते हैं। बंगालमें हम ऐसे एक सम्प्रदायको जानते हैं। उसके अनुयायी अशिक्षित हैं, उनपर ब्राह्मण-परम्पराओंका कोई प्रभाव नहीं है, उन्हें चाहे जैसे उपासना करनेकी स्वतन्त्रता है और उनका उपासनाका ढंग अत्यन्त सार्वभौमिक है। उनके लिए

१. गांधीजी के इस पत्रके पाठके लिए देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०९-१०। देखिए "पत्र : बॉयड टकरको" २३-३-१९३३ भी।

मन्दिर-प्रवेश निषिद्ध रहा है, इसीलिए उन्हें भगवत्-उपासनाकी ऐसी विशुद्ध प्रणाली हाथ लगी।

ईश्वरकी पारम्परिक कल्पना और रूढ़िगत उपासनाविधियोंमें धार्मिक रीति-रिवाजोंके नैतिक महत्त्वपर कोई जोर नहीं दिया जाता। उनका असली महत्त्व इस बातमें निहित है कि उनके कारण उपासक प्रचलित रीति-परम्पराका अनुसरण करते हैं, जिससे उन्हें एक तरहकी कल्पित पवित्रता और शास्त्रानुमोदित कर्म करनेके सन्तोषका बोध होता है। जब हम न्याय और मानवताके नामपर उनसे तर्क करते हैं तो इसकी बिलकुल उपेक्षा कर दी जाती है; क्योंकि, जैसा मैं कह चुका हूँ, इस चीजका नैतिक पक्ष उनके लिए कोई महत्त्व नहीं रखता और आप तो जानते ही हैं कि हमारे बहुत-से साम्प्रदायिक विधि-विधानोंसे ऐसे रीति-रिवाज और उपाख्यान जुड़े हुए हैं जो बहुत ही निकृष्ट और बुद्धि-विरुद्ध हैं।

मन्दिरोंमें जाकर पूजा-उपासना करनेकी एक धार्मिक परम्परा रही है और ऐसी परम्पराएँ नैतिक दृष्टिसे भले ही गलत और हानिकर हों किन्तु उनकी एकदम उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। यहाँ सवाल उनको बदलनेका, उनकी व्याप्ति और स्वरूपको विस्तृत करनेका उठता है। कौनसे तरीके अपनाये जायें, इसपर मतभेद हो सकता है। परम्पराओंके अभिरक्षकोंके दृष्टिकोणसे देखें तो वे उन्हें यथावत् सुरक्षित रखने और मन्दिरोंमें मूर्ति-पूजाके अधिकारको कुछ विशेष लोगोंके एक वर्गतक ही सीमित रखनेमें अपनी सम्पत्तिकी रक्षाकी सहज भावनासे काम कर रहे हैं। वे न केवल ईसाइयों तथा मुसलमानों को, बल्कि अपने ही सहधर्मियोंके कुछ हिस्सोंको भी पूजाका यह अधिकार देनेको तैयार नहीं हैं। उन्होंने उसे फौलादी सन्दूकचीमें बन्द कर रखा है। उनका यह आचरण उस परम्परागत धर्मके अनुसार ही है जो उन्हें ऐसी स्वतन्त्रता देता है, बल्कि एक तरहसे उनके लिए ऐसा करनेका विधान करता है। इन नैतिक दृष्टिसे गलत परम्पराओंसे निपटनेके लिए कोई सुधारक बल-प्रयोग तो नहीं कर सकता, फिर भी दूसरी गलत और हानिप्रद प्रथाओंकी तरह इनके खिलाफ लड़नेमें भी उसे नैतिक शक्तिका प्रयोग और इन्हें निरन्तर सुधारनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। यह संघर्ष आवश्यक है। मैं नहीं समझता कि टकरने इस बातको स्पष्ट किया है।

जहाँतक शान्तिनिकेतनके प्रार्थना-भवनका सम्बन्ध है, उसमें सभी धर्मोंके अनुयायी प्रवेश कर सकते हैं। जिस प्रकार इसके दरवाजे किसीके लिए भी बन्द नहीं हैं, उसी प्रकार यहाँ पूजाका जो सरल-सीधा स्वरूप है उसमें ऐसा कुछ नहीं है जिसमें विभिन्न धर्मोंके अनुयायी शामिल न हो सकें। हमारी धर्म-चर्चा पेड़ोंकी छायामें भी मजेमें चल सकती थी। इससे उसकी महत्ता

और पवित्रतामें कोई कमी नहीं आती, बल्कि ऐसे प्राकृतिक परिवेशमें उनमें वृद्धि ही होती। मगर आबोहवा और मौसमकी अड़चनें इसके आड़े आती हैं। अन्यथा मैं नहीं समझता कि प्रार्थना और ईश्वरोपासनाके लिए पृथक् भवन सचमुच आवश्यक हैं।

मैंने 'हरिजन' के लिए अपनी हालकी एक बंगला कविताका[1] [अंग्रेजी] अनुवाद भेजा है। मुझे आशा है कि इसकी भावना 'हरिजन' के आदर्शोंसे मेल खाती होगी। 'हरिजन' को मैं बड़े आनन्द और रुचिके साथ पढ़ता हूँ। भारतके लिए इससे अधिक आशामय भविष्यका संकेत और क्या हो सकता है कि उस महान् उपवासके परिणामस्वरूप यहाँकी दलित मानवतामें जागृति आ रही है।

स्नेहाभिवादन-सहित,

हृदयसे आपका,
रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

२९७. काबुली जुल्म[2]

हरिजनोंको बर्दाश्त करनेकी शिक्षा देना ही काफी नहीं है। इसमें एक और तरहसे भी भारी योग देना जरूरी है; अर्थात् धर्मिष्ठ और प्रभावशाली मुसलमानोंसे यह कहा जाये कि वे काबुलियोंसे मिलकर उन्हें समझायें कि व्याजकी इतनी कड़ी दरें रखना और उसे वसूल करनेके लिए बल-प्रयोग करना कानून, नैतिकता और इस्लामके खिलाफ है, और इसलिए उन्हें साधारण व्याज ही लेना चाहिए और अगर अदायगी न हो तो कानूनका ही सहारा लेना चाहिए। ऐसा ही शिक्षाप्रद प्रचार उन बनिया महाजनोंके बीच भी करना है जो अपने काबुली भाइयोंकी ही तरह गैरवाजिब दरसे व्याज लेते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

१. 'पुनीत स्पर्श' (द सैक्रेड टच); यह कविता २५ मार्च, १९३३ के **हरिजन**में छपी थी।

२. बंगला **हरिजन**में इस शीर्षकसे छपे लेखका अंग्रेजी रूपान्तर गांधीजी की टिप्पणीके साथ **हरिजन**में छपा था। यहाँ वह लेख, जिसमें काबुलियों और बनिया महाजनोंसे कर्ज लेनेवाले हरिजनोंकी दुर्दशाका वर्णन किया गया था, नहीं दिया जा रहा है।

२९८. बिहारमें अस्पृश्यता-निवारण

मार्च महीनेके मध्यतक बिहारमें किये गये कामके सम्बन्धमें निम्नलिखित विवरण मिला है :[1]

स्थानीय समितिके लिए केवल इतना बता देना काफी नहीं है कि कुछ कुओंके उपयोगकी सुविधा हरिजनोंको दिलाई गई थी, किन्तु वह फिर छिन गई है। यह बताना आवश्यक है कि स्थितिके सुधारके लिए क्या-क्या किया गया है। जहाँतक शुद्ध जलकी आपूर्तिका सम्बन्ध है, मुझे लगता है कि जल-आपूर्तिकी अवस्थाका तेजीसे सर्वेक्षण करना और जहाँ आपूर्ति सर्वथा अपर्याप्त हो वहाँ हरिजनोंकी कठिनाइयाँ दूर करनेके लिए आवश्यक कदम उठाना प्रत्येक समितिका पहला कर्तव्य है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १-४-१९३३

२९९. रक्षात्मक परिधान

इंग्लैंडके गृह-मन्त्रालय (होम ऑफिस) ने "कारखानों और कठालों" में काम करनेवाली स्त्रियों और लड़कियोंके लिए रक्षात्मक परिधान[2] शीर्षकसे एक पुस्तिका प्रकाशित की है। यह बड़ी सावधानीसे तैयार की गई है और अधिकारी वर्गके इस्तेमालके लिए है। इस पुस्तिकाके लिए मैं मेहनती और उत्साही, श्रीयुत हीरालाल शाहका आभारी हूँ। इसमें अनेक प्रकारके कामोंके दौरान, पहननेके लिए अलग-अलग ढंगके परिधान सुझाये गये हैं और यह कहा गया है कि काम करनेवाली स्त्रियों और लड़कियोंको दुर्घटना या स्वास्थ्य-हानिसे बचाने, या उन्हें काममें सुविधा प्रदान करने, या उनकी सामान्य पोशाकोंको, वे जो काम करती हैं, उनके लिए प्रयोगकी जानेवाली सामग्री, मशीन आदिसे नुकसान पहुँचनेसे बचानेके लिए रक्षात्मक परिधान रखना अत्यंत आवश्यक पाया गया है। आगे बताया गया है कि रक्षात्मक परिधानकी आवश्यकता अधिकांशतः निम्नलिखित कारणोंमें से ही किसी-न-किसीसे उत्पन्न होती है :

१. धूल-भरे या गन्दे काम,

२. मशीनोंके पास काम करना,

३. सीढ़ियों आदिपर चढ़ना,

१. विवरण यहाँ नहीं दिया जा रहा है, उसमें बिहारमें अस्पृश्यता-निवारण कार्यके विभिन्न पहलुओंका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया था और यह भी बताया गया था कि हरिजनोंको कितने मन्दिरों और कुओंके उपयोगका अधिकार दिलाया गया है, कितने हरिजन बच्चे स्कूलोंमें दाखिल किये गये हैं, कितनोंको छात्रवृत्तियाँ दी गई हैं और कितनी मद्य-निषेध सभाएँ आयोजित की गई हैं।

२. प्रोटेक्टिव क्लोदिंग फॉर विमेन ऐण्ड गर्ल्स वर्कर्स एम्प्लायड इन फैक्टरीज़ ऐण्ड वर्कशाप्स।

४. एसिडों और कास्टिक द्रवोंका उपयोग,
५. जिन कामोंमें भीगने, नमी रहनेकी सम्भावना हो,
६. बहुत ज्यादा गर्मी,
७. बहुत ज्यादा सर्दी, गर्मी वगैरह लगनेकी सम्भावना, आदि।

इसके बाद बहुत-कुछ सुझाये गये परिधानोंमें से प्रत्येकका अलग-अलग अच्छी तरह समझाते हुए संक्षेपमें वर्णन किया गया है। ऊपर मैंने जो वर्गीकरण दिया है, उसके अन्तर्गत आनेवाले ३१ प्रकारके धन्धोंमें अपेक्षित कामोंके लिए सात तरहके परिधान तैयार किये गये हैं। पुस्तिकामें काफी चित्र भी दिये गये हैं।

इस सबका जिक्र मैं केवल यह दिखानेके लिए कर रहा हूँ कि इंग्लैंडमें सरकार कर्मचारियोंके जीवनकी सुरक्षाका कितना खयाल रखती है, और साथ ही मेरा एक उद्देश्य इस सत्यको भी भली-भाँति समझाना है कि सिर्फ गन्दे और नुकसानदेह काम करनेवाले कर्मचारियोंकी रक्षाके लिए ही नहीं, आम लोगोंकी सुरक्षाके उपाय करनेमें भी वहाँ इतनी अधिक सावधानी बरती जाती है। फिर हमारे यहाँकी आबोहवामें गर्द और गन्दगीके बीच काम करनेवाले तथाकथित अस्पृश्योंकी रक्षाके लिए और गर्द तथा गन्दगी ढोनेके जीते-जागते वाहन बन जानेवाले उन लोगोंसे फैलनेवाली छूतसे, जो ऐसे काम करते हैं, आम जनताको बचानेके लिए कितनी अधिक सावधानी बरतने की जरूरत है। उनके अस्पृश्य बने रहनेसे समाजकी किसी भी तरहसे रक्षा नहीं हो पाती। इसके विपरीत, सुरक्षाकी एक झूठी भावनाके कारण छूतका खतरा और भी बढ़ जाता है और इस कारणसे तो यह खतरा और ज्यादा बढ़ जाता है कि समाज द्वारा उपेक्षित होनेके कारण ऐसे काम करनेवाले लोग खुद भी गन्दगीके इतने आदी हो जाते हैं कि जहाँ वे रहते हैं वे इलाके निश्चित रूपसे गन्दगी और बीमारी पैदा करनेवाले कारखाने बन जाते हैं। इसलिए श्री हीरालाल शाहने जिस अत्यन्त सरल सुधारकी सिफारिश की है उसे तत्काल लागू करना आवश्यक है। अगर अस्पृश्यताके विषयमें हमारा दृष्टिकोण ऐसा विकृत नहीं होता तो हम अस्पृश्योंकी बस्तियोंमें जाते। उनकी अवस्थाका अध्ययन करनेके लिए सबसे पहली चीज तो यह है कि हम अपने-अपने शौचालयोंमें आँखें खूब खुली रखकर जायें और देखें कि उनकी क्या हालत है। फिर तो समाजको यह सुधार शुरू और सम्पन्न करनेमें चाहे जितना खर्च करना पड़े, वह उसे महँगा नहीं मानेगा और निश्चय ही हर कीमतपर न केवल अपने-अपने शौचालयोंकी सफाईके लिए, बल्कि जिन इलाकोंमें हरिजन रहते हैं उनकी सफाईके लिए भी आवश्यक कार्रवाई करेगा और उन्हें रक्षात्मक परिधान तथा नहाने-धोने और कपड़े बदलनेकी सुविधा प्रदान करेगा।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १-४-१९३३

३००. पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

गत मासकी २८ तारीखका आपका पत्र[1] मिला; तदर्थ धन्यवाद। मैंने हरदयाल बाबूका पत्र[2] पढ़ लिया है और आपके द्वारा रेखांकित भागोंको ध्यानपूर्वक देख लिया है। क्या आप बेमतलब भावुक नहीं हैं? इस पत्रको मैं बुरा लगनेवाला नहीं मानता। इसका जो सार है, वह दुर्भाग्यवश सच ही है। वर्गतः तो ब्राह्मण लोग अपने श्रेष्ठतम गुणोंका परिचय नहीं देते। आशा है, आपने 'हरिजन' में इस बारेमें मेरा लेख[3] पढ़ा होगा। मैं चाहूँगा कि आपकी जो चीज मुझे झूठी भावुकता-सी लगती है उसको आप यदि छोड़ सकें तो छोड़कर हिन्दू धर्मकी शुद्धिके लिए सुधारकोंकी पंक्तिमें शामिल हो जायें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९६) से।

३०१. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१ अप्रैल, १९३३

बम्बई सरकारके सचिव
गृह-विभाग

प्रिय महोदय,

मध्य प्रान्तके कैदी सेठ पूनमचन्द राँकाके बारेमें, जिनके विषयमें यह खबर है कि वे सिवनी जेलमें उपवास कर रहे हैं, मेरे निवेदनका उत्तर सरकारकी ओरसे यथासमय मिल गया, इसके लिए मैं आभारी हूँ। मुझे उम्मीद है कि जिस उद्देश्यसे अनुमति ली गई है, उसके लिए यह पर्याप्त होगी।

लेकिन इस अनुमतिसे उस और बड़े प्रश्नका समाधान नहीं होता जिसकी चर्चा मैंने अपने २३ मार्चके पत्रमें की थी। सरकारके उत्तरमें जो एक बड़ा सवाल उठाया गया है उससे तो वह सारी व्यवस्था ही अस्त-व्यस्त हो जाती है जिसके अन्तर्गत मैं एकके बाद एक कई अधीक्षकोंके अधीन रह चुका हूँ। इसलिए मैं यह

१. सम्भवतः गांधीजी द्वारा आर० आर० चक्रवर्तीको लिखे पत्रके उत्तरमें; देखिए "पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको", २१-३-१९३३।

२. यह उनकी ब्राह्मण-विरोधी आन्दोलन की शिकायतके प्रमाण-स्वरूप भेजा गया था।

३. देखिए "ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार", २५-३-१९३३।

जानना चाहूँगा कि मेरी प्रार्थनापर सरकारने क्या निर्णय किया। सेठ पूनमचन्दके साथ सम्पर्क स्थापित करनेमें विलम्ब होनेसे मुझे जो मनोव्यथा सहनी पड़ी है उसे दोबारा सहनेकी मेरी इच्छा नहीं है।[1]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८५) से; बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०)(३) ए. पृष्ठ १०९ से भी

३०२. पत्र : वी० बी० कीर्तिकरको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

पिछले महीनेकी १५ तारीखके पत्रके[2] लिए धन्यवाद। आपकी दलीलको पढ़नेके लिए मैं इतने दिनोंसे इसे अपने साथ रखे रहा। यह निर्देशात्मक है, लेकिन विश्वासोत्पादक नहीं। वर्ण-धर्म मानव-रचित नियम नहीं है। यह तो आत्माका नियमन करनेवाला नियम है। मनुष्य चाहे जितनी बार इसे तोड़ सकता है, बल्कि तोड़ रहा है, किन्तु उसे इसका दण्ड भरना पड़ता है। इसका पालन करनेसे आत्माको विकसित करनेके लिए मनुष्यके पास काफी शक्ति बच रहती है, किन्तु इसकी उपेक्षा करनेसे इतनी अधिक शक्ति व्यय करनी पड़ती है कि उससे प्राप्त होनेवाला परिणाम उसके सामने कुछ भी नहीं है। हमें खुद वर्ण-धर्मको नहीं, बल्कि उसके विपर्यस्त रूपको मिटाना है। ऐसा करनेमें मैं आपके साथ हूँ, लेकिन मैंने यह दिखानेकी कोशिश की है कि सच्चा वर्ण-धर्म हिन्दू धर्मकी एक बहुत बड़ी खोज है। उसे मिटानेके प्रयत्नमें मैं शामिल नहीं हो सकता, क्योंकि हम इसे जिस रूपमें आज देख रहे हैं वह...[3] है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० बी० कीर्तिकर
काशि निवास
४०, जुहू रोड
सान्ताक्रुज
[बम्बई]

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९७) से।

१. गृह-सचिवने भारत सरकारको भेजे एक खरीतेमें इस पत्रका मजमून बताते हुए लिखा कि इस पर विचार किया जा रहा है। उन्होंने सरकारको यह भी सूचित किया था कि विदेशी अखबारोंके दो संवाददाताओंने गांधीजी से मुलाकात करनेकी जो अनुमति माँगी थी, उसे अस्वीकृत कर दिया गया था।

२. इसमें कीर्तिकरने चारों वर्णोंको मिटाकर सभी जातियों तथा उपजातियोंके स्वस्थ मिश्रणको प्रश्रय देनेका सुझाव दिया था।

३. मूलमें इससे आगे 'सीरियस' शब्द आता है, जिसका वाक्यसे कोई मेल नहीं बैठता।

३०३. पत्र : मोहनलालको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मोहनलाल,

आपका पत्र और साथमें न्यायमूर्ति शादीलाल द्वारा रचित 'पंजाब भूमि विक्रय अधिनियम' तथा आपके लेख भी मिले। मुझे विश्वास है कि इनको पढ़नेसे इस अधिनियमके फलितार्थोंको समझनेमें मुझे सहायता मिलेगी।[1]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९९)से।

३०४. पत्र : पद्मजा नायडूको

१ अप्रैल, १९३३

दुःख है कि तुमको उस तरह अचानक ही चल देना पड़ा, लेकिन आशा करता हूँ कि पिताजी कोई खास अस्वस्थ नहीं होंगे। यह आशा भी करता हूँ कि वहाँ तुम अच्छी तरहसे रहोगी, और यहाँ तुम्हारा जो हाल था उसे और नहीं बिगड़ने दोगी।

किसी खास भाग-दौड़के बिना तुम हरिजनोंकी जो भी सेवा कर सको उसका विवरण मुझे भेजना।

पद्मजा नायडू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८०५)से।

१. गांधीजी ने अपने २५-३-१९३३ के पत्रमें अमृतलाल वि० ठक्करसे उक्त अधिनियमका पाठ भेजनेको कहा था। अमृतलाल वि० ठक्करने शायद यह काम पंजाबके प्रसिद्ध कार्यकर्ता मोहनलालको सौंप दिया था; देखिए "पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको", २५-३-१९३३।

३०५. पत्र : वी० एस० आर० शास्त्रीको

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिल गया था। इतने दिनोंमें इसकी प्राप्तिकी सूचना इसलिए नहीं दी कि आपने इसे बड़ी सावधानीसे लिखा है और मैं नहीं चाहता था कि इसे पढ़े बिना ही जवाब दे दूँ। इस कामपर आपने जितनी मेहनत की है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। आपने जो वचन उद्धृत किये हैं उनसे मैं अपरिचित नहीं हूँ और न उन अर्थोंसे ही जो आपने लगाये हैं। मतभेद प्रयोगके सम्बन्धमें खड़ा होता है। एक क्षणको अपने-जैसे साधारण व्यक्तिको आप जैसे विद्वानकी बराबरीमें खड़ा करनेकी धृष्टता करते हुए मैं कहूँगा कि मैं देखता हूँ, आपके और मेरे बीच बुनियादी मतभेद है। यह मतभेद शास्त्रोंकी व्याख्याके सम्बन्धमें है। मैं शास्त्रोंको एक सजीव और अविभाज्य इकाईके रूपमें देखता हूँ। आप कुछ छुटपुट वचनोंको उद्धृत करके अपनी बात सिद्ध करते हैं। यह तरीका तो तभीसे चला आ रहा है जबसे मानव-जातिका अस्तित्व कायम हुआ, किन्तु मैंने इसे सर्वथा ग़लत माना है। इसने असंख्य सम्प्रदायों और परस्पर विरोधी समुदायोंको जन्म दिया है और इनके फलस्वरूप हम ईश्वर या सत्यके कुछ अधिक निकट आये हों, सो बात भी नहीं है। इसलिए फिर कभी कोई प्रश्न भेजकर तो मैं आपको परेशान नहीं करूँगा, अलबत्ता अगर आपको कुछ कहना हो तो उसे सहर्ष सुनूँगा।

आपने अहिंसा और सत्यके बारेमें जो-कुछ कहा है, उसपर भी मेरा ध्यान गया है। यहाँ भी मेरे सामने वही कठिनाई है। आपने जो स्थिति अपनाई है, उससे सहमत होते हुए भी मैं, बिना किसी कठिनाईके और उन्हीं शास्त्रोंके आधारपर जिनसे कि निस्सन्देह आप परिचित हैं, अपनी स्थितिको सही साबित कर सकता हूँ। क्या यह सम्भव नहीं हो सकता कि जिन्हें शास्त्र और उनके प्रत्येक वचनकी विभिन्न व्याख्याएँ बिलकुल कंठ हैं वे मूल भावनाको ही न पकड़ पायें और जिन लोगोंको न वे कंठ हैं और न जो विभिन्न वचनोंका अर्थ समझते हैं, हो सकता है, वे उस मूल सत्यका अनुभव करते हों?

हृदयसे आपका,

पण्डित वी० एस० आर० शास्त्री
२५/एन० सुब्बराया मुदाली स्ट्रीट
मइलापुर, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८००)से।

१. ११ मार्चका।

३०६. पत्र : शंकर विट्ठल सोनवनेको[1]

१ अप्रैल, १९३३

प्रिय सोनवने,

आपका पत्र मिला। श्री जाजूजी ने भी लिखा है। क्या मेरा यह अनुमान सही है कि आप सारा पाठ्यक्रम बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें ही पूरा करेंगे? अगर ऐसा है तो क्या पाठ्यक्रम और नियमावली आपके पास हैं? अगर नहीं हैं तो आप उसकी तैयारी कीजिए, क्योंकि मुझे उम्मीद है कि आपको आवश्यक छात्रवृत्ति मिल जायेगी। अलबत्ता यह जरूरी होगा कि छात्रवृत्ति देनेवालों को आपके बारेमें विश्व-विद्यालयसे समय-समयपर सन्तोषजनक प्रमाणपत्र मिलता रहे।

आपने अपने माता-पिताके गुजारेके लिए १० रुपयेकी माँग की है। यह सहायता आप क्यों चाहते हैं? क्या आजकल उनके लिए इतने पैसेकी व्यवस्था आप कर रहे हैं? अगर नहीं करते तो अबतक उनका काम कैसे चलता रहा है? मुझे मालूम हुआ है कि आपकी वयस्क बहन या बहनें भी हैं। क्या उन्हें कुछ कमाना नहीं चाहिए? क्या उन्होंने कुछ शिक्षा पाई है? अगर वे काम करनेको तैयार हों तो उन्हें काम तो ढूँढ़कर दिलाया ही जा सकता है। लेकिन मुझे इस सबके बारेमें कुछ मालूम नहीं है। मुझे अपने घरका ठीक-ठीक हाल बताइए।

साथमें एक फार्म भेज रहा हूँ। अगर यह आपको ठीक लगे तो मेरा विचार यह है कि आप इस पर हस्ताक्षर कर दीजिए। अगर ठीक न लगे तो बताएँ कि इसमें आप क्या-क्या परिवर्तन चाहते हैं।

हृदयसे आपका,

[संलग्न]

. . . से बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयमें अपना अध्ययन सम्पन्न करनेके लिए मुझे जो रु० २००० (दो हजार रुपये मात्र)की छात्रवृत्ति प्राप्त हो सकती है उसके सम्बन्धमें मैं यह वचन देता हूँ कि अपना पाठ्यक्रम पूरा होनेपर मैं अपनी सारी सेवाओंका उपयोग हरिजन-कल्याणके लिए करूँगा, और मैं इस छात्रवृत्तिकी रकमको

१. यह शंकर विट्ठल सोनवनेकी एक अर्जीके उत्तरमें लिखा गया था। अर्जीमें हरिजन-विद्यार्थियोंको दी जानेवाली छात्रवृत्तिके रूपमें आर्थिक सहायता माँगी गई थी। शंकर विट्ठल सोनवनेकी आकांक्षा अगले पाँच वर्षोंतक सिविल इंजीनियरिंग पढ़नेकी थी।

बराबर अपने ऊपर एक ऐसा ऋण समझूँगा जिसे, यदि मेरी आय साधारण स्तरसे देखनेपर मेरी जरूरतोंसे ज्यादा हो तो, उसमें से चुका देना मेरा कर्तव्य है।

स्थान . . . . . .

तिथि . . . . . .

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८०१) से।

३०७. एक पत्र

१ अप्रैल, १९३३

आरम्भमें मिली कानूनी रायमें किया गया परिवर्धन मैंने देख लिया है। मैं उसे फिलहाल प्रकाशित करना जरूरी नहीं समझता। उससे अनावश्यक बहस उठ खड़ी होगी। अधिक उपयोगी तो शायद यह होगा कि बिलकुल ही दूसरे प्रश्नोंके आधार पर एक दूसरी राय ली जाये, ऐसी जो काफी सोची-समझी राय हो। मैं ऐसे प्रश्न तैयार कर सकता हूँ, लेकिन मेरे पास उतना समय नहीं है। यदि श्री बहादुरजीको कोई मौलिक और विशिष्ट बात सूझ पड़े, तो बहुत अच्छा। वे यदि आपके साथ अपना नाम न जोड़ना चाहें तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं, लेकिन मैं चाहता हूँ कि बात काफी ठोस और बिलकुल ही निष्पक्ष हो, और विधेयकोंका एक ऐसा अध्ययन हो जो अपनी ओर लोगोंका ध्यान बरबस आकर्षित कर सके और यह सिद्ध कर सके, जो मैं समझता हूँ। विधेयकोंसे सिद्ध होता है कि आम धारणाके विपरीत दोमें से किसी भी विधेयकमें किसीपर भी कोई विवशता नहीं थोपी जा रही है।

मैं साथमें गुलामबहनके लिए एक पत्र[1] रख रहा हूँ।

संलग्न पत्र – १

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०७९५) से।

१. यह उपलब्ध नहीं है।

३०८. पत्र : नारणदास गांधीको

१ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

. . . का[1] किस्सा तो बहुत दुखदायी होता जा रहा है। इसके सिलसिलेमें और कई चीजें प्रगट हुई हैं। मुझे अभी दिशा नहीं सूझी है किन्तु आश्रमके एक नियमकी ओर मैं तुम्हारा ध्यान खींचता हूँ।

आश्रममें कोई किसीसे व्यक्तिगत भेंट स्वीकार नहीं कर सकता। जो भी मिले वह सब आश्रमका ही माना जायेगा। किसीके पास उसका अपना कुछ नहीं है। अपरिग्रहमें यह नियम गर्भित ही है। हाँ, मैं मानता हूँ कि इस नियमके कुछ अपवाद अवश्य हैं। तुम लोग विचार करना कि ये अपवाद क्या हो सकते हैं और उन्हें लिख डालना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३४६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३०९. पत्र : मानशंकर जे० त्रिवेदीको

१ अप्रैल, १९३३

चि० मनु,

पिताजी को लिखे तेरे पत्र मैंने पढ़े। उनके हर शब्दसे तेरे हृदयकी निर्मलता टपकती है। किन्तु तू भटक गया है क्योंकि अपने कर्तव्य-पालनमें चूक गया है। जिस व्यक्तिको जिस कामके लिए नियुक्त किया गया हो यदि वह उसे छोड़कर अन्य काममें लग जाये तो यह विश्वासघात माना जायेगा। जिस व्यक्तिको सब्जी लानेको कहा गया है उसे पन्ना लानेका हक नहीं है। हालाँकि पन्ना भाजीकी अपेक्षा बहुत कीमती होता है। सब्जीकी जरूरत पन्नेसे पूरी नहीं हो सकती। एलिजाबेथ रम्भा-सी रूपवती और सावित्री-सी सती क्यों न हो किन्तु उससे तेरा विवाह नहीं हो सकता, क्योंकि तू विद्यार्थी जो है तथा विद्याभ्यासके लिए ही वहाँ गया है। इस अवधिमें प्रणय अधर्म माना जायेगा। यदि तू अपने इस कर्तव्यको समझता हो तो इस मूर्च्छा से जागना। किन्तु यदि मूर्च्छाको ही तू धर्म समझे तो मैं लाचार हूँ।

१. यहाँ नाम नहीं दिया गया है।

और सब तो मैंने पिताजी को लिखा है।

भगवान् तुझे सही मार्ग दिखाये और तेरा कल्याण करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० २२६२२)से।

३१०. एक हरिजन-शिक्षकके अनुभव

एक हरिजन-शिक्षकके कुछ अनुभव मैं दे चुका हूँ।[1] उनके अन्य पत्रोंसे कुछ और भी अनुभव मैं नीचे दे रहा हूँ।[2]

इस शिक्षककी उत्साहपूर्ण भाषाको देखकर पाठक चौंक न उठें। वे भावुक शिक्षक हैं और उनका अनुभव भी नया-नया है। हमें आशा रखनी चाहिए कि नई झाड़ूवाली अंग्रेजी कहावत[3] इस शिक्षकपर लागू नहीं होगी और दिन-दिन उनका उत्साह बढ़ता ही जायेगा। यदि उनके मनमें श्रद्धा होगी तो ऐसा ही होगा। श्रद्धा का सूर्य बर्फके पर्वतको पिघला सकता है। रोगसे पीड़ित अपने बालकके प्रति माताके मनमें जो प्रेम होता है यदि वैसा ही प्रेम-भाव इस शिक्षकमें हरिजन बालकोंके प्रति होगा तो वह उनकी गन्दगीसे घृणा न कर उन्हें अन्य सुसंस्कृत बालकोंकी तरह साफ-सुथरा और सुघड़ बना देंगे। इस शिक्षकने अपने लिए जो शर्तें मंजूर की हैं वह उन्हें पूरा करे या न करे किन्तु यह सही है कि इन शर्तोंको पूरा किये बिना हरिजनोंका आदर्श शिक्षक नहीं बना जा सकता।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३११. कोडिनार ताल्लुकेमें

अमरेलीके प्रसिद्ध वकील श्री हरिलाल गोविन्दजी कोडिनार ताल्लुकेके कार्यकर्ताओंकी यात्राके बारेमें लिखते हैं:[4]

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २६-३-१९३३।

२. उक्त अंशका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। गांधीजी द्वारा किये गये इसके स्वतन्त्र अनुवादके पाठके लिए देखिए "इस सबका अर्थ", ८-४-१९३३।

३. 'ए न्यू ब्रूम स्वीप्स क्लीन' अर्थात् नया मुल्ला अल्ला ही अल्ला पुकारे।

४. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने वहांका समाचार देते हुए लिखा था कि स्वयं उन्होंने तथा अन्य हरिजन कार्यकर्ताओंने कोशिश करके अस्पृश्यताको मिटानेके लिए जो वातावरण तैयार किया था उसका सनातनियों तथा हरिजनोंने बहुत अनुकूल उत्तर दिया था।

मैं यह जानता हूँ कि काठियावाड़में हरिजन-सेवाका कार्य धीमी गतिसे चल रहा है। इसके बावजूद यदि कार्यकर्ता हिम्मत न हारें, धीरज न छोड़ें और दृढ़ श्रद्धा रखते हुए प्रेमसे काम लें तो काठियावाड़से भी अस्पृश्यताका समूल नाश हो जायेगा। परिणामका ध्यान करते रहना यह बहुत खराब आदत है। जिसपर हमारा बहुत ही थोड़ा अधिकार है और जिसकी सफलता अन्य बहुत-सी चीजोंसे जुड़ी हुई है, ऐसे कार्यका समुचित परिणाम न निकलनेपर जो व्यक्ति निराश हो जाता है, वह वीर योद्धा नहीं बल्कि कायर है। ऐसे कायरोंको सफलता कभी नहीं मिलती। जो व्यक्ति परिणामकी ओरसे निश्चिन्त होकर अपने कर्तव्य-पालनमें ही लगा रहता है वही सफल परिणाम लानेमें साधनभूत बनता है और उसे हारका मुँह तो कभी देखना ही नहीं पड़ता। क्योंकि उसकी विजय कर्तव्य-परायणतामें निहित होती है, परिणाममें कदापि नहीं। वह कर्तव्यका स्वामी है, परिणामका स्वामी तो परमात्मा ही है। अतः मुझे आशा है कि इस पत्रमें जो संकल्प व्यक्त किया गया है, श्री हरिलाल भाई और उनके सहयोगी आजीवन उसपर डटे रहेंगे।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३१२. 'अजमेरका'का 'आज मरा' न हो जाये!

श्री हीरालाल शाहकी योजनाके बारेमें मैंने जो-कुछ लिखा था[१] उस सम्बन्धमें उन्होंने निम्न चेतावनी दी है:[२]

यह चेतावनी सही है। जिसकी जैसी योजना हो यदि वह उसी रूपमें सामने न रखी जाये तो उसका भयंकर परिणाम निकलता है। और जिसने अपने विचार यथारीति सामने रखे हों उनका अनुवाद यदि कोई व्यक्ति कुछ अलग ढंगसे करे तो इससे न केवल उसे आघात पहुँचेगा बल्कि कभी-कभी उलटा ही परिणाम निकलता है और 'अजमेर' का 'आज मरा' हो जाता है।

मैंने अपने लेखको इस तरहके खतरेसे बचानेकी कोशिश की है क्योंकि उसमें मैंने यह माना है कि पाठक श्री हीरालालकी योजनासे परिचित हैं। मैंने पूरी योजना को ज्योंका-त्यों पाठकोंके सामने रखनेका तो प्रयत्न भी नहीं किया। मैंने उसका सार दिया है। मैंने यह भी कहा है कि उक्त योजना विचारणीय है। फिलहाल मेरा कार्य सीमित है। मैं बहुत-सी चीजें पाठकोंके सामने रखता हूँ किन्तु उसपर अमल करना, न करना पुरुष और महिला कार्यकर्ताओंके हाथमें है। अन्य व्यक्तियों

१. देखिए "एक विचारणीय योजना", १९-३-१९३३।

२. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि यदि कोई योजना ढंगसे पेश नहीं की जाती तो उसका अवांछित परिणाम निकलता है। लेखकने वर्दीका उदाहरण देते हुए आगे कहा था कि यदि इसके प्रयोगमें सावधानी न बरती गई तो यह अस्पृश्यता-निवारणके बजाय उसका एक स्थायी प्रतीक बन जायेगी।

द्वारा बनाई गई जिन योजनाओंका मैं थोड़ा-बहुत परिचय देता हूँ उनकी देखरेख करनेका काम आयोजकोंका है। इससे अधिक फिलहाल मुझसे और कुछ नहीं हो सकता।

श्री हीरालालके पत्रमें तो और भी बहुत-कुछ था। जिसमें से आवश्यक अंश ही मैंने दिया है। जिन लोगोंको यह योजना पसन्द आई हो वे श्री हीरालालसे पत्र-व्यवहार करके उसके बारेमें पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं और फिर उन्हें उसपर यथासाध्य अमल करना चाहिए।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३१३. पत्र-लेखकोंको उत्तर

हरिजनोंका रोष[१]

आपके रोषको किस प्रकार शान्त किया जा सकता है? मैं यह नहीं समझ पाया कि आखिर आप चाहते क्या हैं। हरिजन सेवक संघमें प्रमुख कार्यकर्ता सवर्ण हिन्दू हैं क्योंकि इन्हींको अपने पापका प्रायश्चित करना है। हरिजन भाई अपनी संस्था अवश्य बनायें और वे बना भी रहे हैं। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा परिचालित संस्थाओंको वे सही रास्ता दिखानेका प्रयत्न करें। आखिरकार तो सवर्णोंको हरिजनों द्वारा ली जानेवाली परीक्षामें उत्तीर्ण होना है। यह तो भगवान् ही जानें कि वे उत्तीर्ण हो सकते हैं या नहीं। सवर्णोंके पापोंका ढेर इतना विपुल है कि वे बच ही न सकते हों तो फिर उन्हें कौन बचा सकता है? यदि उनका पाप इतना बढ़ गया होगा तो निश्चय है कि सवर्ण हिन्दुओंका सर्वनाश हो जायेगा। किन्तु आप मुझे यह बतायें कि सवर्ण हिन्दू हरिजनोंको अपने समान माननेके सिवा और क्या कर सकते हैं? और जो हरिजन स्वयंको हिन्दू ही नहीं मानते उनके लिए किस प्रकार प्रायश्चित्त किया जाये और क्या प्रायश्चित किया जाये?

क्या हरिजनोंपर असहयोग लागू नहीं होता?[२]

आपका पत्र मिला। उक्त मित्रसे यह कहना: इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है कि तगड़े आदमीका जठर जिस खुराकको स्वीकार कर लेता है उसे नाजुक आदमी

१. हरिजनोंका एक छोटा-सा वर्ग मन्दिर-प्रवेश बिल, हिन्दू सुधारकों द्वारा किये जानेवाले सेवा-कार्य और यरवडा समझौतेसे भी सन्तुष्ट नहीं था। उनकी माँग थी कि हरिजन-सेवाका कार्य करनेवाली सभी संस्थाओंकी व्यवस्था केवल हरिजनों द्वारा की जानी चाहिए।

२. पत्र-लेखक श्री नृसिंहप्रसाद भट्टने पूछा था, यह कैसी विचित्र बात है कि असहयोग आन्दोलनमें भाग लेनेवाले लोगोंसे उन हरिजन विद्यार्थियोंकी सहायता करनेको कहा जाता है जो सरकारी पाठशालाओं और विश्वविद्यालयोंमें पढ़ते है। (एस० एन० २०७१४)

का जठर स्वीकार नहीं करता। जो महान् नियम समझदारपर लागू होता है उसे सर्वथा अशिक्षितपर लागू करना नासमझी है। नियम मात्र सभी समय, सभी स्थानों और सभीपर लागू नहीं होते। ऐसे नियम इतने भी नहीं हैं कि उन्हें अँगुलियोंकी पोरों पर गिना जा सके। अन्य बहुत-से नियमोंमें समय, स्थान और व्यक्तिके भेदसे परिवर्तन करना आवश्यक होता है। सामाजिक हितकी दृष्टिसे विचार करनेपर जान पड़ेगा कि जो नियम हमने अपनेपर लागू किये हैं उन्हें हरिजन-बालकों या हरिजनों पर लागू करनेसे जबरदस्त अन्याय होनेकी सम्भावना है। इस भाईको अपने स्थान पर डटे रहना चाहिए और हरिजन-बालकोंको छात्रवृत्ति आदि देनेमें दृढ़तापूर्वक भाग लेना चाहिए।

नया नाम क्यों? [1]

आपका यह कहना उचित है कि स्पृश्य-अस्पृश्य सभी हिन्दुओंको हिन्दू ही कहना चाहिए। किन्तु जबतक अस्पृश्यता दूर नहीं हो जाती तब तक 'अस्पृश्य' माने जानेवाले भाइयोंको कटु नामसे पुकारनेके बजाय मधुर नामसे क्यों न पुकारा जाये? नालायक लड़का अपनी माँको 'बापकी औरत' कहेगा, जबकि आज्ञाकारी बेटा उसे 'मातुश्री' कहेगा।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २-४-१९३३

३१४. पत्र: प्रेमाबहन कंटकको

२ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। लिखा सो ठीक किया। आज ब्योरेवार नहीं लिख सकता। पत्र अच्छा है, फिर भी उसमें ब्रह्मचारिणीको शोभा न देनेवाला अभिमान है। नारदकी कथा याद कर। नारदने ब्रह्मचर्यका अभिमान किया कि तुरन्त उनका पतन हो गया। ब्रह्मचारीका आधार ठेठ ईश्वरपर रहता है। इसलिए वह नम्र होता है। वह अपना भरोसा नहीं करता। जो जन्मसे निर्विकार है वह मनुष्य नहीं। वह या तो परमेश्वर है अथवा पुरुष अथवा स्त्रीकी शक्तिसे रहित है। यानी, अपूर्ण है, रोगी है। परमेश्वरको अभिमान किस चीजका? पत्थरको पत्थरपनका अभिमान हो सकता है? रोगीको रोगका अभिमान नहीं हो सकता। स्त्री-पुरुष अपने विकारोंको वशमें रखनेकी शक्ति पैदा कर सकते हैं और इसके फलस्वरूप संगृहीत हुई शक्तिका सदुपयोग कर सकते हैं। परन्तु जिसे इस शक्तिका अभिमान होता है, उसकी इस

१. एक सज्जनने लिखा था कि हरिजन कहकर आप अन्त्यज, अस्पृश्य जैसे नामोंको नया जीवन दे रहे हैं किन्तु अस्पृश्यता तो बनी ही रहेगी।

शक्तिका उसी क्षण नाश हो जाता है। तुझमें जो ब्रह्मचर्य होगा उसका कितना क्षय हो रहा है, इसका क्या तुझे ज्ञान है? तेरे ब्रह्मचर्यमें न्यूनता तो है ही। तेरे लिए स्वाभाविक क्या है? तू विकारको जानती ही न हो तो क्या तू कोई देवी है? देवीके लक्षण भिन्न होते हैं। तू देवी नहीं है। तुझे रोग हो ऐसा मैं जानता नहीं, क्योंकि तुझे मासिक धर्म होता है। जाँच करके देखना और मुझे लिखना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३२) से। सी० डब्ल्यू० ६७७२ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३१५. पत्र : नारणदास गांधीको

२ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

घड़ीने अभी तीन बजाये हैं और मैं दातुन करके लिखने बैठा हूँ।

तुम कुछ हारे हुए मालूम हुए; यह कैसे चलेगा? मेरे सब पत्रोंमें तुम देखते होगे, मैं हरएकसे यही कहता हूँ कि कोई भी बात हो, जबतक वह तुम्हारे गले न उतर जाये तबतक यंत्रवत् न की जाये। या तो वह बात हमारे हृदयको जँचनी चाहिए या बुद्धिको। हृदयको जँचती है श्रद्धाके द्वारा। लेकिन दोनों स्थितियोंमें मनुष्य सन्तोष और उल्लासका अनुभव करता है। जहाँ किसी निर्णयको बुद्धि समझ नहीं पाती और हृदय स्वीकार नहीं करता वहाँ असन्तोषका अनुभव होता है। और असन्तोषका अनुभव हो तो मनुष्य थक जाता है। वह अपना काम लगातार मेहनतसे करता है फिर भी काम चमकता नहीं है और करनेवाला क्षीण होता जाता है, बीमार पड़ जाता है। काम श्रद्धापूर्वक किया जाये तो उसका यह परिणाम नहीं होता। 'क्या करूँ? मैं तो समझ रहा हूँ कि यह सब ठीक नहीं हो रहा है, किन्तु बड़ोंकी खातिर करना पड़ता है।'—यह श्रद्धा नहीं है, यह अनुचित विनयशीलता है। सत्यकी हमारी व्याख्याके अनुसार यह असत्य भी है। तुम्हारे [३१ तारीखके] पत्रमें यह ध्वनि है। तुम्हें कोई भी चीज इसलिए नहीं करनी है कि नरहरि कहता है या मैं कहता हूँ। करनी है तो इसीलिए कि वह तुम्हें करने योग्य प्रतीत हुई है। नरहरिके सभी सुझावोंको रद्द करनेका तुम्हें पूरा अधिकार है। कारण, अन्तिम जिम्मेदारी तुम्हारी है। नरहरिके अनेक सुझाव मुझे अच्छे लगे हैं; यानी कागजपर तो वे अच्छे ही मालूम हुए हैं। किन्तु यदि तुम्हें ऐसा लगे कि उनका अमल तो हो ही रहा है अथवा उनमें से कुछ ऐसे हैं जिन्हें कार्यान्वित करना ठीक नहीं है तो तुम्हें उन्हें कार्यान्वित करनेकी जरूरत नहीं है। उस हालतमें तुम्हें नरहरिको समझाना चाहिए और जहाँ वह न समझे वहाँ धीरज रखना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि तुम्हारा सत्य वह अन्तमें समझ जायेगा या कि अन्तमें तुम अपनी

ही भूल देख सकोगे। इस बीच आपसमें मनोमालिन्य न होने दो। एक-दूसरेके विषयमें अपने मनमें ऐसा भ्रम न आने दो कि दूसरा तुमसे द्वेष करता है। कुछ मामलोंमें सब-कुछ हमारी काम करनेकी रीतिपर निर्भर होता है। नरहरि जो-कुछ कहता है उसका तात्पर्य समझ लेना जरूरी है। उसका आग्रह केवल दो वस्तुओंके लिए है। उसका मन साफ है। वह परिश्रमी है और समझदार है। हाँ, उसे गुस्सा आ जाता है और जिन बातोंको वह नहीं समझ पाता उन्हें अन्त तक समझ ही नहीं पाता। उनके सम्बन्धमें वह चिन्ता भी नहीं करता। वह भोला है और अपने मनमें कुछ नहीं रखता। उसे तो हमें समझाते-बुझाते ही रहना होगा। इसलिए वह जो कहता है उसे धीरजसे समझने और समझानेका प्रयत्न करना। विचलित न होना और अपनी शान्ति मत खोना।

परचुरे शास्त्रीको मैंने जो पत्र लिखा है उसे पढ़ना। उसमें मैंने उनके आहार के बारेमें लिखा है। अब उन्हें काम करने लगना चाहिए।

जीवराजको[1] कल ही तार कर दिया। आज पत्र लिख रहा हूँ। जो हो उसे सहन करें। अभी तो मैं मनके कुष्ठरोगसे जूझ रहा हूँ इसलिए शारीरिक कुष्ठरोगका आघात मुझे अधिक नहीं लगता।

उमेदराम संगीत सीखना चाहता है। उसके लिए आवश्यक व्यवस्था कर देना और बाकी कार्यक्रम तदनुसार बनाना।

मेरीबहनको दुबारा आनेका न्योता देना।

कुसुमकी तबीयत सुधर रही है, ऐसा मुझे तो नहीं लगता। तलवलकरको मैंने जो पत्र लिखा था वह उसे दे दिया था। क्षयरोगकी उनकी चिकित्सा-पद्धतिपर मुझे विश्वास नहीं है। शर्मा आये तो मैं उसकी चिकित्सा आजमाना चाहूँगा। इस समय तो पुरुषोतम ही अपना शर्मा है। लेकिन जबतक उसका अपना स्वास्थ्य पूरी तरह सुधार नहीं लेता तबतक मैं उसपर ज्यादा बोझ नहीं लादना चाहता। अपनी साधना पूरी करनेके बाद ही अपने ऊपर वह ज्यादा जिम्मेदारी ले, यही अच्छा है। यदि ऐसा न हुआ तो उसका स्वास्थ्य चौपट होनेका डर है। जबतक तलवलकरका जवाब मेरे पास नहीं आ जाता तबतक हम कोई परिवर्तन न करें। कुसुमका मन अशान्त हो जाये, ऐसा कुछ न करें। तलवलकर सज्जन है, अनुभवी डाक्टर तो वह है ही। अनेक बीमार श्रद्धापूर्वक अन्ततक उसका इलाज कराते भी हैं। कई मर जाते हैं; कुछ अच्छे भी हो जाते हैं। ऐसा ही दूसरोंके विषयमें भी है। इसलिए यदि उसका इलाज कराते हुए हम किसीको खो बैठें तो इसमें हम उसे दोष नहीं दे सकते। मैं तो इतना ही कह रहा हूँ कि उसकी पद्धतिमें मेरा विश्वास नहीं है। मेरा विश्वास तो नैसर्गिक चिकित्सापर ही है। जहाँ शल्य-क्रिया करानेकी जरूरत है वहाँ डाक्टरोंकी आवश्यकता है। लेकिन ऐसे मामले कम ही होते हैं। तुमने इस सम्बन्धमें कुछ ज्यादा विचार किया हो तो लिखना। तलवलकरका उत्तर जल्दी प्राप्त करना।

१. डॉ० जीवराज मेहता।

पुरुषोत्तमपर चार बीमारोंसे ज्यादाकी जिम्मेदारी मत डालना।

. . .[1]अभी निकट-भविष्यमें तो आता नहीं दिखता। तथापि उसके सम्बन्धमें मैं क्या सोचता हूँ उसका ज्यादा विवरण तुम . . .[2]के नाम लिखे पत्रमें पाओगे।

अब और ज्यादा नहीं लिखता।

बापू

[पुनश्च :]

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥[3]

. . .[4]के पत्र यदि वहाँ पढ़े जा चुके हों तो उन्हें . . .[5]को भेज देना। . . . के[6] नाम लिखा मेरा पत्र भी भेज देना। सब पत्र पढ़नेके बाद ही देना। इसे मिलाकर कुल ग्यारह पत्र हैं।

उमेदराम, जीवराज, अमीना, पुरुषोत्तम, मेरी, परचुरे शास्त्री, कुसुम, नरहरि, लक्ष्मीदास, प्रेमा।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३१६. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

२ अप्रैल, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हें जो हड्डियाँ मिलती हैं यदि उन्हें इकट्ठा कर लो तो अच्छा हो। उन्हें उपयोगमें लानेका उपाय मैं खोज निकालूँगा। हड्डियोंको पीसकर खाद तो बनाई ही जा सकती है किन्तु उन्हें कैसे पीसा जाये तथा उनका इससे भी बेहतर ढंगसे उपयोग किया जा सकता है या नहीं, यह मुझे अभी खोजना है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

१, २, ४, ५, और ६. यहाँ नाम नहीं दिये गये हैं।

३. **भगवद्गीता**, अध्याय ९, श्लोक २२।

३१७. पत्र : जमनाबहन गांधीको

२ अप्रैल, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तमको लिखता ही रहता हूँ इसलिए तुम्हें अलगसे लिखनेकी जरूरत नहीं होती। जबतक पुरुषोत्तम थक न जाये तबतक तुम उसका इलाज करती रहना। सादे उपचारोंसे तुम्हारी बीमारी मिट जानी चाहिए। धीरज और श्रद्धाकी आवश्यकता है। कनुका[1] क्या हाल है। यह खबर मुझे अबतक नहीं मिली। मैं कुसुमके बारेमें सोचता रहता हूँ। तुममें बुद्धि तो है ही और लिखनेकी शक्ति भी है। इसका उपयोग करो और मुझे दिल खोलकर लिखो।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७४) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

३१८. पत्र : जमनादास गांधीको

२ अप्रैल, १९३३

चि० जमनादास,

तेरा पत्र मिला। मुझे ऐसा नहीं लगता कि मन्दिर बन सकेगा। फिर भी तू ऐसा प्रयत्न करना जिससे मन्दिर बन सके। किसी दिन असफलतामें से ही सफलता मिलेगी।

इसके साथ मैं रणजीत पण्डितके लिए पत्र भेज रहा हूँ। वे वहाँ गये हैं। यदि वे वहाँ हों और तेरी इच्छा हो तो यह उन्हें दे देना।

राणा कौन है? उनके सुझाव बहुत खराब जान पड़ते हैं और तेरी आलोचना बिलकुल ठीक है। उसपर अडिग रहना और अडिग रहते हुए यदि बात टूटनेकी नौबत आ जाये तो भले टूटने देना। यदि सुधारकोंसे भी धन इकट्ठा किया जा सके तो मन्दिर खड़ा करनेमें मुझे कोई बुराई नजर नहीं आती। ऐसा मन्दिर बने और धार्मिक रीतिसे मर्यादापूर्वक उसका संचालन हो तो वह एक बड़ा केन्द्र बन सकता है। मन्दिरका स्थान सुन्दर होना चाहिए और उसका संचालक अच्छा होना चाहिए। हमें कुछ आदर्श मन्दिरोंकी आवश्यकता तो है ही।

१. जमनाबहन गांधीका छोटा पुत्र।

सरूपबहनने राजकोटकी भंगियोंकी बस्तीका बुरा हाल लिखा है। क्या वास्तवमें उसका इतना बुरा हाल है? और नगरपालिका कुछ नहीं करती?

अपने स्वास्थ्यके बारेमें लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६८८) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

३१९. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

आज सुबह एक पत्र[1] तो तुझे लिखा ही है। वह शायद इससे पहले ही मिल जायेगा। . . .[2] और . . .[3] के विषयमें तू जो लिखती है वह अर्ध-सत्य है। भूल सब करते हैं। उसका दुःख नहीं मानना चाहिए। परन्तु भूलको कोई छिपाकर रखे, भूल करनेवाले की अनिच्छा होते हुए भी वह प्रकट हो जाये और बादमें वह भूलका अनुचित बचाव करे, तब दुःख होना ही चाहिए। यदि न हो तो ऐसी घटनाओंको रोकनेका उपाय ही हमें नहीं मिलेगा। अगर यह मान लें कि ऐसी घटनाएँ होती ही रहेंगी, इसलिए उन्हें रोकनेका उपाय ही नहीं किया जाना चाहिए, तो समाजका नाश हो जायेगा। इसलिए उन्हें रोकनेके उपाय तो करने ही चाहिए। हृदयको आघात पहुँचनेपर ही वे उपाय किये जा सकते हैं। यह कहा जा सकता है कि जो मिथ्या दुःख करते हैं, क्रोध करते हैं वे ठीक नहीं करते। और मेरे खयालसे तू भी इतना ही कहना चाहती है। इससे अधिक कहना चाहती हो तो वह भूल है, इस बारेमें मुझे शंका नहीं। दुःख, आघात आदि शब्दोंके बजाय दूसरा कोई शब्द मिले, तो मैं जरूर उसे स्वीकार कर लूँ। परन्तु तेरे पत्रमें कहीं-न-कहीं मोह छिपा हुआ है। मोह शब्दका उचित उपयोग हुआ है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। मेरा आशय तू समझ गई हो तो काफी है।

मुझसे जो भूल हुई है वह तो मैंने मान ही ली है।

मैं तुझसे सरलता, मृदुता, नम्रता, धीरज, सहनशीलता और उदारता की अपेक्षा करता हूँ। यह तो मुझे तब मिले जब तू आकाशसे नीचे उतरे। तू कुछ भी नहीं है, यह तू कब मानेगी? रोज धरती-माताकी वन्दना करना और रोज उसे लात मारना, यह क्या है? यदि सचमुच हमारी इस प्रार्थनामें सत्य हो तो हमें रजकण बन जाना चाहिए और दुनियाकी लात सहन करने लगना चाहिए। तब धरती-माताको हमारे चरणोंका स्पर्श नहीं होगा, क्योंकि तब हम जीते-जी राख बन गये होंगे। 'दुईकी धूल उड़ाता जा।'

१. देखिए "पत्र : प्रेमाबहन कंटकको", २-४-१९३३।

२ व ३. नाम छोड़ दिये गये हैं।

तेरी पूनियाँ अभी चल रही हैं। उनमें गाँठें आईं यह तेरा दोष नहीं है। वह कुछ पींजनका दोष है और कुछ कपासका। अधिक धुननेसे रेशे कमजोर हो जाते हैं। दूसरी पूनियाँ बहुत बारीक सूत नहीं देतीं, परन्तु उनमें गाँठें कम हैं।

परचुरे शास्त्रीके लड़केको तूने हाथमें ले लिया, यह बहुत ठीक किया।

शान्तासे तूने ठीक कहा। अब उसे जो अच्छा लगे वही करे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३३) से। सी० डब्ल्यू० ६७७३ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३२०. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

२ अप्रैल, १९३३

चि० पंडितजी,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुम्हारे पास आनेसे पहले यदि दत्तात्रेय मुझसे मिल जाये तो अच्छा होगा। वह कितना वेतन चाहता है? उसे किस-किस भाषाका ज्ञान है? सम्भवत: हम उसे कोई काम दे सकें।

उमेदरामने संगीतमें निपुणता प्राप्त कर ली है। उसके लिए जो बन सके, करो।

छारा लोग[1] हैं या चले गये? यदि हैं तो क्या अब भी कुछ [उत्पात] करते रहते हैं क्या?

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २४५) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे

१. मध्य गुजरातकी एक जरायमपेशा जाति।

३२१. पत्र : परशुराम मेहरोत्राको

२ अप्रैल, १९३३

चि० परसराम,

राजभोजको[1] बराबर पढ़ाते रहना। मेरीबहन और डंकनभाईको तुम्हारे बिना अच्छा नहीं लगता, ऐसा कहा जा सकता है।

तुम्हारे मनमें जो भी हो, वह कितना भी निरर्थक या मूर्खतापूर्ण हो, मुझे लिखनेमें संकोच न करो। तुम्हारी तैयारी हो तो मैं तुमसे बहुत-सारा काम लेनेकी आशा करता हूँ। और इसके लिए तुम्हारे मनको पूरी तरह जाननेकी आवश्यकता है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७५१३) से। सी० डब्ल्यू० ४९९०से भी; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

३२२. पत्र : प्रभाशंकर पट्टणीको

२ अप्रैल, १९३३

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र मिला।

मैं आज्ञा नहीं दे सकता, मुझे वैसा करनेका अधिकार भी नहीं है। आप जितना करेंगे मैं अन्तमें उतनेसे ही सन्तोष कर लूँगा। किन्तु मैं अपनी अर्जी तो आपके दरबारमें पहुँचाता ही रहूँगा। जिससे आप सहमत हैं [विधेयकका प्रारूप] वह मैं इसके साथ भेज रहा हूँ।[2] आपकी इच्छा अथवा अनुमतिके बिना आपके नामसे मैं कुछ भी प्रकाशित करनेवाला नहीं हूँ, और जो-कुछ भी करूँगा वह आपका गुण-गान करनेके लिए नहीं बल्कि हरिजनोंकी सेवा करनेके विचारसे करूँगा।

नया मन्दिर बनवाकर उसे खोल देनेकी बात नहीं है बल्कि जो चार पुराने मन्दिर हैं उनमें से एकमें हरिजनोंको प्रवेशकी छूट देनेकी बात है।[3] मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि यदि आप कर सकें तो इतना करें। इसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि पाठशालाओं आदिके बारेमें भावनगरके दरबार किसी प्रकारका भेदभाव नहीं बरतते,

१. पी० एन० राजभोज, एक हरिजन नेता। वे कुछ समयके लिए आश्रममें रहनेके लिए गये थे; देखिए "पत्र: पी० एन० राजभोजको," ३०-३-१९३३।

२ व ३ देखिए "पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको", २३-३-१९३३।

यह बात भी राजपत्रमें प्रकाशित होनी चाहिए। इस प्रकारका कोई कानून तो आपकी रियासतमें है ही। यदि यह सिद्धान्त उसमें आ जाये तो इतना ही काफी होगा। इस पर उसी हदतक अमल किया जा सकता है जहाँतक जनता साथ देनेको तैयार हो। मैं यह नहीं चाहता कि आप जोर-जबरदस्तीसे कुछ करायें। दरबारकी नीतिसे जनता को परिचित होना चाहिए और सो भी मौखिक रूपसे नहीं बल्कि कानूनी तौरपर। किन्तु मैं सोनेका अण्डा देनेवाली मुर्गीको मारना नहीं चाहता क्योंकि मुझे तो अण्डोंसे कोई मतलब नहीं। मैं दुधारू बकरीके दूधसे सन्तुष्ट हो जाऊँगा और यदि वह कभी सींग मारेगी तो उसे सहन कर लूँगा।

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२८) से। सी० डब्ल्यू० ३२४४ से भी; सौजन्य : महेश प्र० पट्टणी

३२३. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

२ अप्रैल, १९३३

भाई हरिभाऊ,

तुमने जिस स्थितिका वर्णन किया है उसमें निश्चय ही प्रायोपवेशनके लिए स्थान है। किन्तु उसके लिए बहुत योग्यताकी आवश्यकता है। यदि इस तरहके हजार व्यक्ति भी मिल जायें तो काफी होंगे। जो-कुछ भगवान् चाहेगा वही होगा।

गौरीशंकरके बारेमें तुमने जो लिखा है वह सही है। अपने बारेमें मुझे खबर देते रहना। तुम्हारे बिलकुल चंगे हो जानेपर ही यह कहा जा सकता है कि तुम्हें अनुभव प्राप्त हुआ। मोदी क्या कहते हैं? अभीतक मुझे उनका कोई समाचार नहीं मिला है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७७) से; सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

३२४. पत्र : रामनारायण चौधरीको

२ अप्रैल, १९३३

भाई रामनारायण,

तुमारे खतका मैंने 'हरिजन-सेवक'[1] में उपयोग किया है — देख लेना। दी० ब० [दीवान बहादुर हरविलास शारदा] और तुमारे धनिकोंके पास जा कर कुओंके लिए दान लेना चाहिये — नकशा बनाना चाहिये और कहां-कहां कुओंकी आवश्यकता है बताना चाहिये। कितने हरिजन हैं, वे क्या करते हैं इ० खबरका संग्रह प्रकट करना चाहिये। कुओंका क्या खर्च होता है इ० खोज करो।

अंजनादेवीको[2] आशीर्वाद।

बापुके आशीर्वाद

बापू — मैंने क्या देखा ? क्या समझा?, पृ० ११२

३२५. पत्र : कमलकिशोर मेहरोत्राको

२ अप्रैल, १९३३

चि० कमलकिशोर उर्फ हनुमान[3],

तुमने परिचय अच्छा दिया। अब भी हनुमान रहो। हनुमान जब छोटे थे तो दोड़मदोड़ करते थे लेकिन बड़े होकर उन्होंने अपने ब्रह्मचर्यका तेज बताया और रामजीके श्रेष्ठ भक्त रहे यहां तक की जब रामजी की स्तुती होती है तब उनका नाम पहले लिया जाता है। ऐसे ही तुमारे बनना चाहिये और हनुमान नाम सुशोभित बनाना चाहिये। देखें क्या करता है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दी (सी० डब्ल्यू० ४९९२) से; सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा। जी० एन० ७५१५ से भी

१. देखिए "पानीसे भी वंचित", १४-४-१९३३।

२. रामनारायण चौधरीकी पत्नी।

३. परशुराम मेहरोत्राका ११ वर्षीय पुत्र जो प्रार्थनाके समय स्थान बदलता रहता था और इस प्रकार प्रार्थनामें बाधा डालता था।

३२६. पत्र : अमरनाथ टंडनको

२ अप्रैल, १९३३

भाई अमरनाथ,

अछूतोंको उसी शर्तपर पुस्तक मिलने चाहिये जो दूसरोंके लिए हों। उनके पास फी न ली जाय।

मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

पुस्तकालयकी वृद्धिके लिए धन्यवाद।

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २२९) से।

३२७. पत्र : अमतुस्सलामको

२ अप्रैल, १९३३

प्यारी बेटी अमतुस्सलाम,

तुम्हारा खत मिला। मैं ठीक लिखता हूँ। अब तुम्हारे डाक्टर शर्माके उपचार पर भरोसा रखकर रहना। खुदाको जो करना होगा वह करेगा। हजारों रुपया खर्चनेवाले भी सब तो अच्छे नहीं होते हैं। इसलिए जिसपर हमारा एतबार जमा है उसपर कायम रहें। डाक्टरका लड़का अच्छा हो गया होगा। दिल चाहे तब आश्रम जा सकते हैं।

बापूकी दुआ

[पुनश्च :]

तुमको पता है अमीना दुबली होनेके लिए फाका कर रही है? पुरुषोत्तम इलाज करता है।

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८१) से।

३२८. पत्र : पी० आर० लेलेको

३ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

आपका पत्र[1] मिला। उसके लिए आपको धन्यवाद। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप सप्ताह-भरकी प्रवृत्तियोंका विवरण मुझे भेज दें और उसे प्रकाशित करने या न करनेकी बात मुझपर छोड़ दें। मैं 'हरिजन' को एक ऐसा पत्र बनाना चाहता हूँ जिसमें अन्य बातोंके साथ-साथ, विभिन्न संस्थाओंके ठोस कामका एक सच्चा विवरण रहे। मैं जानता हूँ कि आप मेरी बातका ठीक-ठीक अर्थ समझते हैं। हम कामका दिखावा नहीं करना चाहते और यदि कोई ठोस काम न हो सके तो हमें विनम्रताके साथ वैसा स्वीकार करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० आर० लेले
मार्फत – हरिजन सेवक संघ
जहाँगीर वाडिया बिल्डिंग
एसप्लेनेड रोड, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८१८)से।

३२९. पत्र : बाजी कृष्ण रावको[2]

३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपकी घोषणा पढ़कर दुःख हुआ, लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि आपका उपवास नितान्त अनावश्यक और अज्ञानपूर्ण था। यही आशा करता हूँ कि उसके फलस्वरूप आप शारीरिक रूपसे बहुत दुर्बल नहीं हुए होंगे।

१. पी० आर० लेलेने अपने १-४-१९३३ के पत्रमें पूछा था कि क्या साप्ताहिक विवरणोंके बजाय मासिक विवरण भेजना ठीक रहेगा (एस० एन० २०७९८)।

२. बाजी कृष्ण राव एक सामाजिक कार्यकर्ता थे। उन्होंने अपने १-४-१९३३ के पत्रमें गांधीजी को सूचित किया था कि वे चुनावमें दलितवर्गके नेता देवरुखकरकी हारके प्रायश्चित्त स्वरूप १ से ३ अप्रैल, तक उपवास करेंगे।

आपके उपवासकी तरह अविवेकपूर्ण ढंगसे संकल्पित उपवाससे कोई आध्यात्मिक लाभ तो हो ही नहीं सकता। निश्चय ही, आपके पास ऐसे कोई भी तथ्य नहीं थे, जिनके आधारपर आप यह निष्कर्ष निकाल लें कि श्रीयुत देवरुखकरकी पराजय सवर्ण हिन्दुओं द्वारा किये गये पापके कारण ही हुई थी। मैं उनकी पराजयके कारण नहीं जानता, लेकिन मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपको भी उनकी जानकारी नहीं हो सकती। और फिर आप बिलकुल यह क्यों मान बैठे हैं कि चुनावमें खड़े होनेवाले हर योग्य और अयोग्य हरिजन उम्मीदवार को जीतना ही चाहिए। खुले चुनावोंमें यदि कोई हरिजन उम्मीदवार भी खड़ा हो तो सवर्ण हिन्दुओंको हर बार उसीको चुनना चाहिए — ऐसी अपेक्षा करना तो सवर्ण हिन्दुओंके लिए एक अत्यन्त ही कठिन कसौटी रखना होगा। इसलिए मेरी रायमें तो आपके लिए जरूरी यह है कि आप अपने किये उस अनौचित्यपूर्ण प्रायश्चित्तके लिए अब एक सच्चा प्रायश्चित्त करें और वह यह कि आप कभी भी कोई भी कार्य अविवेकपूर्ण ढंगसे न करनेका संकल्प कर लें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बाजी कृष्ण राव
फर्स्ट चेतमी बाजार
सिकन्दराबाद, दकन

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८१९) से।

३३०. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

३ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मिला और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आखिर तुम आश्रम में आ रहे हो। अपने बच्चेको अवश्य लाना और मुझे प्रसन्नता होगी यदि आश्रम तुम दोनोंको अनुकूल सिद्ध होगा।

नारणदासने मुझे सूचना दी है कि प्रमुख रोगी आश्रमसे अभी-अभी चले गये हैं। मुझे इसकी कुछ परवाह नहीं है। तुम्हारे लिए वहाँ प्राकृतिक चिकित्साकी दृष्टिसे देखने-भालने और परखनेके लिए बहुत-सी चीजें हैं। और कब्जकी तो वहाँ आम शिकायत है जिसपर तुम्हें ध्यान देना होगा।

मुझे प्रसन्नता है कि तुमने अम्तुस्सलामका वह वहम निकाल दिया है कि उसको क्षयरोग है। उसकी कल्पनाशक्ति बड़ी तीव्र है और जहाँ डरकी कोई बात नहीं होती वहाँ उसे अनिष्ट दिखने लगता है।

आश्रममें तुम्हारी उपस्थितिसे मैं केवल इन गिने-चुने रोगियोंका इलाज ही नहीं, कुछ और भी चाहता हूँ। मैं स्वयं प्राकृतिक चिकित्सामें दृढ़ विश्वास रखता

हूँ। अतः मैं तुममें अनुसन्धानकी अनन्य निष्ठा रखनेवाला एक समानधर्मी साथी पाना चाहूँगा। और यदि मुझे ऐसा साथी मिल जाये जिसमें इन गुणोंके साथ-साथ आश्रमके उद्देश्योंमें विश्वास भी हो तो मैं बड़ी बात समझूँगा। मैं जानता हूँ कि तुम भी इसी विचारसे आश्रम आ रहे हो। अतएव आश्रममें घर की ही तरह बिलकुल आश्वस्त भावसे रहना और बारीकीसे निरीक्षण करना। मेरा तो विश्वास है कि प्राकृतिक चिकित्सा जाननेवाले को जलवायुकी बाधाओंपर विजय पा सकनी चाहिए। अगर हर तरहके जलवायुको अपने अनुकूल बनानेका रहस्य समझ लिया जाये तो लाखों आदमी किसी भी जलवायुमें रहते हुए स्वस्थ जीवन बिता सकते हैं। उनको स्थान-परिवर्तनके वे साधन तो प्राप्त नहीं हो सकते जो धनिकोंको प्राप्त होते हैं। और मैं ऐसी कल्पना नहीं कर सकता कि प्रकृति इतनी निर्दय हो सकती है कि धनिकोंका पक्ष ले और निर्धनोंकी उपेक्षा करे। इसके विपरीत मुझे तो 'बाइबिल'की इस कहावतमें विश्वास है कि 'एक ऊँट सुईके नकुएमें से निकल सकता है परन्तु धनवानको स्वर्गमें प्रवेश नहीं मिल सकता।' 'बाइबिल'का एक और वाक्य है कि 'स्वर्ग हमारे अन्दर ही है।' इसलिए मेरा तो सदैव यही विचार रहा है कि प्रकृतिके नियम सरल, सीधे-सादे और इस योग्य होते हैं कि सामान्य जन उनका अनुसरण आसानीसे कर सकें।

अतएव मैं तुमसे कहूँगा कि तुम साधारण भारतीय जलवायुमें स्वास्थ्य बनाये रखने और खोये हुए स्वास्थ्यको पुनः प्राप्त करनेके साधनोंकी खोज करनेके निश्चित उद्देश्यसे आश्रममें जाओ।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २२-३

३३१. पत्र : नारणदास गांधीको

३ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

सुबहकी डाक चली गई, उसके बाद तुम्हारा पत्र मिला।

डाक्टर शर्माको मैंने जो पत्र लिखा है उसकी नकल इसके साथ भेज रहा हूँ। उससे तुम्हें मेरे विचार मालूम हो जायेंगे। इसी पत्रमें तुम्हें अपने प्रश्नोंका जवाब भी मिल जायेगा। इसलिए ज्यादा नहीं लिखता। परचुरे शास्त्रीके बारेमें तुमने ठीक प्रश्न पूछा। उनमें और रावजीभाईमें भेद यह है कि परचुरे शास्त्री आश्रमके ही व्यक्ति हैं। वे आश्रममें ही रहनेके लिए आये थे। कमसे-कम तीन वर्षतक रहनेवाले थे। किन्तु उन्हें कारणवश जाना पड़ा। इसलिए मुझे ऐसा लगा कि उन्हें रखना

हमारा कर्तव्य है। रावजीभाई-जैसे तो अनेक लोग आश्रममें रहना चाहेंगे। किन्तु इन सबको हम नहीं रख सकते। यदि आश्रममें केवल हम और तुम होते तो हम मनचाहे खेल कर सकते थे।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)से। सी० डब्ल्यू० ८३४८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३३२. पत्र : बेगम मुहम्मद आलमको[1]

३ अप्रैल, १९३३

प्यारी बहन,

आपका खत मिला। मैं लम्बा खत तो नहीं लिख सकता। डाक्टर साहबको बहुत काम करनेसे रोकियो।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० ३२)से।

३३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

३/४ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपके दो पत्र मिले। 'हरिजन सेवक' की प्रगतिपर मेरी नजर है। निश्चय ही उसमें धीरे-धीरे सुधार हो रहा है। लेखोंके बारेमें चुनाव तो करना ही पड़ेगा — मेरे लेखोंके बारेमें भी। मैं अंग्रेजी 'हरिजन' के लिए जितना लिखता हूँ, वह सब तो हिन्दी संस्करणके उपयुक्त नहीं होगा; और मैं आपकी इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि हिन्दी संस्करणमें जितना भी दिया जाये उसमें हिन्दीपन हो, वह मक्खी पर-मक्खी बैठाने जैसा शाब्दिक अनुवाद न हो। मैं आपकी बातोंका ध्यान रखूँगा और यहाँसे अनुवाद नहीं भेजूंगा। मैं सचमुच चाहता हूँ कि वियोगी हरि यह काम करें। फिलहाल वे इतना सब कर नहीं पा रहे थे इसलिए मैंने काशिनाथ और रामदास गौड़के पास लेख भेजनेके बजाय यहीं अनुवाद शुरू कर दिया था। मैं आपकी इस

१. लाहौरके डॉ० शेख मोहम्मद आलमकी पत्नी।

बातसे भी बिल्कुल सहमत हूँ कि संस्कृत और अन्य साहित्यसे कुछ कथाएँ दी जानी चाहिए और कविताएँ भी बशर्ते कि वे मौलिक और उच्चकोटिकी हों। मुझे पूरी तसल्ली रहेगी, अगर आप, जैसा कि इधर कुछ दिनोंसे कर रहे हैं, हर हफ्ते 'हरिजन सेवक' पर नजर डालते रहें।

अब मेरी समझमें आ गया कि कोष आपको हस्तान्तरित करनेके सिलसिलेमें क्या किया जाना चाहिए। छापेखानेमें जितना रुपया-पैसा मौजूद है, उसके अतिरिक्त आज मुझे पाँच-सौ रुपयेकी रकमका एक गुमनाम दान मिला है, जिसका उपयोग मेरे ऊपर छोड़ दिया गया है।[1] वह भी मैं दानकी शर्तके मुताबिक काममें लानेके लिए बोर्डको हस्तान्तरित कर रहा हूँ।

मुझे खुशी है कि आपने अब ऑपरेशन करानेका पक्का फैसला कर लिया है। जब आप मुझे उसकी निश्चित तिथि लिखेंगे तब मुझे और ज्यादा खुशी होगी।

बंगालमें चल रहे विवादके बारेमें आपने जो लिखा, मैं समझता हूँ।

आपने परमश्रेष्ठ गवर्नर महोदयके लिए 'हरिजन' की एक प्रति बंगाल सचिवालयको भेजनेके लिए मुझे लिखा है। इसमें मुझे बड़ा संकोच हो रहा है। क्योंकि मैं उनको व्यक्तिगत तौरपर नहीं जानता। इसलिए यदि मैं उनको एक प्रति भेजता हूँ, तो फिर सभी सचिवालयोंको भेजनी चाहिए। परन्तु ऐसा तो आप चाहते नहीं और मुझे लगता है कि ऐसा जरूरी भी नहीं है। मेरा खयाल है, मैंने आपको बतलाया था कि लॉर्ड रीडिंग और लेडी रीडिंग विशेष तौर पर 'यंग इंडिया' के ग्राहक बने हुए थे। ये बड़े-बड़े अफसर अपनी जरूरतें बतलानेमें कोई संकोच नहीं करते और इसलिए जबतक वे खुद न कहें, अपनी ओरसे यह मानकर कि उनको इसकी जरूरत होगी ही, उनको इसकी प्रतियाँ भेजना अनावश्यक उत्साह दिखाने-जैसा लगेगा। पर आप तो बंगालके गवर्नरको जानते हैं और फिर 'हरिजन' केन्द्रीय बोर्डकी देख-रेखमें प्रकाशित हो रहा है। इसलिए यह सर्वथा उपयुक्त होगा कि आप स्वयं ही अध्यक्षकी हैसियतसे अपने परिचित बड़े-बड़े लोगोंको एक-एक प्रति भेज दिया करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०८१४) से।

१. दाता थे डॉ० बहरामजी खम्भाता।

३३४. पत्र : प्रेमनाथ भार्गवको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय प्रेमनाथ,

आपके २७ फरवरीके पत्रकी एक प्रति मुझे मिली। मैं जो रास्ता सुझाऊँगा वह यह कि आप अपने दृष्टिकोणमें काफी बड़ा परिवर्तन कीजिए।[1] मैं यही चाहूँगा कि आप मरे ढोरोंके निबटारेके सम्बन्धमें 'हरिजन' में प्रकाशित मेरे लेखमें[2] बतलाई गई सभी अपेक्षाएँ पूरी करें। आपने यदि उसे न पढ़ा हो तो एक प्रति कहींसे लेकर पढ़ जाइए। उससे आपको पूरे कामकी प्रारम्भिक जानकारी मिल जायेगी। आपको काम वहीं शुरू कर देना होगा जहाँ मरा हुआ ढोर मिले और उसके सम्बन्धमें प्रारम्भिक क्रियाएँ बड़े कारखानेमें नहीं, पासके ही गाँवमें इस पूरी जानकारीके साथ की जानी चाहिए कि मरे ढोरके अलग-अलग अवयवोंका क्या करना है और वह कैसे करना है। इतना कर लेनेके बाद दूसरा कदम होगा उसके चमड़ेको अपने कब्जेमें लेना। उस चमड़ेकी प्रारम्भिक सफाईका काम तो तब हो ही चुका होगा। लेकिन इस कार्यक्रमके लिए आपके पास तैयारी नहीं है। यदि है, तो आप निश्चय ही मेरे कार्यकर्ता बन सकेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत प्रेमनाथ भार्गव
बाग रामसहाय
आगरा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२४)से।

१. प्रेमनाथ भार्गवकी योजना यह थी कि कारखानेका एक आदमी तैनात कर दिया जाये, जो मरा हुआ ढोर मिलनेपर उसी स्थानपर चमड़ा निकालने और उसकी सफाईका काम शुरू कर दे फिर उसे चर्मालयमें पूरी तरहसे पकाया जाये।

२. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा" ११-३-१९३३।

३३५. पत्र : पी० एच० गद्रेको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका संकलन[1] मैं पढ़ गया हूँ। आपने उसपर काफी मेहनत की है और बहुत अच्छे ढंगसे की है।

सारा-का-सारा चुनाव बहुत अच्छा है, पर मैंने कुछ पदोंको छोड़ दिया है। हालाँकि वे अपने-आपमें बड़े सुन्दर हैं, पर समस्यासे सीधे सम्बन्धित नहीं हैं।

अब मैं चाहता हूँ कि आपको यदि ज्ञानदेव और महाराष्ट्रके अन्य सन्तोंके इसी प्रकारके पद मिल सकें तो आप उनका भी संकलन कर दें।

नासिकके मेहतरों और महारोंके बारेमें भी यथासमय जानकारी मिलनेकी मैं प्रतीक्षा करूँगा।

हृदयसे आपका,

गद्रे

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२५) से।

३३६. पत्र : गिरधारीलालको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय लाला गिरधारीलाल,

आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप फिर प्रगतिके पथ पर हैं।

मेरा खयाल है, डॉ० अग्रवालको अनुमति नहीं मिलेगी।[2] यदि मिल जाये, तो मुझे भरोसा है कि सरदार उनको समय देनेके लिए तैयार हो जायेंगे, मैं भी हो जाऊँगा। लेकिन यदि वे अनुमतिके लिए लिखते भी हैं, तो उनको हम लोगोंके नाम इस्तेमाल नहीं करने चाहिए। यदि मैं अपनेमें साहस बटोर पाया तो मैं स्वयं ही अनुमति माँग लूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२३) से।

१. यह अस्पृश्यतासे सम्बन्धित तुकारामकी कविताओंका एक संकलन था। इसका संक्षिप्त रूप **हरिजन**में ८-४-१९३३ को प्रकाशित किया गया था; देखिए "तुकाराम और अस्पृश्यता", ८-४-१९३३।

२. गांधीजी का चश्मा छुड़वानेके लिए आँखोंका व्यायाम सिखानेको जेलमें उनसे मुलाकातकी अनुमति।

३३७. पत्र : डी० जी० कालेको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला, जिसमें आपने वामन पंडितका एक पद उद्धृत किया है। उसमें 'हरिजन' शब्दका प्रयोग जिस प्रकार हुआ है उसका अर्थ निश्चित रूपसे 'अस्पृश्य' ही हो, ऐसा नहीं है। यदि हो, तो आपको उसके साथवाला भी भेजना चाहिए, या फिर ऐसा अन्य प्रमाण भेजिए जिसके आधारपर आपने उस उद्धृत पदमें प्रयुक्त 'हरिजन' शब्दका अर्थ 'अस्पृश्य' लगाया है।

हृदयसे आपका,

काले
असोद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२८) से।

३३८. पत्र : पी० आर० लेलेको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

एक बंगला समाचार-पत्रमें[1] निम्न उद्धरण प्रकाशित हुआ है :

> **हमें मालूम है कि बम्बईके एक प्रसिद्ध मन्दिरमें हरिजनोंको प्रवेशका अधिकार मिल जानेसे अब कोई भी ब्राह्मण उसमें नहीं जाता; मात्र सुधारकों को मूर्ति-पूजाका कोई चाव नहीं है। फलस्वरूप यह मन्दिर अब परित्यक्त पड़ा है। . . .**

क्या आपको ऐसे किसी मन्दिरके बारेमें जानकारी है? यदि न हो तो आपसे बने तो कृपया पता लगाकर बतलाइए कि इस कथनमें कितनी सचाई है। यदि कथनकी सचाई सिद्ध हो सके तो मुझे मन्दिरका नाम भी बतलानेकी कृपा करें।[2]

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२७)से।

१. प्रवर्तक।
२. देखिए "पत्र : मोतीलाल रायको", ४-४-१९३३।

३३९. पत्र : नी० को

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारे दो पत्र मिले। देखता हूँ कि तुम्हारा संघर्ष अब भी चल रहा है। जबतक तुम इस द्वन्द्वसे बिना किसी क्षतिके उबर जाती हो, मुझे उसकी परवाह नहीं है। आशा है, मेरा वह पत्र तुम्हें मिल गया होगा जो तुम्हारे नये पतेपर भेजा था। उसमें मैंने तुम्हें दो चेतावनियाँ दी थीं। आशा है, तुमने उन्हें अपने मनमें बैठा लिया होगा। तुम्हारे छोटे-मोटे खर्च कौन चलाता है? उदाहरणके लिए, डाक-टिकटोंका खर्च, कागज-स्याहीका खर्च और यदा-कदा तारका भी। तुम मुझे अपने जीवनके जितने ब्योरे बताओ उतना ही अच्छा। इन असंख्य ब्योरोंमें से सत्यकी झाँकी मिलती है, जबकि मोटे तौरपर पूरी तसवीर पेश करके हम खुद अपनेसे और देखनेवालों से भी सत्यको छिपा सकते हैं। मतलब यह कि जो असत्य है उसे सामान्य कथनकी आड़में छिपाया जा सकता है। यदि मैं सामान्य रूपसे यह कह दूँ कि 'मैं ठीक हूँ' तो यह सत्य तो होगा ही; किन्तु इसमें एक असत्य निहित है— यह कि मैंने अपनी कोहनीकी खराबीके बारेमें नहीं बताया। यह तथ्य तो तभी प्रकट होगा, जब कोई मुझसे बारीकीसे पूछताछ करेगा। हाँ, अगर मैं यह कह दूँ कि कोहनीकी खराबीके अलावा और तरहसे मैं ठीक ही हूँ, तो यह बात और होगी। सबसे प्राचीन तथा सरल और मेरे खयालमें जो सबसे छोटा भी है, उस उपनिषद्में एक बहुत ही तत्त्वपूर्ण अंश है। उसका अनुवाद है: 'सत्यके मुखमण्डल पर एक स्वर्णावरण चढ़ा हुआ है।' अन्तमें साधक प्रार्थना करता है, 'प्रभो! इस आवरणको हटाओ ताकि मैं यथार्थमें सत्यके दर्शन कर सकूँ।'[1] अब तुम समझ गई होगी कि स्वर्णावरणसे मेरा तात्पर्य क्या है।

आशा है, तुम और सि० शरीर और मन दोनोंसे स्वस्थ होगे।

तुम्हारा पूरा पता क्या 'चीतलदुर्ग' ही है?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३१)से।

१. ईशोपनिषद, १५।

३४०. पत्र : जे० नरसिंहम्‌को

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र तथा साथमें भेजे अपने सेवा-सदनके संक्षिप्त वृत्तान्तके लिए धन्यवाद। मैं देखूँगा कि उसका क्या किया जा सकता है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जे० नरसिंहम्
मछलीपट्टम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३२)से।

३४१. पत्र : पी० एन० राजभोजको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय राजभोज,

तुम्हारे आश्रम पहुँचनेकी खबर मिलते ही मैंने तुमको पत्र[१] लिखा था। आशा है, वह मिल गया होगा। अब मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया है। उम्मीद है कि कुछ ही दिनोंमें तुम मुझे हिन्दीमें पत्र लिखने लगोगे क्योंकि मराठी, हिन्दी और गुजरातीमें कोई बड़ा अन्तर नहीं है। ये सब भगिनी भाषाएँ हैं; इनका शब्द-भण्डार अधिकांशतः एक-सा ही है और इनके व्याकरणकी समानता भी आसानीसे दिख जाती है।

तुम अभी कुछ देनेके प्रलोभनमें मत पड़ो। मैं कहूँगा कि जल्दबाजीसे काम न लो। तुम आश्रममें ग्रहण करने गये हो, इसलिए आश्रमके पास तुमको देनेके लिए जितना कुछ है उसे शान्तचित्त होकर लगातार ग्रहण करने, अपनाते जाओ और यह कर चुकनेके बाद, निस्सन्देह तुम आश्रमको अपनी ओरसे देना शुरू करो। इस तरह चलनेपर तुम देखोगे कि तुम अपनी आशासे कहीं अधिक ग्रहण कर सकते हो। फिलहाल अपना योग देना और आश्रमके जीवनसे कुछ ग्रहण करना — ये दोनों काम एक साथ मत करो, बल्कि ऐसा विश्वास लेकर चलो कि उचित ढंगसे ग्रहण करनेके प्रक्रममें तुम अचेतन रूपसे आश्रममें कुछ अपना योग दिये बिना रह ही नहीं सकते। मेरी तो उत्कट इच्छा यही है कि कमसे-कम अभी कुछ समयके लिए तुम अपने आपको आश्रममें गर्क कर दो और जब तुम आश्रमके वातावरण और दृष्टिकोणको या तो भलीभाँति अपनेमें समाहित कर लो, उसे पचा लो या फिर उसे अनुपयुक्त या अपाच्य मानकर ग्रहण करनेसे इनकार ही कर दो, तब इसके बाद ही अगली मंजिल

१. देखिए "पत्र : पी० एन० राजभोजको", ३०-३-१९३३।

की ओर कदम रखो। और इधर आश्रमवासके कालमें तुम अपने सभी कार्योंमें निश्चित तौर पर नारणदाससे मार्ग-दर्शन हासिल करते रहो — यही मैं चाहूँगा। मैं तो समझता हूँ कि किसी भी संस्थासे अधिकसे-अधिक ग्रहण करने, सीखनेका यही सबसे अच्छा तरीका है।

डॉ० अम्बेडकरके बयानके तुम्हारे उत्तरका असंशोधित मसौदा मैंने पढ़ लिया था। उसमें कोई अधिक सार नहीं था और उसे प्रकाशित तो मैं किसी भी हालतमें न करता, क्योंकि 'हरिजन' में डॉ० अम्बेडकरका बयान तो प्रकाशित हुआ नहीं था। मसौदा इतनी सरसरी तौर पर तैयार किया गया था कि मुझे सूझा ही नहीं कि तुम उसे वापस माँगोगे। मेरा खयाल है कि मैंने पढ़नेके बाद उसे नष्ट कर दिया था।

सिन्धके बारेमें तुमने जो लिखा, उसपर मुझे आश्चर्य हुआ, क्योंकि वहाँ बड़े कर्मठ कार्यकर्ता मौजूद हैं। अकेले जमशेद मेहता ही कईके बराबर हैं। नारायणदास बेचरने अपना सारा जीवन हरिजन कार्यके लिए अर्पित कर दिया है और अनेक अन्य कार्यकर्ता भी हैं। अन्य सभी स्थानोंकी अपेक्षा, कराचीमें हरिजनोंके पास रहनेके लिए ज्यादा अच्छे मकान हैं और उनको अधिक सुविधाएँ भी प्राप्त हैं। हाँ, सुधारकी गुंजाइश तो है, लेकिन वह तो हमेशा ही रहेगी। फिर भी यदि तुम कुछ ठोस सुझाव रखो तो मैं उनको जमशेद महेताके पास भेज दूंगा। तुम्हें शुरूमें कुछ सिर-दर्द रहता था; आशा है, अब तुम्हें उससे पूरी तरह छुटकारा मिल गया होगा।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७९१) से। एस० एन० २०८२६ से भी

३४२. पत्र : मोतीलाल रायको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मोती बाबू,

मैं 'सनातनी' के १२ मार्चके अंककी एक कतरन साथमें भेज रहा हूँ। पता नहीं, इस कतरनमें व्यक्त किये गये विचार आपके विचारोंका प्रतिनिधित्व करते हैं या नहीं। यदि करते हों, तो वे मेरे विचारोंके कितने ही विरुद्ध क्यों न पड़ते हों, आप उनको निर्भयतापूर्वक व्यक्त करनेके लिए बाध्य हैं। मैं भली-भाँति समझता हूँ कि एक-दूसरेके प्रति आदरकी भावना रखनेका अर्थ कदापि यह नहीं होता कि हमारे विचार भी सदा एक-दूसरेसे मिलते ही हों। इसलिए यदि मुझे पता चले कि आपके विचार मेरे विचारोंसे भिन्न हैं, तो इससे मेरे मनमें आपके प्रति मौजूद आदरकी भावनामें कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। हम दोनोंको परस्पर जोड़नेवाली कड़ी तो हर कीमतपर सत्यकी सतत साधना, उसकी खोज है।

क्या आप जानते हैं कि बम्बईके किस मन्दिरसे तात्पर्य है?[1] मैं जाँच करना चाहूँगा। मैं जानता हूँ कि उपवासके दौरान अनेक मन्दिरोंके कपाट हरिजनोंके लिए

१. देखिए "पत्र : पी० आर० लेलेको", ४-४-१९३३।

खोल दिये गये थे, लेकिन फिर उनको वन्द कर दिया गया है, लेकिन मुझे वम्बई या अन्य किसी भी स्थानके ऐसे किसी भी मन्दिरकी जानकारी नहीं जिसे हरिजन-प्रवेशके कारण ब्राह्मणोंने त्याग दिया हो। हाँ, ऐसी धमकियाँ अवश्य दी गई थीं, पर उनपर अमल नहीं हुआ था; कुछ व्यक्तियोंने कहीं व्यक्तिगत रूपमें अमल किया हो, तो किया हो। कमसे-कम मुझे तो यही मालूम है लेकिन हमें तो वस यह जान लेना है कि सचाई क्या है और तदनुसार काम करना है। इसलिए मन्दिरका नाम मालूम हो जानेपर मैं अधिक विस्तारसे छानवीन करना चाहूँगा। फिलहाल तो स्थिति यह है कि मैंने बम्बई वोर्डके मन्त्रीसे पूछा है कि क्या बंगला 'प्रवर्तक' के लेखमें उल्लिखित ऐसे किसी मन्दिरकी उनको कोई जानकारी है।

दूसरे भी कुछ कथन हैं जिन पर शंका की जा सकती है, लेकिन उनको अपनी-अपनी रायकी बात माना जा सकता है। इसलिए मैंने उनके बारेमें अपनी राय व्यक्त नहीं की। हाँ आपका ध्यान आकर्षित करनेके लिए मैंने उन अंशोंको रेखांकित कर दिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८२९) से।

३४३. पत्र: नारणदास गांधीको

४ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

आज सवेरे तुम्हें जो डाक मैंने भेजी है वह कुछ ज्यादा थी। उसकी तुलनामें यह कुछ कम है। सवेरे इसलिए भेजी कि वे पत्र जरूरी थे।

तुमने धनवंती राकाका पत्र भेजनेकी वात लिखी है, लेकिन यह पत्र मुझे मिला नहीं है।

नरहरिका पत्र वापस भेज रहा हूँ।

मेहमानोंके बारेमें मेरी दृष्टि यह है। मेहमानोंके सम्बन्धमें आश्रमके नियमोंकी नकल उन्हें दे दी गई हो तब भी उन्हें जिम्मेदार आश्रमवासियोंके पास ही बिठाना चाहिए। उसकी थाली साफ करनेके लिए उसके पास बैठे हुए इस आश्रमवासीको ले लेनी चाहिए और उसके बैठनेकी जगह भी उक्त आश्रमवासीको ही साफ कर देनी चाहिए। मेहमान जब ये दोनों काम स्वयं करने लगे तभी ये उसे सौंपे जाने चाहिए। भोजनके सम्बन्धमें इस पड़ोसीको ही उसे पहलेसे यह समझा देना चाहिए कि आश्रमके सामान्य भोजनमें भात नहीं है। विशेष भोजनमें भात दिया जाता है और उसकी इच्छा हो तो वह उसकी माँग कर सकता है। यदि भात लेनेवाला कोई एक ही हो तो पूछनेकी जरूरत नहीं रह जाती। ज्यों ही कोई मेहमान आये त्यों ही उससे उसकी विशेष जरूरतें जान लेनी चाहिए और उनमें से जिन्हें पूरा किया जा सकता हो उन्हें पूरा करना चाहिए।

साग-भाजीमें आलू और रतालूको बहुत ही कम स्थान दिया जाना चाहिए। मैं तो उन्हें रोटी और भातकी जगह देना चाहूँगा। उनमें मुख्यतः स्टार्च ही होता है। सागमें स्टार्च-रहित हरी भाजियोंकी ही गिनती होनी चाहिए। यदि लोग राजी हों तो भात मैं केवल बीमारोंके लिए ही रखूँ। दालका प्रमाण बहुत कम होना चाहिए। भातकी बिलकुल जरूरत नहीं है। जिसे दूध मिलता है उसे दाल जितनी कम दी जाये उतना अच्छा। हमारे भोजनमें स्टार्चकी मात्रा निःसन्देह अधिक है। शरीरको स्टार्चकी जरूरत कम है, यह दिनोंदिन सिद्ध होता जा रहा है। किन्तु ये सुधार जबरदस्ती नहीं कराये जा सकते और इसके सिवा जब वे कराये जायें तो उनके परिणामोंपर हमारा ध्यान अवश्य होना चाहिए।

नाश्तेमें कोई बाजारकी चीज आये, यह तो बिलकुल असह्य है। किन्तु इसके लिए आश्रममें बसे हुए कुटम्बोंके सहयोगकी आवश्यकता है। बाजारमें ये चीजें किस तरह तैयार की जाती हैं, इसे यदि वे स्वयं जाकर देख आयें तो फिर वे उन्हें खानेकी इच्छा नहीं करेंगे।

बालकोंको आग्रहपूर्वक आठ घंटे सुलाना चाहिए।

मैं मानता हूँ कि सजा देनेके लिए किसीका खाना बन्द नहीं किया जाना चाहिए; यद्यपि मैंने स्वयं इस किस्मकी सजा देनेका अपराध किया है। मेरा यह विश्वास भी अधिकाधिक दृढ़ होता जा रहा है कि शारीरिक दण्ड भी नहीं दिया जाना चाहिए। मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि सजा देनेकी आवश्यकता हमारी ही न्यूनता सूचित करती है। हमें सजाके बिना ही शिक्षा दे सकनेकी कला हस्तगत करनी चाहिए। और वह तो हमारे हाथ तभी आ सकती है जब हम आवश्यकता होनेपर भी सजा देनेसे बचें।

कोश-सम्बन्धी सुझाव तुरन्त कार्यान्वित करने योग्य हैं। कोश केवल वाचनालयमें ही नहीं दफ्तरमें भी होना चाहिए। आश्रममें प्रत्येक व्यक्तिको उसका उपयोग करनेकी आदत डालनी चाहिए। इसमें थोड़ा खर्च तो होगा। किन्तु वह करने योग्य है।

बापू

[पुनश्च :]

नारणदास,

टाइटससे कहना कि उसके पत्रका उत्तर मैं बादमें दूंगा।[1]

धीरूके[2] विषयमें क्या निर्णय हुआ, इसकी सूचना मिलना बाकी है।

बहनोंके सम्बन्धमें मेरा सुझाव कायम है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३४९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

१. देखिए "पत्र: टी० टाइटसको", ४-४-१९३३।

२. उसे शान्तिनिकेतन जानेकी इजाजत देनेके सम्बन्धमें; देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", २९-३-१९३३।

३४४. पत्र : नानालाल के० जसानीको

४ अप्रैल, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मगनलालको मैं भी तार दूँगा। किन्तु वह जो करे सो ठीक। भाई प्रभाशंकरने मुझे पत्र लिखा है। उसमें प्रत्युत्तर देने-जैसा कुछ नहीं है। तुम उनसे अवश्य मिलते रहना। मुझे तो जो उचित जान पड़ा सो मैंने कह दिया। छगनलालका पत्र भी मुझे मिला है। वह बँटवारेसे सहमत है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६३०)से।

३४५. पत्र : मणिबहन पटेलको

४ अप्रैल, १९३३

चि० मणि,

पत्रोंकी तेरी शिकायत समझमें नहीं आती। तुझे पत्र नियमित रूपसे लिखे ही जाते हैं। क्यों नहीं मिलते इसकी अब जाँच हो रही है। पिताजी लिखते थे इसलिए मैं लिखे बिना काम चला लेता था। परन्तु कुछ-न-कुछ तो नीचे लिखाता ही था। सम्भव है किसी समय यह भी न हुआ हो। इसलिए कुछ पता नहीं चलता। हममें से कोई तुझे पत्र न लिखे तो तुझे दुःखी होनेका जरूर अधिकार है और गुस्सा भी आयेगा। परन्तु तुझे यह मान ही लेना चाहिए कि कुछ भी कारण हो तो भी यह नहीं हो सकता कि तुझे पत्र न लिखा जाये। कोई आकस्मिक बात हो गई होगी, यह सबसे सीधा अनुमान है।

यहाँ सब मजेमें हैं। पिताजी की संस्कृत की पढ़ाई फिर शुरू हो गई है। यह तो नहीं कहूँगा कि धड़ल्लेसे चल रही है, मगर काफी अच्छी चल रही है। जितना सीखा उतना तो याद रखनेका सतत प्रयत्न करते हैं। डाह्याभाई लगभग हर सप्ताह मिल जाते हैं।

मेरे हाथका तो जैसा था वैसा ही हाल है। परन्तु कोई बाधा नहीं पड़ती है। महादेवका स्वास्थ्य अच्छा है। छगनलाल जोशीका भी अच्छा है। तुझे अच्छी पूनियाँ चाहिए तो यहाँसे भेजी जा सकती हैं। बहुत आती रहती हैं। तेरे विषयमें समाचार मृदुलाकी तरफसे मिले थे। कमलादेवीकी तरफसे भी और लीलावतीकी तरफसे भी। मालूम होता है सभीपर तूने अच्छी छाप डाली है। बा और मीराबहन मजेमें हैं। मीराबहन हर हफ्ते पत्र लिखती हैं। काकासाहब आजकल यहीं हैं और

हरिजन-पत्रोंके काममें सहायता देते हैं। पत्रोंके गुजराती, बंगला और हिन्दी संस्करण निकल रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो-४ : मणिबहेन पटेलने, पृष्ठ ९८-९

३४६. पत्र : करसनदास विट्ठलदासको

४ अप्रैल, १९३३

भाई करसनदास,

आपने जो अध्याय भेजे, वे बहुत अच्छे हैं। उपयोग करनेके बाद मैं उन्हें वापस भेज दूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री करसनदास विट्ठलदास
हरगोवन देसाईकी चाल
तीसरी मंजिल, पोर्चुगीज कम्पाउंड वालके पीछे
भूलेश्वर, बम्बई २

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२) से]।

३४७. पत्र : रमादेवी चौधरीको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय भगिनी,

तुमारा खत मिला। मैंने सुधारणा कर दी है।[१] जितनी सेविका तुमारे साथ है उनका नाम और परिचय भेजो। तुमारा परिचय भी भेजो। काम नित्य नियमबद्ध होता होगा। एक रोजका कार्यक्रम[२] देनेसे मुझको ज्यादा ख्याल आ सकेगा।

मोहनदास गांधी

श्री रमादेवी
एन्टी अनटचेबिलीटी लीग
कटक, उड़ीसा

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २७८७)से।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-३-१९३३के अन्तर्गत उप-शीर्षक "हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान" और "टिप्पणियाँ", ८-४-१९३३के अन्तर्गत उपशीर्षक "दो संशोधन"।
२. रमादेवी चौधरीने ११ अप्रैलको गांधीजी को पत्र लिखकर इसे स्वीकार किया था।

३४८. पत्र : टी० टाइटसको

४ अप्रैल, १९३३

प्रिय टाइटस,

आपका पत्र विस्तृत और बहुत ही सुन्दर है। आपका विवरण मैं बड़े चावसे पढ़ूँगा। आप उसे मेरे पास रजिस्टर्ड डाकसे भेज सकते हैं। मैं उसे पढ़कर लौटा दूंगा। इससे समय और मेहनत, दोनोंकी बचत होगी।

आपने बिना उबाले दूधके गुणोंके बारेमें साहित्य देखा होगा। आपने पढ़ा होगा कि ऐसा दूध कितनी देरतक ऐसी अवस्थामें रहता है कि उसे बिना उबाले पिया जा सके। मैंने तो बस यह सुझाव दिया है कि दूधको ऐसी बोतलों या पात्रोंमें रखा जाये जिनमें वायु प्रवेश न कर सके और उनको गीले कपड़ेमें लपेटकर रख दिया जाये। यह मैंने इस विश्वासके कारण कहा कि इस तरह सहेजा हुआ दूध बारह घंटों या कुछ इतने ही समयतक ज्योंका-त्यों बना रहता है, उसके गुणोंमें कोई परिवर्तन नहीं होता। यदि आपने जो-कुछ पढ़ा है, उससे भी मेरे इस विश्वासकी पुष्टि होती हो तो आपको आश्रममें बिना उबाले हुए दूधका प्रयोग लोकप्रिय बनाना चाहिए और मैंने जो तरीका बतलाया है उसी तरह दूधको सहेजना शुरू कर देना चाहिए। आप दूध दोहनेका काम बहुत सवेरे कर देते हैं। उसमें से कुछ तो साढ़े दस या ग्यारह बजेतक इस्तेमाल नहीं किया जाता। इसलिए यदि ऐसे दूधको बिना उबाले हुए ही इस्तेमाल करना हो तो उसे इस प्रकार सहेजना चाहिए कि वायुमंडलीय परिवर्तनोंका उसपर कोई प्रभाव न पड़ सके। और मेरा खयाल है कि ग्वालों और ग्वालिनोंपर बराबर नजर रखनी चाहिए और उन्हें थनोंको ठीकसे धोना आदि सिखाना चाहिए।

बंगलोर डेरीकी एक बात मुझे याद है कि दोहनके लिए पशुओंको खुली हवामें एक निश्चित स्थानपर लाया जाता था। ठीक है न? मुझे कुछ ऐसा याद पड़ता है कि कर्नल स्मिथने मुझसे कहा था कि पशुओंको दोहनके लिए एक खुले हवादार स्थान पर ले जाना ज्यादा अच्छा रहता है। यदि यह तरीका अच्छा हो, मेरे खयालमें अच्छा है भी, तो हमें इसे अपना लेना चाहिए। लेकिन आप इसके बारेमें ज्यादा जानते हैं। जितना बिलकुल ही जरूरी हो, उससे ज्यादा काम मैं आपको नहीं देना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि हमारी दुग्धशाला अपने ढंगकी एक आदर्श दुग्धशाला बन जाये। हम ज्यादा खर्चीले तरीके तो नहीं अपना सकते, पर हमें ऐसे सभी तरीके अपना लेने चाहिए जो ढंगसे परिश्रम करने और पूरी सावधानी रखनेपर दूधकी शुद्धता तथा स्वच्छता सुनिश्चित बना सकें। एक गायको कमसे-कम कितना दूध देना चाहिए कि उसपर होनेवाला खर्च पूरा निकल आये? और लागत कितनी बैठेगी?

अब होमियोपैथीकी बात। मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरे पास कोई स्पष्ट कारण न होते हुए भी मैं उसके बारेमें कोई अच्छी राय नहीं बना पाया हूँ, हालाँकि मेरे कुछ मित्रोंने अकसर मुझसे उसकी सिफारिश की है। मैंने यह भी देखा है कि मेरे वे मित्र खुद भी रोगीकी हालत बहुत बिगड़नेपर होमियोपैथीको छोड़कर एलोपैथीकी शरण गये हैं। हालाँकि मैं चाहता हूँ कि मैं ऐसा विश्वास न करूँ, पर मुझे यही निष्कर्ष निकालनेपर विवश होना पड़ता है कि एलोपैथीकी अपनी सीमाओं और उसमें प्रचलित बहुत सारे अन्धविश्वासोंके बावजूद आज वही सर्वाधिक सार्वदेशिक और उचित ही सर्वाधिक लोकप्रिय चिकित्सा पद्धति है। एलोपैथीके पास प्राथमिक औषधियाँ, विभिन्न प्रकारके फोड़े-फुन्सियोंके लिए मरहम और तरह-तरहके उपयोगोंके लिए कीटाणु-नाशक दवाएँ मौजूद हैं और शल्य-चिकित्साकी बहुत ही आश्चर्यजनक पद्धति उसमें शामिल है। वह अन्य सभी पद्धतियोंसे ग्रहण कर सकती है। उसमें होमियोपैथी, जीव-रसायन और आधुनिकतम प्राकृतिक चिकित्सा भी शामिल की जा सकती है। इसलिए यदि ऐलोपैथी पैसे बनानेके चक्करसे, जिसमें आज मनुष्यकी सारी प्रवृत्तियाँ कैद हो गई हैं, अपनेको छुड़ा ले और जीवित प्राणियोंपर परीक्षणात्मक चीर-फाड़ करने जैसी उन प्रथाओंको छोड़ दे जिनको मैं अशोभनीय मानता हूँ, और साधारण लोगों द्वारा खोजे गये नये-नये तरीकोंका निस्संकोच भावसे लाभ उठाने लगे, तो वह सबसे कम-खर्चीली और सभीके लिए पूर्णतः सन्तोषप्रद पद्धति बन सकती है।

इतना सब कहनेके बाद भी मैं इस बातके लिए तैयार हूँ कि यदि आपको होमियोपैथीका बिलकुल ठीक-ठीक ज्ञान हो और आप आसानीसे समय निकाल सकते हों, तो नारणदास और आश्रमके अन्य जिम्मेदार व्यक्तियोंके परामर्शसे आश्रममें उसका व्यवहार शुरू कर सकते हैं। हमें आश्रममें बाहरसे चिकित्सीय सहायता न लेनी पड़े या चिकित्सक मित्रोंको कभी-कभी ही कष्ट देना पड़े, तो इससे मुझे सचमुच खुशी होगी। मेरा आदर्श तो यह है कि हमें जिस उपचारकी भी जरूरत हो, वह आश्रममें ही मिल जाये। जब किसीको उपचारके लिए बाहर जाना पड़ता है या बाहरसे चिकित्सक बुलाना पड़ता है तो मुझे बहुत दुःख होता है। हो सकता है, वैसी आदर्श स्थिति कभी भी न बन पाये, लेकिन हम इसके जितना भी करीब पहुँच सकें उतना ही अच्छा। इसलिए मुझे खुशी होगी यदि आप बाहरसे चिकित्सकीय सहायता लेनेके अवसर कम भी कर सकें। लिखिए कि कुसुम, जमना, चिमनलाल और परचुरे शास्त्रीका भी, जो किसी कदर कम महत्त्वपूर्ण नहीं, आप क्या इलाज करेंगे। इन सबकी बीमारियाँ अपने-अपने ढंगसे विशेष हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३०) से।

३४९. पत्र : नरहरि परीखको

[४ अप्रैल, १९३३ के आसपास][1]

चि० नरहरि,

मोहनको क्या हो गया है? उसके हाथको क्या हुआ है? हाथ बेकार हो जानेका डाक्टर क्या कारण बताता है? मैंने यह मानकर कि यह सामान्य ज्वर है उसकी कोई चिन्ता नहीं की, किन्तु अब मैं कुछ परेशानीमें पड़ गया हूँ और भली-भाँति यह समझ लेना चाहता हूँ कि हाथको क्या हुआ है।

नारणदासको लिखा तुम्हारा पत्र मैंने पढ़ा। तुम्हारे कुछ सुझाव मुझे अच्छे लगे हैं। इस सम्बन्धमें तुम नारणदाससे विचार-विमर्श कर लेना। सभा आयोजित की गई थी यह बहुत ठीक हुआ, किन्तु जिससे अमल कराना है उसे उन सब बातोंको अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि यदि सम्भव हो तो तुम दोनोंका मन मिल जाये। अभी मुझे ऐसा हुआ नहीं दिखता। अपनी तरफसे पूरी कोशिश करना। निराश होकर कोशिश करना मत छोड़ देना।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०५९) से।

३५०. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय सतीश बाबू,

इस महीनेकी १ ली तारीखका आपका पत्र मिला, साथमें १९ मार्चके आपके पत्रकी[2] एक प्रति भी।

'सनातनी' मुझे नियमित रूपसे मिलता रहा है। इसलिए आपको वह मेरे पास भेजनेकी जरूरत नहीं। सम्पादक कौन है? उन्होंने मुझे लिखा था कि वे मुझसे पहले मिल चुके हैं। मुझे उनका चेहरा-मोहरा याद नहीं पड़ता। वे क्या काम करते थे या आजकल क्या करते हैं?

१. प्रापक द्वारा नारणदास गांधीको लिखे गये पत्रके उल्लेखसे, देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ४-४-१९३३।

२. इस पत्रमें पूना समझौतेके विरुद्ध होनेवाले आन्दोलनके कारणभूत तथ्योंका विवरण दिया गया था। उनमें एक शिकायत यह थी कि पूना समझौतेके अन्तर्गत हरिजनों, नामशूद्रों और राजवंशियोंको अत्यधिक संख्यामें कौंसिलकी सीटें देकर सवर्ण हिन्दुओं और राष्ट्रीय प्रगतिके साथ ज्यादती की गई है।

रामानन्द बाबूकी टिप्पणी सचमुच दिलचस्प है; लेकिन वह जब किसी चीजसे नाराज होते हैं तब उनकी यही शैली रहती है।[1]

समझौतेसे सम्बन्धित हमारे कर्तव्यके बारेमें मैं अपने विचार आपको विस्तारसे बतला चुका हूँ।[2] अब आप ठीक वही कीजिए जो आप स्थानीय परिस्थितियोंको देखते हुए जरूरी समझें। बंगालके बारेमें मेरे पास बंगाल सरकार द्वारा तैयार की गई अनुसूची है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३९) से।

३५१. पत्र : वी० आर० दिघेको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

जंजीरा राज्यमें भैंसेकी बलिका विवरण देते हुए आपने जो पत्र भेजा है, उसके लिए आपका आभार मानता हूँ। देखूँगा कि मैं इस मामलेमें क्या-कुछ कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० आर० दिघे
खादी भण्डार
दादर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३६) से।

३५२. पत्र : दिवाकरसिंहको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय दिवाकर,

आपका पत्र मिला। मैं आपके बारेमें कोई राय तो नहीं दे सकता, लेकिन यदि गहराईसे आत्म-विवेचन करनेपर आपको लगा हो कि आपने सेवाका जो यह दूसरा तरीका निकाला है वह पहलेके उस तरीकेसे कहीं बेहतर है जिसे आपने शुरू किया था तो आपको इसपर कायम रहना चाहिए।[3] आपने मेरी बात समझ ली, मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३७) से।

१. रामानन्द चटर्जी बंगला **प्रवासी** तथा **मॉडर्न रिव्यूके** सम्पादक थे। उन्होंने पूना-समझौतेके विरोधियोंके समर्थनमें 'हरिजन विद्यार्थियोंकी सहायता' शीर्षकसे एक आलोचनापूर्ण सम्पादकीय लिखा था।

२. देखिए "पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको", १८-३-१९३३।

३. दिवाकरसिंहने लिखा था कि उन्होंने सड़कोंकी सफाई करना छोड़ दिया है और अपना पाखाना तथा अवसर पड़नेपर छात्रावासके अन्य पाखानोंकी भी सफाई करने लगे हैं।

३५३. पत्र : अमूल्यधन रायको

५ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

मेरी स्थिति तो बिलकुल स्पष्ट है। यरवडा समझौता एक पवित्र प्रलेख[1] है। उसमें कोई भी परिवर्तन तभी किया जा सकता है जब उससे सम्बन्धित सभी पक्ष उसपर सहमत हों।

जहाँतक मेरी बात है, मुझे तो ऐसा कोई कारण नहीं दिखता कि मुझे अपनी राय बदलनी चाहिए।

यदि आपकी इच्छा हो तो आप मेरा उत्तर प्रकाशित करनेके लिए सर्वथा स्वतन्त्र हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अमूल्यधन राय
गिरीश घोष लेन
घुसुरी
डाकघर-बेलूरमठ (हावड़ा)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८३८) से।

३५४. पत्र : नारणदास गांधीको

५/६ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

इसके साथ आश्रमके मजदूरोंकी ओरसे आया हुआ एक पत्र भेजता हूँ। पत्र पर नाम मालीडोशीका है। तुमने शायद उसे नहीं देखा है। उसमें जो-कुछ कहा गया है उसकी जाँच करना और लिखना कि क्या मामला है।

माधवजीके भाई चतुर्भुजने लिखा है कि माधवजीके जो दो लड़के कलकत्तेमें हैं उनकी वहाँ ठीक देखरेख नहीं की जा सकती। मैंने उन्हें लिखा है कि इन लड़कों की काकी उन्हें आश्रममें रख जाये। बच्चे यहाँ रम जायें, उसके बाद काकी चली

१. अमूल्यधन राय विधान परिषद्के सदस्य थे। उन्होंने गांधीजी को सूचित किया था कि बंगाल विधान परिषद्ने १४ मार्च, १९३३ को यरवडा-समझौतेके विरुद्ध एक प्रस्ताव पारित किया था। उन्होंने स्वयं प्रस्तावका विरोध किया था और आगेकी कार्रवाईके बारेमें गांधीजी की सलाह माँगी थी।

जाये। तुम भी उन्हें लिखना और लड़कोंको अपने हाथमें लिया जा सके तो लेना। मैंने माधवजी और महालक्ष्मीको लिखा तो है।

डंकनकी तबीयत ठीक होगी।

टाइटसको लिखा पत्र पढ़ना।[1] दुग्धालयकी रिपोर्ट जैसी है वैसी ही भेज दो तो भी काम चल जायेगा। यदि जरूरत हुई तो उसकी नकल मैं यहाँ करा लूँगा। अन्यथा उसे पढ़कर वापस कर दूँगा।

केशू अब मुझे भी बस दो पंक्तियाँ लिखकर अपना काम पूरा हुआ मानता है। उससे सन्तोष पानेकी आशा अब मैंने छोड़ दी है। उसने आश्रम छोड़नेका ही निश्चय कर लिया है। शुक्रवारको मुझसे आकर मिल जायेगा। लगता है कि राधा भी बाहर ही रहना चाहती है।

डॉक्टर शर्मा और परचुरे शास्त्रीके बारेमें मैंने जो पत्र लिखा है वह तुमने पढ़ लिया होगा और मेरा आशय समझ लिया होगा। समझमें न आया हो तो पूछना।

संलग्न :

मालीडोशीका पत्र और चम्पा, परचुरे शास्त्री, टाइटस, मालीडोशी और राजभोजके नाम अपना पत्र।

बापू

[पुनश्च :]

६ अप्रैल, १९३३

गौर गोपालका पत्र आया था। मैंने उसका उत्तर तुरन्त दे दिया था। यह कई दिन पहलेकी बात है। अब उसे लिख देना कि वह निश्चिन्त होकर शैल आश्रम चला जाये। वहाँ उसके ठहरनेके लिए स्थान तो मिल ही जायेगा। भोजन आदिकी व्यवस्था तो वह स्वयं कर लेगा। इसमें प्रभुदास उसका मार्गदर्शन करेगा। उसकी सार-सँभालमें यथासम्भव मदद करना हमारा कर्तव्य है।

धनंजयकी परिचर्या ठीक हो रही होगी। बीमारी क्या है, यह तो तुम जानते हो। परिचर्या कौन कर रहा है? परिचारक बड़ी उम्रका हो तो ज्यादा अच्छा। कारण, बड़ी उम्रवालेको इस बीमारीकी छूत कम लगती है।

लीलाधरको क्या हुआ है?

बापू

[पुनश्च :]

सेनिटेशन पर पूर की जो पुस्तक हमारे यहाँ है वह इस पतेपर भेज दी जाये :

श्री नी०, चीतलदुर्ग, मैसूर।

गौर गोपालका पता शायद वहाँ तुम्हारे पास न हो तो यह रहा :

मार्फत श्रीयुत गजेन्द्रप्रसाद दास, एडवोकेट, पटना।

१. देखिए "पत्र: टी० टाइटसको", ४-४-१९३३।

संलग्न पत्र : डंकन, प्रेमी, चिमनलाल, अमीना, आनन्दी, नानीबहन, दुर्गा, पुरुषोत्तम, नारणदास, तलवलकर, दुर्गा (बाबो)।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३५५. पत्र : मीराबहनको

६ अप्रैल, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा पत्र कल ही आया है। यह मैं प्रार्थनासे पहले पौने चार बजे लिख रहा हूँ। मैं कुछ अधिक सो लिया हूँ। उपवासका दिन था, इसलिए शायद कोई हर्ज नहीं।

तुमने वह सब लिखकर अच्छा किया। उसपर अमल करनेमें तीन तरहकी कठिनाइयाँ हैं। (१) या तो आश्रमको किसी और जगह ले जाना पड़ेगा या फिर अन्य प्रवृत्तियोंको छोड़ देना पड़ेगा। (२) तुमने जो शर्तं रखी है उसपर तो एक नारणदासके अलावा शायद कोई भी आश्रमवासी नहीं टिक पायेगा। (३) तुमने जिस रूपमें पेश किया है, उस रूपमें आश्रमकी संकल्पना की ही नहीं गई थी।

यह अन्तिम कठिनाई ही शायद दुर्निवार है। मैं तो एक उच्चादर्शपूर्ण प्रयोग कर रहा हूँ, जो खतरनाक है और हो सकता है कि एक अप्राप्य आदर्श ही सिद्ध हो। मेरा विचार एक ऐसा स्थान बनानेका है जहाँ लोग नित्यप्रतिके सामान्य प्रलोभनोंके बीच ब्रह्मचर्यसे रहनेके लिए अपने-आपको प्रशिक्षित कर सकें। . . .[1] और . . .[2] का पतन इसलिए नहीं हुआ कि वे पाशविक वासनाओंको वशमें नहीं कर पाये। वे इतनी दूरतक नहीं गये हैं। लेकिन उन्होंने सत्यको छिपाया और सत्य-निष्ठाका विकास तो विभिन्न मनोवृत्तियोंवाले स्त्री-पुरुषों और प्रच्छन्न प्रलोभनोंके बीच रहकर ही किया जा सकता है। एक ही तरहकी आदतोंवाले चन्द व्यक्तियोंके लिए यह काफी आसान है कि वे एक-दूसरेके साथ धोखा न करें या उनका सही रंग न खुले। लेकिन यह तो ऐसा जीवन नहीं हुआ जिसमें सत्य-निष्ठाकी परख हो सके। आवश्यकता सहज, स्वाभाविक परिवेशमें सत्यमय जीवन जीनेकी है। लोगोंने तो ऐसी भी आपत्ति उठाई है कि आश्रमका जीवन सहज स्वाभाविक नहीं है।

पता नहीं, तुम मेरे यह सब लिखनेका आशय बराबर समझ रही हो या नहीं। यदि समझ रही हो, तो तुम्हें तुरन्त यह आभास हो जाना चाहिए कि पहली दो कठिनाइयाँ जान-बूझकर मोल ली गई इस तीसरी कठिनाईका ही सहज-स्वाभाविक परिणाम हैं। आश्रममें जो स्त्री-पुरुष हैं और जो प्रवृत्तियाँ चलाई जाती हैं वे हमने आश्रमको जैसा बनाया उसीके अनुसार हैं। और इन स्त्री-पुरुषों तथा प्रवृत्तियोंकी बुनियादपर तुम्हारी संकल्पनाके अनुरूप इमारत खड़ी नहीं की जा सकती। तुमने

१ और २. नाम छोड़ दिये गये हैं।

जो सुझाया है वह तो इसी तरह किया जा सकता है कि दो या तीन आश्रमवासी स्त्री-पुरुषोंको अपने ढंगसे रहनेके लिए किसी और स्थानमें भेज दिया जाये और वे कुछ समयमें अपनी ही तरहके कुछ व्यक्तियोंको अपने साथ रहनेके लिए अनुप्राणित करें। परन्तु वह अपनी असफलता स्वीकार करना ही होगा। अनिवार्य हो जाये तो अपनी असफलता स्वीकार करनेमें मुझे कोई संकोच नहीं होगा। पर मैं इस बातका बिलकुल भी कायल नहीं हूँ कि ऐसा अनिवार्य है। यदि हमारे इस प्रयोगमें चन्द लोग टिके रहे और उनके बारेमें कहा जा सका कि वे बहुत हदतक कसौटीपर खरे उतरे हैं, तो मैं पूर्णतः सन्तुष्ट हो जाऊँगा कि मेरा प्रयोग सफल रहा। हम जिस प्रकारका प्रयोग कर रहे हैं उसमें असफलताएँ तो नित्य-प्रतिकी घटनाएँ हैं। प्रत्येक असफलता सफलताकी एक सीढ़ी होगी। . . . घटनाने मुझे क्षुब्ध तो किया है, पर मुझे घबड़ा बिलकुल भी नहीं पाई है। पता लगनेपर तुरन्त कार्रवाई की गई है और अभी की जा रही है।

इसके बारेमें मेरा निदान क्या है — यह भी तुमको जानना चाहिए। सारा दोष यह है कि मैंने नई उम्रके इन दोनोंपर जरूरतसे ज्यादा विश्वास किया। उससे पहले प्रारम्भिक दोष था इनके माता-पिताका। . . . का खयाल था कि यदि उनके बच्चोंका लालन-पालन समाजसे पृथक् रखकर किया जाये तो वे आश्रमके आदर्शके कहीं अधिक अनुरूप बन सकेंगे। . . . यही विचार पाल रखा था। . . . इसीलिए बच्चे निरे स्वार्थी, अपनेको विशिष्ट समझनेवाले और आत्म-केन्द्रित बन गये। . . . के पीछे मंशा नेक था। और इसलिए . . . की मृत्युके बाद मैंने परम्परा कायम रखी। उनके उत्तराधिकारीके रूपमें मुझे उसकी प्रभावकारिताको परखकर देखना ही था। परिणाम अब हमारे सामने है। मुझे इसका दुःख नहीं है। . . . को पूरा अधिकार था कि वे जिसमें आश्रमकी भलाई समझें उसपर अमल करें। जहाँतक . . . का तरीका . . . उलटा था। लेकिन . . . ने अपने पतिका पूरे तौरपर हाथ नहीं बँटाया। उनकी अपनी कोई नीति नहीं थी, परन्तु वे स्वयं भी आश्रमके आदर्शका पालन नहीं कर सकीं और इसलिए . . . आश्रममें एक लाड़लेकी तरह बड़ा हुआ। स्वाभाविक परिणति तो शायद अब होगी। . . . का स्वाभिमानी परिवार अब आश्रम-से अलग होकर अपने सहज ढंगसे रहेगा। वह बुरा नहीं होगा। . . . अपना सबक सीख चुकी है। वह . . . की खातिर अब अपनेको आश्रमके आदर्शके अधिकसे-अधिक अनुरूप बनानेकी कोशिश करेंगी। . . . शिकार बना। . . . खलनायक था (शब्दके पूरे गृहीत अर्थमें नहीं)। समूचा आश्रम जानता है कि हर कीमतपर सत्यका पालन करनेसे ही स्थितिसे उबरा जा सकता है। इसी ढंगसे चलकर स्थिति अपने-आप नियन्त्रित होती जायेगी।

धीरे-धीरे और भी कई कदम उठाये जायेंगे। कोई बड़ा उग्र परिवर्तन नहीं किया जायेगा। किसी बड़ी आशंकाका जरा भी कारण नहीं। प्रेमाके प्रति तुम्हारा रुख शायद बिना जरूरत ही इतना सख्त है। उसमें बड़ी-बड़ी खामियाँ हैं सही, लेकिन इस घटनामें बेचारीका बिलकुल कोई हाथ नहीं था। उसके कायिक ब्रह्मचर्य पर मुझे किंचित् भी शंका नहीं और उसमें सत्यवादिता तो इतनी है कि उसे मुँह-

फट बना देती है। बाह्य नियमोंके पालनमें वह बहुत ज्यादा पाबन्द रहती है। हाँ, उसकी जुबान बुरी है। उसपर काबू पानेकी वह कोशिश कर रही है। खैर, ऐसा कोई व्यक्ति है ही नहीं, जो आश्रमको नारणदासकी अपेक्षा अधिक अच्छे ढंगसे चला सके। उसे आश्रमको अपनी योग्यताके अनुसार अच्छेसे-अच्छे ढंगसे चलानेको मुक्त छोड़ देना चाहिए।

अब मैं चाहता हूँ तुम इस लम्बे-चौड़े पत्रको पूरे ध्यानसे पढ़कर और खूब सोच-समझकर मुझे इसके बारेमें अपनी आलोचना, अपने विचार और अपने सुझाव निस्संकोच भावसे साफ शब्दोंमें लिख भेजो। जमकर सोच-विचार करनेके लिए तुम्हारे पास काफी समय है। मैं विचलित नहीं हुआ हूँ। मैं हर चीजको सहज भावसे ग्रहण करता हूँ और जैसे-जैसे नई परिस्थिति सामने आती है, उसका मुकाबला करता हूँ। नारणदास सभी निर्देशोंका सचाईसे पालन करेगा। और यदि मेरे हृदयने ऐसी प्रेरणा दी तो मेरे लिए यह बिलकुल शक्य है कि जहाँतक मेरे हाथमें है मैं समूचे आश्रमको तत्काल भंग कर दूँ; वैसे वैधानिक रूपसे मैं ऐसा नहीं कर सकता। लेकिन यह तो कोई बाधा ही नहीं है। मेरा नैतिक सत्ताधिकार तो मौजूद है। इसलिए तुम चाहे जैसे सख्त सुझाव दे सकती हो।

यहाँ और सब ठीक है। इसमें जितना कुछ मैंने लिखा है उसे आवश्यकतानुसार वा को समझा देना।

हम सबकी ओरसे सप्रेम,

बापू

मूल अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६७३) से; सौजन्य : मीराबहन

३५६. पत्र : नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्जीको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके २७ मार्चके पत्रके लिए धन्यवाद। जुनू[1] द्वारा काते गये सूतसे बुना खद्दरका टुकड़ा भी अब मुझे मिल गया है। नन्हीं मुन्नीको मेरी ओरसे धन्यवाद दीजिए और उससे कहिएगा कि मैं उस खादीका बड़ी खुशीसे इस्तेमाल करूँगा और उस समय उसकी याद भी कर लिया करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्जी
धलबरिया गाँव
मथुरेशपुर डाकघर
खुलना जिला (बंगाल)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५५) से।

१. नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्जीकी छः वर्षीय पुत्री जिसने गांधीजी को भेंट करनेके लिए दो वर्षतक सूत काता था।

३५७. पत्र : आर० के० गोलिकेरेको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय गोलिकेरे,

आपका पत्र पाकर मुझे वास्तवमें आश्चर्य हुआ और उसे पढ़कर तो और भी। आपने मुझे याद रखा और मुझे अपनी पुस्तक भेजी — इसके लिए मेरा धन्यवाद। मैं अवश्य ही उसे पढ़नेका समय निकालूँगा। ज्योतिषकी आपकी नई परिभाषाको मैं तब ज्यादा अच्छी तरह समझ सकूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० के० गोलिकेरे
सारस्वत बिल्डिंग्स
गामदेवी, ग्रांट रोड
[बम्बई]

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५६) से।

३५८. पत्र : डंकन ग्रीनलीज़को

६ अप्रैल, १९३३

आपका पत्र मिला। मन हर्षित हो उठा।[1] पत्र स्पष्टवादिता और खरी ईमानदारीसे भरा-पूरा है। आपने जो लिखा है उसका एक-एक शब्द मैं समझता हूँ। आप वही कीजिए जिसकी प्रेरणा आपके अन्तरका सत्य आपको दे। वही मुझे पूर्ण सन्तोष देगा। भाग्य आपको कहीं भी ले जाये, मैं आपको एक आश्रमवासी ही मानता रहूँगा। इस बीच आश्रमके जीवनसे आप जितना भी ग्रहण कर सकते हैं, कीजिए, लेकिन अपने ऊपर किसी तरहकी कोई ज्यादती किये बिना। उपवास शुरू करके आपने एक बड़ा कदम उठाया है। आशा है, आप पुरुषोत्तमके मार्ग-दर्शनमें चल रहे हैं। आप गरम या ठंडा पानी जितना पी सकें, पीजिए। यदि ठीक विधिसे लिया जाये तो इससे आपको कोई भी नुकसान नहीं पहुँचेगा। पानीको ठंडा बनाये रखनेका सबसे अच्छा और सस्ता तरीका आपको मालूम है। पानीके पात्रको गीले कपड़ेसे लपेट कर रखें। आपको रोजाना पूरा एनीमा लेना है और यदि मतली-सी आये तो नींबूकी दो-चार बूँदें — और यदि आपको मीठा प्रिय हो तो शहद — पानीमें मिलाकर ले लें।

डंकन ग्रीनलीज़

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४०) से।

१. डंकन ग्रीनलीज़ने गांधीजी को लिखा था कि वे मदनपल्ली जाकर अध्यापनकार्य करनेकी सोच रहे हैं।

३५९. पत्र : वी० एस० काथवटेको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा खयाल है आपको उस लड़कीसे शादी करनेका विचार बिलकुल छोड़ देना चाहिए। लगता है आप इस बातका कोई खयाल ही नहीं करते कि उसकी अभी उम्र केवल ग्यारह वर्ष ही है। इस उम्रमें वह शादीका कोई विचार रख ही नहीं सकती और यदि रखती है तो वह उसका असामयिक, अपरिपक्व और अस्वस्थ ज्ञान ही है, जिसे प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए। इसलिए निस्सन्देह आप लोगोंके बीच जो निकटका सम्बन्ध है उसके बावजूद मैं समझता हूँ कि लड़कीकी उम्र उसमें एक बहुत बड़ी बाधा है, और आपको उसकी आँखोंमें अपने लिए कोई निवेदन नहीं पढ़ना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० एस० काथवटे
सावनूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४९) से।

३६०. पत्र : केशवको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय केशव,

आपका स्पष्टवादी पत्र मुझे अच्छा लगा। मैं आपका दृष्टिकोण भली-भाँति समझता हूँ। चाहे मैं उससे सहमत न होऊँ, पर मैं उसकी कद्र कर सकता हूँ। मेरा बुनियादी दृष्टिकोण आप जानते ही हैं। जानते हैं न? मेरी यह भावना कभी नहीं रही कि मुझे पूरे तौरपर जो सत्य लगता है, वह दूसरोंको भी ऐसा लगना ही चाहिए। सत्यका जो स्वरूप हमें दिखलाई पड़ता है वह सदा हमारा सापेक्ष ज्ञान ही होता है, इसलिए यह जरूरी नहीं कि वह सब-कहीं और सबपर समान रूपसे लागू हो। इसलिए मैं अपने पड़ोसियोंके लिए ईश्वरसे यही प्रार्थना करता हूँ, "हे सर्वज्ञ, वे सत्यको उसी रूपमें देख सकें जिस रूपमें तू उनको दिखाना चाहता है।"

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५२) से।

तुमसे यही कहूँगा कि फिलहाल तो दूध और मक्खनसे परहेज मत करो। चाहो तो थोड़ी मात्रामें ही लो, लेकिन यदि तुम ये दोनों चीजें नहीं लेती रहोगी तो ताजे फल और चोकरयुक्त आटा भी न मिलनेके कारण कुछ ही समयमें कमजोर हो जाओगी।

तुमको अपने बयानके बारेमें दुर्गादासको[1] कुछ भी लिखनेकी जरूरत नहीं। अपनी याददाश्तसे खुद ही लिख डालो, और मेरे पास भेज दो।[2]

सि० के सिलसिलेमें दालोंके बारेमें तुमने जो लिखा है, उसे मैं समझता हूँ। तुमने यहाँ उसका जो वर्णन मुझसे किया था, उसके अनुसार वह काफी सक्रिय किस्मका लड़का है, इसलिए उसे कुछ कम मात्रामें दाल देनेसे शायद कोई हानि नहीं होगी।

'विलेज सेनीटेशन' (ग्राम-सफाई) पर लिखी पुस्तक मैं तुमको भेज दूँगा। आश्रमको लिख रहा हूँ; पर मैं पूरकी पद्धतिका सार तुमको बतलाये देता हूँ। उनका सिद्धान्त यह है कि हमारी पृथ्वीकी १८ इंच तककी परतमें ऐसे कीटाणुओंकी बहुतायत है जो पृथ्वीपर रहनेवाले सभी प्राणियोंके लिए सफाईका काम करते रहते हैं। पृथ्वीपर रहनेवाले प्राणी उसकी सतहपर रोज-ब-रोज जितनी सारी गन्दगी जमा करते हैं, उस सबकी सफाई वे कीटाणु कर सकते हैं। पूरने यह जानने और चीनी लोग किस प्रकार मैलेका आर्थिक दृष्टिसे सबसे अच्छा उपयोग करते हैं, इस बातसे अवगत होनेके बाद अपने तरीकेका विकास किया और कहा कि मल-मूत्रको जमीनके अन्दर ज्यादासे-ज्यादा १२ इंच और हर हालतमें १८ इंचसे कम गहराईमें ही दबा दिया जाना चाहिए। इसीलिए उन्होंने न तो एक स्थानसे दूसरे स्थानमें हटाये जाते रहनेवाले पाखानों और न गहरे गड्ढोंवाले पाखानोंकी ही बात सुझाई है। उनका सुझाव है कि पाखानोंमें बाल्टियाँ रखी जायें और हर व्यक्ति अपने मैलेको पाखानेमें रखी मिट्टीसे ढकता जाये। इस तरह शौचालय सदा ही स्वच्छ बना रहेगा और उसमें अच्छी गंध रहेगी। फिर इन बाल्टियोंको शौचागारसे कुछ ही गजकी दूरीपर पहलेसे खोदकर तैयार की गई क्यारियोंमें उलट दिया जाये और फिर उनके किनारोंपर बनाये हुए मिट्टीके ढेरोंसे मिट्टी लेकर मल-मूत्रको ढक दिया जाये। हाल ही में मिट्टीसे ढके मैलेपर और मैला नहीं डालना चाहिए। हर जगह मैलेको काफी मिट्टीसे ढक देना चाहिए जिससे कुत्ते और अन्य जानवर उसे खोद न सकें। इस प्रकार एक पखवारेके अन्दर ही वहाँ मौजूद कीटाणु उस मैलेको बढ़िया खादमें बदल देंगे और वह भूमि कृषि-योग्य बन जायेगी।

हम आश्रममें इस योजनापर पिछले १७ वर्षोंसे अर्थात् आश्रमकी संस्थापनाके दिनोंसे ही, बड़ी कामयाबीके साथ अमल करते आ रहे हैं। इस पूरी प्रक्रियामें कोई अधिक समय नहीं लगता और उन क्यारियोंसे दुर्गंध भी नहीं आती।

१. एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके तत्कालीन सम्पादक।

२. नी० ने अपने बारेमें एक बयान तैयार करके उसे प्रकाशनके लिए एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको भेजा था, लेकिन उसे प्रकाशित नहीं किया गया था।

आशा है कि मैंने जो कुछ यहाँ लिखा है उसपर अमल करनेमें तुमको कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। सभी प्रकारके मैलेको उपयोगी बनानेका यही सबसे कम खर्चीला तरीका है। रसोईसे बचनेवाली जूठन आदिको भी इसी तरीकेसे उपयोगी बनाया जा सकता है, लेकिन उसे मैलेके साथ मिलाना नहीं चाहिए, क्योंकि कीटाणु साग-सब्जियों की जूठनपर अपना जो काम करते हैं वह मैलेपर किये जानेवाले उनके कामसे भिन्न होता है। अन्य सभी बातोंमें प्रक्रिया एक ही तरहकी होती है। आश्रममें हमने देखा है कि इस प्रकार तैयार की गई खादका प्रयोग करनेपर हमारी फसल गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियोंसे अधिक भरी-पूरी होती रही है।

इसपर अमल करनेमें यदि तुम कोई कठिनाई महसूस करो, तो लिखना।

तुमने जो जरूरी हो ऐसी सभी सहायता देनेके लिए नगरपालिकासे जो अनुरोध किया है वह सर्वथा उचित है। यदि वह सहायता दे तो बहुत ही अच्छा, लेकिन यदि न भी दे तो चिन्ता मत करना, परेशान न होना। फिलहाल तुम्हारे लिए जो काम निश्चित किया गया है, वह है — हरिजनोंके बीच काम करना, और उससे भी बढ़कर, आत्म-सुधार करना।

अब पोशाककी बात लेता हूँ। तुमको सिर्फ तीन चीजोंकी जरूरत है — पुरुषोंकी कमीजसे मिलती-जुलती कोहनियों तककी बाँहवाली एक ढीली कुर्ती, घुटनोंसे ३-४ इंच नीचेतक पहुँचनेवाली एक घाघरी, और मेरे जैसा एक कटि-वस्त्र, लेकिन इतना लम्बा नहीं। यदि तुम सिलाईका कष्ट उठानेके लिए भी तैयार हो तो तुम पुरुषोंके जाँघियेकी तरहकी कोई चीज बना सकती हो। यही सबसे सादा पोशाक रहेगी। संन्यासिनें कुछ इसी तरहकी पोशाक पहनती हैं। तुम अपनी साड़ियोंकी कुर्तियाँ या कमीजें बना सकती हो। तुम्हारे स्कर्ट काम आ सकते हैं और शायद तुम्हारे पास नेकर या जाँघिये-जैसी भी कुछ चीजें हों।

हृदयसे तुम्हारा,

[पुनश्च :]

मुझे बापू कहकर सम्बोधित करना तुम्हारे लिए गलत होगा। तुम मुझे बापू सिर्फ तब कह सकती हो जब तुमको अपने ऊपर पूरा भरोसा हो जाये कि तुम मेरा विश्वास प्राप्त कर लोगी और मुझे कभी धोखा नहीं दोगी। मैं अपनी ओरसे बापू हस्ताक्षर करके तुमपर विश्वास करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४९-ए)से।

३६३. पत्र : बी० आनन्द नायकरको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय नायकर,

मैंने आपका १५ मार्चका पत्र जान-बूझकर इसलिए अलग रख लिया था कि उसे पढ़नेका समय निकालूँगा। अब मैं उसे पढ़ गया हूँ। मुझे आशंका है कि दुकान का काम आपसे ठीक तरह सँभल नहीं पायेगा। मैं तो चाहूँगा कि आप शारीरिक मेहनत वाला कोई ऐसा काम लें जिसमें आप घरसे बाहर दिन-भर व्यस्त रहें, स्वयं अपनी और अपने करणीय या अकरणीय कार्योंकी चिन्तासे मस्तिष्कको मुक्त रखें, और केवल अपने सामने पड़े कामपर ही पूरा ध्यान लगायें। निस्सन्देह, हल्की-फुल्की बागवानी ऐसा ही काम है। उसमें लगकर आप फल-फूलोंकी भाषा समझ पायेंगे; और मुझे भरोसा है कि वह आपको दिलचस्प लगेगी।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० आनन्द नायकर
मार्फत–पोस्टमास्टर
पोस्ट आफिस, बासवंगुडि, बंगलोर शहर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५१) से।

३६४. पत्र : के० ए० श्रीनिवास सेट्टीको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके तीन पत्र मिले, धन्यवाद। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि पूज्यपाद महाराजने[१] चीतलदुर्ग मठके द्वार हरिजनोंके लिए खोल दिये हैं और वे हरिजनोंको मांस-भक्षणसे दूर रहनेका परामर्श दे रहे हैं।

केन्द्रीय बोर्डके नामके बारेमें आपकी आपत्ति सर्वथा तर्क-संगत है, लेकिन यह नाम 'हरिजन' नामके प्रचलनसे पहलेका रखा हुआ है। पर भारतीय भाषाओंमें सभी बोर्डोंको हरिजन सेवा समाज या मण्डल कहा जाता है।

१. लिंगायतोंके जगद्गुरु जयदेव मुरुघाराजेन्द्र स्वामी।

मैं देखता हूँ कि हरिजन-उत्थानके लिए देवनगिरिमें एक संघ बनाया गया है और मुझे यह जानकर भी बड़ी प्रसन्नता हुई कि वहाँ अध्यापन-कार्य करनेवाला ब्राह्मण स्नातक हरिजनोंके हलकेमें ही रह रहा है और उनमें साफ-सुथरे ढंगसे रहनेकी प्रवृत्ति बढ़ा रहा है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० ए० श्रीनिवास सेट्टी
अवैतनिक मन्त्री
आदि-कर्नाटक सहाय संघ
देवनगिरि (मैसूर स्टेट)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५०) से।

३६५. पत्र : टी० वी० के० स्वामीको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे अपनी पुस्तकें समर्पित करनेवाले सभी लेखक मुझसे इसकी अनुमति नहीं माँगते, और आपकी पुस्तक के[1] समर्पणकी अनुमति मुझे देनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि मैं उसे समझ ही नहीं पाऊँगा। परन्तु इतने सारे अन्य लेखकों की भाँति पुस्तक मुझे समर्पित करनेकी आपको भी पूरी आजादी है। हाँ, आप उसमें यह घोषणा न करें कि वैसा आपने मेरी अनुमतिसे किया है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० वी० के० स्वामी
गीता विलास
कल्लकुरिचि
दक्षिण आर्काट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४७)से।

१. यह **गीता**का तमिल अनुवाद था।

३६६. पत्र : डॉ० जी० आर० तलवलकरको

६ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० तलवलकर,

कुसुमबहनके बारेमें आपका विस्तृत पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और मुझे यह भी बहुत अच्छा लगा कि आपने उसे मेरी सुविधाके लिए टाइप करा दिया।[1] पत्र मैंने अच्छी तरहसे समझ लिया है। आपने मुझे वह जानकारी दे दी है जिसके लिए मैं इतना उत्सुक था। आपको जितने भी मरीज मिले हैं — कमसे-कम आश्रममें — उनमें तो कुसुमबहन ही शायद सबसे अधिक आज्ञाकारी मरीज है और चूँकि आपको पूरा विश्वास है कि उसको आपके इलाजसे लाभ हुआ है, इसलिए यह इलाज तबतक लगातार चलता रहेगा जबतक आप और आपके इलाजपर उसका विश्वास कायम है। उसे और मुझे भी, इस बातसे चिन्ता होती है कि उसे अक्सर अतिसार हो जाता है। मेरा खयाल है कि उसे जो चन्द दिनोंके अन्तरालसे बार-बार टट्टियाँ आने लगती हैं, उसे अतिसार कहकर मैं ठीक शब्दका ही प्रयोग कर रहा हूँ। लेकिन यदि यह आपके उपचारका स्वाभाविक परिणाम है, तब तो हम दोनोंमें से किसीको कुछ कहना नहीं है। हाँ, बाकायदे एक आरोग्यशाला बनानेके आपके विचारका मुझे ध्यान है, लेकिन वह चीज तो अभी भविष्यके गर्भमें ही है।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८४८) से। सी० डब्ल्यू० ९६८७ से भी; सौजन्य: आर० के० प्रभु

३६७. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

६ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तू मूर्ख भी है और सयानी भी, इसलिए एक ही विशेषण नहीं दे सकता। बोलना लगभग बन्द होना ही चाहिए। ऊँची आवाजसे बोलना बिलकुल ही बन्द। गाना भी सर्वथा बन्द। काम न चलनेपर भी धीमी आवाजसे बोलना पड़े तो बोला जाये, अन्यथा जो कहना हो वह लिखकर कहना चाहिए। ऐसा नहीं करेगी तो तुझे पछताना होगा।

१. डॉ० तलवलकरने तपेदिकसे पीड़ित कुसुमको तपेदिकके इन्जेक्शन लगानेकी सलाह दी थी।

तेरी खुराकमें ज्वार-बाजरा अनुकूल न पड़े तो उन्हें वन्द कर देना चाहिए। मेरी इच्छा तो तुझे कच्चे दूधपर रखनेकी होती है। उसके साथ थोड़े-से मुनक्के चबाकर चूसनेसे सन्तोष रहेगा। टमाटर तो हमारे यहाँ बारहों-महीने पैदा होने चाहिए। और जब भाजी मिले तब हरी भाजी उबाल कर ली जाये। इतने पर तू रहे तो और किसी चीजकी मुझे जरूरत नहीं मालूम होती। तेरी शक्ति जरूर कायम रहेगी। जाँच करके देखना, क्या हो सकता है।

किसनके समाचार दुःखद हैं।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३४) से। सी० डब्ल्यू० ६७७४ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

३६८. पत्र : लक्ष्मीदास पु० आसरको

६ अप्रैल, १९३३

आप आश्रममें रह सकेंगे, यह जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। इससे नारण-दासको बहुत मदद मिलेगी।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९५३४)से; सौजन्य : छगनलाल जोशी

३६९. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

६ अप्रैल, १९३३

भाई मूलचन्दजी,

पत्नीके मोहकी बरदास करना।[1]

यदि लड़कीका पतिमें खादी प्रेम है तो संभव है लड़कीपर उसका प्रभाव पड़ेगा।

छोटेभाईको अपनेपर छोड़ देना चाहिए।[2]

अपना क्रोधको मारनेके लिए नित्य रामनाम जपना और क्रोध आवे ऐसे ही उस स्थानसे हट जाना।

बापूके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० ७७३) से।

१. श्री मूलचन्द्र अग्रवालने लिखा था कि यद्यपि मेरी पत्नी खादी पहननेकी आदि हो गई है किन्तु वह अब भी दूसरे कपड़े पहननेकी शौकीन है।

२. उसे तम्बाकू और भाँग-गाँजे आदिका व्यसन था।

३७०. पत्र : डॉ० जी० वी० देशमुखको

[७ अप्रैल, १९३३ के पूर्व][1]

प्रिय डॉ० देशमुख,

मुझे एक-दो बातोंके बारेमें आपकी सहायता लेनेकी सख्त जरूरत आ पड़ी है।

(१) क्या अपनी मौत मरे हुए पशु और वध किये हुए पशुके मांसमें कोई रासायनिक या शरीर-विज्ञानकी दृष्टिसे कोई अन्तर होता है? यदि होता है, तो क्या?

(२) आपकी जानकारीमें क्या कोई ऐसा चिकित्सा-शास्त्रीय कारण है जिसके आधारपर मांसाहारी लोग भी अपनी मौत मरे हुए पशुके मांससे बेहद नफरत करते हैं?

(३) यदि आपकी राय हो कि जो पशु उससे कुछ ही देर पहले अपनी मौत मरे हों जब उनके मांसको खाया जाये, उनके और वध किये हुए पशुके मांसमें कोई अन्तर नहीं रहता, तो क्या आप बतला सकते हैं कि दो या तीन दिन पहले मरे हुए पशु या चौबीस घंटे पहले मरे हुए पशुके मांसको संसाधित करनेसे कोई अन्तर पड़ेगा या नहीं?

(४) आपको शायद मालूम हो कि कुछ चमार लोग पशुओंकी लाशें हासिल करनेके लिए उनको जहर खिला देते हैं और, कहते हैं, बादमें वे उनका मांस भी खाते हैं। क्या जहरसे मारे गये पशुका मांस खानेवाले को इससे किसी तरहकी कोई खराबी नहीं होगी? क्या मांसमें जहरसे कोई खराबी पैदा नहीं होती, या फिर क्या इस तरहके भी कुछ जहर मौजूद हैं जिनको खिलानेसे पशु तो मर जाता है पर उसके मांसपर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता?[2]

आप बम्बई नगरनिगमकी एक-एक बात जानते-समझते हैं इसलिए आपको बूचड़खानोंके बारेमें भी सारी जानकारी है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप मुझे मरे हुए पशुओंकी खाल उतारने और शवके विभिन्न अंगोंको अलग-अलग करनेकी वैज्ञानिक विधि और सभी अंगोंके अलग-अलग निबटारेका आर्थिक दृष्टिसे सबसे अच्छा तरीका बतलायें। आपको मालूम होगा कि बूचड़खानेमें वध किये गये पशुओंके मांसके अतिरिक्त अन्य चीजों — जैसे खालों, हड्डियों, अँतड़ियों आदिका निबटारा कैसे किया जाता है।

१. देखिए "पत्र : डॉ० जी० वी० देशमुखको", ७-४-१९३३। उसमें गांधीजी ने इस पत्रके उत्तरमें भेजे गये डॉ० देशमुखके पत्रकी प्राप्तिकी सूचना दी है।

२. इन प्रश्नोंके उत्तरमें डॉ० देशमुख द्वारा लिखे गये पत्रके उद्धरणोंके लिए देखिए परिशिष्ट।

यदि बूचड़खानेके लोग भी इसके बारेमें पूरी जानकारी न जुटा पायें तो मैं चाहूँगा कि और जहाँसे भी मिल सके आप जाकर इसके बारेमें मेरे लिए जानकारी हासिल करें।

आशा है, आपको अंग्रेजी 'हरिजन' मिल रहा होगा। यदि हाँ, तो आपने "मरे ढोरोंका निबटारा"[1] के सम्बन्धमें मेरा लेख अवश्य पढ़ा होगा। यदि न पढ़ा हो, तो कृपया पढ़ जाइए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-४-१९३३

३७१. कानून और मन

एक सनातनी जो मन्दिर-प्रवेशको मानते हैं लेकिन कानूनमें जिनका विश्वास नहिं है वे लिखते हैं:

> **जबतक मनुष्यके हृदयसे अस्पृश्यताके भाव भली-भाँति दूर न होंगे, तबतक वह निर्मूल नहीं हो सकती। इसलिए इस अस्पृश्यताको कानूनका दण्ड दूर नहीं कर सकता। कानूनकी शक्ति तो शरीरतक ही परिमित होती है, आधिभौतिक शक्तियाँ हृदय-अवलम्बिनी नहीं होतीं। अन्तरात्मापर सरलता-पूर्वक प्रभाव डालनेवाली एक आध्यात्मिक शक्ति ही है, जिस शक्तिके अंग श्रद्धा, भक्ति, सरलता तथा प्रेम हैं। जहाँ प्रेम या भक्तिका प्रभाव रहेगा, वहाँ अस्पृश्यताका नाम भी न रहेगा। प्रेम और भक्तिके साम्राज्यमें नीच और ऊँचका नामतक नहीं है। इसलिए मेरी प्रार्थना है कि गीता, उपनिषद् और भागवत-धर्मके आधारपर स्थान-स्थानपर योग्य और अनुभवी विद्वानों द्वारा अस्पृश्यता-निवारणका आयोजन कराया जाये तो उचित होगा। इससे अस्पृश्यताके भाव हृदयसे नष्ट हो जायेंगे। कानूनके द्वारा निश्चय ही अनेक संकटोंके उपस्थित होनेका भय है। परस्पर दलबन्दियाँ होकर विरोध खड़े हो जायेंगे। अपनी हठधर्मी पूरी करनेके लिए असनातनी भी सनातनियोंमें नाम लिखायेंगे। शैव, शाक्त, वैष्णवका बखेड़ा खड़ा होगा और लड़ाई-झगड़े तक नौबत पहुँचेगी। अशिक्षित समाजमें यह सब सम्भावना हो सकती है। केवल मन्दिर-प्रवेश तथा देव-दर्शन ही अस्पृश्यता-निवारणके हेतु नहीं हो सकते, क्योंकि अस्पृश्यताका सम्बन्ध मनुष्यके मनसे है और कानून मनमें परिवर्तन**

१. देखिए "मरे ढोरोंका निबटारा", १२-३-१९३३।

नहीं ला सकता। मैं प्रायः भारतीय सनातन धर्मावलम्बियोंसे थोड़ा-सा सम्बन्ध रखता हूँ। जहाँतक मेरा अनुभव है, एक भी सनातनधर्मी इस कानूनसे प्रसन्न नहीं है।

उपरोक्त लेखमें जो लिखा है उसका भाव सुंदर है लेकिन कानूनके बारेमें लेखककी गेर-समझ है। निःसंदेह अस्पृश्यता मनकी भावना है। वह कानूनसे मिट नहिं सकती। कानून शरीरका स्पर्श कर सकता है। मनका कभी नहिं। मनका स्पर्श प्रेमसे ही, दलीलसे ही हो सकता है। और धर्मका प्रचार और किसी साधनसे नहिं हो सकता है, न होना चाहिए।

लेखकको झगडाका डर है। यह भी मेरी दृष्टिसे मिथ्या है क्योंकि कोई बलात्कारसे मंदिर खुलवाना नहिं चाहते हैं। जो मंदिर खुलेंगे वह जनताके अभिप्रायसे खुलेंगे। जिस जगह बहुत लोग हरिजनको मंदिरमें ले जानेके लिये तैयार होंगे वहीं मंदिर खुलेंगे और कहीं नहिं।

यदि ऐसे ही है तो फिर कानून क्यों? कानून इस कारण चाहिये कि आज तो किसी जाहर मंदिरमें जानेवाले सब हिंदु, मंदिरके सब पूजारी और रक्षक चाहें कि वहाँ हरिजन दर्शन करें तो भी कानून रोकता है। यह कोई संशयकी बात नहिं है लेकिन सिद्ध हुई बात है। इस कानूनको रद्द करनेके लिये कानूनकी आवश्यकता रहती है। कानूनी प्रतिबंध कानूनसे ही दूर हो सकते हैं यह तो प्रसिद्ध बात है। हां, जो नया कानूनकी बात चल रही है उसमें जबरदस्ती न होने पाय। एक तरफकी जबरदस्तीको हटाकर दूसरी तरफकी दाखल न की जाय। जहां तक मैं समझता हूँ दोनोंमें से एक बिलमें भी जबरदस्तीका कोई प्रश्न नहिं है। दोनोंमें से कानूनी हस्तक्षेपको हटानेकी बात है।

लेकिन आज नाफेरवादीका [अपरिवर्तनवादी] ऐसा आग्रह बन रहा है कि वे किसी [की] बात सुनना नहिं चाहते हैं। गालियां देते हैं, मारपीट कर लेते हैं, असत्य लिख रहे हैं। सुधारक क्या करे? यदि सुधारक धर्मकी रक्षा करना चाहते हैं तो उनका कर्त्तव्य है कि नाफेरवादीका सब जबरदस्तीकी खामोशीसे बरदास्त करें, द्वेषका उत्तर प्रेमसे देवे, असत्यका सत्यसे, मारपीट सहन कर लेवे लेकिन साथ-साथ कर्तव्यका पालन करें — बूरा कानूनको हटानेकी चेष्टा करते रहें, खानगी मंदिर खुलवानेकी चेष्टा करें और जिस मंदिरमें हरिजन नहिं जा सकते हैं उसमें वे भी न जाँय और हरिजनोंपर दूसरा जो कष्ट पड़ता है उसे दूर करनेका प्रयत्न करें।

मैंने बहुत बार लिखा है और कहा है कि मेरे लिये अस्पृश्यता निवारण प्रायश्चित्तकी बात है। कोई धर्मकी अशुद्धि बगैर शुद्धिके दूर नहिं हो सकती है। अस्पृश्यता हिंदु धर्मकी सबसे बडी अशुद्धि है उसको दूर करनेके लिये हजारों हिंदु अनशन करें तो मैं उसको कोई बड़ी बात नहिं मानुंगा — संभव है कि इतनी आहुती पर्याप्त न हो। तुलसीदासजी कहते हैं कि शिवजीको पानेके लिये पार्वतीजी को बहोत

अनशन करना पड़ा था, जब मनुष्यको धर्म संकट आया है तब उसने ईश्वरकी आराधाना अनशनादि तपसे की है। तुलसी दासजीने लिखा है

तप बल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तप बल बिष्नु सकल जग त्राता।।
तप बल संभु करहिं संघारा।
तपबल शेषु धरइ महि भारा।।
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी।।[1]

हरिजनसेवक, ७-४-१९३३

३७२. तीन उलझनें

एक शिक्षक पूछते हैं:

१. वर्ण व्यवस्थाके अनुसार भंगी और चमार किस वर्णमें गिने जायेंगे?

२. एक धन्धा करनेवाला दूसरे धन्धेवाले के साथ विवाह करे या नहीं?

३. अस्पृश्यताको जब मिटाना ही है, तब हरिजनोंके साथ खान-पान भी क्यों न किया जाये?

सच पूछा जाये तो इन प्रश्नोंके उत्तर किसी-न-किसी तरह 'हरिजनसेवक' में आ गये हैं। तो भी उत्तर देनेसे और अधिक स्पष्टीकरण हो जानेकी संभावना समझकर ऊपरके प्रश्नोंके उत्तर लिखता हूँ।

मेरा यह अभिप्राय है कि वर्ण-व्यवस्था वस्तुतः आज रही नहीं है। सभी वर्गोंने अपना-अपना धर्म छोड़ दिया है। फिर शास्त्र कहता है और बुद्धि भी समर्थन करती है कि वर्णके गुण जब छूट जाते हैं, तब वर्ण लुप्त हो जाता है। आज वर्णोंने अपना धर्म छोड़ दिया है। इसलिए वर्णोंका संकर हो गया है। यदि कोई वर्ण कुछ बच रहा है, तो वह शूद्र वर्ण है, और उसी वर्णके अन्तर्गत सब स्पृश्य और अस्पृश्य माने जाने चाहिए। यदि यह ठीक नहीं है, तो सब लोग अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार अपना-अपना वर्ण पसन्द कर लें। मतलब यह कि वर्णधर्म नहीं रहा। धर्ममें इस तरह पसन्दगीके लिए स्थान नहीं हो सकता; क्योंकि धर्म अधिकारका विषय नहीं, वह तो केवल कर्तव्यका ही विषय है। धर्ममें न कोई उच्च हो सकता है, न नीच।

दूसरा प्रश्न है विवाहका। मैंने कई बार कहा है कि वर्णके साथ विवाहका कोई ऐसा अनिवार्य सम्बन्ध नहीं है। विवाह तो अपनी-अपनी खुशीकी बात है। लेकिन क्योंकि लोग अपने पड़ोसियोंके साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं, अपने जैसे लोगोंसे सम्बन्ध करते हैं, इसलिए सदा ऐसा ही होता रहेगा कि अपने-अपने धन्धेवालों के साथ विवाह-सम्बन्ध लोग करेंगे।

१. **रामचरितमानस,** बालकाण्ड-७२।

तीसरा प्रश्न है खान-पानका। अस्पृश्यता-निवारणकी मर्यादा जो आज रखी गई है उसमें रोटी-बेटी व्यवहारको स्थान नहीं दिया गया है और उचित भी यही है। खान-पान इत्यादि तो खुशीका सौदा है। जहाँ मन बोलेगा, वहीं मनुष्य खान-पान रखेगा। संयम-धर्ममें हमेशा मर्यादा रहेगी। प्रत्येक मनुष्य चाहे जहाँ भोजन नहीं करेगा। इस सम्बन्धमें कोई निश्चित नियम नहीं बन सकता। सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि इस सम्बन्धमें भी उच्च-नीचका भाव दूर हो जाना चाहिए। आज तो हिन्दू धर्ममें छुआछूत और नीच-ऊँचकी ही बात रह गई है। सब अपनेको उच्च मानकर और दूसरोंको नीच समझकर न उनके हाथकी रोटी खाते हैं, न उनका छुआ पानी ही पीते हैं। इसमें मैं कोई धर्मकी बात नहीं देखता। इससे तो हम संसारमें उपहासके ही पात्र बन रहे हैं।

हरिजन-सेवक, ७-४-१९३३

३७३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

७ अप्रैल, १९३३

प्रिय चार्ली,

तुम्हारे पत्र तथा सहपत्र मुझे मिल गये और 'मॉडर्न रिव्यू'[१] के एक पुराने अंकमें प्रकाशित तुम्हारे लेखकी प्रति भी।

'आमरण अनशन'के विरुद्ध नैतिक घृणाकी भावनाको मैं समझता हूँ, बल्कि उसकी कद्र भी करता हूँ। मेरे मनमें भी आमरण अनशनके विरुद्ध यदि उतनी नहीं तो कुछ घृणा तो है ही, पर मैं उससे विचलित नहीं होता। मैंने अपनी इच्छाके विरुद्ध अनेक अन्य काम भी किये हैं और आज भी कर रहा हूँ, इसलिए कि मैं जब ईश्वरकी इच्छाको बहुत ही स्पष्ट रूपमें जान लेता हूँ तब उसके सामने मैं अपनी इच्छाको नगण्य मान लेता हूँ। मुझे जो ईश्वरीय इच्छा लगती है, वह वास्तवमें ईश्वरकी ही इच्छा है, शैतानकी नहीं — यह सुनिश्चित करनेके लिए मैं मनुष्यके लिए जितना शक्य है उतना प्रयत्न अवश्य करूँगा। परन्तु मनमें एक बार पूरी तरह स्पष्ट हो जानेपर मैं अपनी इच्छाके मुकाबले उस ईश्वरीय इच्छाके सम्मुख नतशिर होकर उसका पालन करनेमें प्रसन्नता अनुभव करता हूँ, फिर चाहे एक भी मनुष्य उसमें मेरा समर्थन न करे। मुझे इसमें रंचमात्र भी शंका नहीं कि हिन्दू धर्ममें इस प्रकारके उपवासका एक अपना निश्चित स्थान है, जो उचित ही है। पर यह एक विशेषाधिकार है जो चन्द ही लोगोंको मिल पाता है। और जब ईश्वरकी इच्छाके पालनके लिए ऐसा उपवास किया जाता है तब वह एक महती शक्ति बन जाता है। हाँ, आमरण उपवास शब्द अवश्य कुछ गड़बड़ शब्द है। मैंने पहले जहाँ भी

१. यह लेख **मॉडर्न रिव्यूके** मार्चके अंकमें "जातीय अलगाव और अस्पृश्यता" शीर्षकसे छपा था।

इस शब्दका प्रयोग किया, इसका एक निश्चित अर्थ था। पर अब संदर्भसे काटकर इस शब्दका उपयोग किया जा रहा है और इस तरह यह निश्चय ही बड़ा भौंडा लगता है। लेकिन आमरण अनशन एक वास्तविकताके रूपमें मौजूद तो है ही और उसका वास्तविक अर्थ भी सर्वथा सुनिश्चित है और तुम एक तरहसे कह सकते हो कि वह 'आमरण अनशन'की अपेक्षा 'नव-जन्म-प्राप्तिपर्यन्त अनशन' ही अधिक है।

फिर भी, मैं तुम्हारे पत्र और अंग्रेजोंके रुखके बारेमें दी गई जानकारीकी कद्र करता हूँ। मैं अवश्य चाहता हूँ कि इस संघर्षमें हमें अंग्रेजोंकी सहानुभूति मिले। मैं यह भी अवश्य चाहता हूँ कि वे मेरी बात समझें। इसलिए तुम इस सम्बन्धमें जितनी स्पष्टवादिता बरतोगे या खुले मनसे जितना भी अधिक मुझे बताओगे, अधिक नहीं होगा।[1] ये चन्द अंग्रेज मित्र जो भी राय देंगे उसका मैं कभी भी गलत अर्थ नहीं लगाऊँगा।

तुमने किर्बी पेजका जो लेख भेजा है, उसे मैं समय मिलते ही देख जाऊँगा और यदि उसके बारेमें कहने योग्य कुछ सूझ पड़ेगा तो उसे लिखित रूप दे दूँगा।

आशा है, तुम्हारे भाईने खराब दाँत निकलवा दिये होंगे और इससे उन्हें लाभ भी हुआ होगा।

वेरियरका मन पलटनेकी बात तो तुमको सब मालूम ही है। तुम्हारा आशीर्वाद उसतक पहुँचनेसे पहले ही उसके विचार बदल चुके थे। तुम इसका कारण भी जानते ही हो। मैं तो उन लोगोंको शादीपर आशीर्वाद देनेके लिए भी तैयार था, लेकिन कहना पड़ेगा कि इस परिवर्तन पर मैंने उन्हें कहीं अधिक प्रसन्न मनसे आशीर्वाद दिया है। सब-कुछ वेरियरके अपने निर्णयपर निर्भर था। मैंने उससे कहा था कि यदि वह महसूस करता हो कि विवाह करना उसकी एक मानुषिक आवश्यकता है, तो वह अवश्य विवाह कर ले, भले ही दूसरे लोग उसके इस कामका गलत अर्थ लगायें। लेकिन वेरियर और मेरी दोनोंके विचारोंमें एक साथ परिवर्तन हुआ और इसमें दूसरे किसीकी भी कोई प्रेरणा बिलकुल नहीं थी।[2]

हृदयसे तुम्हारा,
मोहन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १३०१)से; बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल सं० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ २८१-८२ से भी।

१. गांधीजी ने इनमें से सी० एफ० एन्ड्रयूजका एक पत्र १५-४-१९३३के **हरिजन**में उद्धृत किया था; देखिए "प्रकट चिन्तन", १५-४-१९३३।

२. वेरियर एलिवन और मेरी जिलेटने विवाह न करनेका निर्णय इस विचारसे किया कि हो सकता है, आगे चलकर पारिवारिक विवशताओंमें फंसकर वे समाज-सेवाके लिए पर्याप्त समय न निकाल पायें।

३७४. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

७ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका २८ मार्चका पत्र मिला।

किसी भ्रामक धारणाके कारण हिन्दू धर्मका किसी समय परित्याग कर देनेवाले यदि स्वेच्छासे अब फिर हिन्दू धर्म अपनाना चाहें तो मुझे इसपर कोई आपत्ति नहीं। पर मेरी समझमें यह नहीं आता कि उनके वापस लौटनेके सिलसिलेमें कुछ खर्च बैठनेकी क्या बात है। यदि उन लोगोंने किसी भ्रामक धारणाके वशीभूत होकर हिन्दू धर्मका परित्याग किया था, तो अपनी भूल समझ लेना अपने-आपमें उनके लिए एक पर्याप्त प्रायश्चित्त है और उसके लिए विधिवत् कोई समारोह करना जरूरी नहीं। यह तो हुआ इस प्रश्नके गुण-दोषकी दृष्टिसे विचार करनेपर मेरा उत्तर। अब मान लीजिए कि कुछ खर्च पड़ता ही है और वापस लौटनेवाले डोम लोगोंसे उम्मीद नहीं कि वे उसे भर सकेंगे। ऐसी स्थितिमें हरिजन सेवक संघ वह खर्च क्यों न उठाये या उसका एक हिस्सा क्यों न दे? मेरा उत्तर होगा – 'नहीं'। कारण, मैं समझता हूँ कि संघका अपना एक सुनिश्चित कार्य-क्षेत्र है — हिन्दू हरिजनोंकी सेवा करना। इस समय जो लोग हिन्दू नहीं हैं उनसे संघका कोई वास्ता नहीं। भटके हुए लोगोंके वापस लौट आनेके बाद ही संघका कार्यक्षेत्र शुरू होता है। वापस लानेका काम तो एक अलग, बिलकुल ही दूसरी संस्थाका है। इसलिए इसमें किसी प्रकारके भयका प्रश्न नहीं उठता है, बल्कि सवाल सिर्फ अपनी प्रवृत्तियोंको अपने मूल उद्देश्यतक सीमित रखनेका है। डोम लोगोंका हिन्दू धर्ममें वापस लौटनेका सिलसिला चाहे जितना सीमित हो, वह भी एक प्रकारकी 'शुद्धि' ही है, और चरम ढंगकी शुद्धि तथा इस सामान्य ढंगकी शुद्धिमें अन्तर केवल मात्राका ही है। और यदि संघ एक बार इस शुद्धिको अपने कार्यक्षेत्रमें शामिल कर लेगा तो फिर शुद्धिके अन्य रूपोंमें सहायता न देना उसके लिए अत्यन्त कठिन हो जायेगा। इसलिए डोमोंका हिन्दू धर्ममें फिर लौट आना वैसे कितना ही वांछनीय क्यों न हो, मेरा स्पष्ट मत है कि इसको प्रोत्साहन देना हरिजन सेवक संघके बुनियादी कार्य-क्षेत्रसे बाहरका काम है।

टीटागढ़ पेपर मिल्सके विज्ञापनके बारेमें मेरा बिलकुल स्पष्ट मत है कि हम किसी भी रूपमें उनका विज्ञापन नहीं दे सकते; और अगर यहाँ सस्ती दरपर कागज मिल सकनेका प्रश्न है, तो वह तो हम बिना किसी कठिनाईके अन्य मिलोंसे भी ले सकते हैं। अंग्रेजी संस्करणके लिए हमें बाजारसे सस्ती दरपर ही कागज मिल रहा है। दर और भी घटवाई जा सकती थी, लेकिन मुझे लगा कि और अधिक रियायत माँगना अनुचित होगा।

हिन्दी 'हरिजन' के बारेमें मैं आपको बतला ही चुका हूँ कि वह बड़े संतोषप्रद ढंगसे चल रहा है और यदि आप इसी प्रकार प्रयत्नशील रहे, तो निस्संदेह आप उसे महीने-भरमें ही अपने पैरों खड़ा कर देंगे। अंग्रेजी 'हरिजन' के अगले अंकमें आपको इसके बारेमें एक टिप्पणी मिलेगी।[1]

हृदयसे आपका,
बापू

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रेक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ २१५-१६ से; एस० एन० २०८६१ से भी

३७५. पत्र : डॉ० जी० वी० देशमुखको

७ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० देशमुख,

आपने मेरे प्रश्नोंका पूरे विस्तारसे बड़ा ही विद्वत्तापूर्ण उत्तर दिया है, इसके लिए मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे वह इतना पसन्द आया कि 'हरिजन' के अगले अंकमें ही मैंने आपके पत्रके लिए गुंजाइश निकाल ली है, हालाँकि मैं उसका सम्पादन-कार्य पहले ही पूरा कर चुका था। बेशक, आप पूरा पत्र-व्यवहार प्रकाशनके लिए स्थानीय समाचार-पत्रोंको दे सकते हैं।

मैं एक घरेलू मामलेके बारेमें आपसे सलाह लेना चाहता हूँ। आप जानते ही हैं कि सरदार वल्लभभाईकी नाकमें कुछ तकलीफ चल रही है। इधर कई महीनोंसे वे उससे परेशान हैं, लेकिन हालमें तो तकलीफ बर्दाश्तसे बाहर हो गई है — हम देखनेवाले लोगोंको तो यही लगता है। आप जानते ही हैं कि शिकायत करना उनकी आदत नहीं, लेकिन उनके साथी, हम लोग समझते हैं कि वे कितने कष्टमें हैं। जेलके चिकित्सा-अधिकारियोंसे जितना बन पड़ा सब कर चुके हैं। पर उनकी दवाओंसे कोई लाभ नहीं पहुँचा है। मैं देखता हूँ कि उनको लगातार नाक साफ करते रहना पड़ता है और वह हमेशा थोड़ी-बहुत बहती ही रहती है। इसके लिए वे बड़ा तौलिया इस्तेमाल करते हैं, जो चौबीस घंटेमें सारा-का-सारा काफी गन्दा हो जाता है। बड़े तौलियासे मेरा मतलब है नहानेका तौलिया, जो आम तौरपर मध्य-वर्गके हिन्दू घरोंमें इस्तेमाल किया जाता है। मुझे लगता है कि यदि वे दिनमें तीन-चार बार गरम पानीसे नाक धो डालें तो बहना कुछ कम हो जायेगा और नाक साफ करनेमें इतना कष्ट नहीं होगा। लेकिन किसी डाक्टरने उनसे कह दिया है कि नाक धोनेसे उसमें शायद खुश्की पैदा हो जायेगी। इसलिए तब बीमारीवाले हिस्सेमें तकलीफ बढ़ जायेगी। मुझे सरदार वल्लभभाईकी तरहकी शिकायत तो कभी नहीं

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ८-४-१९३३।

रही, पर मैं अपनी नाक नियमित रूपसे धो लेता हूँ और कभी-कभी नाकसे पानी चढ़ाकर मुँहसे निकालता भी हूँ। मैं इसी तरह अपने-आपको स्वच्छ और इस तरह-की तकलीफसे मुक्त रख पाया हूँ। किसी समय मैं पानीमें थोड़ी लाल दवा और कभी-कभी 'चिनोसाल'के कुछ दाने घोलकर उस मिश्रणसे भी नाक धोता था। पता नहीं, आप इस बारेमें क्या राय देंगे कि सादा गरम पानीसे या उसमें कुछ मिलाकर उसके मिश्रणसे नाक धोनेसे सरदारको कोई लाभ होनेकी सम्भावना है या नहीं। दूसरा कोई सुझाव हो, तो लिखनेकी कृपा करें। इस सूचनाको प्रकाशनके लिए मत दीजिए। इसे मैंने अपनी ही तसल्लीके लिए लिखा है।

सार्वजनिक किस्मके और सार्वजनिक स्वास्थ्यसे सम्बन्धित एक-दो प्रश्न और हैं जो मैं अभी पूछना चाहता हूँ, लेकिन आपका इतना अधिक समय लेना कहीं अनुचित न हो।

हृदयसे आपका,

[पुनश्च :]

आपका कहना है कि खाल और चर्बीको छोड़कर बाकी सभी चीजोंको खाद बनानेके लिए जमीनमें दबा देना चाहिए। पर अँतड़ियाँ तो ताँत बनानेके और अन्य कामोंमें आती हैं। और हड्डियोंको सुखाकर पीस देनेपर वे जितनी जल्दी गल जाती हैं, क्या वे सीधे गाड़ देनेपर भी उतनी जल्दी गल जाती हैं? नगरपालिकाके बूचड़-खानोंमें क्या करते हैं?

डॉ० जी० वी० देशमुख
३९, पोद्दार रोड
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८५९)से।

३७६. पत्र : नारणदास गांधीको

७ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी बड़ी डाकके बादकी डाक भी मिल गई। उसका लिफाफा फट गया था। डाकखानेकी ओरसे उसपर यह टिप्पणी थी कि पत्रोंके गिर जानेका डर है। या तो वहाँ कपड़ेका अस्तर देकर मजबूत लिफाफे स्वयं बनवाओ या उतना पैसा खर्च करके दूसरोंसे बनवाओ या फिर पत्रोंको धागेसे बाँधकर भेजो। धागेसे बाँधनेमें समय ज्यादा जायेगा और यदि हम समयको धन मानें तो अन्तमें इस रीतिको अपनाने से हमारा नुकसान ही होगा। पुरानी हो गई महीन खादीके टुकड़े इकट्ठे करके उनके सौ लिफाफे पहलेसे बनवा लो तो यह समय नष्ट हुआ नहीं माना जायेगा।

रमाबहनने शिकायत की है कि धीरूका वजन नहीं बढ़ रहा है, अतः तुमने पण्डितजी के कहनेसे उसके लिए एक तोला घी अधिक देनेका कूपन तो दिया किन्तु अगले मासमें उसके पैसे काट लिये। रमाबहनकी यह माँग कि खर्चेकी राशि ११से बढ़ाकर १२ रु० कर दी जाये नामंजूर कर दी गई। इस विषयपर तुम्हारे साथ बातचीत करनेमें उसे यह सोचकर डर लगता है कि कहीं उसका अपमान न हो। यह उसके पत्रका सार है। मैंने उसे उत्तर दिया है; उसे पढ़ना। उसके पास जाना और उसे जो-कुछ कहना हो सो सुनना। उसकी शिकायतके बारेमें अपना मत मुझे लिखना। रमाबहनका हाथ कैसा है? . . .[1]आज मिलने आ रहा है। उससे मिलनेके बाद शायद मैं तुम्हें एक और दुःखद प्रसंगका समाचार दूँ। मेरा खयाल है कि अब वह आश्रम तो छोड़ ही देगा।

कल यहाँसे जो डाक भेजी थी वह तो मिल गई होगी।

बापू

[पुनश्च :]

साथके पत्र उमा, अमीना, मणि, कुसुम।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से; सी० डब्ल्यू० ८३५१ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३७७. पत्र : मुन्नालाल शाहको

७ अप्रैल, १९३३

भाई मुन्नालाल,

तुम्हारा पत्र पढ़कर हम सभीको प्रसन्नता हुई। तुम्हें ठीक याद है। पाण्डिचेरी के अपने विशेष अनुभव लिखना। आशा है तुम अच्छी तरह जम गये होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ८६४७)से।

१. नाम छोड़ दिया गया है।

३७८. टिप्पणियाँ

"हरिजनसेवक"

पाठकोंको मालूम होगा कि 'हरिजन सेवक' नामसे 'हरिजन'का एक हिन्दी संस्करण भी निकलता है। उसका प्रकाशन दिल्लीसे हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस करता है।

अंग्रेजी संस्करण तो स्वावलम्बी हो गया है, लेकिन हिन्दी अभीतक नहीं हो पाया है। अगर किसी संस्करणमें घाटा आना ही हो तो मैं यही चाहूँगा कि अंग्रेजीमें ही आये, क्योंकि अस्पृश्यताके विरुद्ध असली प्रचार सामान्य जनताके बीच करना है और इसलिए सन्देश भी उसी तक पहुँचाना है। इसलिए विभिन्न भारतीय भाषाओंमें सही जानकारीका प्रकाशन आवश्यक है और चूँकि हिन्दी निर्विवाद रूपसे सबसे ज्यादा लोग समझते और बोलते हैं, इसलिए हम चाहेंगे कि हिन्दी संस्करण 'सेवक'की ग्राहक-संख्या बड़ी हो। धीरे-धीरे उसमें सुधार हो रहा है और चूँकि वह सारतः न्यूनाधिक वैसा ही होता है जैसा कि अंग्रेजी संस्करण, इसलिए अंग्रेजी संस्करणकी अधिकांश सामग्री उसमें भी होती है और उसके अलावा हिन्दी पाठकोंकी विशेष रुचिके उपयुक्त और भी सामग्री रहती है। फिलहाल १००० प्रतियोंकी बिक्री होती है। इसे स्वावलम्बी बनानेके लिए कमसे-कम २५०० प्रतियोंकी खपत होनी चाहिए। मुझे आशा है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रोंकी विभिन्न संस्थाएँ हिन्दी संस्करणकी ग्राहक-संख्या बढ़ानेकी कोशिश करेंगी। कार्यकर्ताओंको यह सूचना देनी चाहिए कि उनके अपने-अपने इलाकोंमें किस प्रकारका साहित्य चाहिए।

दो संशोधन

रत्नागिरिके दो मन्दिरोंमें हरिजनोंको प्रवेशाधिकार मिल गया है, यह खबर गत २५ फरवरीके 'हरिजन'में प्रकाशित हुई थी। और ४ मार्चके अंकमें भी यही समाचार फिरसे निकला था। इस भूलको दिखाकर नवप्रकाशित 'सनातनी' पत्रने मजाक उड़ाया है। यह ठीक ही है। यह एक स्पष्ट भूल है। यह भूल सुझानेके लिए हम 'सनातनी'के कृतज्ञ हैं। किन्तु उक्त पत्रका यह निष्कर्ष कि यदि रत्नागिरि की ही तरह मन्दिरोंके दरवाजे हरिजनोंके लिए खुलते चले जायें, तब तो मन्दिर-प्रवेश बिलकी कोई जरूरत ही न रह जायेगी, निराधार है। बात यह है कि रत्नागिरिके उक्त मन्दिर निजी मन्दिर थे। इसके सिवा, यदि किसी एक सार्वजनिक मन्दिरके ट्रस्टी अपने मन्दिरका दरवाजा हरिजनोंके लिए खोल दें और इसके लिए अपने खिलाफ मुकदमा चलाये जानेका खतरा उठानेके लिए भी तैयार हो जायें तो भी यह आशा नहीं की जा सकती कि दूसरे मन्दिरोंके ट्रस्टी भी ऐसा करने लगेंगे।

दूसरा संशोधन हमें कटककी श्रीमती रमादेवीकी ओरसे करना है। उन्होंने बतलाया है कि अपने कार्यका जो सामान्य विवरण उन्होंने भेजा था[1] उसमें उनका आशय यह कहनेका नहीं था कि वह खुद हरिजनोंको शिक्षा देती हैं। हरिजनोंको पढ़ानेका वास्तविक कार्य तो उनके साथ काम करनेवाली बहनें ही करती हैं।

भोर राज्य और अस्पृश्यता

अखबारोंमें यह खबर आई थी कि भोरके राजा साहबने, जहाँतक कानूनका सम्बन्ध है, अपने राज्यमें अस्पृश्यताको समाप्त कर दिया है।

अब मुझे १ नवम्बर, १९३२ की इस उद्घोषणाका पाठ मिल गया है। उद्घोषणा जितनी सम्पूर्ण हो सकती थी उतनी सम्पूर्ण है। उसमें प्रजाको यह सलाह दी गई है कि आज जैसी अस्पृश्यता बरती जाती है उसे वह अपने ही धर्मके उत्थानकी खातिर त्याग दे।

जिन लोगोंने मुझे इस उद्घोषणाकी प्रति दी है, उन्होंने भोर राज्यके सुधागढ़ ताल्लुकेके सुधारकोंकी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें एक मोटी रिपोर्ट भी मुझे दी है। उन्होंने अपने कामके बारेमें अपनी आशाओं और कठिनाइयोंका भी उल्लेख किया है। कार्यकर्ता थोड़े-से हैं और अस्पृश्यता-निवारणके सिलसिलेमें भारत-भरमें जो जबरदस्त प्रयत्न आरम्भ हुआ है, उनके परिणामस्वरूप भोर राज्यके कट्टरपन्थी लोग भी जाग उठे। फलतः सुधारकोंको अप्रत्याशित विरोधका सामना करना पड़ा। विरोध इतना तीव्र था कि खुद हरिजन लोग भी बहुत भयभीत हो उठे और ये थोड़े-से सुधारक उनकी जो सेवा करनेके लिए तैयार थे और कर सकते थे उसका लाभ भी उन्होंने नहीं उठाया।

उन कठिनाइयोंको गिनाकर और सुधारकों द्वारा प्राप्त सफलताका वर्णन करके 'हरिजन'का ज्यादा स्थान और पाठकोंका समय लेनेकी जरूरत नहीं है। उनकी रिपोर्ट पढ़कर मेरे मनमें यह धारणा बनी है कि जबतक सुधारक लोग खुद भी बहिष्कार, जाति-निष्कासन और शायद सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अपनी सम्पत्ति तक की क्षति सहनेको तैयार नहीं हैं तबतक उन्हें पूर्ण सफलताकी आशा नहीं करनी चाहिए। चैन और आरामसे जीते हुए कोई ठोस धार्मिक सुधार नहीं कर सकता। हमें यही समझकर चलना चाहिए कि कट्टरपन्थी लोग हृदयसे ऐसा मानते हुए कि उनका धर्म खतरेमें है, हर कदमपर लड़ेंगे और सुधारकोंको चैन नहीं लेने देंगे। उन्हें तो यही माननेकी शिक्षा दी गई है कि मानव-समाजके एक बहुत बड़े हिस्सेको सदाके लिए अस्पृश्यताकी स्थितिमें डाल रखना और इस स्थितिसे उत्पन्न कष्टोंको भोगते रहनेके लिए मजबूर करना इनके प्राक्तन पापोंका समुचित प्रतिफल है। उन्हें ऐसा माननेमें भी कोई झिझक नहीं होगी कि जो लोग अस्पृश्योंके कन्धोंसे यह जुआ उतारना चाहते हैं उन्हें भी अपने इस दुष्कर्मका ऐसा ही प्रतिफल मिलेगा, और हो सकता है, खुद उनके दृष्टिकोणसे उनका ऐसा सोचना सही भी हो। इसलिए जो

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २५-३-१९३३ के अन्तर्गत उपशीर्षक "हरिजन-सेवामें कटककी महिलाओंका योगदान"।

सुधारक धार्मिक निष्ठाके साथ ऐसा मानता हो कि यह सुधार आवश्यक है, उससे अपनी प्रवृत्तियोंके लिए ऐसे तमाम परिणामोंको झेलनेकी अपेक्षा की जाती है, और अगर सारे भारतमें ऐसे सुधारक पर्याप्त संख्यामें तैयार हो जायें तो कट्टरपन्थियोंके विरोधके बावजूद सफलता निश्चित है। कारण, मैं यह मानता हूँ कि सत्य और समयका रुख सुधारकोंके साथ है, और जहाँ इन दोनोंका मेल सुनिश्चित हो वहाँ इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि सुधारक कम हैं या ज्यादा।

थोरोने कितना सच कहा है कि 'संसार-भरमें जितने भी सुधार हुए हैं, सबको पहले किसी एक ही व्यक्तिने आरम्भ किया था।'

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३७९. हरिजन और मन्दिर-प्रवेश

अभी कुछ दिन हुए राव बहादुर एम० सी० राजाके नेतृत्वमें हरिजनोंके एक शिष्टमण्डलने मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंके सम्बन्धमें परमश्रेष्ठ वाइसराय महोदयसे मुलाकात की। उनके निवेदनके निम्नलिखित अंश[1] पाठकगण रुचिसे पढ़ेंगे।

उपर्युक्त अंशोंको देखते हुए किसीका ऐसा कहना तो बिलकुल निष्ठुरता ही मानी जायेगी कि हरिजन लोग मन्दिर-प्रवेश नहीं चाहते। हाँ, हरिजनोंके आर्थिक एवं राजनीतिक उत्थानकी तुलनामें मन्दिर-प्रवेशके अधिकारपर कितना जोर दिया जाये, इस सम्बन्धमें निस्सन्देह मतभेद हो सकता है। लेकिन मन्दिर-प्रवेशका विरोध तो डॉ० अम्बेडकर भी नहीं करते। यदि मन्दिर-प्रवेशके लिए कोई आन्दोलन न चलाया जाये तो सवर्ण हिन्दुओंके विरुद्ध इस प्रतिबन्धको लेकर आरोप लगानेवालों में सबसे आगे वही होंगे। तथ्य यह है कि मन्दिर-प्रवेश किसी अन्य क्षेत्रमें हरिजनोंके उत्थान का कोई विकल्प नहीं है। धार्मिक अस्पृश्यता मिट गई है और हरिजन अब हिन्दू समाजसे बहिष्कृत नहीं हैं, इस बातकी अनिवार्य कसौटी मन्दिर-प्रवेशका अधिकार ही है। ऐसा सोचना गलत न होगा कि हरिजनोंके आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टियोंसे

१. इन अंशोंका अनुवाद यहाँ नहीं दिया जा रहा है। शिष्टमण्डलने अपने निवेदनमें मोटे तौरपर ये बातें कही थीं: हमारी सामाजिक मुक्तिके लिए मन्दिर-प्रवेशका अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। हिन्दू-धर्ममें जबतक हमारे दर्जेमें सुधार नहीं होता, तबतक हम स्थायी तौरपर मुक्त नहीं हो सकते। ब्रिटिश सरकार भले ही हिन्दुओंके धर्ममें दखल न दे, लेकिन वह अस्पृश्यता-जैसी प्रथाओंके पालनमें तो मदद न दे। अस्पृश्यताकी समाप्तिके लिए विधान-सभामें जो विधेयक पेश किये जानेवाले हैं, उनसे जहाँ अस्पृश्यता कानूनी तौरपर मिट जायेगी, वहाँ किसी भी व्यक्ति या समुदायके धर्ममें भी हस्तक्षेप किये जानेका खतरा पैदा नहीं होगा। मन्दिर-प्रवेश-विधेयकमें हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशपर लगे प्रतिबन्धोंको आपसी बातचीत और मेल-जोलकी भावनासे हटानेकी तजबीज है, जिससे किसी भी पक्षको बुरा न लगे और शान्ति भी भंग न हो। इस प्रतिबन्धसे वे चार करोड़ साठ लाख लोग हीनावस्थामें पड़े हुए हैं और अपने जीवनमें प्रतिदिन उसके दंशका अनुभव करते हैं जो प्राचीन हिन्दू धर्मको किसी भी तरहसे छोड़ना नहीं चाहते और इस समस्याका कोई शान्तिपूर्ण हल चाहते हैं। अतः आप इसमें हमारी सहायता करें।

सवर्ण हिन्दुओंसे अच्छी स्थिति प्राप्त कर लेनेपर भी सवर्ण हिन्दू, चाहे वे खुद कितने ही गरीब और पतित क्यों न हों, उनके साथ अस्पृश्यताका व्यवहार कर सकते हैं। ऐसे बहुत-से हरिजन हैं जो आर्थिक दृष्टिसे काफी सम्पन्न हैं और विधायिका सभाओं तथा नगरपालिकाओंके सदस्य भी हैं, लेकिन सनातनी सवर्ण हिन्दुओंके लिए तो वे, जबतक उन्हें सवर्ण हिन्दुओंकी ही तरह मन्दिर-प्रवेशका अधिकार नहीं मिल जाता तबतक, अस्पृश्य ही हैं। मन्दिर-प्रवेश निषेध तथा उसके परिणामस्वरूप शेष समाजसे हरिजनोंका अलगाव, यह उनके सिरपर लगा एक ऐसा लांछन है जिसने उन्हें सदाके लिए हीनावस्थामें डाल दिया है। जब वह लांछन हटा लिया जायेगा तब और केवल तभी यह कहा जायेगा कि धार्मिक अस्पृश्यता मिटा दी गई है। इसलिए यह तो कोई सवाल ही नहीं है कि कितने हरिजन मन्दिर-प्रवेशका अधिकार चाहते हैं या उसके मिल जानेपर उसका प्रयोग करेंगे।

अगर सवर्ण हिन्दू हिन्दूधर्मको शुद्ध बनाना और चार करोड़से अधिक लोगोंके साथ न्याय करना चाहते हैं तो उन्हें उनके उस अधिकारको स्वीकार करना होगा। इसलिए सुधारकोंको अपने प्रयत्नमें शिथिलता नहीं आने देनी चाहिए। इन विधेयकोंपर विचार किया जाना अभी स्थगित कर दिया गया है। इससे लोगोंको निराश न होना चाहिए और न हाथपर-हाथ धरकर बैठ ही जाना चाहिए। ये विधेयक तो गैर-सरकारी हैं, इसलिए उनका स्वीकृत होना केवल इसी बातका सूचक होगा कि हिन्दू क्या चाहते हैं — सो भी तभी जब उन्हें हिन्दुओंका स्पष्ट बहुमत स्वीकार करे और विधान-सभाके बाहर हिन्दू लोकमतका समर्थन उन्हें प्राप्त हो। यदि एक उच्चतर शक्ति इन विधेयकोंको हिन्दुओंपर थोप दे तो मेरे लिए उनका कोई महत्त्व न होगा। उनमें मेरी रुचि इसलिए है कि इस सुधारके मार्गकी कानूनी बाधाको दूर करनेके लिए वे आवश्यक हैं। अभी तो स्थिति यह है कि कट्टरताके पक्षधर चाहे बहुमतमें हों या उसकी ओरसे खड़ा होनेवाला एक ही आदमी हो, वह सुधारकी प्रगतिको रोकनेमें सक्षम है। इन विधेयकोंकी आवश्यकता धार्मिक सहिष्णुताकी दृष्टिसे है इससे आगे या इसके अलावा उनका और कोई उपयोग नहीं है।

इससे यह प्रकट होता है कि अगर हरिजनोंके लिए सार्वजनिक मन्दिरोंके द्वार खुलवाने हैं तो कानून बनाना और उसके पक्षमें जनमत तैयार करना, दोनों आवश्यक हैं। अगर निजी मन्दिरोंमें, जिनकी संख्या काफी है, उन्हें प्रवेश दिया जाता है और जहाँ जनमतकी माँग हो वहाँ हरिजनों-सहित सबको पूजा करनेके लिए मन्दिर बनवाये जाते हैं तो उससे रफ्तार तेज होगी। अभी हालमें श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडितने थोड़े दिन काठियावाड़का दौरा करनेके बाद मुझे बताया कि राजकोटमें एक ऐसा मन्दिर बनवानेके लिए कोशिश चल रही है जिसका उपयोग सभी हिन्दू — हरिजन, सुधारक और चाहें तो सनातनी भी — कर सकते हैं।[1] इस मन्दिरको प्राचीन ढंगपर बनाना है; अर्थात् इसमें एक पाठशाला, एक धर्मशाला और एक पूजा-स्थल, ये तीनों साथ-साथ होंगे। मुझे पूरी आशा है कि जिन लोगोंके हाथोंमें यह योजना है वे उसमें

१. देखिए खण्ड ५५, "एक आदर्श मन्दिर", २९-४-१९३३ और ३०-४-१९३३।

लगे रहेंगे और उसे कार्य-रूप देकर रहेंगे। इसके लिए अधिक पैसेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। इसे धीरे-धीरे खण्डशः भी बनाया जा सकता है, जैसे कि दक्षिण के मन्दिर बनाये गये होंगे। एक अच्छी जगह प्राप्त करके और एक भक्त तथा सच्चे पुजारीकी व्यवस्था करनेकी शुरुआत तो तत्काल की जा सकती है। अगर मन्दिरका पुजारी भ्रष्ट हो तो सिर्फ ईंट-गारेसे कुछ बननेवाला नहीं है।

लेकिन यह तो विषयान्तर होता जा रहा है। इस समय तो मैं यह समझाना चाहता था कि निम्नलिखित तरीकोंसे मन्दिर-प्रवेश आन्दोलनको चलना ही है:

१. जनताको क़ानूनी कठिनाई दूर करनेके लिए कानून बनानेकी आवश्यकता समझाई जाये।

२. जिनके निजी मन्दिर हों उन्हें उनको हरिजनोंके लिए खोलनेपर राजी किया जाये।

३. जहाँ आवश्यकता हो और जनताके दान-दक्षिणासे ऐसे स्थलोंपर, जहाँतक हरिजन आसानीसे पहुँच सकें, प्राचीन ढंगके बहूद्देशीय मन्दिर बनवानेके लिए कोष एकत्र हो सके, वहाँ नये मन्दिर बनवाये जायें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-४-१९३३

३८०. तुकाराम और अस्पृश्यता

सन्तों, विशेषकर महाराष्ट्रके सन्तों, ने अस्पृश्यताका पक्ष लिया है या नहीं — इस विषयपर एक वाद-विवाद चलता रहा है। नासिकके श्रीयुत पी० एच० गद्रेका कहना है कि सन्तोंने इसका पक्ष ही नहीं लिया, बल्कि उन्होंने तो बिना किसी लाग-लपेटके इसके विरुद्ध लिखा और बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि मनुष्यका मूल्य उसके जन्मसे नहीं, बल्कि उसके कर्मोंके आधारपर निश्चित किया जाना चाहिए, और ईश्वर-भक्ति तो जात-पाँतकी कोई सीमा माने बिना सभी व्यक्तियोंको शुद्ध कर देती है।

श्रीयुत गद्रेने विख्यात सन्त तुकारामके पदोंका एक संकलन प्रस्तुत किया है। मैं नीचे उनमें से कुछ चुने हुए पद उद्धृत कर रहा हूँ।[1]

लगभग ये सभी अनुवाद सर्वश्री फ्रेजर और मराठेकी कृतिसे लिये गये हैं, जिन्होंने श्रीयुत गद्रेको अपनी कृतिसे उद्धृत करनेकी अनुमति देनेकी कृपा की है। अन्य किसी स्रोतसे लिये गये अनुवादोंके साथ उनका स्रोत भी बतला दिया गया है।

मुझे आशा है कि श्रीयुत गद्रे या कोई अन्य अध्येता अन्य सन्तोंके भी इसी प्रकारके संकलन प्रस्तुत करेंगे। पाठकोंको याद होगा कि इन स्तम्भोंमें मोरोपन्तके पद भी उद्धृत किये जा चुके हैं, जिन्होंने अस्पृश्योंको हरिजनकी संज्ञा दी है।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, ८-४-१९३३

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

३८१. इस सबका अर्थ

अभी पिछले दिनों मैंने हरिजनोंके एक नये अध्यापकके अनुभवोंमें से कुछ उद्धृत[1] किया था। उन्हीं अध्यापकके हालके एक पत्रके कुछ उद्धरणोंका संक्षिप्त भावानुवाद यहाँ फिर दे रहा हूँ:

> इन बच्चोंको पढ़ाते हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं। इस बीच मैंने देखा है कि इन बच्चोंको सिखानेके लिए हर चीजका पदार्थपाठ प्रस्तुत करना पड़ता है। सफाई सिखाना सबसे मुश्किल है। इसलिए पिछले पखवारे-भर से नियमित रूपसे बच्चोंको नहलवानेके लिए ले जाता रहा हूँ। मैं थोड़ा साबुन देकर उनसे उनके कपड़े धुलवाता हूँ। छोटे-छोटे बच्चोंके कपड़े मैं स्वयं धो देता हूँ। मैं उनको दातुनें देकर उनसे हर दिन दाँत साफ करवाता हूँ। मैं उनके नाखून काटता हूँ और हर छोटी-मोटी चीजका खयाल स्वयं रखता हूँ। इस सबका नतीजा यह है कि लिखना-पढ़ना सिखानेकी अपेक्षा फिलहाल उनको सफाई सिखानेके काममें ही मेरा मन अधिक लगा रहता है। बच्चोंकी ओर इस प्रकार व्यक्तिगत रूपसे ध्यान देनेकी बात उनके माता-पिताओंको बड़ी अच्छी लगती है। अब वे भी रातको मेरे पास जमा होने लगे हैं। मैं उनको 'रामायण' और 'जातकमाला' से और टॉल्स्टॉयके आधारपर लिखी गई कथाएँ सुनाता हूँ और मेरा विचार है कि 'महाभारत' के नायकोंके नानाभाई-कृत शब्दचित्र भी उनको सुनाया करूँ।
>
> सुबह लगभग दस बच्चे उपस्थित रहते हैं। शामको उनकी उपस्थिति दूनी हो जाती है। आम तौरपर मुझे इस काममें आनन्द आता है, लेकिन कुछ ऐसी घटनाएँ घट जाती हैं कि मेरा दिल बैठने लगता है। कभी-कभी शराबी लोग आ जाते हैं, कभी पति-पत्नीमें खुली मारपीट होने लगती है, तो कभी मुझे एक-से-एक चुनी हुई गालियोंका भी अनिच्छुक श्रोता बनना पड़ता है। कभी-कभी लड़के भी छका डालते हैं। एक बार तो उनमें से एक शरारतमें सीमासे भी आगे बढ़ गया था। मुझे हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल देना पड़ा। लेकिन मुझे ईश्वरपर भरोसा है और आशा है कि मैं इसी काममें जीवन लगा दूँगा। मैं जानता हूँ कि यह काम बहुत ही ज्यादा मेहनत चाहता है और मुझे ईश्वरका भरोसा न हो तो मैं अकसर हताश हो उठूँ।
>
> आपने मुझे ध्यान दिलाया है कि हरिजन लोग जिनके यहाँ काम करने जाते हैं उनके यहाँसे बचा-खुचा भोजन लानेकी आदतसे उनको विरत किया

१. देखिए "टिप्पणियाँ", १६-३-१९३३ के अन्तर्गत उपशीर्षक "ढेढ़ और भंगी"।

जाये। लेकिन मैं इसमें जल्दबाजी नहीं करूँगा। मैं इस विषयकी चर्चा उनसे तभी करूँगा जब पहले उनका विश्वासपात्र बन जाऊँगा।

मरे हुए ढोरोंकी खाल उतारना और चमड़ा पकाना मैं जरूर सीखना चाहूँगा। अपनी मौत मरे हुए पशुओंका मांस खानेकी उनकी आदत छुड़ानेके लिए यह बहुत जरूरी है। उनमें से बहुत-से लोगोंको इसके अलावा दारू पीनेकी भी लत है और तमाखूका प्रयोग तो स्त्री-पुरुषोंके लिए आम है। मैं उन लोगोंके जितने अधिक सम्पर्कमें आता जाता हूँ, उनमें से अधिकांशकी गन्दे ढंगसे रहनेकी आदतसे मैं उतना ही अधिक परेशान हो जाता हूँ। उनके शरीरों और कपड़ोंसे तेज बदबू आती रहती है, खासकर जब वे मरे हुए पशुओंका मांस खाते हैं। और फिर गोबर वगैरहके ढेरोंसे भी बदबू उठती रहती है। इस बदबूका असर अधिकसे-अधिक कम करनेके लिए मैं आम तौरपर खुले आकाशके नीचे जाकर बैठ जाता हूँ।

अध्यापकने इसके बाद दो लड़कोंकी गन्दी आदतोंका हृदय-विदारक वर्णन किया है। किसी भी अध्यापकको ऐसे अनुभवोंसे हताश हो बैठनेकी जरूरत नहीं। हमें याद रखना चाहिए कि सवर्णों द्वारा बरती जानेवाली अपराधपूर्ण उपेक्षा और समाजके सबसे अधिक उपयोगी सदस्योंको समाजसे बहिष्कृत करनेपर बाध्य करनेका ही यह प्रत्यक्ष परिणाम है; और यह सब धर्मके नामपर किया जाता है। यदि हम अपने समाजमें मृत्यु-दर घटाना चाहते हैं और हमारे बीच इतने जोरोंसे फैले रोगोंकी रोक-थाम करना चाहते हैं तो हमें इस तरहके कई सौ अध्यापक तैयार करने पड़ेंगे जो सच्चे प्रेमकी भावना और अथक निष्ठाके साथ हरिजनोंके बीच काम कर सकें। हमें इन हरिजन बच्चोंको अपने ही बच्चोंके समान मानना पड़ेगा। जब अपने ही बच्चे संगलित चेचक या और भी भयानक रोगोंके भीषण प्रकोपके शिकार बन जाते और कमरोंमें तेज बदबू तथा गन्दगी भर जाती है तब माँ-बाप क्या करते हैं? वे अपने बच्चोंको नीरोग देखनेके लिए अपने सर्वस्वकी बाजी लगा देते हैं। इन हरिजन बच्चोंको हमें इसी प्रकारका स्नेह देना होगा। अपने बच्चोंके साथ हम जितने धैर्यसे पेश आते हैं उतना ही इन बच्चोंके साथ भी बरतना पड़ेगा। विरोधमें कोई कुछ भी कहे, मैं तो डंकेकी चोट यही कहूँगा कि हम यदि अस्पृश्यताके अभिशापसे अपने-आपको मुक्त नहीं करेंगे, तो हिन्दू धर्मका पतन सर्वथा निश्चित है। हमने अपने समाजके चार करोड़से अधिक सदस्योंकी जैसी घोर उपेक्षा की है वैसी तो हमारे शास्त्र किसी एक भी मनुष्यकी करनेकी अनुमति नहीं देते। हम यदि अपने पापोंका प्रायश्चित्त करना चाहते हों तो मैं चाहूँगा कि तथाकथित उच्चतर वर्गोंके लोगोंमें से एक बड़ी संख्यामें ऐसे स्वयंसेवक आगे आयें जो हरिजन बच्चोंको पढ़ाने और उनकी देखभाल करनेके लिए तैयार हों।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३८२. एक दान

एक मित्रने, जो अपना नाम नहीं देना चाहते, मुझे मेरी इच्छानुसार हरिजन-कार्यमें लगानेके लिए पाँच सौ रुपये भेजे हैं। यह राशि मेरी अनुमतिसे[1] इस्तेमाल किए जानेके लिए केन्द्रीय बोर्डको भेजी जा रही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

३८३. पत्र : एफ० मेरी बारको

८ अप्रैल, १९३३

चि० मेरी,

तुम्हारा पत्र मिला।

मैं तो अपनी ओरसे निस्संकोच कहता हूँ — 'तुम्हारा स्वागत है'।[2] संकोच तुम्हारी ओरसे हो सकता है। मैं तो बहुत चाहता हूँ कि आश्रममें सभी राष्ट्रीयताओं और धर्मोंके लोग आयें, परन्तु अबतक सब लोगोंको अपनी ओर खींचनेमें सफलता नहीं मिल पाई है इसका कारण हमारी अपनी सीमाएँ हैं। हमें अपनी बहुत-सी खामियाँ दूर करनी हैं।

तुमने अपने 'बुढ़ापे' की बात लिखी है। यदि तुम तनिक भी संकोचके बिना अपनी उम्र बतला सकती हो, तो मुझे बतला दो; लेकिन मुझे यकीन है कि तुम अभी चौंसठकी तो नहीं ही हुई होगी, और मुझे यह सोचकर दुःख होगा कि वृद्धावस्थाके कारण लोग अब मुझे भारस्वरूप मानने लगे हैं। तोतारामजी को तो अबतक तुम उनके नामसे जान ही गई होगी। मैं समझता हूँ कि उनकी अवस्था मुझसे भी अधिक है। इसलिए तुमको अपनी अवस्थाको लेकर चिन्तित होनेकी कोई जरूरत नहीं। आश्रमके नारणदास और अन्य सदस्योंकी क्या राय है यह मैं अभी मालूम कर लूँगा। मैं उनसे कहूँगा कि वे बिना किसी लाग-लपेटके साफ-साफ अपनी राय दें। वैसे तो मेरे कुछ कहे बिना भी उन्हें अपनी राय इसी तरह देनी चाहिये। पर यदि तुम आश्रममें रहनेका निर्णय कर ही लेती हो और आश्रम उसके लिए खुशीसे राजी भी हो जाता है, तब भी तुम अपनी सुविधाके खयालसे शुरुआती तौरपर अपना निर्णय एक वर्षकी निश्चित अवधि तकके लिए ही करना। मैं वचन, प्रतिज्ञा

१. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ३/४-४-१९३३।

२. मेरी बारने आश्रममें कुछ सप्ताहतक रहनेके पश्चात् गांधीजी से पूछा था कि क्या वह और अधिक समय तक वहाँ रह सकती हैं।

या व्रतके, जो भी संज्ञा दी जाये, आध्यात्मिक पक्षको अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानता हूँ। इसलिए तुम यदि एकाएक ही अन्तिम रूपसे सदाके लिए वैसा व्रत ले डालोगी तो फिर वापस लौटनेकी कोई गुंजाइश नहीं रह जायेगी। इसलिए व्रतोंकी पवित्रताके प्रति पूर्ण सम्मानकी भावना रखनेवाले व्यक्ति व्रत लेते समय सावधानीसे काम लेते हैं। आश्रममें एक वर्षतक अपने-आपको जाँचने-परखनेके बाद यदि तुम इस निष्कर्ष पर पहुँचो कि यहाँका भौतिक और आध्यात्मिक वातावरण तुम्हारे अनुकूल पड़ता है, तुमको अच्छा लगता है तो तब तुम अन्तिम रूपसे ऐसा व्रत ले सकती हो।

आशा है, कश्मीरके सुरम्य वातावरणमें तुम दोनों प्रफुल्लित होगे। वहाँसे पत्र बराबर लिखती रहना।

तुम दोनोंको हम सबकी ओरसे सस्नेह,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६००२) से। सी० डब्ल्यू० ३३२८ से भी; सौजन्य: एफ० मेरी बार

३८४. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

सेठ पूनमचन्दकी पत्नीका दिनांक २७ मार्चका एक पत्र और सेठ जाजूके दिनांक ३० मार्च तथा इसी महीनेकी पहली तारीखके दो पत्र मुझे कल ही शामको चार बजे दिये गये हैं। आप जानते हैं कि ये तीनों पत्र सेठ पुनमचन्द राँकाके उपवासके बारेमें हैं, जिसके सिलसिलेमें सरकार विशेष आदेश जारी कर चुकी है। यदि ऐसे पत्र कई दिनोंतक रोक रखे जानेके बाद मुझे दिये जायेंगे, तो फिर उनका कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता है। मैं जानना चाहता हूँ कि आदेशोंके होते हुए भी इन पत्रोंको रोककर क्यों रखा गया था और क्या आगेसे इस सिलसिलेमें आये सभी पत्र मुझे तुरन्त दे दिये जायेंगे?

मैंने इसी महीनेकी पहली तारीखको बम्बई सरकारके सचिवके नाम एक पत्र[1] लिखा था। अब इस विलम्बको देखते हुए मैं इस बातके लिए और अधिक चिन्तित हो उठा हूँ कि सरकारकी ओरसे उसका उत्तर भी मुझे शीघ्र मिल जाये।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल संख्या ८०० (४०) (३) ए, पृष्ठ १६७; जी० एन० ३८८६ से भी

१. देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १-४-१९३३।

३८५. पत्र : हरकिशनदासको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय हरकिशन,

इसी महीनेकी ७ तारीखका आपका पत्र मिला। मैं तो समझता हूँ कि बोर्डकी गति-विधियोंसे सम्बन्धित सभी खबरें जितनी भी शीघ्रतासे बने, आपको स्थानीय समाचार-पत्रोंमें देनी चाहिए। 'हरिजन' को ही पहली प्रति मिले, इसके लिए समाचारोंको रोकना नहीं चाहिए। 'हरिजन' का अस्तित्व आन्दोलनके लिए है, आन्दोलन तो 'हरिजन' के लिए नहीं है। पर मैं चाहूँगा कि आप अपनी सुविधानुसार मुझे पाक्षिक या साप्ताहिक विवरण भेज दिया करें और उसमें बोर्डकी गति-विधियोंका संक्षिप्त वृत्तान्त दे दिया करें, जिससे कि ऐसी खबरें उन लोगोंतक भी पहुँच जायें जिनको स्थानीय समाचार-पत्र नहीं मिल पाते या मिलनेपर भी जो उनको पढ़ना पसन्द नहीं करते। फिर 'हरिजन' में तो आपकी गति-विधियोंका संक्षिप्त सार ही दिया जा सकता है, जबकि स्थानीय समाचार-पत्रोंसे आशा की जा सकती है कि उनमें आपकी भेजी हुई प्रत्येक खबरको पर्याप्त स्थान दिया जायेगा। आशा है, मैंने अपना आशय बहुत ही स्पष्ट शब्दोंमें व्यक्त कर दिया है।

हृदयसे आपका,

अवैतनिक मन्त्री
बम्बई बोर्ड

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७०) से।

३८६. पत्र : रमेशचन्द्रको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके[1] लिए धन्यवाद। क्या यह एक सार्वत्रिक अनुभव नहीं है कि जो चीजें किसी समय शुद्ध रूपमें विद्यमान थीं, कालके चरणोंने उन्हें अशुद्ध बना दिया है? 'महाभारत' और 'रामायण' दोनोंमें ऐसे प्रमाण प्रचुर मात्रामें मिलते हैं कि एक समय था जब वर्ण-धर्मका पालन उसी अर्थमें किया जाता था जो मैंने बतलाया है।

१. इसमें रमेशचन्द्रने कहा था कि जाति-प्रथा मिटाये बिना वर्णधर्मपर अमल ही नहीं किया जा सकता।

मुझे तो इसकी जानकारी थी ही नहीं कि लगभग सभी हिन्दू जाति-प्रथा और वर्णाश्रम, दोनोंको एक ही समझते हैं। मैं तो ऐसे किसी हिन्दूको नहीं जानता जिसने दावा किया हो कि वर्ण अनेक हैं; परन्तु जातियाँ अनेक हैं, यह तो एक बच्चा भी जानता है। क्या यह भी एक सचाई नहीं है कि ऐसी अनेक जातियाँ हैं जो अपना वर्ण एक ही बतलाती हैं? मेरी समझमें तो जाति और वर्ण दोनोंके उद्गम सर्वथा भिन्न हैं और एक सीमाके बाद जाति और वर्णके अपने-अपने कार्य-प्रयोजन भी सर्वथा भिन्न हो जाते हैं।

मेरा यह दावा जरूर है कि आदर्श वर्णमें असमानता या ऊँच-नीचके लिए कोई गुंजाइश नहीं हो सकती। विविधता उसमें हो सकती है, असमानता नहीं।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत रमेशचन्द्र
एग्जीक्यूटिव इंजीनियर
सिलचर
(असम)

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६०९२) से; एस० एन० २०८६५ से भी

३८७. पत्र : श्रीप्रकाशको

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय श्रीप्रकाश,

आपको आशा थी कि आगेसे मैं पत्र-व्यवहार बिलकुल बन्द कर दूँगा। मुझे आपको निराश ही करना पड़ेगा। हाँ, निराशाका कुप्रभाव मनपर मत पड़ने दीजिएगा। आपके पत्र लम्बे-चौड़े तो होते हैं, लेकिन वे मुझे आपके विचारोंको अधिक गहराईसे समझनेका मौका देते हैं और अपने सभी सहयोगियोंके बारेमें ऐसा करना मुझे पसन्द है। आपको यह नहीं सूझा कि आपने अपने प्रस्तावोंमें गाड़ीको घोड़ेके आगे रख दिया है। आपके किसी भी प्रस्तावमें हमारी ओरसे किया जानेवाला कोई प्रयत्न अपेक्षित ही नहीं है। उनमें हर काम विधान-मण्डलों और इसीलिए सरकारके जरिये करानेकी बात की गई है; और समूचा इतिहास गवाह है कि यह सदा ही अधोगतिको प्राप्त होनेका मार्ग रहा है। आपने जितने सारे सुधारोंकी रूप-रेखा दी है, वे तभी फलित हो सकते हैं जब हम अस्पृश्यताके राक्षसके विरुद्ध अधिक कुछ नहीं तो जनताकी आत्माको जगानेके लिए अपेक्षित पर्याप्त प्रयत्न कर लें। उच्च जातियोंके हिन्दुओं द्वारा तथाकथित निचली जातियोंका जो उत्पीड़न किया जाता है उसका चरम रूप ही अस्पृश्यताके रूपमें हमारे सामने आया है। इसलिए मैं चाहूँगा कि आप

अस्पृश्यताकी उत्पत्ति और उसके अत्यन्त व्यापक प्रभावोंका अध्ययन इससे कहीं अधिक गहराईसे करें।

आशा है, आपने पहले-जैसी शक्ति फिर पा ली है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि पिताजी जब-तब आते रहते हैं।

कलकत्तेके साप्ताहिक बुलेटिनसे पता चलता है कि शिवप्रसाद अभी चंगा नहीं हुआ है। हम आशा करें कि शीघ्र ही हमें उसके बारेमें शुभ समाचार मिलेगा।

हृदयसे आपका,
बापू

श्रीयुत श्रीप्रकाश
सेवा आश्रम
बनारस कैन्ट

श्रीप्रकाश पेपर्स : फाइल नं० जी० २; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय। एस० एन० २०८६६ से भी

३८८. पत्र : एन० वी० थडानीको[1]

८ अप्रैल, १९३३

प्रिय थडानी,

एक विदूषक-जैसी हाथकी सफाई दिखाते हुए आपने अपनी शरारतको छिपानेकी कोशिश की है, लेकिन नत्थी कागजोंका[2] मोटा पुलिंदा तो सारी बात कह देनेके लिए साथमें मौजूद था। साप्ताहिक सम्पादनके दिन मैं इस सारे पत्र-व्यवहारको पढ़कर देखूँगा कि उसमें मुझे अपने लिए उपयोगी कुछ मिल पाता है या नहीं।

'महाभारत'के आपके रहस्योद्घाटनकी मैं प्रतीक्षा करूँगा। अनेक लोगोंके प्रयत्न विफल हो चुके हैं। अब यदि आपको सफलता मिलती है तो उसमें उन लोगोंकी असफलताओंका योग रहेगा, और यदि आप भी असफल रहते हैं तो आपकी असफलता भी आगे कभी किसीकी सफलताकी एक और सीढ़ी बनेगी और सफल होनेवाला व्यक्ति यदि मूर्ख होगा तभी वह उसे केवल स्वयंकी ही सफलता बतलायेगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एन० वी० थडानी
रामजस कॉलेज
दिल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७२) से।

१. रामदास कालेज दिल्लीके प्रिंसिपल।

२. इस पुलिंदेमें जगद्गुरु शंकराचार्य और एन० वी० थडानीके बीच हुआ पत्र-व्यवहार था; विषय था : हिन्दू धर्ममें पंचम वर्णके अस्तित्वका वैदिक प्रमाण।

३८९. पत्र : जमनालाल बजाजको

८ अप्रैल, १९३३

चि० जमनालाल,

यह उचित होगा कि तुम सेठ पूनमचन्द राँकासे जितनी जल्दी मिल सको मिलो। उनसे कहना कि उनका उपवास सत्याग्रहकी नीतिके विरुद्ध है और मुझे तो लगता है कि किसी भी तरीकेसे उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। सभी लोग कैदियोंके वर्गीकरणके विरुद्ध नहीं हैं। जिन कैदियोंको 'ए', 'बी' क्लास मिलती है, वे सभी स्वेच्छासे 'सी' क्लासको ही स्वीकार नहीं कर लेते। जिन्हें ऊँची क्लासमें रखा जाता है वे उस क्लासकी सुविधाओंका उपभोग करनेके लिए बाध्य नहीं हैं। जो लोग इस सुविधासे लाभ उठाते हैं वे अपनी इच्छासे ही वैसा करते हैं और उसका त्याग करनेके लिए सेठ पूनमचन्द उन्हें कैसे मजबूर कर सकते हैं? उनके लिए उपवास कैसे कर सकते हैं? वे खुद चाहे जिस सुविधाका त्याग करें, यह दूसरी बात है। यह वर्गीकरण मुझे खुद पसन्द नहीं है, किन्तु उसमें रद्दोबदल करानेका मार्ग उपवास हर्गिज नहीं है। मुझे आशा है कि सेठ पूनमचन्द अपना हठ छोड़ देंगे। उनको यह भी जानना चाहिए कि जबतक वे अपनेको सत्याग्रही मानते हैं तबतक वे उसकी मर्यादाओंका पालन करनेके लिए बँधे हुए हैं। सत्याग्रहके प्रणेताके नाते उसकी मर्यादा स्थिर रखनेका मुझे कुछ तो अधिकार होना चाहिए। इस दृष्टिसे भी उनके लिए मेरी सलाह मानना उचित है।

ईश्वर तुमको सफलता दे।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ १०७

३९०. पत्र : द० बा० कालेलकरको

८ अप्रैल, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला। भाई केशवको मैंने तीन दिन पहले उत्तर[1] दे दिया था। उत्तर छोटा-सा ही था। आशा है वह तुमसे मिल गया होगा।

'यूकेरिस्ट'[2] में ये मित्र शायद मधु लेने लगें किन्तु दूसरे ईसाई और विशेषकर रोमन कैथोलिक इसे कभी स्वीकार नहीं करेंगे क्योंकि उसमें तो 'वाइन' (मदिरा) शब्दका ही प्रयोग हुआ है। किन्तु ज्यादा शक्य तो यह है कि वे ऐसे द्राक्षरसको लेने लगें जो नशीला नहीं होता। कुछ विद्वान् 'वाइन'का मूल अर्थ 'अनफरमेन्टेड ग्रेप जूस' (अकिण्वित द्राक्षरस) करते हैं। द्राक्ष तो आवश्यक ही है। कुछ गिरजोंमें ऐसे निर्दोष रसका व्यवहार किया जाता है और आजकल निर्दोष द्राक्षरसकी लाखों बोतलें आती हैं। तुमने त्रिवेदीको जो पुस्तकें भेजी हैं उनमें भी ऐसा द्राक्षरस तैयार करनेकी कई विधियाँ बताई गई हैं। अतः उक्त रसका व्यवहार करनेके सुझावपर तुरन्त अमल किया जा सकता है।

यदि वे भाई मराठी 'हरिजन' प्रकाशित करें तो बहुत अच्छा हो।

समय-समयपर अपने समाचार देते रहना।

नेत्र-चिकित्सा सम्बन्धी वह अमरीकी पुस्तक मुझे भेज देना। अपनी आँखोंका इलाज वहाँ अवश्य करवा लेना।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९६) से। सौजन्य : द० बा० कालेलकर

३९१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

८ अप्रैल, १९३३

चि० गंगाबहन,

तुम्हारा पत्र मिला।

शारदा[3] के लिए लिखा पत्र इसके साथ है, पढ़कर उसे दे देना। कृष्णमैयादेवीको यदि तुम कोई धन्धा नहीं दे सकतीं तो उससे कुछ काम तो जरूर ले सकती हो। सिलाई-कढ़ाई आदिके जो काम तुम उससे पहले कराती थीं वे काम आज भी कराये

१. देखिए "पत्र: केशवको", ६-४-१९३३।

२. ईसाइयोंका एक धार्मिक अनुष्ठान।

३. एक आश्रमवासी चिमनलाल एन० शाहकी कन्या।

जा सकते हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि उसे कोई उत्पादक कार्य करना चाहिए ताकि उसे यह अनुभव न हो कि मैं तो मुफ्तका खा रही हूँ।

धर्मकुमारकी शिक्षाका रूप [फिलहाल तो] यही है कि उसे घरमें अच्छी तरह गढ़ा जाये। यही आश्रमको शिक्षाका आदर्श है। यदि बच्चे अपने माता-पितासे सद्गुण और शरीर-श्रम करना सीख लें तो अक्षरज्ञान वे बादमें प्राप्त कर लेंगे। हम अपने अनुभवसे यह जानते हैं, ऐसी कोई बात नहीं है कि जो बच्चे अक्षरज्ञान प्राप्त करते हैं वे निश्चय ही सद्गुणी होते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जो सद्गुणी होते हैं वे धनवान भले न हो सकें किन्तु भूखों नहीं मरते। झूठमूठकी दया अहिंसा नहीं बल्कि सूक्ष्म हिंसा है और इसलिए अधिक सावधानी बरतनेकी आवश्यकता है। कृष्णमैया और महावीर, दोनोंकी तुम्हें मदद करनी चाहिए किन्तु सही ढंगसे। वे काम करें, आलस्य छोड़ दें और खायें-पियें। प्यारेअलीका कहना है कि वह महावीर को ४० से ५० रु० तक कमाने लायक बना सकता है। यदि फिलहाल उसे सुन्दर-दासके यहाँ २५ रु० से अधिक न मिलते हों और वह अपने कामसे सुन्दरदासको सन्तुष्ट कर पाता हो तो उसे प्यारेअलीके यहाँ रख देना ज्यादा अच्छा होगा बशर्ते कि सुन्दरदास उसे छोड़नेको तैयार हो। इस बारेमें विचार करना।

. . .का[1] पूरा परिवार आश्रम छोड़ रहा है। . . .की[2] थाह मुझे अभीतक नहीं मिल पाई है। उसकी मान्यता है कि वह आश्रममें रहने लायक ही नहीं था क्योंकि उसे बड़ा इंजीनियर बनना है। . . .का[3] कहना है कि उसके लिए कुछ विशेष सुख-सुविधाएँ आवश्यक हैं, इसीलिए वह भी आश्रममें रहने लायक नहीं थी। ऐसी स्थितिमें, . . .[4] अकेला तो आश्रममें रह ही नहीं सकता। इस प्रकार पूरा कुटुम्ब आश्रम छोड़कर चला जायेगा। यह कार्य छोटी-मोटी घटना नहीं है। किन्तु यही उचित है। क्योंकि हम यह नहीं चाहेंगे कि कोई अनिच्छापूर्वक रहे। इस कुटुम्बको हमने आश्रमके नियमोंका पालन करनेसे लगभग मुक्त कर दिया था, उसका यह परिणाम निकला है। . . .[5] अब किसी कारखानेमें स्वतन्त्रतापूर्वक काम करना चाहता है। ऐसा लगता है कि उसकी इच्छा . . . के[6] साथ काम करनेकी है। यदि वह जा सके तो इसमें कोई हानि नहीं है। किन्तु उसका खर्च बहुत अधिक पड़ेगा। देवलालीमें ही वे लोग १०० रु० खर्च कर देंगे। . . .[7] स्वयं भी अच्छी तरह खर्च करेगा। इसलिए मैं समझता हूँ कि उनका खर्च १५० रुपये तक आना सम्भव है। ईश्वरकी जैसी इच्छा होगी वही होगा। अब आश्रमकी ओरसे मदद देना बन्द कर दिया जायेगा। मैं समझता हूँ कि शायद एक-आध महीनेका खर्च और देना पड़ेगा।

ऐसा लगता है कि तुम वहाँ पारिवारिक समस्याओंको सुलझानेमें जुटी हुई हो। अच्छा है; सुलझाओ।

यदि काकु-लक्ष्मी, दोनोंमें साथ-साथ रहने और उठने-बैठनेका सम्बन्ध हो तो मेरी सलाह है कि उनका विवाह कर देना चाहिए। विवाहके बाद वे भले ही अलग

१, २, ३, ४, ५, ६ व ७. नाम छोड़ दिये गये हैं।

रहें और जबतक इच्छा हो ब्रह्मचर्यका पालन करें, किन्तु विवाहके पहले वे एक-दूसरेका चिन्तन करें, उनका मन विकारग्रस्त हो और शायद वासनायुक्त भावसे वे एक-दूसरेको स्पर्श भी करते हों तो यह सर्वथा धर्म-विरुद्ध होगा। सगाई तो टूट सकती है, किन्तु विवाह नहीं टूट सकता। इसलिए यदि उनके एक साथ घूमने-फिरने आदिके अवसर आते हों तो उनका विवाह हो जाना वांछनीय लगता है। काकु और लक्ष्मीसे इस सम्बन्धमें बातचीत कर लेना। नाथसे भी विचार-विमर्श कर लेना।

तुम्हारी बहन कितना चाहेगी? तुम जमनालालजी से मिलकर उनसे बातचीत कर लेना और बादमें उनसे अपनी बहनको मिलाना। यदि उसे कमाईका लोभ नहीं हो, केवल परोपकारी जीवन बिताना हो और किसीका भरण-पोषण करनेका उत्तर-दायित्व उसपर न हो तथा वह आश्रमका जीवन बितानेको तैयार हो तो मैं समझता हूँ कि वह आश्रममें तो रह ही सकती है। किन्तु शायद इस उम्रमें ऐसा करना उसके लिए सम्भव न हो।

गोमतीसे कहना कि उसने मुझे पत्र लिखना क्यों बन्द कर दिया। किशोरलालका पत्र भी बहुत दिनोंसे नहीं मिला है।

यदि मंजु[1] डाक्टर बनना चाहे और यदि उतना खर्च उठाया जा सके तो तुम उसे ऐसा करनेके लिए प्रोत्साहित करना। मुझे ऐसा नहीं लगता कि यह कोई बड़ी उपलब्धि है। किन्तु फिर भी यह एक प्रकारकी शिक्षा और ज्ञान है। यदि उसे इसका शौक हो तो भले वह ले ले।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८८००) से; सौजन्य: गंगाबहन वैद्य

३९२. वर्ण-व्यवस्थाका रहस्य

अंग्रेजी 'हरिजन' में प्रकाशित मेरा वर्ण-व्यवस्था-सम्बन्धी लेख[2] पढ़कर एक विद्यार्थीने लिखा है:

क्या आप जन्मना वर्ण-विभागमें विश्वास रखते हैं? क्या आपका यह कहना है कि ब्राह्मणके घरमें पैदा हुए मनुष्यका धर्म 'ब्राह्मणत्व' होगा, और तदनुसार, भंगीके घर पैदा हुए मनुष्यका कर्म भंगीका ही होगा? ऐसे विचार का तो भौतिक अर्थ यही होता है कि जन्मका भंगी वेद-शास्त्रोंका अध्ययन नहीं कर सकता या वेद-शास्त्रोंमें पारंगत होकर भी ब्राह्मण-पद नहीं प्राप्त कर सकता। आपके कथनानुसार प्रत्येक प्राणी जन्मकी सीमाओंसे इस तरह बँधा हुआ है कि इन बन्धनोंके अन्दर ही कर्म-विशेष करके उसे सन्तुष्ट होना

१. गंगाबहनकी भेवती।

२. देखिए "वर्णधर्म", १९-३-१९३३।

पड़ेगा, और उन्हीं में उसे मोक्ष प्राप्तिका प्रयत्न करना होगा। ऐसे सिद्धान्तका पोषण व्यक्तिवादकी हत्या करनेके बराबर है तथा व्यक्तिके कार्य एवं विचार-स्वातन्त्र्यको छीन लेना है।

मानवी दुर्बलताओंसे पूर्ण इस संसारमें जान-बूझकर वर्ण-विभाग रखनेसे समय पाकर जाति-भेदका दोष अवश्य आ जायेगा। आजकलकी शिक्षाके अनुसार तो प्रत्येक व्यक्तिको कार्य एवं विचारकी स्वाधीनता होनी चाहिए। वैयक्तिक स्वतन्त्रताका यही मूल मन्त्र है। प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे उसका जन्म कहीं भी हुआ हो, संसारमें सेवा और कर्तव्यके निमित्त अपनी इच्छानुसार कोई भी सुकर्म करने देनेमें समाज, धर्म या किसी व्यक्ति विशेषको आपत्ति ही क्यों होनी चाहिए? प्रत्येक जीवका, चाहे उसका जन्म कहीं भी हुआ हो, यह जन्म-सिद्ध अधिकार है कि वह ज्ञान, शक्ति, धन या सेवामें से किसी एकको ले ले, अथवा चारोंको साथ-साथ पूरा करे। जीवनकी पूर्णताके लिए तो चारों चीजें आवश्यक हैं। इस जीवनकी पूर्णताको समझ लेना और उसके अनुसार कर्तव्य करना ही धर्मकी सच्ची सेवा है।

आप इस विषयपर अपने विचारोंको कृपया और स्पष्ट करनेका कष्ट करें।

हाँ, मैं 'जन्मना' वर्ण-विभागमें विश्वास रखता हूँ। यदि ऐसा न होता, तो वर्ण-व्यवस्थाका कुछ अर्थ ही न रहता। वर्ण-व्यवस्थाका कुछ उपयोग ही न रहता। तब तो शब्द-जाल मात्र रह जाता।

वर्ण-विभाग कोई मनुष्य-कृत योजना नहीं है। उसका मूल तो प्रकृति अथवा ईश्वरके कानूनमें है। उस कानूनका पालन करना-न-करना मनुष्यके हाथमें है; इसलिए मनुष्यके व्यक्तित्वको कोई हानि नहीं पहुँच सकती। आग कहती है—'मेरा स्पर्श करोगे, तो जल जाओगे।' यदि हम आगकी बात न सुनें और अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके कारण आगको पकड़ लें, तो हाथ अवश्य जल जायेगा। ठीक इसी तरह वर्ण-व्यवस्थाके नियमकी बात है। ऋषि-मुनियोंने तपश्चर्याके द्वारा ध्यानावस्थित होकर देखा कि समाज-विकासके लिए वर्ण-विभाग आवश्यक है और उन्होंने तदनुसार विभाग-रचना की। उसका पालन करना-न-करना हमारी इच्छाकी बात है। पालन न करें, तो उसके लिए कोई राजदण्ड तो है नहीं। किन्तु प्राकृतिक दण्डको कौन रोक सकता है? अथवा उसे दण्ड क्यों कहें? वर्ण-विभागके नियमोंका पालन न करनेसे जो प्राकृतिक परिणाम होगा उसे कौन रोक सकेगा? इसलिए वर्ण-विभाग व्यक्तित्व को कोई हानि नहीं पहुँचाता।

लेकिन जन्मना वर्ण क्यों? यह कोई मेरा निजी आविष्कार नहीं है। वर्ण-विभागकी जड़में ही जन्म है। ब्राह्मणकी संज्ञा ही ब्राह्मणत्व है। ब्राह्मण अपनी संतति को ब्राह्मणत्वके लिए तैयार करेगा। इसी तरह शूद्र अपने बाल-बच्चोंको शूद्रत्वके लिए तैयार करेगा। पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि शूद्र ज्ञानका अधिकारी नहीं है। वर्ण-व्यवस्थाका सम्बन्ध तो आजीविकाके साथ है। जिस वर्णमें जो पैदा हुआ है,

उसी वर्णके धन्धेसे वह अपनी आजीविकाका उपार्जन करेगा। एक वर्ण दूसरे वर्णका ज्ञान प्राप्त करे, इसमें कभी कोई बाधा नहीं आ सकती। व्यक्तिगत विकास और स्वातन्त्र्य-रक्षाके लिए सबमें चारों वर्णके सामान्य गुण होने चाहिए, लेकिन प्रत्येक मनुष्यमें अपने वर्णके गुण अधिकांशमें दिखाई देंगे।

वर्ण-व्यवस्था तो भौतिक लोभको मर्यादित करती है, जिससे आत्मविकासके लिए अधिक अवकाश मिल सके। भौतिक पदार्थ और भौतिक सुख तो क्षणस्थायी हैं। उन्हींकी वृद्धिमें यदि मनुष्य फँस जाये, उन्हींको अपना जीवन-ध्येय बना ले, तो उसके लिए आध्यात्मिक विचार करना कठिन ही नहीं असम्भव है। वर्ण-व्यवस्था पुरुषार्थमें कहीं बाधा नहीं पहुँचाती। मनुष्यको जब आजीविकाके साधनकी खोजमें व्यस्त नहीं होना पड़ेगा — क्योंकि आजीविकाके साधन पहलेसे ही तैयार हैं — तब उसके समस्त प्रयत्न केवल आध्यात्मिक साधनाके लिए ही होंगे। मेरे हृदयमें कुछ ऐसा विश्वास जम गया है कि हिन्दू जातिने वर्ण-व्यवस्थाकी बदौलत बहुत बड़े आध्यात्मिक शोध और आध्यात्मिक विकासके लिए सामग्री तैयार की थी।

कालान्तरमें दुर्भाग्यवश इसे हम भूल गये। वर्ण-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गई। रोटी-बेटी व्यवहारके प्रतिबन्धमें वर्ण मर्यादित हो गया, और छुआछूतने इसका अन्त कर दिया। इसीसे वर्णोंका संकर हुआ और वर्ण-व्यवस्थाका पतन हुआ। एक वर्ण दूसरे वर्णके धन्धेमें पड़नेके प्रयत्नमें फँस गया। ब्राह्मण लोभी बना और उसने अपना स्वधर्म — ब्राह्मणत्व — छोड़ दिया।

"दरियामें लगी आग, बुझा कौन सकेगा!"

लवणने जब अपना लवणत्व ही त्याग दिया, तब सबका सब नीरस तो हो ही जायेगा। इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है?

यही कारण है आज हिन्दू धर्मकी अवनतिका।

हरिजनसेवक, १४-४-१९३३

३९३. माता-पिताकी आज्ञा

माता-पिताकी आज्ञाका पालन ही धर्म है। वे गुरु हैं। वे परमेश्वर हैं। माता-पिताको परमेश्वर मानकर ही श्रवणने मोक्षपद प्राप्त किया। श्री रामचन्द्रजी ने पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए राज-पाटका त्याग कर दिया। आप कहते हैं कि अस्पृश्यता अधर्म है, यह कलंक धोये बिना हिन्दू धर्मका नाश निश्चित है। हममें से कईको आपका यह कथन ठीक लगता है, किन्तु माता-पिताके दिलमें यह बात नहीं जम सकती। मेरे एक मित्रने हरिजन-सेवाका आरम्भ ही किया कि उसकी माँ घर छोड़कर भाग गई। कहीं आधी रातको उसका पता लगा। वह फिर घर लौट आई है, लेकिन मित्र तो बेचारा धर्म-संकटमें पड़ गया है। वह क्या करे? मैं तो समझता हूँ कि ऐसा ही अनुभव कई युवकोंको होता होगा।

मेरे पास आये हुए एक पत्रका यह सारांश है। यह धर्म-संकटकी बात है सही। माता-पिताकी भक्तिमें मेरा विश्वास है। मेरे माता-पिता जब जीवित थे, तब मैं अपने सामने श्रवणका आदर्श रखता था। मैंने जो-कुछ अपने जीवनमें पाया है वह सब मेरी मातृ-पितृ-भक्ति और उनके आशीर्वादका ही प्रताप है, ऐसा मैं मानता हूँ। यह मानते हुए भी, मैं ऐसे अनेक प्रसंग सोच सकता हूँ, जब माता-पिताकी आज्ञाका भंग ही शुद्ध धर्म हो जाता है। जब माता-पिताको गुरु और परमेश्वरका पद दे दिया, तब तो वे पूर्ण हो चुके, अर्थात् अपनी सन्तानकी दृष्टिमें वे पूर्ण ही हैं। सन्तानको कभी यह शंका नहीं होती कि माता-पिताकी आज्ञामें कोई अज्ञान या भूल हो सकती है। माता-पिताके प्रति सन्तानका पक्षपात होगा ही, क्योंकि वे सदैव बच्चोंका हित ही चाहेंगे। जहाँ वातावरण शुद्ध हो और माता-पिताके प्रति सन्तानकी अनन्य श्रद्धा हो, वहाँ माता-पिताकी आज्ञा-पालनमें ही उसका श्रेय है।

लेकिन जब सन्तानके मनमें शंका उपस्थित हो तब क्या किया जाये? यदि माता-पिता कहें, 'शराब पीओ, मुर्दार मांस खाओ, रिश्वत दो, बेईमानीसे नौकरी हासिल करो, व्यापारमें असत्य धर्म है, नौ वर्षकी कन्याके साथ शादी कर लो, अस्पृश्यता-निवारण पाप है' तब सन्तानका क्या कर्तव्य होना चाहिए? मैं मानता हूँ कि इस प्रश्नमें ही इसका उत्तर आ जाता है। जब माता-पिताकी आज्ञा स्पष्टत: अधर्मरूप मालूम होती हो, तब उस आज्ञाका भंग ही धर्म हो जाता है। किन्तु जब किसी कर्तव्यके धर्माधर्मके ही विषयमें शंका हो, तब तो माता-पिताकी आज्ञा-पालन ही धर्म है। माता-पिताकी आज्ञाके मुकाबलेमें और किसी मनुष्यकी आज्ञा ठहर ही नहीं सकती। ऐसी स्थितिमें यदि माता-पिताकी आज्ञा और अन्य मनुष्यकी आज्ञामें यह प्रश्न आ जाये कि किसकी आज्ञाका पालन करना चाहिए तो माता-पिताकी ही आज्ञाका पालन करना ठीक माना जायेगा। माता-पिताकी आज्ञाका उल्लंघन तो वही कर सकता है, जिसे ऐसा करनेके लिए धर्मकी अन्तःप्रेरणा हुई हो।

पर ऐसी अन्तःप्रेरणा किसे हो सकती है? आज्ञाके उल्लंघनकी प्रेरणा तो उद्धत पुत्रको भी हो सकती है, उच्छृंखल पुत्रको भी हो सकती है, स्वार्थी पुत्रको भी हो सकती है। पर इससे इन सबको माता-पिताके आज्ञा-उल्लंघनका अधिकार थोड़े ही मिल जाता है। जो पुत्र संयमी हो, विवेकवान हो, त्यागी हो, सहनशील हो, जिसे आज्ञा-पालनका अभ्यास हो और जिस पुत्रमें स्पष्टतया धर्म-जागृति आ गई हो, उसे ही माता-पिताकी आज्ञाके विरुद्ध काम करनेका अधिकार है। खासकर आजकलके स्वच्छन्दता और स्वातन्त्र्यवादके जमानेमें, जबकि अनेक पुत्र माता-पिताको यों ही तुच्छ समझते हैं, यह कहना कठिन है कि केवल धर्म मानकर ही उनकी आज्ञाका उल्लंघन कौन करता है। पर इसका यह अर्थ न लगाया जाये कि कुछ इने-गिने धर्म-भावयुक्त पुत्र भी अपना धर्म-पालन नहीं करते। मेरा अभिप्राय तो यह है कि मैंने जिस मर्यादाका निर्देश किया है उसपर चलनेवाला कभी भूल नहीं करेगा।

दूसरी बात यह है कि जो युवक या युवती माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध काम करते हैं उन्हें अपने माता-पिताकी सम्पत्ति और घरकी अन्य सुख-सुविधाओंके उपयोगका अधिकार नहीं है। उन्हें बिना क्रोध किये निस्संकोच होकर घर-बार, धन-

सम्पत्ति आदि छोड़नेके लिए उद्यत रहना चाहिए। कभी-कभी तो ऐसे सत्याग्रही बरतावका परिणाम शुभ ही होता है। माता-पिताका विरोध शान्त हो जाता है, और स्वेच्छाचारी माता-पिताका संयमी पुत्र कभी-कभी उनका 'हृदय-परिवर्तन' तक कर देता है। अस्पृश्यतामें ऐसी बात नहीं है। वह तो एक ऐसा विषय है, जिसमें माता-पिता और पुत्र दोनों ही पक्ष संयमी होकर अपने-अपने व्यवहारको धर्म मान सकते हैं। ऐसा सच्चा मतभेद सदाके लिए निभ जाये तो क्या कहना। ऐसी स्थितियोंमें यही आशा रखी जा सकती है कि एक-दूसरेके प्रति सहिष्णुताका भाव रखें। वयः-प्राप्त पुत्र या पुत्रीसे माता-पिता सदा आज्ञा-पालनकी आशा न रखें। और यदि माता-पिताका आग्रह स्पष्ट हो और वे मरनेकी या ऐसी ही कोई धमकी दें, तो युवक निर्भय होकर जिसे विवेकपूर्वक अपना स्पष्ट धर्म समझें उसीका पालन करे।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, ९-४-१९३३

३९४. शब्दोंका नूतन प्रयोग[1]

[९ अप्रैल, १९३३]

एक सज्जन लिखते हैं:

> **आप सदा शब्दोंके नूतन प्रयोग किया करते हैं। इससे अनर्थका भय है। आपने कहा है—'हम सब मूर्तिपूजक हैं, मन्दिर हिन्दूधर्मका आवश्यक अंग है।' इसमें मूर्तिपूजा और मन्दिर आप एक अर्थमें लेते हैं और जनता दूसरे अर्थमें। इसलिए आपको स्पष्टीकरण करना चाहिए। इन शब्दोंका आपने क्या एक विस्तृत रूपमें प्रयोग नहीं किया है?**

यह कथन लेखककी दृष्टिसे भले ही कुछ ठीक हो, पर मेरी दृष्टिसे नहीं। अर्थका विस्तार मैंने अवश्य किया है, लेकिन लौकिक अर्थका त्याग नहीं। लेखक लौकिक अर्थका त्याग करते हैं और मेरे विस्तृत अर्थको स्वीकार करनेका प्रयत्न। उनके इस प्रयत्नमें ही दोष है। लौकिक अर्थका त्याग कर दिया गया, तो फिर विस्तार किसका रहा? मैं तो पाषाण इत्यादिकी मूर्ति भी मानता हूँ। बात यह है कि मनुष्यके विचारोंका यथार्थ और पूर्ण अर्थ भाषा कभी दे ही नहीं सकती। अतः शब्दोंका विस्तार तो होता ही रहेगा। प्रत्येक अर्थके लिए नया शब्द बनाना असम्भव है और अनावश्यक भी। जब विरोधी विचार व्यक्त करनेके लिए ही एक भी शब्दका प्रयोग किया जाता है, तब शंका और अनर्थका भय अवश्य रहता है। यहाँ तो ऐसा कोई भय नहीं है। मैंने तो यहाँ केवल लौकिक अर्थका ही विस्तार किया है — वस्तुतः विस्तार नहीं, किन्तु उसका स्पष्टीकरण ही किया है।

लौकिक अर्थ पाषाणको परमेश्वर बना देता है। लेकिन सही बात यह है कि पाषाण स्वतः परमेश्वर नहीं, परन्तु पाषाणमें परमेश्वर है। लोग कहेंगे कि यदि

१. इस लेखका गुजराती अनुवाद ९-४-१९३३ के **हरिजनबन्धु**में प्रकाशित हुआ था।

पाषाणमें परमेश्वर है तो फिर पाषाण परमेश्वर क्यों नहीं? शरीर आत्मा नहीं है, शरीरमें आत्मा है। तो भी करोड़ों लोग ऐसा कहते व मानते हैं कि शरीर ही आत्मा है। उनकी दृष्टिसे वह भी सत्य है अथवा उनके कथनमें भी सत्यका अंश है। अर्थात् लौकिक अर्थ सर्वथा त्याज्य नहीं है। जैसे विचारका विस्तार होगा, वैसे ही शब्दोंके अर्थका भी विस्तार होता जायेगा। मैं जो-कुछ कर रहा हूँ, वह कोई नई बात नहीं है। मेरे विचारोंमें ही कुछ नवीनता-सी देखनेमें आती है। यह अनिवार्य है। क्योंकि मेरी यही साधना है। सत्यकी खोजमें विचार करना ही पड़ता है। संकुचित अर्थसे सन्तोष नहीं होता। ध्यान करनेसे उसी शब्दके उसी अर्थमें ही सन्तोष का बीज देखनेमें आता है।

कहा जाता है कि वेद केवल 'ॐ'का ही विस्तार है। गोसाईं तुलसीदास कहते हैं, राम ही ओम् है, राम ही वेद है। सब-कुछ उसीमें है, सब वही है और कुछ नहीं है। लेकिन लौकिक राम दशरथ-नन्दन हैं। तुलसीदास कहते हैं–'मेरा राम दशरथ-नन्दन है सही, लेकिन वह उससे भी बहुत अधिक है। वही सच्चिदानन्द पूर्ण परब्रह्म है।' इस कथनमें कोई विरोध नहीं, विचार-विस्तार, अर्थ-विस्तार है। रामके परम भक्त तुलसीदासने ध्यान किया और ध्यान-पथमें निरंजन, निराकार, सर्वव्यापक रामको पाया। यहाँ कोई अनर्थ नहीं हुआ। अच्छा ही हुआ। परिणाममें अवतारवादके रहस्यको हम और अधिक समझने लगे। इस प्रकार पाषाण-शिलासे लेकर परमाणु तक चले जाइए तो भी मूर्ति ही नजर आती है। और परमाणुमें भी परमात्मा छिपा हुआ पाया जाता है। इस दृष्टिसे सारा जगत् प्रतिमा-पूजक है। जगन्नाथ नामका मकान जिसमें जगन्नाथकी मूर्ति प्रतिष्ठित है, वह भी मन्दिर है और जिस स्थान पर पाँच आदमी बैठकर प्रभुका नित्य नाम-स्मरण करते हैं वह भी मन्दिर है। इस कारण मन्दिर हिन्दू धर्मका ही नहीं, बल्कि संसारके सभी धर्म-मजहबोंका एक आवश्यक अंग है। फिर कोई भले ही उसे गिरजा, मस्जिद, गुरुद्वारा, उपाश्रय इत्यादि नामसे पुकारे। जहाँतक शरीर और आत्माका सम्बन्ध रहेगा, वहाँतक मन्दिर और भगवान्का भी मेल बना रहेगा। शरीर नरककी खान है और ईश्वरका निवास-स्थान भी है। ठीक इसी तरह मन्दिर नरककी खान भी बन सकता है, भगवान्का निवास स्थान तो ही है–

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु-मूरति देखी तिन तैसी।।

हरिजनसेवक, १४-४-१९३३

३९७. पत्र : चाँपानेरियाको

९ अप्रैल, १९३३

भाई चाँपानेरिया,

आपका पत्र मिला। आपने लिखकर बहुत अच्छा किया। एक ओर तो अत्यधिक विनम्रता और दूसरी ओर मृत्युपर्यन्त दृढ़ता और सर्वस्व-त्यागकी भावना यदि मुट्ठी-भर कार्यकर्ताओंमें भी होगी तो अस्पृश्यता-रूपी रावणका नाश अवश्य होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४१४०) से।

३९८. पत्र : नारणदास गांधीको

९ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी ७ तारीखकी भेजी डाक आज मिली और उसे पढ़नेके बाद ही आजकी डाक यहाँसे तुम्हें भेजी।

परचुरे शास्त्री आश्रममें तीन वर्षकी तालीम लेने आये थे। उनका उद्देश्य तालीम लेनेके बाद आश्रमका काम करनेका था। उसमें उनका हेतु और मेरा हेतु यह था कि वे और उनके साथी आश्रमके आदर्शका अनुसरण करते हुए काम करेंगे। दुर्भाग्यवश उन्हें बीचमें ही चले जाना पड़ा किन्तु आश्रमका काम उन्होंने यथाशक्ति किया इसलिए मैंने उन्हें आश्रमवासी ही माना है। 'आश्रमवासी' का यहाँ शाब्दिक अर्थ नहीं करना है। मैं उसे उसके शाब्दिक अर्थसे कहीं व्यापक अर्थ देना चाहता हूँ। डंकनको लिखे अपने पत्रमें मैंने जो लिखा है, क्या वह तुमने देखा? मेरे मनमें तो वह आश्रमवासीका स्थान ले ही चुका है। और यदि कहीं सेवा-कार्य करते-करते उसकी स्थिति विषम हो जाये तो मैं उसे आश्रममें आ जानेके लिए अवश्य कहूँगा। वह कहीं भी जाये, आश्रमसे उसका यह सम्बन्ध बना रहेगा। मेरा विश्वास है कि परचुरे शास्त्रीने ऐसा ही किया। चिंचवडवालोंपर भी यही बात लागू होती है। दूसरे कई लोगोंकी गिनती भी ऐसोंमें की जा सकती है। आश्रमकी बुनाईशालामें जो लोग आते हैं उनके विषयमें मैं ऐसा नहीं कहूँगा। उनमें से कुछ तो बुनाई सीखकर

आश्रम-जीवनसे निकल ही जाते हैं और मात्र जीविकोपार्जनमें व्यस्त हो जाते हैं। बात समझमें न आई हो तो अभी पूछना।

नरहरिके पत्रके सम्बन्धमें तुम्हारी टीका मैं स्वीकार करता हूँ। तुमने उसकी भाषामें जो कठोरता देखी है उसे मैं भी देख सका था। किन्तु मैंने उसकी भाषाको अनदेखा करके उसके हेतुकी और सुझावोंकी जाँच की। मैंने उसे इस दृष्टिसे जाँचा मानों वह मेरे विषयमें हो। इसलिए तुम्हारे लिए उसने जिस कठोर भाषाका प्रयोग किया है, उसका मैंने कोई विचार नहीं किया। नरहरिके स्वभावको मैं जानता हूँ। तुम्हारा धर्म तुम्हारे लिए प्रयुक्त भाषाकी ओर न देखना है। लिखनेवालेका हेतु दुष्ट न हो और उसके सुझाव विचार करने योग्य हों तो हमें उनपर विचार करना चाहिए। यह अहिंसाका मार्ग है — हंसकी रीति है। 'जड़-चेतन गुन-दोषमय बिश्व कीन्ह करतार, संत-हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-बिकार' ऐसा किये बिना संतत्व नहीं मिलता, सत्य नहीं मिलता और मिल जाये तो उसकी रक्षा नहीं हो पाती। दोष हम देखें भले किन्तु उन्हें तोलनेका काम तो निष्कलंक ब्रह्मका ही हो सकता है दोषमय मनुष्यका नहीं। मनुष्यका वर्णन ही किसीने 'दोषोंका पुतला' कहकर किया है। इसलिए तुम्हें हार स्वीकार नहीं करनी है। यह अध्याय आज तो यहीं पूरा करता हूँ।

. . .[1]के विषयमें तुम्हें लिख चुका हूँ। मुझे अब इसकी कोई आशा नहीं रही कि उनमें से कोई भी फिलहाल आश्रममें रहेगा। आश्रमके नियमोंके पालनका ताप वे सहन नहीं कर सकते। इसलिए मैं मानता हूँ कि अपनी शक्तिकी मर्यादाको समझकर ही वे आश्रम छोड़ रहे हैं। तुम्हारे प्रति उनमें आदर या विश्वासकी भावना नहीं है किन्तु मैं उसके बिना भी चला लेता। तुमसे तो मैं चला लेनेको कहता ही। किन्तु जहाँ आश्रमके नियमोंका पालन करनेकी अशक्ति या अनिच्छा (अन्तमें तो ये दोनों एक ही वस्तुके सूचक हैं) हो वहाँ यदि उसके बावजूद वे आश्रममें रहते हैं तो उन्हें घुटन महसूस होगी और आश्रमको भी घुटन महसूस होगी। मेरा खयाल है कि . . .[2] और . . .[3] दोनों अपना भरण-पोषण आप कर सकते हैं। . . .[4]भी बीमार न हो तो इस दिशामें पूरी तरह समर्थ है। सम्भव है कि आश्रमके बाहर उनका ज्यादा अच्छा विकास होगा और वे अपनेको चमका भी सकें। आश्रमके साँचेमें ढलनेके लिए वे तैयार नहीं हैं। तुम्हारा विचार मुझसे भिन्न हो और तुम उन्हें आश्रममें खींच सको तो मुझे अच्छा ही लगेगा। उनका आश्रमसे बाहर जाना मुझे अपने ही बाहर जाने-जैसा लगता है। मेरे लिए तो उनका जाना बहुत ही गम्भीर घटना है किन्तु वे आश्रममें विवश होकर रहें और एक प्रकारका कृत्रिम जीवन बितायें तो यह एक असह्य वस्तु होगी, यह धर्मके विपरीत होगा।

हमने यहाँ [राष्ट्रीय] सप्ताहका आरम्भ उपवास करके तो मनाया किन्तु उसके सिवा हम कुछ नहीं कर सके।

१ से ४. यहाँ नाम नहीं दिये गये हैं।

तुम्हारे पत्रमें वालजीके लेखका उल्लेख है किन्तु वह हमें मिला नहीं। शायद कल मिले।

बापू

[पुनश्च :]

अपने अज्ञानमें मैं यहाँके बोर्डको पच्चीस गांडीव चरखे, १२ आना प्रति नगकी दरसे, देनेके लिए बँध गया हूँ। उन्हें वचन देनेके बाद मैंने लक्ष्मीदाससे कीमत पूछी तो उसने डेढ़ रुपया बताई। किन्तु अब मुझे तो उन्हें पच्चीस गांडीव देने ही होंगे। इस सम्बन्धमें अपने एक पत्रमें मैंने केशूको लिखा भी था। किन्तु वह तो अब चला गया। मैं नहीं जानता कि इस समय कारखानेमें ऐसा कोई है या नहीं जो यह काम कर सके। यदि वहाँ न बन सकते हों तो लक्ष्मीदास बनवाकर भिजवाये और बारह आनेसे अधिक जो भी कीमत बैठे उतना पैसा आश्रमसे वसूल कर ले। उसमें मोढ़िया, तकुआ और कमानी — इतने अंग आवश्यक हैं। मैंने जेलमें जो चरखा बनाया था वह वहाँ है। वैसा ही सादा चरखा चाहिए। उसमें रोगन करनेकी जरूरत नहीं है। ऊपर एक हुक होना चाहिए ताकि काम हो चुकनेपर उसे दीवार पर टाँगा जा सके। हुक टीनके पतरेका बनाया जा सकता है। या उसमें एक छेद करके डोरी डाली जा सकती है। चक्रके लिए स्टीलकी धुरीकी जरूरत नहीं है। केशूने जो नमूना दिया था उसमें स्टीलकी धुरी नहीं है। शुरूमें हमने इसमें जिस चक्रका उपयोग किया था उसमें दो कीलें ही थीं। उसपर मैंने तो बहुत कताई की थी। बनानेमें कोई असावधानी न हो और चरखा अच्छी तरह काम दे, इतना हुआ तो काफी माना जायेगा। रेलभाड़ा बोर्ड देगा। ये चरखे जहाँ भी बनवाये जायें, जल्दी बनें तो अच्छा होगा। कोई बात समझमें न आई हो तो पूछना। यह पत्र लक्ष्मीदासको भी दिखाना।

बापू

[पुनश्च :]

कुल २६ पत्र हैं।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से; सी० डब्ल्यू० ८३५३ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

३९९. पत्र : नारणदास गांधीको

९ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

कल मैंने तुम्हें जो चिट्ठियाँ भेजी हैं उनमें . . . के[1] मामलेको लेकर हुई चर्चाका विवरण, उससे सम्बन्धित दो पत्र, मेरीका एक पत्र, मेरीके इस पत्रका मेरा अपना उत्तर और वहाँ रखनेके लिए इस उत्तरकी एक नकल भेजी है।

मेरीबहनका पत्र मुझे बहुत अच्छा लगा। मैंने उसे जो उत्तर दिया है उसे मैं जानता हूँ तुम समझोगे। तुम सब लोगोंको यदि उसका स्वभाव पसन्द आया हो तो उसकी इच्छाका आदर करना। किन्तु सब आश्रमवासी साथ बैठकर इस सुझावपर स्वतन्त्र रूपसे विचार कर लेना। ऐसा न समझना कि मैंने जो-कुछ कहा है उसे करना ही है। मेरीबहनको मैंने जो उत्तर दिया है उसमें भी मैंने यह तो स्पष्ट कर ही दिया है।

इसके साथ जेकीबहनका[2] पत्र भेज रहा हूँ। उसके लड़के अब बड़े हो गये हैं। उनकी देखरेख अब वहाँ आसानीसे हो सकती है। यदि उन्हें आश्रममें रखा जा सकता हो तो मणिभाईको[3] लिखना कि उन्हें भेज दें। उनपर जो खर्च आनेका अनुमान हो वह उनसे मँगा लेना। . . .[4]

. . .[5] . . .[6] के साथ जो हुआ है उससे यदि हम चाहें तो बहुत-कुछ सीख सकते हैं। उन्होंने बार बार आश्रमके नियमोंका उल्लंघन किया इसलिए उन्हें जाना पड़ा। . . .[7] ने आश्रमके नियमोंका पालन नहीं किया और वह अनुभव करता है कि आगे भी उनका पालन करना उसके लिए शक्य नहीं है। उसने सारे नियमों का पालन अभीतक नहीं किया और भविष्यमें भी नहीं कर सकेगा। इसलिए यह सारा कुटुम्ब आश्रम छोड़ रहा है। . . .[8] आश्रमके स्तम्भ थे। उनके बिना आश्रम का जन्म भी न हुआ होता। उनका कुटुम्ब आश्रमसे जाये यह एक दुःखद और गम्भीर घटना है। तथापि मैं मानता हूँ कि उन सबके जानेमें ही आश्रम-धर्मका पालन है। वे चले गये इसलिए अब हमारे प्रेमके पात्र नहीं रहे, ऐसी बात नहीं है। हमारी नजर इन दोनों कुटुम्बोंपर रहेगी ही। हम ऐसी इच्छा करें कि वे

१. नाम नहीं दिया गया।
२. डॉ० प्राणजीवन मेहताकी पुत्री।
३. मणिलाल डॉक्टर, जेकीबहनके पति।
४. एक अनुच्छेद छोड़ दिया गया है।
५, ६, ७ व ८. नाम छोड़ दिये गये हैं।

बाहर तो चले गये हैं किन्तु बाहर भी वे आश्रम-धर्मका यथाशक्ति पालन करते रहेंगे और ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिससे आश्रमको लज्जित होना पड़े।

मैं चाहता हूँ कि ऐसा गर्व कोई न करे कि वे चले गये हैं इसलिए वे अपूर्ण थे और हम आश्रममें हैं इसलिए हम पूर्ण हैं। हो सकता है कि जानेवाले आश्रममें बने रहनेवालों से ज्यादा योग्य हों। जानेवालों के दोष सबको दिख गये किन्तु रहनेवालों के दोष यदि छिपे रह गये हों तो कौन जानता है? हम किसीके न्यायाधीश न बनें। यह तो ईश्वर ही जानता है कि कौन योग्य है और कौन अयोग्य।

इन उदाहरणोंसे हम चेतें। कोई अपना दोष छिपाये नहीं, सब अधिक जाग्रत बनें, कोई भी झूठी शर्मके कारण कुछ न करे, सब अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार चलें और जिनकी शक्ति या इच्छा आश्रम-धर्मका पालन करनेकी न हो वे बाहर ही रहें, यही ज्यादा अच्छा होगा। हम सब अपूर्ण हैं पर यदि यह जानते हुए हम आश्रम-धर्मके पालनका निरन्तर प्रयत्न करते हों, अपने दोष छिपाते न हों तो हमें आश्रममें रहनेका अधिकार है। किन्तु यदि हममें इस धर्मका पालन करनेकी इच्छा नहीं है अथवा उसमें हमारी श्रद्धा नहीं है तो हमें आश्रमका त्याग कर ही देना चाहिए।

पत्रके इस अंशको यदि वहाँकी मित्र-मंडलीमें घुमा दो तो काफी होगा। इसमें कहीं कोई परिवर्तन या परिवर्धन सुझाना चाहो तो सुझाना।

बापू

[पुनश्च :]

छगनलाल रमाकी कोई चिन्ता नहीं करता। उसे विश्वास है कि जो भी आवश्यक होगा, तुम सब करोगे ही।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५२ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४००. पत्र : नानालाल के० जसानीको

९ अप्रैल, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि मगनलाल न आये तो भी तुम दोनों मिलकर बँटवारा करके तो देखो और उसे छगनलालके सामने रखो। हमें यह आशा रखनी चाहिए कि तुम जो करोगे उसे मगनलाल स्वीकार कर लेगा। डाक्टर [अमुक व्यक्तियोंके लिए] जो-जो रकमें लिख गये हैं उन्हें स्वीकार करके ही, यानी पूरी सम्पत्तिमें से उतनी धन-राशि कम करके ही, बँटवारा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६३१)से।

४०१. पत्र : माधवजी और कृष्णा कापडियाको

९ अप्रैल, १९३३

चि० माधवजी और कृष्णा,

तुम दोनोंके पत्र मिले। मेढ़को मैंने भी लिखा तो था। उसने मुझे पत्र लिखा था। उसमें भविष्यका वादा होनेके कारण मैंने तुम्हें सूचित नहीं किया। किन्तु अब तुम्हें कुछ शान्ति मिली है यह जानकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि तुमने अपनी मानसिक शान्ति नहीं खोई।

बापूके आशीर्वाद

माधवजी गोकुलदास
शामजी शिवजीनो मालो
मनोरदास स्ट्रीट
बम्बई

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२२)से।

४०२. पत्र : नर्मदाबहन राणाको

९ अप्रैल, १९३३

चि० नर्मदा,

मक्खीकी टाँगोंकी तरह टेढ़े-मेढ़े अक्षर मत लिखा कर। हाथ साधकर बड़े-बड़े अक्षर लिखो। मुरदार मांस तूने उनसे उनकी सहमतिसे ही छुड़ाया था यह मैं समझ गया।[1] खानेकी बहुत-सी चीजें होते हुए भी, मुरदार मांस उनके मुँह लग गया है इसलिए वे खाते हैं।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७७६)से; सौजन्य : रामनारायण एन० पाठक

१. देखिए "पत्र : नर्मदाबहन राणाको", २७-३-१९३३।

४०३. पत्र : शामल आर० रावलको

९ अप्रैल, १९३३

चि० शामल,

तूने प्रश्न पूछा सो ठीक किया। यह तो मैं कभी नहीं कहूँगा कि मुरदार मांस नहीं, मारे गये जानवरोंका मांस खाना चाहिए। मैं इतना अवश्य कहता हूँ कि मुरदार मांस खानेसे मनुष्यपर बहुत ही खराब असर पड़ता है। दुनिया-भरमें इसे बुरा माना जाता है। हाँ, मैं इतना जरूर कहता हूँ कि जो लोग मांस खाये बिना रह ही नहीं सकते वे भले ही मारे गये पशुओंका मांस खायें। यह तो हो नहीं सकता कि जिसे मांस खानेकी आदत है वह सिर्फ मुरदार मांस ही खायेगा, अन्य प्रकारका नहीं। ऐसी बात नहीं है कि मुरदा जानवरका मांस खानेवाले वध किये गये पशुओंके मांसको धर्म-विरुद्ध मानकर नहीं खाते। मुरदार मांससे शरीर स्वस्थ रहता है, यह कहना तो वहम ही है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३१४६)से। सी० डब्ल्यू० २८८२ से भी; सौजन्य : शामल आर० रावल

४०४. पत्र : पद्माको

९ अप्रैल, १९३३

चि० पद्मा,

तेरा पत्र मिला। यदि वहाँ तुममें से किसीकी भी तबीयत अच्छी न रहती हो तो लोगोंके लिए बोझ बनकर तुम्हें वहाँ नहीं रहना चाहिए। ऐसा हो तो मैं तुम्हें आश्रममें जाकर रहनेकी सलाह दूँगा। इधर-उधर बेकार भटकनेके बजाय जो-कुछ होना हो सो आश्रममें ही हो। और यदि वहाँ तेरा स्वास्थ्य ठीक रहे तो तुझे वहीं जम जाना चाहिए। मैं तेरे उत्तरकी प्रतीक्षा करूँगा।

आशा है, शीला अब ठीक हो गई होगी और सरोजिनीदेवी भी स्वस्थ होंगी।

विद्यावतीजी की तबीयत कैसी रहती है? आजकल वहाँ कितनी लड़कियाँ हैं? तू क्या करती है? वहाँकी आबोहवा कैसी है? मुझे पूरे समाचार देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६१४३) से।

४०५. पत्र : अमीना जी० कुरेशीको

९ अप्रैल, १९३३

प्रिय बेटी अमीना,

कुरेशीसे तेरी मुलाकातके बादके तेरे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तम्बाकू और मिर्चोंके बारेमें भी मैं तेरे मनकी बात जानना चाहता हूँ। निस्संकोच लिखना।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ६६६६)से। सी० डब्ल्यू० ४३११ से भी; सौजन्य : हमीद जी० कुरेशी

४०६. तार : पूनमचन्द राँकाको

[१० अप्रैल, १९३३][1]

एक्सप्रेस

सेठ पूनमचन्द
कैदी
जिला जेल, खंडवा

आपके उपवासको सत्याग्रह और अनुशासनके नियमोंके विरुद्ध मानता हूँ। भूख-हड़ताल करके सुविधाओंकी माँग नहीं की जाती और 'ए' तथा 'बी' श्रेणियोंके कैदियोंको दी जानेवाली सुविधाओंका लाभ उठानेकी किसी पर बाध्यता तो नहीं है। इसलिए आशा करता हूँ कि आप अपना उपवास तोड़ देंगे।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८७)से। होम डिपार्टमेंट, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, पॉलिटिकल फाइल नं० ३१/१०८, १९३२, पृष्ठ ९८ से भी; सौजन्य : राष्ट्रीय अभिलेखागार

१. देखिए अगला शीर्षक।

४०७. पत्र : एम० जी० भण्डारीको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय मेजर भण्डारी,

कल मुझे सेठ पूनमचन्द राँकाके बारेमें इसी ६ तारीखको भेजे दो तार मिले। उनपर लगी डाककी मुहरोंसे लगता है कि आपको तो वे उसी दिन दे दिये गये थे। आप यह जानते हैं कि वे कितने महत्त्वपूर्ण हैं। फिर यह देर कैसे हुई, समझमें नहीं आता। इस विलम्बके परिणामको कुछ हदतक मिटानेके लिए मेरे पास एक ही रास्ता है कि मैं एक तार सीधे सेठ पूनमचन्दको भेजूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि सरकारी आदेशमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। अगर आपको टेलीफोन करने या तार भेजनेका अधिकार हो तो मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप सरकारसे संलग्न तार[1] सेठ पूनमचन्द या खण्डवा जेलके अधीक्षकको अत्यावश्यक सन्देशके तौर पर सरकारी खर्चपर भेजनेकी अनुमति प्राप्त करें।[2] मेरी विनम्र रायमें उपवास कर रहे उस कैदीके और मेरे लिए कमसे-कम इतना तो किया जाना चाहिए।

जिस पत्र-व्यवहारका सम्बन्ध एक कैदीके जीवनसे हो और जिसके लिए सरकारकी अनुमति भी मिल गई हो उसके बारेमें ऐसा विलम्ब क्यों किया जाता है, इसका कारण मैं जल्दीसे-जल्दी जानना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ३८८७)से।

४०८. पत्र : अब्दुल अलीमको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय अब्दुल अलीम,

तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई। तुम्हें हिम्मत नहीं हारनी चाहिए। खुदा सचमुच तुमपर बड़ा मेहरबान रहा है। लोगोंकी सद्भावनाके बिना तुम न तो 'रिफ्यूज' में जगह पा सकते थे[3] और न कैम्बेल अस्पतालमें। और फिर सतीश और

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. बम्बई सरकारने पूनमचन्द राँकाके पास पहुँचानेके लिए यह तार मध्य प्रान्त सरकारको भेज दिया था।

३. देखिए "पत्र : देवप्रसाद सर्वाधिकारीको", ९-३-१९३३।

उनके आश्रमके सभी लोग तुम्हें आवश्यक सहायता देनेको तो तैयार ही हैं। यह सच है कि पैसेसे बहुत-कुछ प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन गरीबीकी भी नियामतें हैं जो पैसेसे नहीं मिल सकतीं। अगर इसमें कुछ आकर्षण नहीं होते तो इतने-सारे लोगोंने उसे खुशी-खुशी न अपनाया होता। तुमने 'कुरान' पढ़ा है और यह जानते हो कि खुद पैगम्बर साहब और उनके बहुत-से साथी बड़े गरीब थे और उन्होंने बड़ी तंगीकी जिन्दगी बिताई थी। इसलिए तुमको अपने भाग्यपर खिन्न नहीं होना चाहिए।

तुम्हारे कहे अनुसार यह पत्र मैं सतीशबाबूके पतेसे भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८६) से।

४०९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

डेविड-योजनाके लिए मुझे कुल ५,००० रुपयेके दो चेक मिले — २,५०० रुपये का श्री० सुव्रतादेवीसे और इतनेका ही दूसरा श्री० जानकीदेवीसे।

पहले अनुदानका उपयोग अगर राजपूतानेमें कोई ठीक योग्यतावाला हरिजन विद्यार्थी मिला तो उसपर किया जायेगा, अन्यथा बम्बई प्रान्तके किसी हरिजन छात्रपर।

दूसरेको अव्वल तो मध्य प्रान्त (मराठी) के किसी हरिजन विद्यार्थी पर खर्च किया जायेगा और अगर न हो तो मध्य प्रान्त (हिन्दुस्तानी) के विद्यार्थीपर। यदि यह भी सम्भव न हुआ तो उसे किसी भी हरिजन छात्र पर खर्च किया जायेगा।

मुझे जानकीदेवीसे १०० रुपये और भी मिले हैं। इस रकमको मुझे अपनी समझके मुताबिक किसी भी हरिजन-कार्यपर खर्च करना है।

मैंने ये रकमें ठक्कर बापाको दे दी हैं और अनुदानोंके साथ जो निर्देश दिये गये थे वे भी मौखिक रूपसे बता दिये हैं। लेकिन यह बात मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि आपके तत्सम्बन्धी कागजोंमें उसका उल्लेख रहे। अभी भी मुझे आपको ५०० रुपये भेजने हैं और इसके सम्बन्धमें मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ।[1] आशा है, ठक्कर बापाने आर्य भूषण प्रेससे १,०४४ रुपये, जो 'हरिजन' की ओरसे पेशगी दिये गये थे, वापस ले लिये हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८५) से।

१. देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", ३/४-४-१९३३।

४१०. पत्र : जयरामदास दौलतरामको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय जयरामदास,

इतने दिन बाद तुम्हारी लिखावट देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। आशा है, तुम बिलकुल स्वस्थ और प्रसन्न होगे।

श्रीयुत उत्तमचन्द गंगारामसे[1] प्राप्त ५,००० रुपयेके अनुदानकी घोषणा क्या 'हरिजन' में करनी है? करनी है तो किन शब्दोंमें?

क्या डॉ० चोइथराम चल-फिर लेते हैं? हम सबकी ओरसे उन्हें स्नेहाभिवादन कहिए।

प्रेमी[2] तो नियमित रूपसे पत्र लिखने लगी थी, लेकिन इधर कुछ दिनोंसे बिलकुल मूक हो गई है। उससे पूछना कि चुप क्यों बैठ गई है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७६) से।

४११. पत्र : नी० को

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

पिछले तीन-चार दिनोंसे तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला है। तुम्हारे सम्बन्धमें मुझे वैसी ही चिन्ता होने लगी है जैसी माँको अपनी बच्चीके लिए होती है। मैं जानता हूँ वह जरूरी नहीं है, लेकिन जब मुझे तुम्हारा पत्र नहीं मिलता तो मैं तरह-तरहकी बातें सोचने लगता हूँ। कहीं तुम बीमार तो नहीं पड़ गईं? या तुम अपने संकल्पसे डिग गईं? इसलिए तुम अपने वचनके अनुसार नियमित रूपसे लिखना कभी मत भूलो।

आशा है, शुक्रवारको भेजा मेरा लम्बा पत्र[3] तुम्हें मिल गया होगा। उसमें तुम्हारे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर है।

१. सिन्धके एक सरकारी स्कूलके अवकाश-प्राप्त प्रधानाध्यापक। उन्होंने सिन्धकी प्राथमिक शालाओंके हरिजन विद्यार्थियोंको छात्रवृत्तियाँ देनेकी एक योजनाके लिए अनुदान दिया था।

२. जयरामदास दौलतरामकी पुत्री।

३. तात्पर्य शायद ६ अप्रैलके पत्रसे है, जो सम्भवतः अगले दिन भेजा गया हो।

रामस्वामीको लिखे अपने जिस पत्रके बारेमें मैंने तुम्हें बताया था, उसका उसने सन्तोषजनक उत्तर दिया है। उसका यह गुरु कौन है जिसके साथ, बताया जाता है, तुम रहती हो? उसकी उम्र क्या होगी? वह कौन-कौन-सी भाषाएँ जानता है? क्या चीतलदुर्ग उसका घर है? रुद्रमणिका व्यवहार अब कैसा है?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७५) से।

४१२. पत्र : के० रामस्वामीको

१० अप्रैल, १९३३

प्रिय रामस्वामी,[1]

तुम्हारे सबसे ताजा अर्थात् ८ अप्रैलका पत्र काफी सन्तोषजनक है। अब मैं स्थितिको ज्यादा अच्छी तरह समझ गया हूँ।

जहाँतक तुम्हारे गुरुका सम्बन्ध है, मैं जानता हूँ कि यह इतना पवित्र विषय है कि इसपर कोई चर्चा नहीं की जा सकती। मेरा खयाल है, ये वही सज्जन हैं जिन्हें रुद्रमणि भी अपना गुरु बताता है। क्या तुम उनका कुछ वर्णन कर सकते हो? उनकी उम्र क्या है? वे कौन-कौन-सी भाषाएँ जानते हैं? अच्छे, सच्चे और आध्यात्मिक दृष्टिसे परिपक्व व्यक्ति कोई भाषा जानें ही, ऐसी कोई बात नहीं है। यह सब तो मैं केवल अपने कुतूहलको तुष्ट करनेके लिए पूछ रहा हूँ।

जहाँतक हरिजनोंके बीच तुम्हारे कामका प्रश्न है, उस विषयमें अभी तुम्हारा कोई मार्गदर्शन करनेके लिए मेरा मन तैयार नहीं है। अभी तो मैं केवल यही आशा कर सकता हूँ कि तुमने और तुम्हारे साथ कुछ अन्य लोगोंने जो काम शुरू किया है वह बन्द नहीं होगा; बल्कि वह और भी अधिक सत्यमय रूप ग्रहण करेगा, जैसा कि मैं आशा करता हूँ, नी० के साथ हुआ है।

भंगीका काम अपनानेके परिणामस्वरूप तुमने जो अनेक बातोंमें संयम बरतना शुरू किया है,[2] उसके बारेमें पढ़कर मुझे बड़ी खुशी हुई।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत के० रामस्वामी
मार्फत श्रीयुत आर० कृष्णराव
बीवर्स लाइन्स
मैसूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८७४) से।

१. एक छात्र स्वयंसेवक, जो समाज-कल्याणके कार्योंमें भंगीका काम वगैरह करनेमें लग गया था।
२. के० रामस्वामीने कॉफी पीना और सिनेमा देखना छोड़ दिया था।

४१३. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१० अप्रैल, १९३३

चि० जमना,

पुरुषोत्तम-जैसा वैद्य भेज दिया उसके बाद भी क्या तुझे मेरा पत्र चाहिए? और वह भी स्वयं लिखे बिना? तेरे एक भी पत्रका जवाब मैंने न दिया हो, ऐसा मुझे स्मरण नहीं है। तुझे लिखे अपने गत पत्रके उत्तरकी तो मैं अबतक राह जोह रहा हूँ। जो मेरे पत्रकी इच्छा करता है उसे मुझे सुन्दर पत्र लिखना चाहिए या फिर उसे इतना बीमार होना चाहिए कि उसमें पत्र लिखनेकी शक्ति ही न हो।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७५) से; सौजन्य : नारणदास गांधी

४१४. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१० अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

नरहरिके हाथों भेजी हुई पूनियाँ मिलीं। हिसाब बादमें। सूरती पूनियाँ १८ तोला हैं।

शान्ताके बारेमें समझा। उसने अभीतक मुझे कुछ नहीं लिखा है। इन दोनों बहनोंके बारेमें तू जमनालालजी को वर्धा लिख दे तो अच्छा हो।

लक्ष्मी शिकायत करती है कि उसे कोई पत्र नहीं लिखता। मालूम करना। तू तो लिखती है न?

दुःखों और कष्टोंका मैं आदी हो गया हूँ। ईश्वर मेरी परीक्षा अनेक प्रकारसे ले रहा है। तपे बिना मनुष्यका निर्माण कैसे हो? तू कर्तव्यका पालन नहीं करती, इतना कष्ट तो जरूर देती है। शुरूसे ही गलेको आराम देनेके लिए मैं लिखता रहा हूँ। शरीरको भी आराम देनेकी बात मैंने लिखी है। लेकिन तू दोनों आज्ञाओंका अनादर करती है। ये आज्ञाएँ देनेमें स्वार्थ तेरा नहीं, आश्रमका है। तेरा गला हमेशाके लिए बिगड़े, तेरा शरीर कमजोर हो तो तुझे जितना नुकसान होगा उसकी अपेक्षा आश्रमको ज्यादा नुकसान होगा। यह सादा सत्य समझमें आता है? अगर समझमें आ जाये तो नम्र बनकर शरीरको अच्छा रखनेके लिए जो-कुछ कहा जाये उसपर तू अमल कर। इसी तरह क्रोधके बारेमें समझना। क्रोध भी एक व्याधि है। उसे भी दूर कर। अधीरताको भी दूर कर।

किसन कुछ ठीक है ऐसी खबर मिली है। उसे हिस्टीरियाका दौरा हो यह बात समझमें नहीं आती।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३५) से। सी० डब्ल्यू० ६७७५ से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

४१५. पत्र : भगवानजी पु० पण्डयाको

१० अप्रैल, १९३३

चि० भगवानजी,

तुम्हारे दो पत्र मिले। यह बहुत अच्छा हुआ कि तुमने मरे हुए पाड़ेकी चीरने-फाड़नेकी क्रिया देखी। अब उक्त क्रियाको स्वयं करनेका मौका भी निकालना।

जहाँ आवश्यक जान पड़े वहाँ रोगियोंके लिए मदद प्राप्त करनेकी कोशिश करना। तीन-चार प्रकारकी व्याधियोंके लिए तो जाने-माने इलाज हैं। तुम उन्हें जान लेना। यदि मुझे समय मिला तो मैं लिख भेजूँगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ३५५) से; सौजन्य : भगवानजी पु० पण्डया

४१६. पत्र : टी० आर० भट्टको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अगर आप अपने क्षेत्रमें अस्पृश्यता-निवारणमें अपने हिस्सेका योग देंगे[1] तो आप देखेंगे दूसरे लोग भी, यदि उन्हें आप एक कृतसंकल्प और निस्स्वार्थ कार्यकर्ता लगे तो, आपके उदाहरणका अनुकरण करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत टी० आर० भट्ट
३, लॉरेंस रोड
नामनेर, आगरा कैंट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८७) से।

१. टी० आर० भट्टने बद्रीनाथमें अस्पृश्यता-निवारणके लिए काम करनेका इरादा जाहिर किया था।

४१७. पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और जो कतरन[1] भेजी है उसके लिए धन्यवाद। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि अस्पृश्यताके अभिशापको मिटानेके लिए आप जो-कुछ कर सकते हैं, पहलेसे ही करते रहे हैं।

मैंने हरदयालबाबूका बचाव करते हुए जो-कुछ कहा है उससे आप यह नतीजा न निकालें कि मैं भी ठीक वैसा ही लिखूँगा[2] जैसा उन्होंने लिखा। आशा है, ब्राह्मणोंपर 'हरिजन' में लिखा मेरा लेख[3] आपने पढ़ा होगा। उससे मेरी व्यक्तिगत स्थिति स्पष्ट हो जाती है। मैं ब्राह्मणों या किसी भी वर्ग-विशेषके खिलाफ जेहाद बोल देनेके बिलकुल खिलाफ हूँ। मुझे तो लगता है कि जहाँतक इस अस्पृश्यता-रूपी दैत्यका सम्बन्ध है, हम सब एक ही रंगमें रँगे हुए हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८८८) से।

४१८. पत्र : अन्नदाप्रसाद चौधरीको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय अन्नदाबाबू,

आपका पत्र पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उससे भी अधिक यह जानकर कि सुरेशदा[4] के स्वास्थ्यमें आश्चर्यजनक सुधार हुआ है, इतना कि वे जलवायु-परिवर्तनके लिए कर्सियाङ् जा सकें। वहाँ अगर वे पूरी तरहसे स्वस्थ हो जायें तो यह हम सबके लिए बड़े हर्षका विषय होगा।

फ्री प्रेसके संवाददाताके बारेमें आपने जो-कुछ कहा है, उसपर मैंने ध्यान दिया है। जैसे सन्देश मैं एसोसिएटेड प्रेसको दिया करता था, वैसे सन्देश फ्री प्रेसको देना

१. आर० आर० चक्रवर्ती द्वारा मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें **स्टेट्समैन**को लिखे पत्रकी कतरन।

२. देखिए "पत्र : आर० आर० चक्रवर्तीको", १-४-१९३३।

३. देखिए "ब्राह्मणोंके खिलाफ निन्दात्मक प्रचार", २५-३-१९३३।

४. डॉ० सुरेशचन्द्र बनर्जी।

सम्भव नहीं था।[1] वैसे भी फ्री प्रेसवाले बयानोंको निरी लापरवाहीके साथ जिस तरह गलत रूपमें छापते रहे हैं उससे मैं इतना असन्तुष्ट था कि मैंने उन्हें ऐसी कोई सुविधा देनेकी फिक्र ही नहीं की।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत अन्नदाप्रसाद चौधरी
८८ जी, कार्पोरेशन स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९८) से।

४१९. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय सतीशबाबू,

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अस्पृश्यताका जैसा क्रूरतापूर्ण रूप दक्षिणमें है वैसा और कहीं नहीं है। दक्षिणमें सभी अब्राह्मण अस्पृश्योंकी कोटिमें नहीं रखे जाते, इसका एक ऐतिहासिक कारण है। लेकिन व्यवहारमें तो बात वही है, चाहे आप उन्हें अस्पृश्य कहें या न कहें। इसीलिए मद्रासमें अब्राह्मण निर्वाचन-क्षेत्र हैं। इसलिए मद्रासमें केवल अस्पृश्योंके बजाय अब्राह्मणों और अस्पृश्यों दोनोंके लिए सीटें सुरक्षित हैं, और वहाँ ब्राह्मणों तथा अब्राह्मणोंके बीच उससे कहीं अधिक कटुता है जितनी कि स्पृश्यों और अस्पृश्योंके बीच है। बेशक, बंगालमें भी स्थिति काफी खराब है और उसमें सुधार लाना जरूरी है। बंगालके अस्पृश्योंका मन भी उतना ही क्षुब्ध होता होगा जितना मद्रासके अस्पृश्योंका होता होगा, क्योंकि वे यह तो नहीं जानते कि कोई उनसे भी अधिक बुरी अवस्थामें है। लेकिन तुलना करने बैठें तो हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि मद्रासवाली अस्पृश्यता बंगालकी अस्पृश्यतासे लाख दर्जे बदतर है, और अगर आप मद्रास जाकर इस समस्याका अध्ययन करें तो आप तुरन्त कहने लगेंगे कि 'वैसे तो हमारे यहाँ बंगालमें भी स्थिति खराब है, लेकिन मद्रासमें तो उससे लाख दर्जे ज्यादा खराब है।' इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप बंगालमें तो अस्पृश्यताके खिलाफ उसी मुस्तैदीके साथ काम करते रहें जिस मुस्तैदीके साथ आपने शुरू किया है, लेकिन साथ ही दूसरे प्रान्तोंसे तुलना करनेसे बचें और सनातनियोंके सम्बन्धमें कोई राय जाहिर करनेमें औचित्य ही नहीं, उदारतासे भी काम लें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९३) से।

१. अन्नदाप्रसाद चौधरी किसी समय कुमिल्लाके अभय आश्रमके खादी-कार्यकी देख-रेख करते थे। उन्होंने गांधीजी से अनुरोध किया था कि जिस तरह वे एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको अपने बयानोंकी प्रतियाँ देते हैं उसी तरह फ्री प्रेस ऑफ इंडियाको भी दें।

४२०. पत्र : मेरी जिलेटको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मेरी,

तुम दोनोंका आश्रम छोड़ना बिलकुल अनावश्यक था। मैंने तो मात्र कुछ दिन दूर रहना ही आवश्यक माना था। यह बात स्वाभाविक रूपसे हो गई लगती है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब तुम ज्यादा खुश हो। मैं तो तुमसे यह सुनना चाहता हूँ कि तुम्हारी सारी उत्तेजना और घबराहट बिलकुल मिट चुकी है और अब तुम ऐसी शान्तिसे रह रही हो जैसी शान्तिका उपभोग तुमने पहले कभी नहीं किया था।

इस बातको मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ कि इन तमाम घटनाओंका तुम्हारे माता-पिता, विशेषकर तुम्हारी मातापर क्या असर हुआ होगा।[1] मुझे लगता है कि अगर तुम्हारे रास्तेमें कोई और अड़चन न हो और तुम निजी तौरपर इन्तजाम करनेकी स्थितिमें हो तो यह अच्छा होगा कि उनका मानसिक संतुलन बिगड़ जानेका खतरा सिरपर आनेसे पहले ही तुम अभी तुरन्त वहाँ चली जाओ और उन्हें सब-कुछ समझाकर उनके सामने भारतमें सेवा-कार्य करनेका अपना अटल संकल्प स्पष्ट कर दो। अगर यह किसी भी तरह सम्भव हो तो मेरे खयालसे तुम भी यह देखोगी कि इससे तुम्हारा समय बचेगा, खुद परेशानीसे भी बचोगी और पैसेकी भी बचत होगी। तुम्हें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि तुम्हारे माता-पिता तुममें इतनी तेजीसे हुए परिवर्तनोंको बुद्धिपूर्वक और सहानुभूतिके साथ ग्रहण कर सकेंगे।

वेरियरके स्वास्थ्यके बारेमें तुमने जो भरोसा दिलाया है, उससे मुझे खुशी हुई है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९६) से।

१. इन दिनों मेरी जिलेट करंजा (म० प्रा०) स्थित गोंड सेवा संघमें काम कर रही थीं। उनके माता-पिताको यह बात पसन्द नहीं थी और वे चाहते थे कि वह इंग्लैंड लौट आये। उनकी माताका दिमाग खराब हो जानेका खतरा था।

४२१. पत्र : मीराबहनको

११ अप्रैल, १९३३

चि० मीरा,

तुम्हारा लम्बा पत्र कल मिला। तुम्हारी दलील मुझे ठीक लगती है। तुमने जो दलील दी है, उसका विरोध खुद स्त्रियोंने ही किया है। मैंने तो सदासे यह माना है कि आक्रामक पुरुष ही होता है। वह स्त्रीसे अधिक विषयासक्त होता है। इसलिए तुम्हारी दलील समझनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। लेकिन तुमने उससे जो नतीजा निकाला है, वह अनुभव-विरुद्ध है। जहाँ वह सफल हुआ है वहाँ इसका परिणाम अच्छा रहा है। लेकिन ऐसे उदाहरण विरल ही मिलते हैं और विरल ही रहेंगे। वैसे यह कोई दुःखकी भी बात नहीं है। सामान्य स्थिति विवाह और सन्तानोत्पत्ति ही है। उसका मतलब ब्रह्मचर्यको हम जिस रूपमें जानते हैं उस रूपमें उसका भंग है। मगर इसका मतलब यह नहीं हुआ कि हम उसके लिए प्रयास ही न करें। भले ही तमाम प्रयोगोंमें से सच्चे ब्रह्मचर्यकी सिद्धिका केवल एक ही उदाहरण सामने आये, लेकिन हमें इसके लिए प्रयास करना ही है। मोक्षके लिए प्रयत्न तो बहुतेरे करते हैं, लेकिन सफलता कुछको ही मिलेगी। इसलिए सामान्यतया हमें इतनेसे ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा कि विवाहित लोग उत्तरोत्तर ब्रह्मचर्यको अपनायें और केवल कुछ ही लोग यावज्जीवन ब्रह्मचारी रहें। अगर मेरा कहना सही हो तो आश्रमको वैसा ही रहना होगा — जैसा वह आज है और अपने प्रयत्नमें प्रत्येक विफलताके साथ उसे कुछ-न-कुछ ऊपर उठते जाना है। . . .[1] और . . . आश्रममें रहनेके कारण अब पहलेसे कई गुना ज्यादा अच्छे हो गये हैं और उनके वहाँ रहनेसे आश्रम कोई पहलेसे खराब तो नहीं हो गया है। अगर मैं या यों कहो कि सभी वयोवृद्ध लोग जितने अपूर्ण हैं उससे कम अपूर्ण और अधिक समझदार होते तो वे बड़ी आसानीसे, जितने अच्छे वे बन पाये हैं, उससे बहुत अच्छे बन सकते थे। लेकिन मुझमें, उनका मार्ग-दर्शन करनेवालेमें, कितने अधिक दोष, कितना असत्य भरा था। लेकिन मैं अपनेको ऐसा मार्ग-दर्शक नहीं मानता जिसके बताये रास्तेपर चलना निरापद न हो, क्योंकि मैं जानबूझकर असत्याचरण नहीं करता और अपने दोषोंका पता लगाकर उन्हें दूर करनेके लिए बराबर प्रयत्नशील रहता हूँ। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि जबतक हमारे बीच कोई सर्वांगपूर्ण पुरुष या स्त्री नहीं होगी तबतक विफलताएँ तो मिलेंगी ही। लेकिन . . . के-जैसे उदाहरण मिलनेपर हमें आशा छोड़ने या हिम्मत हारनेकी जरूरत नहीं है। वे तो शरीरकी अपवित्रताको दूर करनेके लिए किये गये

१. यह और आगे आनेवाले नाम छोड़ दिये गये हैं।

प्रयत्न हैं। जिस प्रकार अपने शरीरमें किसी रोगके अस्तित्वका पता लग जानेपर, इस बातसे तो मैं दुःखी होऊँगा कि मुझे ऐसा रोग है लेकिन उसका पता लग जानेके कारण प्रसन्न होऊँगा उसी प्रकार . . . की गलतीपर तो मुझे दुःख है, लेकिन इसका पता लग जानेपर मुझे बहुत हर्ष भी हो रहा है। इस जबरदस्त समस्याके बारेमें मैं इससे आगे कुछ नहीं कहूँगा — 'मेरे लिए तो अगले कदमका अन्दाजा पा लेना ही काफी है, मैं यह नहीं कहता कि मुझे दूरकी चीज दिखाओ।' हम उस बुनियादी सत्यको जानते हैं जिसे हमें पाना है और यह भी जानते हैं कि किस रास्तेपर चलकर उसे पाना है। उसका पूरा ब्योरा हमें मालूम नहीं है, कभी होगा भी नहीं; क्योंकि हम तो जाने-अनजाने उस परम परिणामकी ओर अग्रसर होते हुए असंख्य तुच्छ साधनोंमें से ही हैं। हममें से प्रत्येकको सापेक्ष सत्यका जैसा बोध है उसके अनुसार यदि हम सब ईमानदारी और दृढ़ताके साथ उसका आचरण करें तो किसी दिन हम सम्पूर्ण सत्यको भी प्राप्त कर लेंगे।

बा को पत्र लिखनेकी निर्धारित अवधि अलग है इसलिए वह चाहती है कि उसे पत्र भेजा भी अलगसे ही जाये। उसको जिस दिन मेरा पत्र दिया गया तबसे गिनें तो अभी एक पखवाड़ा नहीं हुआ है। जेलके नियमोंके प्रयोगका यह उलझन-भरा तरीका मेरी समझमें नहीं आता। स्पष्ट है कि अलग-अलग जेलोंमें अलग-अलग तरीके हैं। लेकिन इससे कोई चिन्ता नहीं होनी चाहिए। जेल-जीवनका दर्शन यह है कि शरीर जिसने उसे अपनी कैदमें रख छोड़ा है उसका अर्थात् राज्यका है। इसलिए मोटे तौरपर देखें तो कहा जा सकता है कि जो कैदी बाहरी आवश्यकताओंकी चिन्ता करता है, वह मूर्ख है, क्योंकि उनकी पूर्ति तो पूरी तरहसे उस रखवालेकी इच्छापर निर्भर है। इसलिए कैदीको दी गई हरएक चीज एक रियायत है, जो राज्यकी इच्छा-भर होनेसे वापस ले ली जा सकती है। घरेलू पत्र भी इसी कोटिमें आते हैं। जबतक ऐसे पत्र लिखने और पानेकी सुविधा है तबतक हम राज्यका आभार मानकर पत्र लिखते और पाते रह सकते हैं, लेकिन यह सुविधा वापस ले ली जानेपर हमें उसपर खीझना नहीं चाहिए। पत्र नियमपूर्वक पहुँचाये जायें तो इसकी हम कद्र भले ही करें, लेकिन उसमें व्यतिक्रम आनेपर हमें व्याकुल नहीं होना चाहिए। जो लोग अपनी अन्तरात्माके आदेशका पालन करनेके कारण जेल गये हैं, कमसे-कम उन्हें तो इस सीधे-सादे, किन्तु आम तौरपर लोगों द्वारा न समझे जानेवाले सत्यको ग्रहण करना चाहिए। अगर तुम बा को यह बात समझा सको तो समझाना।

हिन्दी 'हरिजन' समयपर मिले, इसके लिए मैं जो कर सकता हूँ, करूँगा। मेरा वजन वही १०४ पौंडपर टिका हुआ है।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

तुम्हारे 'पवित्र कार्ड' अलग पैकेटमें भेजे जा रहे हैं।

जिस कागजपर तुम्हारी प्रतिज्ञाओंकी नकल है, वह तुम्हारे लिए इतना मूल्यवान है कि उसे मुझको अपने पास नहीं रखना चाहिए। सो यह भी लौटा रहा हूँ ताकि इसे तुम अपने पास रखो।

अंग्रेजीकी नकल (सी० डब्ल्यू० ९६७४) से; सौजन्य : मीराबहन

४२२. पत्र : पी० एन० राजभोजको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय राजभोज,

आपका लेख मैं नहीं छाप रहा हूँ, क्योंकि इसमें अकसर दोहराई जानेवाली आम ढंगकी बातोंके अलावा कुछ है ही नहीं।

जैसा कि मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ, अभी तो आपके लिए अच्छा यही है, आप जो-कुछ ग्रहण करनेके लिए आश्रम गये हैं उसे ग्रहण कीजिए और अपने सारे विचार अभी मनमें ही रखिए। दुनियाके सामने उन्हें रखनेमें जल्दबाजी मत कीजिए। फिर आप देखेंगे कि इस प्रशिक्षण-क्रमसे गुजर जानेके बाद आप कितने अधिकारके साथ अपनी बात कहते हैं, क्योंकि तब आप जो-कुछ कहेंगे, ज्ञानपूर्वक कहेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८०४) से।

४२३. पत्र : रामचन्द्रको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

पोस्टकार्डके लिए धन्यवाद। देखता हूँ कि तुम नी० की जितनी सहायता कर सकते हो कर रहे हो। हमें आशा करनी चाहिए कि वह इस अग्नि-परीक्षाको सकुशल झेल लेगी और उसके परिणामस्वरूप और भी पवित्र बनेगी।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९७) से।

४२४. पत्र : पी० पांडुरंग शेनायको

११ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

समय मिलनेपर आपके नामका किसी भी तरहसे उल्लेख किये बिना मैं 'हरिजन'में आपके पत्रके एक हिस्सेकी चर्चा करनेकी आशा रखता हूँ।

जहाँतक आपके पत्रके आखिरी सवालका सम्बन्ध है, उस ब्राह्मणने अस्पृश्यताके प्रश्नपर अपने भाषणमें जो-कुछ कहा वह मेरे विचारसे बिलकुल गलत था। स्त्रियोंके मामलेमें जो अस्पृश्यता बरती जाती है, उसका सम्बन्ध एक अस्थायी अवस्थासे है, और अगर अन्य लोगोंके सम्बन्धमें भी ऐसी ही अवस्थामें अस्पृश्यता बरती जाये तब तो उसके खिलाफ कुछ कहा ही नहीं जा सकता। लेकिन, यहाँ तो स्थायी अस्पृश्यता बरती जाती है और उसके साथ अत्यन्त निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार जुड़ा होता है। इन दो अस्पृश्यताओंमें कोई साम्य नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० पांडुरंग शेनाय
२० अंडिअप्पा ग्रामणि स्ट्रीट
रायपुरम्, मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०८९५) से।

४२५. पत्र : सरोजिनी नानावटीको

११ अप्रैल, १९३३

चि० सरोजिनी,

रेहाना तेरे बारेमें इतना ज्यादा कहती रही है कि ऐसा लगता है मानों मैं तुझे जन्मसे ही जानता होऊँ। पूनासे रवाना होनेके पहले उसने जो पोस्टकार्ड लिखा है उसमें भी तेरा उल्लेख किया है। मैं यह समझ सकता हूँ कि तुझे रेहानाके बिना घर सूना लगता होगा। ईश्वर तुझे दीर्घायु करे और सेवा करनेका उत्साह तथा शक्ति दे।

बापूके आशीर्वाद

सरोजिनीबहन
मार्फत – जस्टिस नानावटी, पूना

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०४८४) से।

४२६. पत्र : वसुमती पण्डितको

११ अप्रैल, १९३३

चि० वसुमती,

तेरा पत्र न तो आश्रम पहुँचा और न मुझे ही मिला। मैं तो तेरे पत्रकी प्रतीक्षा कर ही रहा था। २१ मार्चका पत्र अवश्य मिला है। नारणदासका पत्र भी नहीं मिला उसका भी यही मतलब है। यदि उसमें कोई खास बात लिखी हो तो मुझे फिरसे लिखना।

तुम सबकी तबीयत कैसी रहती है? मुझे लिखना कि तुम लोग क्या काम कर रही हो और क्या पढ़ रही हो? बालकोंके बारेमें मैंने महालक्ष्मीको जो पत्र लिखा था, आशा है वह मिल गया होगा। उसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। किसन अपने किस पत्रका उत्तर चाहती है? मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने उसके किसी पत्रका उत्तर नहीं दिया है। किसन बीमार कैसे पड़ गई?

हम सब लोग आनन्दसे हैं। बा और मीराके समाचार मुझे बराबर मिलते रहते हैं। रामदास अच्छा है। सुरेन्द्र यहाँ नहीं है। देवदास दौरेपर गया है।

सभी बहनोंको,

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९३३६)से। सी० डब्ल्यू० ५८२ से भी; सौजन्य : वसुमती पण्डित

४२७. पत्र : हेमप्रभा दासगुप्तको

११ अप्रैल, १९३३

चि० हेमप्रभा,

बहुत दिनोंके बाद तुमारा खत मिला है। ऐसा न किया जाय। मुझे खत लिखनेका एक दिन निश्चित ही कर लिया जाय जिससे मैं समझुं कि मुझे खत फुलानेसे रोज मिलेगा ही।

अरूण कैसा है? अबदुल हलिम लिखता है उसका स्वास्थ्य अच्छा नहिं है।[1]

मीठी बहनके बारेमें समजा हूं। कालिघाटपर[2] जो वध होता है उसमें तुमारे पड़नेका नहि है। तुमारे पास जो कार्य पड़ा है वह काफी है। और, वही

१. देखिए "पत्र : अब्दुल अलीमको", १०-४-१९३३।

२. कलकत्तेका कालि मन्दिर।

तुमारी साधना है। प्रतिष्ठान जब शुद्ध आश्रम बन जायगा तब बहुत अच्छा काम होगा।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १६९९) से।

४२८. पत्र : रेहाना तैयबजीको

११ अप्रैल, १९३३

बेटी रैहाना,

रेलपर लिखा हुआ तुम्हारा खत मिला। सरोजिनीने भी खत भेजा है। वह लिखती है कि तुम्हारे चले जानेसे उसको अच्छा नहीं लगता है। जो काम पूनामें नहीं कर सकी वह मसूरीमें होना चाहिये।[1] उसके बाद किसीकी बात जरूर हो सकती है। सबको सबके तरफसे आदाब, सलाम, वन्दे वगैरह।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (एस० एन० ९६५८) से।

४२९. पत्र : एम० जी० भगतको

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

हरिजन सेवक संघके अध्यक्षके नाम लिखा आपका पत्र मिला।[2]

साथमें आपने जो प्रमाणपत्र भेजे हैं उनसे लगता है कि आप हरिजन वर्गके नहीं हैं, और अगर आप हरिजन वर्गके नहीं हैं तो आपने अपने पत्रमें जिस ५०० रुपयेके अनुदानका उल्लेख किया है, उसमें से कुछ भी आपको नहीं दिया जा सकता। लेकिन ऐसा कोई कारण नहीं है कि आपने अपने पत्रमें जिस उद्देश्यका जिक्र किया है उसके लिए आम कोषका उपयोग न किया जाये। इसलिए अगर आप हरिजन वर्गके न हों तो आपको संघकी बम्बई शाखासे सम्पर्क करके उसे अपने निवेदनके औचित्यका विश्वास दिलाना चाहिए।

१. तात्पर्य रेहाना तैयबजीके पुनः स्वास्थ्य-लाभसे है।

२. एम० जी० भगत बम्बई विश्वविद्यालयके अधीन **महाभारत**में अस्पृश्यतापर शोध कर रहे थे। उन्होंने अपने शोध-कार्यके निमित्त आर्थिक सहायता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे हरिजन सेवक संघ द्वारा घोषित ५०० रुपयेकी छात्रवृत्तिके लिए आवेदनपत्र दिया था।

जबतक आपका उत्तर नहीं आ जाता, आपके कागजात अपने पास ही रखे हुए हूँ।

हृदयसे आपका,

एम० जी० भगत
बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०७) से।

४३०. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय महोदय,

अपने इसी माहकी १ तारीखके पत्रमें[१] मैंने जो निवेदन किया था उसका सरकारकी ओरसे भेजा पत्र मैंने अभी-अभी पढ़ा है।

इस भूल-सुधारके लिए मैं आभारी हूँ कि १९२२ में नहीं, बल्कि १९२३ में मुझे यरवडा जेलमें उपवास कर रहे दो साथी कैदियोंसे मिलनेकी अनुमति दी गई थी।

मैंने जो सवाल उठाया उसपर सरकार द्वारा किये निर्णयकी जानकारी पाकर मुझे दुःख हुआ।

प्राविधिक दृष्टिसे सरकारका निर्णय सही है। कैदीकी सजाकी मियाद खत्म होनेके साथ-साथ स्वभावतः उसको दी गई सारी रियायतें भी खत्म हो जाती हैं। मौजूदा रियायतोंकी मर्यादाओंपर मैंने कभी कोई ऐतराज नहीं किया है, हालाँकि जहाँतक दूसरे कैदियोंके साथ किये जानेवाले व्यवहार और उनके आचरणके विषयमें पूछताछका सम्बन्ध है, मुझे वे अच्छी नहीं लगीं। सौभाग्यसे इस सवालको स्पष्ट रूपसे खड़ा करनेका कभी प्रसंग ही नहीं आया। मेरी कोशिश यह रही है कि जहाँतक बने, अधिकारियोंके साथ कोई झंझट खड़ी न होने दूँ। मैं तो, जैसा कि एक कैदीको चाहिए, जो मिल जाये उसीको खा-पहनकर और जैसे रखा जाये उसी तरह रहकर दिन काटनेमें सन्तोष मानता आया हूँ और यह आशा करता रहा हूँ कि मेरे आचरणके परिणामस्वरूप कालान्तरमें सरकारको यह विश्वास हो जायेगा कि मैं जेलमें अनुशासनका पालन करना चाहता हूँ और इस तरह एक कैदी के रूपमें भी मेरे लिए मानवीयताके जो कार्य करना सम्भव है उनके लिए रास्ता साफ करना चाहता हूँ। और इस सन्दर्भमें सरकार द्वारा निर्धारित एक नीतिका उल्लेख करने और उसको जारी रखनेका अनुरोध करनेकी धृष्टता दिखानेके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।

मगर लगता तो यह है कि सरकार अतीतमें दी गई रियायतोंके लिए पछता रही है और वह उन्हें कम करना चाहती है। कारण, जिस पत्रका मैं उत्तर दे रहा

१. देखिए "पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १-४-१९३३।

हूँ उसमें कहा गया है "सरकार इस रियायतको इस तरह बढ़ानेमें असमर्थ है कि इससे उनके (गांधीजी) तथा यरवडा जेलके अतिरिक्त किसी अन्य जेलके कैदियोंके बीच भी पत्र-व्यवहारकी छूट दी जा सके।" क्या इसका मतलब यह है कि यरवडा जेलके अतिरिक्त दूसरे जेलोंके कैदियोंके साथ आजतक मैं जो पत्र-व्यवहार करता रहा हूँ उसे अब बन्द कर दूँ और सेठ पूनमचन्दके-जैसे मामलोंमें मुझे मैत्रीपूर्ण ढंगसे बीच-बचाव करनेके लिए आगे आनेकी इजाजत नहीं दी जायेगी? मैं आशा तो यही कर सकता हूँ कि मुझे जो रियायतें दी गई हैं उनमें कमी करने या उनपर रोक लगानेका सरकारका इरादा नहीं है। आपसे अनुरोध है कि पत्रोत्तर शीघ्र दें, क्योंकि सेठ पूनमचन्दके मामलेमें दी गई रियायतको भी, मेरे खयालसे, पूरा अंजाम नहीं दिया गया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३) ए०, पृष्ठ १९५; जी० एन ३८८८ से भी

४३१. पत्र : पी० आर० लेलेको

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय लेले,

मैं यह तो जानता ही हूँ कि मेरी जिन्दगी बचानेकी समस्या खड़ी हुई उससे बहुत पहलेसे ही अस्पृश्योंके हित-साधनसे आपका सम्बन्ध था।[1] 'लिबरेटर'[2] के सम्पादककी हैसियतसे आपने मेरे साथ पत्र-व्यवहार भी किया था। मेरा कहना तो यह था कि संघकी बम्बई शाखासे आपका चाहे जो भी मतभेद हो, आप संघ द्वारा सुझाये ढंगसे इस काममें रुचि लेते रहें। जैसाकि आपने कहा है, ठक्कर बापा तो अपने-आपमें ही एक संस्था हैं। अगर यह सच है कि बम्बई शाखाके अस्तित्वके कारण हरिजनोंकी सेवा करनेवाली दूसरी संस्थाएँ काफी कमजोर पड़ गई हैं तो यह मेरे लिए बड़े दुःखका विषय होगा। मैं चाहूँगा कि आप इस विषयमें ज्यादा साफ-साफ लिखें। और यह कहकर तो आपने मुझे कुहेलिकामें डाल दिया है कि आपको "डॉ० अम्बेडकर सेवाका जो अवसर प्राप्त करने देंगे और जो अवसर वे

१. पी० आर० लेलेने कहा था कि अस्पृश्य-सेवा संघकी बम्बई शाखाको सिर्फ गांधीजीको उपवास करनेसे रोकने की ही चिन्ता रही है और उसके अस्तित्वके कारण ऐसे दूसरे संगठन कमजोर हुए हैं।

२. स्वामी श्रद्धानन्द द्वारा प्रकाशित पत्र जो हरिजन कल्याणके उद्देश्यसे चलाया जाता था। पी० आर० लेलेने इसमें १९२६ में काम करना शुरू किया था।

खुद देंगे उन्हींसे आपको सन्तुष्ट रहना" होगा। डॉ० अम्बेडकर और अन्य लोगोंके काम करनेके ढंगमें चाहे जो अन्तर हो, इतना तो निश्चित है कि दोनोंका लक्ष्य एक ही है। फर्क सिर्फ इतना है कि डॉ० अम्बेडकरको वर्णाश्रमके सम्पूर्ण उच्छेदसे कम कोई चीज सन्तुष्ट नहीं कर सकती। किन्तु, जहाँतक कुछ लोगोंको समाजमें कोई स्थान ही न देनेके अर्थमें अस्पृश्यताके उन्मूलनका सम्बन्ध है, दोनोंमें पूर्ण मतैक्य है। इसलिए सेवाका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि चाहे किसी संगठनमें शामिल होकर हो या स्वतन्त्र रूपसे, सब लोग इस काममें हाथ बँटा सकते हैं।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०६) से।

४३२. पत्र : उषाकान्त मुखोपाध्यायको[1]

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके लम्बे और तर्कपूर्ण पत्रके लिए धन्यवाद। लेकिन इस पत्रसे मैं इस बातका कायल न हो सका कि हम जैसी अस्पृश्यता आज बरतते हैं वैसी अस्पृश्यता बरतना किसी भी लाभदायक प्रयोजनसे आवश्यक है, और जब आप यह कहते हैं कि सभी लोगोंके उपयोगके लिए ऐसे आम मन्दिर बनवाये जायें जिनमें सभी वर्गोंके हिन्दू प्रवेश कर सकें ताकि आज बरते जानेवाले कृत्रिम भेद-भावको लोग कालान्तरमें भूल जायें तब ऐसा लगता है कि आप प्रकारान्तरसे अपनी ही बात काट रहे हैं।

जहाँतक चारों वर्णोंका सम्बन्ध है, अगर आप यह स्वीकार करते हों कि वे ऊँच-नीचके दर्जे कायम करने या रोटी-बेटी व्यवहारके सम्बन्धमें अलंघ्य दीवारें खड़ी करनेके लिए नहीं, बल्कि इन चार वर्गोंके कर्त्तव्योंका नियमन करनेको बनाये गये हैं तो मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। रोटी-बेटी व्यवहारके सम्बन्धमें कोई एक रिवाज किसी भी व्यवस्थामें कायम हो ही जाता है, यह बात तो मैं समझ सकता हूँ, लेकिन वह वर्ण-धर्मका अभिन्न अंग कभी नहीं हो सकता और न था।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०८) से।

१. उषाकान्त मुखोपाध्यायका कहना था कि उत्तर भारतमें परदा-प्रथाके समान ही अस्पृश्यताका उद्देश्य समाजके कमजोर लोगोंकी रक्षा करना था।

४३३. पत्र : नी० को

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

चार दिनोंतक प्रतीक्षा कराने और संशयमें रखनेके बाद अब तुमने मुझे यह लम्बा पत्र भेजा है।

तुम्हारे बायें पैर और दाहिनी टाँगमें फोड़े निकल आये, यह मुझे अच्छा नहीं लगा। आशा है, फोड़ोंका मामूली इलाज तुम जानती होगी और यह पत्र मिलनेतक वे बिलकुल ठीक हो चुके होंगे। जब शरीरके ऐसे हिस्सोंमें फोड़े हो जायें जहाँ उनमें धूल-आदि लगनेका खतरा हो तब काम करके ऐसा खतरा उठानेसे बेहतर यही है कि काम करना बिलकुल बन्द कर दिया जाये। अगर तुम साधारण बीमारियोंके मामूली इलाज भी न जानती हो तो तुमको वे जल्दी ही सीख लेने चाहिए। सच तो यह है कि यह नया जीवन तुम्हारे लिए नया जन्म लेनेके समान है। ईश्वर करे, यह नया जन्म तुम सकुशल प्राप्त करो।

जहाँतक सि०[1]का सम्बन्ध है, उसे एक मौका और देनेसे तुम्हारा क्या मतलब है, मैं नहीं जानता। आशा है, उसने जो अनुचित रूपसे घनिष्ठता दिखानेका प्रयत्न किया है, उसपर तुमने उसे एक कड़ा पत्र लिख दिया होगा। जबतक वह सच्चे हृदयसे पश्चात्ताप न करे तबतक उससे कुछ भी स्वीकार नहीं किया जा सकता और यह ठीक नहीं होगा कि सिर्फ उसकी बातोंको पश्चात्तापका प्रमाण मानकर तुम उससे कोई भेंट लो। जिनको हम सुधारना चाहते हों या जिनके साथ हमारा सम्बन्ध ऐसा रहा हो जिसे ठीक निगाहसे नहीं देखा जाता उनसे भेंट स्वीकार करना नैतिक दृष्टिसे पतनकारी है। इसलिए सि० को अपना पश्चात्ताप दिखानेका पूरा अवसर मिले, यही इष्ट है। उससे, बल्कि रे०[2] से भी कुछ भी स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। मैं तो जिस एक व्यक्तिको भरोसेके लायक मानता हूँ, वह है रामचन्द्र। जिस चीजकी भी जरूरत हो, उससे लो — और किसीसे नहीं। रामचन्द्रको तुम्हारी जरूरतोंका खयाल रखनेको लिखूँगा। उसने मुझे बताया कि तुमने पत्र लिखकर उससे साबुन भेजनेको कहा था, तो उत्तरमें उसने यह लिख दिया था कि इसके लिए वह पैसा भेज देगा, ताकि तुम वहीं साबुन खरीद सको। इसमें उसका मन्शा एक छोटेसे पार्सलपर बैठनेवाला रेल-भाड़ा बचानेका था। वहाँ तो तुम खरीदारी तभी कर सकती हो जब तुम बाजार-भाव जानती हो या कोई ऐसा विश्वनीय आदमी हो जो तुम्हें ठगे नहीं। पता नहीं क्यों, रु०[3] की ओरसे मैं निरापद महसूस नहीं

१, २ और ३. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

करता। मेरे लिए तो वह बिलकुल अनजाना है। हो सकता है, वह बहुत अच्छा आदमी हो, पर मैं तो निरापद महसूस नहीं करता।

अब इस परमे साबुनकी बात आती है। जब तुम मेरे साथ थीं, मैंने तुम्हें बताया ही था कि शरीरकी सफाईके लिए साबुन जरूरी नहीं है। शरीरको स्वच्छ रखनेके लिए बस, साफ पानी और मोटे तौलियेकी ही जरूरत है। बाल धोनेके लिए रीठे-जैसी अच्छी और कोई चीज नहीं है। यह भारतमें सब जगह मिलता है। रातमें रीठेके कुछ छिलके भिगो दिये जायें और इसके बाद उन्हें पानीमें डालकर हाथसे भलीभाँति मिला दिया जाये। उससे जो झाग तैयार हो उससे तुम अपने बाल अच्छी तरह धो सकती हो। लेकिन, मेरे पास एक इससे भी आसान तरीका है। हरिजनोंकी सेवा और आत्मशुद्धिके लिए तुमने सब-कुछ त्याग दिया है। इसलिए तुम हर मायनेमें संन्यासिनी बन गई हो। अतएव तुम्हें सिरके बाल मुड़वाकर इतने छोटे कर देने चाहिए कि मानो वे उस्तरेसे मूड़े गये हों। मीराके बाल ऐसे ही हैं। हजारों विधवाएँ इतने ही छोटे-छोटे बाल रखती हैं। यदि तुम अपने सिरके बाल कटवानेके लिए आसानीसे तैयार हो जाओ तो फिर मुझे उन्हें साफ रखनेके लिए कोई लम्बे-चौड़े उपाय बतानेकी जरूरत नहीं रह जाती। अलबत्ता, मैं इसके लिए कोई आग्रह नहीं करना चाहता। पता नहीं, अपने बालोंसे तुम्हें कितना मोह है। मैं तो चाहूँगा कि आश्रमकी हरएक लड़की अपने बाल मुड़वा ले, लेकिन अबतक इसके लिए राजी कुछको ही कर पाया हूँ। अगर तुम्हें भी अपने बालोंसे आश्रमकी इन लड़कियोंके जैसा ही लगाव हो तब तो मुझे कुछ कहना ही नहीं है। लेकिन, अगर तुम अपने बाल उसी भावसे उतरवा देनेको तैयार हो जिस भावसे अपने नाखून काटती हो तो मैं कहूँगा, अपने पासके किसी नाईको पकड़ो, उससे अपने हाथ और कैंची गरम पानीमें धो लेनेको कहो और फिर उससे कहो कि वह तुम्हारे बाल उतार दे। अगर उसके पास बाल काटनेकी मशीन न हो तो साधारण कैंचीसे ही बाल काटनेको कहो। इससे बाल, जितना मैं चाहूँगा, उतने छोटे तो नहीं होंगे, लेकिन इतने छोटे तो जरूर हो जायेंगे कि तुम्हें बालोंकी चिन्ता करनेसे छुटकारा मिल जायेगा और साथ ही काफी समयकी भी बचत होगी। अगर तुम अपने बाल कटवाना न चाहो तो अगले पत्रमें तुम्हें लिखूँगा कि साबुनके बिना तुम उन्हें कैसे साफ रख सकती हो। याद रखो कि इस देशके करोड़ों लोगोंको यह मालूम नहीं है कि साबुन क्या चीज है। और यह भी कि तुमसे अपना काम लगभग साबुनके बिना चलानेको कह कर मैं तुम्हें एक ऐसा काम करनेको कह रहा हूँ जिसको करनेके लिए मैं सभी आश्रमवासियोंको राजी नहीं कर पाया हूँ।

अब कपड़े धोनेकी बात लो। पता नहीं, पानी गरम करनेके लिए तुम्हें काफी लकड़ी मिलती है या नहीं। अगर तुममें कुछ-कुछ इंजीनियरिंगका भी कौशल हो तो पानी धूपमें भी गरम कर सकती हो। इसके लिए धातुके एक बरतनकी जरूरत होती है और एक छोटी-सी नलकी तो होती ही है। अमरीकी शिक्षा-प्रचारक साम हिगिनबॉटम इलाहाबादमें धूपमें ही अपनी जरूरतका पानी गरम करते हैं, लेकिन अभी यह सब तुम्हारे लिए नहीं है। यह तो मैं केवल इसलिए लिख रहा हूँ कि

गाँवोंमें रहते हुए अपने छोटे-मोटे काम करनेकी तुम्हारी इच्छा और भी बढ़े। लेकिन अगर तुम पानी गरम कर सको तो तुम्हें सिर्फ कपड़े धोनेके कच्चे सोडे-भरकी जरूरत रह जाती है। उसे पानीमें मिला दोगी तो वह साबुन-मिले पानीके ही जैसा हो जायेगा। जब सोडा-मिला पानी खौल रहा हो, उसी समय अपने कपड़े उसमें डुबो दो और रात-भर उन्हें उसीमें रहने दो। फिर सुबह उनको धो डालो। इस तरह उन कपड़ोंकी सारी मैल उतर जायेगी, हालाँकि वे दूध-जैसे सफेद नहीं होंगे, क्योंकि उनमें कुछ-कुछ कच्चे सोडेका रंग आ जाता है। लेकिन, इसमें कोई हर्ज नहीं मानना चाहिए और यह चीज ग्राम्य जीवनके अनुकूल ही है। किन्तु, कपड़े उतने ही साफ हो जायेंगे जितने कि अमरीकाके किसी पहले दर्जेके होटलमें धुले हुए कपड़े होते हैं। और तुम सिर्फ सफाई ही तो चाहती हो न!

तुमने अपने पहनावेमें जो परिवर्तन किया है, वह बहुत उपयुक्त जान पड़ता है। यदि तुम वह चोगा, मैंने अपने पत्रमें जिस घाघरेका जिक्र किया है, उसके ऊपर से पहनती हो तो तुमने लगभग वही किया है जो मेरे मनमें था। बेचारे रामचन्द्रके साथ तुम न्याय नहीं कर रही हो। मेरा खयाल है कि उसकी बात सदाशयतापूर्ण थी। स्त्रियोंके बारेमें तुम्हारी बात काफी तर्कसंगत है, लेकिन दुर्भाग्यवश हम तर्कके अनुसार ही नहीं चलते। जिन स्त्रियोंको तुम खुले बदन देखती हो, यहाँ मैं उनका इतिहास नहीं बताऊँगा, किन्तु तुम शीघ्र ही समझ जाओगी कि तुम इन बहनोंके साथ स्पर्धा नहीं कर सकतीं। सत्यका तकाजा यह है कि हमारा बाहरी वेश यथा-सम्भव हमारी आन्तरिक अवस्थाका प्रतिबिम्ब हो। आज तुम अन्दरसे इतनी विशुद्ध होनेका दावा नहीं कर सकतीं कि तुम्हारी उस विशुद्धतापर कोई शंका न की जा सके। जब तुम उस अवस्थाको प्राप्त कर लोगी तब तुम्हें उसका प्रदर्शन करनेकी आवश्यकता भी नहीं रह जायेगी। क्या तुम शुकदेवजी और व्यासकी कथा जानती हो? नहीं जानती हो तो बताना मैं किसी और दिन उसके बारेमें लिखूँगा।

तुम्हारे आहारसे मैं तनिक भी सन्तुष्ट नहीं हूँ। रागीकी रोटी बन्द कर देनी चाहिए। अबतक तुम्हें गेहूँका चोकरयुक्त आटा तो मिल ही गया होगा। अगर मिल गया हो तो तुम्हें अपने लिए खुद ही चपातियाँ बनानी चाहिए। अगर न मिला हो तो तुम्हें दूध और जो-कुछ मेवे मिलें उन्हींपर रहना चाहिए। इससे तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक रहेगा और तुम्हें आवश्यक शक्ति भी मिलती रहेगी। अगर लोग खुशी-खुशी दें तो तुम्हें अपने लिए दूध खुद ही माँगना चाहिए। भैंसके दूधमें काफी पोषक तत्त्व होता है और अगर तुम्हें एक पौंड भी मिल जाये तो उससे काम चल जायेगा। कहनेकी जरूरत नहीं कि सि० के हिस्सेकी फिक्र पहले करनी चाहिए। जब-तब तुम्हें जो फल और सब्जियाँ मिल जायें वे वास्तवमें तुम्हें जरूरतके लायक क्षारीय तत्त्व और विटामिन देनेके लिए काफी होंगी। जहाँतक स्वास्थ्यका सम्बन्ध है, प्रतिदिन ताजी सब्जियाँ और फल मिलना कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं है — विशेषकर जब हम खुली हवामें रह रहे हों और हमें अत्यधिक शारीरिक या मानसिक श्रम न करना पड़ता हो।

तुम्हें गुस्सेपर काबू रखना चाहिए, सि० के सम्बन्धमें भी। जो लोग तुम्हारी छोटी-सी कुटियाको घेरे रहते हैं और तुम सोना चाहो, उस समय भी तुम्हें थोड़ा-सा एकान्त नहीं देते, उनके साथ तुम्हें धीरजसे काम लेना चाहिए और उनको थोड़ा-सा समझाने-बुझानेसे सब-कुछ ठीक हो जायेगा। जबतक तुम्हारा नये जीवनसे अभ्यस्त होनेका क्रम जारी है, तुम्हें इस बातका खास खयाल रखना चाहिए कि दिनमें खुद तुम और सि० भी घंटे-भर सो ले। यह तुम्हारे शरीर और मिजाज दोनोंके लिए लाभदायक रहेगा और अगर तुम तथा सि० अपने-अपने सिरके बाल उतरवा दो तो जैसा तुमने मुझे देखा था, उसी तरह तुम भी सिरपर एक-एक भीगा हुआ मोटा कपड़ा लपेटने लगना, इससे सिर और शरीर तत्काल ठंडे हो जाते हैं।

तुम्हें रु० का पत्र, उसने जैसा लिखा था, उसी रूपमें मुझको भेज देना चाहिए था। मुझे तो उसको जैसा तुम दिखाना चाहती हो उस रूपमें नहीं, बल्कि जैसा वह है उस रूपमें देखने दो।

मेरा खयाल है, अब मैंने तुम्हारे पत्रकी सारी बातोंका उत्तर दे दिया है।

ईश्वर, अर्थात् सत्य तुम्हारी और सि० की रक्षा करे। मैं जानता हूँ कि अगर उसमें तुम्हारी सम्पूर्ण श्रद्धा होगी तो तुम्हारा सब तरहसे कल्याण ही होगा। साथ में सि० के लिए पत्र[1] भेज रहा हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१०) से।

४३४. पत्र : सि० को

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय सि०,

तुम्हारा प्यारा पत्र मिला। मुझे सब-कुछ लिखते रहो और तुम जिस गाँवमें रहते हो उसमें और उसके आस-पास जो-कुछ देखते हो उसके बारेमें और ज्यादा लिखना। वहाँ किसी लड़केसे दोस्ती की है क्या?

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१०) से।

१. देखिए अगला शीर्षक।

४३५. पत्र : जी० रामचन्द्रन्को

१२ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्रन्,

नायरों और हरिजनोंके झगड़ेपर लिखी तुम्हारी रिपोर्ट यों तो बहुत विस्तृत और अच्छी है, लेकिन तुमने तिथियाँ, दोनोंमें से प्रत्येक पक्षकी जनसंख्या और जिस इलाकेमें झगड़ा हुआ, उसका एक मोटे ढंगका नक्शा देना छोड़ दिया है। यह रिपोर्ट मुझे ठक्कर बापाने इसी ८ तारीखको दी। लेकिन यह पत्र मैं तुम्हारी रिपोर्टकी आलोचना करनेके लिए नहीं, बल्कि यह पूछनेके लिए लिख रहा हूँ कि इस सम्बन्धमें हमारा जो उद्देश्य है, उसके हकमें क्या तुम यह चाहते हो कि इस रिपोर्टको प्रचारित किया जाये और इसकी विषयवस्तु पर सम्पादकीय टिप्पणी लिखी जाये। ठक्कर बापाकी बड़ी इच्छा है कि मैं इसके बारेमें लिखूँ, इसलिए मैं उसकी तैयारी ही कर रहा था कि अचानक मेरा ध्यान सिफारिशोंवाले अनुच्छेदपर पड़ा। उसमें तुमने बताया है कि उस क्षेत्रके प्रभावशाली लोगोंके जरिये समिति दोनों पक्षोंका झगड़ा निबटानेकी कोशिश करेगी। इसपर तुरन्त मेरे मनमें यह सवाल उठा कि रिपोर्टको प्रचारित करने और उसपर टिप्पणी लिखनेसे मैत्रीपूर्ण बीच-बचावके द्वारा शान्ति स्थापित करनेके प्रयत्नकी प्रगतिमें बाधा पड़ेगी या सहायता मिलेगी। सो तुम निर्णय लेनेमें मेरी सहायता करो। जो तुम कहोगे मैं वही करूँगा। और अगर इस विषय पर अगले हफ्तेके 'हरिजन' में लिखवाना हो तो मुझे तारसे सूचित करो। यह पत्र तुम्हें शनिवारको मिल जाना चाहिए, और अगर तुम्हारा तार मुझे सोमवारको या उससे पूर्व मिल गया तो काम चल जायेगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जी० रामचन्द्रन्
प्रान्तीय मन्त्री
हरिजन सेवक संघ
नं० ७७ ए, सम्सपीरन स्ट्रीट
बिग बाजार, त्रिचनापल्ली

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९०९) से।

४३६. पत्र : जमनालाल बजाजको

१२ अप्रैल, १९३३

चि० जमनालाल,

कमलनयनका[1] पत्र पढ़नेके बाद मुझे ऐसा लगा कि वर्धासे मुक्त हुआ जा सके तो तुम्हें तत्काल पहाड़पर चले जाना चाहिए। मुझे तो महाबलेश्वर अधिक अच्छा लगता है। पूरा डेढ़ महीना मिल सकता है। बादमें पंचगनी आ सकते हो अथवा और कहीं जाना हो तो जाया जा सकता है। कान बहनेकी हालतमें नीचे गर्म स्थानमें नहीं रहा जा सकता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० २९१३)से।

४३७. पत्र : नारणदास गांधीको

१२ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी साप्ताहिक डाक मिली। श्रीमती धनवंतीका[2] पत्र मिल गया। वालजी भाईका लेख नहीं मिला। यदि तुमने भेजा है तो मालूम होता है कि यहाँ [जेलके] दफ्तरमें खो गया है। उसकी नकल रखी हो तो अच्छा। यदि लेख वहाँ नहीं छूट गया है तो वालजीको लिख देना ताकि समय बचे। वालजीको जानना चाहिए कि यह जेल है।

अमीनाको घीके बजाय वैसलिन ज्यादा उपयोगी साबित होगी। उसमें थोड़ा-सा बोरिक एसिडका पाउडर अच्छी तरह मिला देना चाहिए।

धीरूके विषयमें मैं अन्तिम निर्णय नहीं कर सकता। कारण, मुझे उसका इतना परिचय नहीं है। इसका निर्णय तो तुम सब लोग ही कर सकते हो जो उसे आज तक जानते रहे हैं। पण्डितजी के पास वह पढ़ता रहा है। नरहरि भी उसे अच्छी तरह जानता होगा। इस समय वह तुम्हारी सीधी देखरेखमें काम कर रहा है। वह जो-कुछ लिख रहा है वह यदि विश्वास योग्य हो तो उसे भेजना हमारा कर्त्तव्य

१. जमनालाल बजाजके पुत्र।

२. पूनमचन्द राँकाकी पत्नी।

हो जाता है। लेकिन यदि उसमें शंका हो तो फिर हम उसे नहीं भेज सकते। शान्तिनिकेतन ठीक स्थान है या नहीं, यह बात विचारणीय हो सकती है किन्तु इस मामले में हमें चुनावकी गुंजाइश नहीं है। और इसमें तो कोई शंका हो नहीं सकती कि शान्तिनिकेतनमें चित्रकला अच्छी सिखाई जाती है। इस कलाका वह दुरुपयोग करेगा या सदुपयोग, यह तो धीरूके आचरणपर निर्भर करता है। और इसका निर्णय तो मैं नहीं कर सकता कि वह सदाचारी है या नहीं, परिश्रमी है या नहीं, उसमें इस कलाके बीज हैं या नहीं। वह स्वयं तो मुझे एक लम्बा पत्र लिखनेके बाद चुप हो गया है। उसका चुप हो जाना मुझे अच्छा नहीं लगा है किन्तु इसका कारण उसकी लज्जाशीलता या विनयशीलता भी हो सकती है।

प्रार्थनाके बाद सब लोग एकदम मौन ले लें या बोलना ही हो तो कानमें बोलें — ऐसा हो तो बहुत अच्छा। आश्रमके कामके सम्बन्धमें बोलनेकी छूट भले दी जाये। सिपाहियोंकी बैरकोंमें सोनेकी घंटी बजनेके बाद फिर कोई किसीसे बात नहीं कर सकता। प्रार्थनाके बाद किसी तरहकी गपशप तो नहीं ही होनी चाहिए। यह बात लड़कोंके हितकी दृष्टिसे भी आवश्यक है और आश्रमकी दृष्टिसे भी। जेलमें तो यह नियम होता ही है। न हो तो जेल-जीवन असह्य हो जाये। जेलमें तो निश्चित समयपर बत्तियाँ भी बुझा दी जाती हैं। शोरगुल तो किया ही नहीं जा सकता। इसलिए यदि मौनका या कानमें ही बात करनेका नियम शुरू किया जा सकता हो तो यह तुरन्त करने योग्य है।

बापू

[पुनश्च :]

डॉ० शर्माका पत्र तुमने पढ़ा होगा। जब आये उसे स्नेहसे अपनाना। उसके साथ उसकी पुत्री आये तो कोई हर्ज नहीं। उसके प्रयोगोंके लिए आवश्यक सुविधाएँ जुटा देना। उसके पत्रोंसे उसके बारेमें अच्छी राय बनती है।

भोजनमें किये गए परिवर्तनोंके असरके बारेमें तुम अपनी राय नहीं लिख रहे हो। क्या परिणाम हुआ है, लिखना। किसीपर कोई जबरदस्ती नहीं करनी है। इस सम्बन्धमें कोई कुछ फर्क करना चाहे तो अपनी सीमाके भीतर उसे वैसा करने देना। छोटुभाईने मुझे इसके विषयमें कुछ लिखा है। छोटुभाईको दिया हुआ मेरा जवाब पढ़ना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५४ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४३८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१२ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिला। मैंने तुझे चेतावनी दी इतना काफी है। तेरा यह मानना ठीक नहीं कि मैं तेरे पत्र अच्छी तरह नहीं पढ़ता। तेरी बात मैंने समझ ली थी। इतने आत्म-विश्वासमें ही अभिमान या गर्व निहित है। तेरा अभिमान तेरी भाषामें मौजूद है। इसका यह अर्थ नहीं कि तू अपने विचारोंको छिपाये अथवा उन्हें गढ़कर मेरे सामने रखे। जैसे आते हैं वैसे तू लिख भेजती है, यह मुझे पसन्द है। तू जैसी भीतर और बाहर है वैसी मुझे दिखती है, इसे मैं तेरा गुण समझता हूँ। तू कृत्रिम बन जाये तो मैं लाचार हो जाऊँगा और तुझे कुछ भी न कह सकूंगा।

रजकण बननेका पाठ मैं नहीं दे सकता। ईश्वरको समझनेके प्रयत्नमें हम रजकण हो ही जाते हैं। वह स्थिति तो अपने-आप जब आनी होगी तब आ जायेगी।

तुझे किसीका कुछ सहन नहीं करना पड़ता, यह बात भी नहीं है। परन्तु दुःख यह है कि तू उसे क्षण-भरमें धो सकती है।

तू मानती है कि मेरे आसपास तेरे विरुद्ध वातावरण बना दिया गया है। इसमें तू भूल कर रही है। सरदार तो तेरे विरुद्ध हरगिज नहीं हैं। उनके विनोदको तू विरोध न मान। महादेव तेरे विरुद्ध हैं, ऐसा मुझे बिलकुल नहीं लगता। छगनलालने तेरे बारेमें जो कहा वह नया नहीं है। वे तेरा मूल्य जानते हैं, परन्तु कहते हैं कि जबतक तू अपनी जीभको वशमें नहीं कर सकती, तबतक तुझपर जिम्मेदारी नहीं होनी चाहिए। यह उनकी पुरानी बात है। तू जान ले कि मैं अपने तीन साथियोंके साथ शायद ही बातें करता हूँ। खाते या टहलते समय थोड़े-से विनोदके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता। प्रसंगके विना हम शायद ही किसी व्यक्तिकी चर्चा करते हैं। अपने काममें मुझे चर्चा करनेका होश भी नहीं रहता और व्यर्थ चर्चा करके मैं अपनी शक्तिका व्यय भी नहीं करना चाहता। . . .[१] और . . .[२] की करुण कथाकी चर्चा भी मैं मुश्किलसे ही कर सका हूँ। विचारोंका कमसे-कम आदान-प्रदान करके ही मैंने सन्तोष कर लिया है। न तो तेरे विरुद्ध मेरे आसपास कोई वातावरण है और न मेरे मनमें है। मैं तुझे सख्त उलाहना इसलिए देता हूँ कि मैं तुझे अपनी पुत्री मानता हूँ और तुझे पूर्ण देखना चाहता हूँ। इसलिए मेरी आलोचनासे दुःखी क्यों होती है? उसमें से जो लेना हो वह लेकर बाकीको भूल जा; क्योंकि

१ और २. नाम छोड़ दिये गये हैं।

यह तो सर्वथा सम्भव है कि मेरी आलोचनामें अज्ञान हो, तेरी भाषा मैं न समझ सका होऊँ।

एक ही वस्तुको भिन्न-भिन्न मनुष्य भिन्न-भिन्न रीतिसे देखें यह ठीक है। एक ही शक्तिका उपयोग भिन्न-भिन्न प्रकारसे होता है, यह हम रोज देखते हैं।

मेरा यह विचार जरूर है कि मासिक धर्मके समय किसीको नियत कार्य न सौंपा जाये। कब उसे दर्द अनुभव होगा यह दूसरे किसीको पता नहीं लग सकता। उस समय स्त्रीपर किसी प्रकारका बाहरी भार न होना अच्छा है। अपने-आप जो काम वह करना चाहे खुशीसे करे। कुछ स्त्रियोंको इस धर्मका असर मालूम ही नहीं होता और वे अपना काम करती रहती हैं। कुछको असह्य वेदना होती है। कुछको वेदना तो नहीं होती, परन्तु उनका शरीर काम करने लायक नहीं रहता। जो स्त्री उस [शरीर] धर्मका सदुपयोग कर सकती है, वह प्रति मास नई शक्ति प्राप्त करती है। ये तीन या चार दिन नई शक्ति प्राप्त करनेके लिए हैं और उसे प्राप्त करनेके लिए स्त्रियोंको हर तरहकी जिम्मेदारीसे मुक्त कर देना उचित है। उसे लेटे रहना हो तो लेटनेकी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। नासमझीसे कुछ स्त्रियाँ उस समय भी दौड़धूप नहीं छोड़तीं। वे ज्ञानहीन हैं। उन्हें समझानेकी जरूरत है। इसलिए लक्ष्मीदासकी बात कुल मिलाकर मुझे अच्छी लगती है।

किसनके बारेमें तू जो लिखती है वह सम्भव है। उसके स्वस्थ हो जानेकी बात जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई। मालूम होता है किसनने मेरे पत्रकी प्रतीक्षा की है। परन्तु मुझे याद नहीं कि उसके एक भी पत्रका जवाब बाकी रहा है।

तेरी पूनियोंके बारेमें लिख चुका हूँ।

कच्चा दूध पीनेसे वजन घटना नहीं चाहिए। उबला हुआ साग एक बार लेगी तो शायद लाभ ही होगा। सम्भव है, तेरे गलेको उसकी जरूरत हो। मैं मानता हूँ कि कच्चे दूधकी तो है ही। आजमाकर तो देख।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३६) से। सी० डब्ल्यू० ६७७६से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

४३९. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय चार्ली,

इस सप्ताहके 'हरिजन' में तुम्हें उपवासके सम्बन्धमें अपनी शंकाका उत्तर[१] देखनेको मिलेगा। तुम्हारी आलोचनाकी आतुरतासे प्रतीक्षा करूँगा। निनेवे की कहानी तो संयोगसे ही मेरे हाथ लग गई, लेकिन जैसा मैंने सोचा था, वैसी ही सटीक बैठी।

अपने २२ मार्चके पत्रमें तुमने डॉ० सुब्बारायनके विधेयकके बारेमें एक प्रश्न पूछा है। विधेयककी प्रति मिलते ही खुद मुझे भी समुचित बहुमतवाली बातके सम्बन्धमें कठिनाई महसूस हुई और इस ओर मैंने राजगोपालाचारीका ध्यान दिलाया। बल्कि मैंने तो एक संशोधन भी सुझाया था, जिसमें तीन-चौथाईतक बहुमत रखनेकी बात कही थी, क्योंकि मैं सदासे यह मानता आया हूँ कि जबतक पूर्ण रूपसे निर्णायक बहुमत साथ न होगा तबतक जो बड़ा सुधार करनेका हमारा इरादा है, वह सन्तोषजनक ढंगसे चल नहीं सकता; और तुमने तो यह देखा ही होगा कि किस प्रकार मैंने विपक्षमें खड़े होनेवाले एक भी व्यक्तिकी आपत्तिका निराकरण करनेकी तजवीजकी है, क्योंकि जिस बातको मैं केवल एक अन्धविश्वास मान सकता हूँ, वह उस एक विरोधीके लिए जीवन-मरणका प्रश्न हो सकती है। उसका वह मन्दिर-विशेष उसके लिए सब-कुछ हो सकता है और उसका यह अखण्ड विश्वास हो सकता है कि अगर उसे उस मन्दिरमें किसी हरिजनके साथ-साथ पूजा करनी पड़ी तो वह उसके लिए किसी कामका ही नहीं रह जायेगा। लेकिन यह सब तो उपयुक्त अवसर आनेपर करना है। मैंने सार्वजनिक तौरपर भी इसकी चर्चा की है, लेकिन मैं इसे दोबारा शुरू नहीं करना चाहता, क्योंकि अभी तो इसके बारेमें कोई सोचता ही नहीं। किन्तु आप आश्वस्त रहें और जो चाहते हैं, उन दूसरे लोगोंको भी आप इस बातका आश्वासन दें कि विधेयकके समितिकी मंजिलतक पहुँचनेपर निर्णायक बहुमतके सम्बन्धमें एक संशोधन निश्चित रूपसे स्वीकृत हो जायेगा तथा और भी ऐसे संशोधन, जिनसे सनातनियोंको तो सन्तोष हो किन्तु हमारे सिद्धान्तको कोई आँच न आये, अवश्य स्वीकार किये जायेंगे।

तुमने अपने मनमें मेरे लिए जो आदमी तय कर रखा है, उसके बारेमें महादेव अभीतक कोई अन्दाजा नहीं लगा सका। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि तुम्हारे मनमें एक नहीं, अनेक लोगोंके नाम होंगे।

१. देखिए "प्रकट चिन्तन", १५-४-१९३३।

तंगई तो स्वभावतः तुम्हारी खजूर खानेकी क्षमताके बारेमें मुझसे कुछ नहीं कहना चाहेगी, क्योंकि वह जानती है कि कमसे-कम इस मोर्चेपर तो मैं तुम्हें बराबर मात दे सकता हूँ, और सो भी ऐसी-वैसी नहीं, गहरी मात।

जहाँतक लिफाफेपर कम पैसेका टिकट लगानेका सम्बन्ध है, उसमें हमारे लिए सच्ची या झूठी किसी भी तरहकी मितव्ययिता बरतना सम्भव ही नहीं था। तुम खुद कभी जेलमें नहीं रहे हो, इसलिए स्पष्ट ही तुम ऐसा सोचते हो कि हम चाहे जो कर सकते हैं — यहाँतक कि लिफाफेपर टिकट लगानेके सम्बन्धमें भी तो तुम यह जान लो कि टिकट हम नहीं लगाते हैं। वे तो जेल-कार्यालयमें लगाये जाते हैं।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
मोहन

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८००(४०)(३), भाग-४, पृष्ठ २८९-९०। जी० एन० १३०२ से भी

४४०. पत्र: राजकुमारी एफी एरिस्टार्शीको

१३ अप्रैल, १९३३

तुम्हारे दो पत्र मिले।

तुम अकसर मुझसे खुद अपने और अपनी माँके लिए प्रार्थना करनेको कहती हो। अबतक इसके सम्बन्धमें मैंने कुछ नहीं कहा है। लेकिन आज तुम्हारे सामने अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनेका मन हो रहा है। मैं मन्दिरोंमें विश्वास तो करता हूँ, लेकिन इन दिनों किसी मन्दिरमें जाता नहीं और तुम जानती ही हो कि आश्रम के मन्दिरकी छत आकाश है, फर्श धरती माता है, दीवारें चारों दिशाएँ हैं। इस मन्दिरमें मित्रोंके लिए प्रार्थना नहीं की जाती। प्रातः और सायंकालीन प्रार्थनाओंमें संस्कृतके कुछ निश्चित श्लोकोंका पाठ किया जाता है और गुजराती, हिन्दी, बंगला, मराठी, उर्दू तथा अंग्रेजीके मिले-जुले भजनोंकी एक पुस्तकसे भजन गाये जाते हैं। हाँ, अंग्रेजीके भजन तभी गाये जाते हैं जब प्रार्थना-सभामें उन्हें गानेवाला कोई हो। इसलिए जो मित्र मुझसे अपने लिए प्रार्थना करनेका अनुरोध करते हैं उनके लिए मैं केवल यही करता हूँ कि मन-ही-मन वहीं-का-वहीं ईश्वरसे उन्हें अपनी शरणमें लेनेको कहता हूँ। इसे किसी भी तरहसे उनके अनुरोधका पर्याप्त उत्तर माना जायेगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। लेकिन ईमानदारीके साथ मैं इसके अलावा और कुछ कर भी नहीं सकता। मेरे लिए ईश्वरसे प्रार्थना करना शायद सामान्यसे भिन्न अर्थ रखता है। मैं मानता हूँ कि उससे कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। वह हमारे हृदयको इतनी अच्छी तरह पढ़ लेता है जितनी अच्छी तरह हम खुद भी उसे नहीं

जानते। हमारी माँगों और इच्छाओंका अनुमान वह पहले ही लगा चुकता है और उसके अनुसार जो करना होता है, कर देता है। हमारे लिए क्या अच्छा है, यह बात जितनी हम जानते हैं उससे भी अधिक वह जानता है। हमारी जो इच्छाएँ और आकांक्षाएँ उसकी दृष्टिमें अनुचित होती हैं उन्हें अस्वीकार करनेमें वह कोई संकोच नहीं दिखाता। चूँकि मेरे विश्वास इस तरहके हैं, इसलिए मुझमें उस विशेष उद्देश्यसे प्रार्थना करनेका साहस नहीं है और इसीलिए बहुत-से ईसाई बन्धु, बल्कि हिन्दू भाई भी जिस प्रकार उससे कुछ निश्चित माँगें करते हैं उस प्रकारसे मैं उससे कुछ माँग नहीं सकता। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं कि जो मैं करता हूँ वह उदाहरणके तौरपर समझ लो, जो तुम करती हो उससे अच्छा है। ईश्वरसे सम्बन्ध जोड़नेका हरएकका अपना अलग तरीका होता है और यदि उस तरीकेके पीछे सच्चे हृदयकी प्रेरणा हो तो हरएक तरीका उसे समानरूपसे स्वीकार्य है। मैंने सोचा कि तुम मुझपर जितना स्नेह उँडेल रही हो, उस सबके बदलेमें मैं तुमसे इतना तो कह ही दूँ।

तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९२३) से।

४४१. पत्र : अगाथा हैरिसनको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय अगाथा,

तुम्हारे सभी पत्रोंके उत्तर मैं नहीं देता, क्योंकि मैं हर हफ्ते तुम्हें एक लम्बा छपा हुआ पत्र तो भेजता ही हूँ।

शास्त्रीके पत्रका खयाल किये बिना तुम्हें तो सहज भावसे ही लिखते रहना है और व्याकरणके बारेमें चिन्ता नहीं करनी है।[1]

एन्ड्रचूजकी मितव्ययिताकी ही तरह उसका परदा भी एक धोखा है। वह कहता तो यह है कि उसे लिखनेके लिए शान्त जगह चाहिए, लेकिन वह शोर-गुलके बीच बैठकर लिखता है और शान्ति अपने अन्दरसे उत्पन्न करता है।

आशा है, तुम मिजाजपुर्सीके लिए विट्ठलभाई पटेलसे मिलने जाती रही हो और इसलिए तुमसे उनका समाचार जाननेकी उम्मीद करता हूँ। अखबारोंमें छपे तारोंसे आनेवाली संक्षिप्त खबरोंको पढ़नेसे लगता है कि उनकी अवस्था बिगड़ती चली जा रही है। हम सब उनके लिए चिन्तित हैं।

मीराका पत्र हर हफ्ते मिल जाता है। वह काफी अच्छी है।

१. अगाथा हैरिसनने विनोदपूर्वक कहा था कि आपके और श्रीनिवास शास्त्रीके बीच हुए पत्र-व्यवहारको पढ़कर तो मुझे उनको पत्र लिखनेमें डर लगता है; देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ४३५-८।

महादेव जल्दी ही हमसे विदा लेनेवाला है।[1] देवदास मालवीयजी के साथ बनारसमें है और प्यारेलाल नासिक जेलमें। उसका कोई पत्र नहीं आया है।

हम दोनोंकी ओरसे सस्नेह,

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

कु० अगाथा हैरिसन
२, क्रैनबोर्न कोर्ट
अलबर्ट ब्रिज रोड
[लन्दन] एस० डब्ल्यू०-११

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०६४)से। एस० एन० २०९२०से भी

४४२. पत्र : वी० ए० होडकेको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका वह कार्ड पाकर बड़ी खुशी हुई जिसमें आपने बताया है कि भैंसेकी बलि बन्द हो गई है, अन्य पशुओंकी बलि भी बहुत कम हो गई है और अगले साल उसके बिलकुल ही बन्द हो जानेकी सम्भावना है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत वी० ए० होडके
मन्त्री
प्राणि-दया संघ
सिरसी (उ० कनारा)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१९)से।

१. महादेव देसाई १९ मई, १९३३ को रिहा होनेवाले थे।

४४३. पत्र : गर्ट्रूड एस० केलर-चिंगको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय बहन,

आपके सबसे ताजे पत्रका उत्तर तो मुझे देना ही पड़ेगा। आपने अपनी जिनेवा-यात्राका जो विवरण दिया है वह अत्यन्त दिलचस्प है और मुझे इस बातकी खुशी है कि आपने वहाँ बहुत-से लोगोंसे परिचय किया।

और अब आप चाहती हैं कि मैं आपको कोई भारतीय नाम दूँ। मीराबहनने अपनेको भारतीय नाम देनेको कहा, उसका तो कुछ मतलब था, क्योंकि उसने शरीरतः भी भारतीयोंके सुख-दुःखकी सहचरी बननेका निश्चय कर लिया था, लेकिन आपके भारतीय नाम चाहनेमें क्या तुक हो सकती है? वहाँ आपको कोई उस नामसे नहीं पुकारेगा। इसलिए मैं समझता हूँ कि आपको भारतीय नाम अपनानेकी इच्छा छोड़ देनी चाहिए। आपका हृदय भारतीय है, वही काफी है।

आशा है आपका किसी शान्त जगह जाकर शान्ति प्राप्त करनेका प्रयत्न आपके लिए लाभदायक रहा होगा — बेशक, असली बात तो अन्दरसे ही शान्ति प्राप्त करना है। तब और केवल तभी हम सर्वथा निरापद हो सकते हैं।

आपने जिन मित्रोंका उल्लेख किया है उन सबसे मेरा नमस्कार कह दें।

हृदयसे आपका,

श्रीमती गर्ट्रूड एस० केलर-चिंग

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (२०९२१)से।

४४४. पत्र : डोरोथी ई० न्यूमैनको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय डोरोथी,

तुमने तो कमलानीका[1] बचाव करते हुए मुझे बहुत बड़ा बयान भेजा है। लेकिन इसकी कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह बड़ा नेक, दृढ़ और स्थिरचित्त तरुण कार्यकर्ता है।

'हरिजन' बहुत-सारे विदेशी मित्रोंके लिए उपयोगी साबित हो रहा है, यह जानकर खुशी हुई। अगर तुम इसे, जैसा कि तुमने खुद ही कहा है, आँखें मूँदकर नहीं, बल्कि जागरूकताके साथ पढ़ती हो तो जितने विनयपूर्ण ढंगसे कहना चाहो उतने विनय पूर्ण ढंगसे या तुमसे जितनी स्पष्टवादितासे काम लेते बने उतनी

१. एक भारतीय जो लन्दनमें बसकर भारतीय उद्देश्यके निमित्त कार्य कर रहे थे।

स्पष्टवादितासे, कभी-कभी मुझे बताना कि तुम कहाँ सहमत नहीं हो। कारण, मैं मित्रोंकी आलोचनाओंकी बड़ी कद्र करता हूँ और उनसे लाभ भी उठाता हूँ।

हृदयसे तुम्हारा,

कु० डोरोथी ई० न्यूमैन
२० एवेंडेल रोड
स्टॉकवेल, एस० डब्ल्यू० ९
लन्दन

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९२२)से।

४४५. पत्र : मार्गरेट स्पीगलको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मार्गरेट;

तुम्हारा २० मार्चका पत्र चिन्ताजनक है। जल्दबाजीमें किया हर काम वैसे तो नुकसानदेह ही साबित होता है लेकिन अगर ऐसा न हुआ तो भी असन्तोषजनक तो सिद्ध होता ही है। इसलिए हर प्रकारकी जल्दबाजीसे बचना चाहिए। मैं मानता हूँ, तुम तो अपने ऊपर बराबर उच्चतम मानदण्ड ही लागू करना चाहती हो, और ऐसे मानदण्डकी दृष्टिसे देखें तो तुम्हारा यहाँ आना तभी उचित होगा जब तुम आश्रम-जीवनके लिए तैयार हो। जाहिर है कि तुम तैयार नहीं हो। इस समय तुम्हारा कर्त्तव्य अपनी मांकी सेवामें तत्पर रहना है। तुम उन्हें भारत लानेका खतरा नहीं उठा सकतीं। अगर तुम बेरोजगार हो जाओ और तुम्हें नये कामकी तलाश करनी पड़े तो भी तुम्हें बहादुरीके साथ स्वजनोंका साथ देना चाहिए और जो मुसीबतें उन्हें झेलनी पड़ेंगी उन्हें तुम्हें भी झेलना चाहिए। और अगर तुमने अपने अन्दर आश्रम-जीवनके मौलिक तत्त्वोंका विकास कर लिया है तो तुम उनकी अमूल्य सेवा भी कर सकती हो। इसलिए तुमने भारतके २४ व्यक्तियोंको तुम्हें कोई काम दिलानेके लिए जो पत्र लिखे, वे सब तुम्हें नहीं लिखने चाहिए थे। तुम भारतमें कोई रोजगार नहीं चाहतीं, बल्कि अपनी समस्त सेवाएँ, अपना समस्त जीवन भारतको बिना किसी प्रतिदानके अर्पित कर देना चाहती हो। दो परस्पर विरोधी बातें एक साथ तो नहीं की जा सकती। इसलिए मैं चाहता हूँ कि तुम रोजगार पानेका विचार छोड़ दो, वहाँ अपनी माँ के पास बनी रहकर वहीं आश्रमका जीवन जिओ, ताकि जब प्रभु-इच्छा हो तो वह स्वयं ही तुम्हें किसी दिन आश्रम भेज दे।

[अंग्रेजीसे]

स्पीगल पेपर्स; सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय

४४६. पत्र : ईश्वरशरणको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय मुंशीजी,

आपका इसी ५ तारीखका पत्र और हरिजन सेवक संघकी इलाहाबाद शाखा द्वारा नियुक्त समितिकी रिपोर्टकी एक प्रति मिली, तदर्थ धन्यवाद।

आपको यह जानकर खुशी होगी कि रिपोर्ट मिलते ही मैंने उसे पढ़ना शुरू कर दिया। आज पढ़ना पूरा भी हो गया। रिपोर्ट कल मिली थी। आपका पत्र आज आया। मैं 'हरिजन' में रिपोर्टके बारेमें लिखने[1] की उम्मीद करता हूँ, इसलिए इस पत्रमें उसके विषयमें कुछ कहनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

लेकिन, यहाँ दो बातें मैं जरूर कह दूँगा, क्योंकि सार्वजनिक रूपसे रिपोर्टकी चर्चा करते हुए मैं उनके बारेमें कुछ कहना नहीं चाहूँगा। अगर जनसंख्याके तथा कुछ अन्य आवश्यक आँकड़े भी दिये जायें और रिपोर्टका आकार आधा कर दिया जाये तो यह एक महत्त्वपूर्ण प्रलेख हो जायेगी। मैं परिशिष्ट न दिये जानेके पक्षमें हूँ। अगर उसे इस प्रकार संक्षिप्त करना सम्भव हो और फिर यदि आप उसे प्रकाशित कर सकें तो मुझे विश्वास है कि रिपोर्ट कार्यकर्ताओं और शायद दूसरी नगरपालिकाओंके लिए भी एक मार्ग-दर्शिका बन जायेगी।

अब मैं यह आशा करूँगा कि इस रिपोर्टके परिणामस्वरूप आप रिपोर्टमें वर्णित गन्दी और मनुष्यके रहनेके सर्वथा अयोग्य बस्तियोंको नष्ट करके हरिजनोंके लिए अच्छे रिहायशी हलकेका इन्तजाम करनेके लिए कारगर कदम उठायेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९१४) से।

१. देखिए "तात्कालिक कर्त्तव्य", २२-४-१९३३।

४४७. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

१३ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे प्रसन्नता है कि अब तुम जल्दी ही आश्रम पहुँच जाओगे। वैसे सम्भव तो यह भी है कि इस पत्रके आश्रम पहुँचनेतक तुम वहाँ आ ही चुके हो। आशा है, साथमें अपनी चार वर्षीया बच्ची को भी लाये होगे और यह भी उम्मीद है कि तुम्हारा छोटा बच्चा अपनी बहनको छोड़ ही नहीं रहा होगा। अगर उसने यह जिद न की हो कि बच्ची उसके साथ ही रहे तो मैं कहूँगा कि भाईके हृदयमें बहनके लिए जो प्यार होना चाहिए उसका उसमें अभाव है। आश्रममें घरकी तरह चैनसे रहना और जिस चीजकी भी जरूरत हो, निस्संकोच नारणदाससे कहना।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

डॉ० हीरालाल शर्मा
मार्फत — आश्रम
साबरमती

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ २९

४४८. पत्र : सुशीला पैको

१३ अप्रैल, १९३३

तुम्हारी मित्रता[१] अखण्डित रहे। उसके रहनेका मार्ग मैंने बता दिया है। यह स्वयंसिद्ध है कि व्यक्तिगत मित्रता अनन्तकाल तक हरगिज नहीं रह सकती। इसलिए उस मित्रताको ईश्वरके साथकी मित्रतामें होम देना चाहिए। इससे उसका नाश नहीं होता, परन्तु वह विस्तृत हो जाती है, विशुद्ध हो जाती है। निजी मित्रताका आनन्द क्षणिक और तुच्छ है। मैं यह समझता हूँ कि तुम्हारी मित्रता केवल सेवाके लिए

१. प्रेमाबहन कंटकके साथ।

है। ऐसी मित्रतामें निजीपन क्या हो सकता है? इस विचारको अपने मनमें रख लेना। अनुभवसे उसकी सचाई तुम देख लोगी।

[गुजरातीसे]

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २२७

४४९. पत्र : जमनादास गांधीको

१३ अप्रैल, १९३३

चि० जमनादास,

तेरा पत्र मिला। इसमें तूने अच्छे शब्द-चित्र दिये हैं। काम कठिन तो है ही किन्तु तू मेहनत करता रह। जो होना होगा सो होगा। मन्दिरके दूर होनेकी तुझे चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मन्दिरके दूर होनेमें लाभ है। आज वहाँ भले ही थोड़े हरिजन आयें किन्तु जब मन्दिरमें पाठशाला आदि हो जायेगी तब वह हरिजनोंसे भर जायेगा। बच्चोंको वहाँ सायंकालीन दर्शनके लिए ले जा सकते हैं और वयस्क लोग छुट्टीके दिन आ सकते हैं। जिस प्रकार जगन्नाथ और भूतनाथके मन्दिर दूर थे (अब शायद वे नजदीक माने जाते होंगे) उसी प्रकार यह नया मन्दिर भी भले दूर माना जाये। मन्दिरकी जमीन भी लम्बी-चौड़ी होनी चाहिए। दस एकड़ जमीन मुझे कम लगती है।

तेरे स्वास्थ्यके बारेमें मुझे निरन्तर चिन्ता बनी रहती है। तेरे स्वास्थ्यका सम्बन्ध तेरे मनसे है, अतः उसकी दवा भी तू ही कर सकता है। तुझे दवा करनी भी चाहिए और मैं चाहता हूँ कि तू करे।

मैं चाहता हूँ कि तू मुझे और जल्दी-जल्दी पत्र लिखने लगे तो अच्छा हो। उससे मुझे तेरे काम और तेरे मनका परिचय मिलता रहेगा।

यदि भाऊकी कोई विशेषता तुझे नजर आई हो तो मुझे लिखना।

इसके साथ ही सुशीला और भाऊके लिए पत्र भेज रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६४९)से; सौजन्य : नारणदास गांधी

४५०. पत्र : नानालाल के० जसानीको

१३ अप्रैल, १९३३

भाई नानालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं काफी सोच-विचार करता रहा हूँ किन्तु मुझे लगता है कि बँटवारेकी स्वीकृति रतिलालने दी है। इसमें छगनलालका दोष नहीं है। उसका मन ही उसके काबूमें नहीं है इसलिए मगनलालको सहज ही डर बना रहता है। बँटवारा हो जानेपर शायद कुछ बच जाये। बँटवारा न होनेपर तो पूरी सम्पत्तिके डूब जानेका भय है। यदि मेरे पहले सुझावपर अमल किया जाये तो सम्पत्ति अविभाजित रह सकती है किन्तु ऐसा नहीं लगता कि कोई इस सुझावपर ध्यान देगा। पाँच वर्षके लिए तीनों भाई हट जायें और सारा कारोबार न्यासियोंके हाथमें सौंप दें तथा अपने लिए स्वीकृत भत्ता लेते रहें। शेष मिलनेपर।

जमनादास अच्छा कार्यकर्ता जान पड़ता है। वह वहाँकी शाखाके कामको बहुत अच्छी तरह करता जान पड़ता है। यदि तुमपर भी उसकी ऐसी ही छाप पड़ी हो तो उसे खर्चेकी तरफसे निश्चिन्त कर देना। वह इसकी चिन्तामें सूखा जा रहा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६५०) से।

४५१. पत्र : सुभद्रा, सरला और जयदेवीको

१३ अप्रैल, १९३३

चि० सुभद्रा, सरला और जयदेवी,

मैं तुमसे यह तो कैसे कह सकता हूँ कि जैसा करोगी वैसा पाओगी। सनातनी कहते हैं कि हरिजनोंने जैसा किया है वैसा वे पा रहे हैं; हम इस नियमकी अवज्ञा करके उनकी दशा सुधारनेमें हिस्सा लें तो हमें पाप लगेगा, यह हम कैसे कर सकते हैं? यदि मैं तुम बहनोंपर सनातनियोंका यह तर्क लागू करूँ तब तो हरिजनोंके लिए मैंने जो घोंसला बनाया है वह मुझे नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहिए। ऐसा तो मैं कर नहीं सकता इसलिए तुम लोग बच गईं। सनातनियोंकी नीतिपर चलूँ तो चूँकि तुमने अपना पत्र सीसेवाली पेंसिलसे लिखा है इसलिए मुझे अपनी पत्थरकी नोकवाली पेंसिलसे लिखना चाहिए — है न? किन्तु हमें तो सनातनियोंको भी जीतना है।

लेकिन यह सही है कि नंदूबहनने तुम लोगोंको जो नाम[1] दिया है तुम उसके लायक सिद्ध हुई हो। ज्योंही निकली कि उस नामके लक्षण तुमने प्रकट किये। घासका ही पानी[2] पीना शुरू कर दिया। और वह भी सूखी घासका? काठियावाड़ी बैलोंसे तो चीन देशके बैल अच्छे। वे घासका पानी तो पीते हैं पर हरी घासका। नाराज होकर यदि तुम फिर पशुशालामें भागीं तो तुम्हें डरनेका कोई कारण नहीं है। सरदार इतने उदार हैं कि तुम्हारा गुस्सा वे माफ कर देंगे।

हाँ, एक अर्थमें नंदूबहनकी दी हुई उपमा बहुत सही मालूम होती है। गाय, बैल, घोड़े आदिको क्या कभी चिन्तामें पड़ा सुना है? यदि पशुको ज्ञान हो तो वह सचमुच योगी माना जाये। कहा जाता है कि योग पुरुषोंके लिए कष्ट-साध्य है किन्तु स्त्रियोंके तो वह स्वभावमें है। उसे केवल मोहका त्याग करना है और उसे योगिनीका पद मिला। तुम सब तो ज्ञानी पशु हो। योगशालामें रहकर तुमने जो आरोग्य-धन प्राप्त किया है उसे यदि भाँति-भाँतिके पकवान खाकर नष्ट किया तो याद रखना दण्डके योग्य मानी जाओगी।

अगले पत्रमें दूसरे पराक्रमोंका वर्णन करना। क्या-क्या पढ़ा, इत्यादि।

मणिबहनका क्या करूँ? उसे पत्र लिखता हूँ फिर भी यदि उसे नहीं मिलता तो इसमें दोष किसका? इसके सिवा, हम कैदी हैं, इसका कोई चिह्न तो होना चाहिए?

केवलरामभाई और मेरे बड़े भाई समवयस्क थे। दोनों ही बहुत उदार और उड़ाऊ थे। दोनों भोगप्रिय थे। बादमें दोनोंको वैराग्यका आकर्षण हुआ। दोनोंने स्वतन्त्र रूपसे मुझे लिखा था कि वे अपने जीवनका शेषांश दक्षिण आफ्रिका आकर बिताना चाहते हैं और अपने-अपने बच्चोंकी बाँह मुझे सौंपना चाहते हैं। मैंने दोनोंकी इच्छाका स्वागत किया और उनके शुभागमनकी बाटमें तैयारी करने लगा। किन्तु भाग्यने साथ नहीं दिया। वे मुझे छोड़कर चले गये। बड़े भाईके बच्चे मेरे हाथ आये ही नहीं। मैंने उसके लिए कुछ प्रयत्न भी किया था। किन्तु देखो तुम सब मेरे हाथ कोई प्रयत्न किये बिना ही आ गईं। इसे हम क्या कहें — नियति या अपने पूर्वकर्मोंका विपाक? आई हो तो अब छोड़ना नहीं। मेरी विरासत तो कोई भी लूट सकता है। तुमसे जितनी बने उतनी लूटना और शोभान्वित होना। वह चन्द्रहास कहाँ छुप गया है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

निर्मला कहाँ है? कैसी है?

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४०८७) से। सी० डब्ल्यू० ५२ से भी; सौजन्य : मंगलाबहन बी० देसाई

१. बैल।

२. चाय।

४५२. एक पत्र[1]

१३ अप्रैल, १९३३

तुम्हारा खत पूरा पढ़ गया। तुम्हारे भाव शुद्ध हैं। लेकिन जिस शक्तिकी आशा मेरे पास तुमने रखी है, मेरेमें है ही नहीं। मैं भी दूसरोंके जैसा पामर प्राणी हूँ और ईश्वरके दर्शनके लिए उत्सुक हूँ, प्रयत्नशील हूँ। मैं अवश्य चाहता हूँ कि तुमको और तुम्हारे पतिको ईश्वर दीर्घायु रखे, दोनोंमें पवित्र सेवाभाव पैदा करे, और दोनोंमें परस्पर शुद्ध प्रेमकी वृद्धि करे। यह खत तुम्हारे दोनोंके लिए समझो। इसी कारण पतिको अलग खत नहीं लिखता।

महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृष्ठ २२७

४५३. पानीसे भी वंचित!

राजपूताना हरिजन सेवक संघके मन्त्री श्री रामनारायण चौधरी लिखते हैं:[2]

> **यह प्रदेश मरुभूमि है। यहाँ जलाशय बहुत कम हैं। कुएँ ही — वे भी बहुत गहरे और थोड़े — एकमात्र पानीके साधन हैं। परन्तु यह प्रदेश लक्ष्मीका लाड़ला है। इसमें बहुसंख्यक धनी रहते हैं। उनमें धर्म-भाव भी बहुत है — अनेक औषधालय, धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ, बावड़ियाँ, गोशालाएँ, भोजनक्षेत्र इन सम्पन्न भाइयोंके धर्मके उज्ज्वल प्रमाण हैं। जहाँ इनके मनमें आ जाती है, जंगलमें मंगल कर देते हैं। परन्तु प्रतीत होता है कि मेहतर भाइयोंके जल-सम्बन्धी कष्टोंकी ओर इनका ध्यान अभीतक नहीं गया है। . . . अनेक स्थानोंपर इन बेचारोंको 'खेलों' का पानी पीना पड़ता है। 'खेल' राजस्थानी भाषामें उस लम्बे और नीचे हौजको कहते हैं, जो प्रत्येक बड़े कुएँके साथ बना होता है। इस खेलमें ढोर पानी पीते हैं, रजस्वला स्त्रियाँ कपड़े धोती हैं और अपढ़ आदमी आबदस्त भी लेते हैं। वही पानी मेहतर भाइयोंको लाचार होकर पीना पड़ता है। क्या यह अवस्था सिरपर मैला उठाकर ले जानेकी प्रथासे भी बुरी नहीं है?**

१. यह पत्र पंजाबकी एक महिलाको लिखा गया था, जिसने अपने पत्रमें गांधीजी को ईश्वरके समान बताया था और उनसे प्रार्थना की थी कि वे उसको और उसके पतिको गृहस्थ-सुखका आशीर्वाद देते हुए पत्र लिखें।

२. यहाँ पत्रके केवल कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

यह कार्य केवल 'हरिजनसेवक' में चर्चा कर देने मात्रसे नहीं होगा। ऐसे मेहतर कितने हैं और कहाँ हैं, इसका पूरा पता सेवकोंको लगाना होगा और जहाँ-जहाँ पानीका यह कष्ट है, उस प्रदेशके उदार धनिकोंसे नये कुओंका निर्माण अथवा कोई और उचित प्रबन्ध कराना होगा। इसीके साथ-साथ मेहतर भी अपनी स्थितिमें सुधार करें, ऐसा मार्ग उन्हें दिखाना होगा। उन लोगोंके रहन-सहनमें क्या सुधार हो सकता है, यह भी सेवकोंको देखना होगा; अर्थात् प्रत्येकका परिचय आवश्यक है। इस सब कार्य करनेमें सच्चे सेवकोंकी और उनकी कार्य-दक्षताकी आवश्यकता है।

हरिजनसेवक, १४-४-१९३३

४५४. तार : विट्ठलभाई झ० पटेलको

१४ अप्रैल, १९३३[1]

वि० झ० पटेल
मार्फत इंडिया आफिस
लन्दन

ईश्वर आपकी रक्षा करे। अपनी अवस्था तार द्वारा सूचित करें।

गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ ३१९

४५५ पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

टीटागढ़ कागज मिलके बारेमें लिखा आपका इसी १० तारीखका पत्र मिला। निश्चय ही मेरा इससे पहलेका पत्र मिलनेसे पूर्व ही आप यह पत्र भेज चुके होंगे। मैंने अपनी यह पक्की राय बता दी है कि हम विज्ञापन बिलकुल नहीं ले सकते — विशेष कृपाके रूपमें भी नहीं, लेकिन अगर 'हरिजन' के संचालनके बारेमें आपके विचार भिन्न हों और आप इस पक्षमें हों कि 'हरिजन' में सामान्य रूपसे विज्ञापन लिये जायें तब तो बात और हुई। और अगर आप इसी निष्कर्षपर पहुँचें कि विज्ञापन

१. इस तारको भेजनेकी अनुमति सरकारसे १९ तारीखकी शामको प्राप्त हुई, मगर तबतक वि० झ० पटेलको इलाजके लिए वियना भेज दिया गया था। इसलिए गांधीजी ने यह तार नहीं भेजा। देखिए "पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १९-४-१९३३; यद्यपि उसमें १३ अप्रैलकी तिथि दी है।

लिये ही जाने चाहिए तो मैं विरोध नहीं करूँगा। आप तो जानते ही हैं कि सामान्य अखबारोंमें भी विज्ञापन लिये जानेके बारेमें मेरे विचार विचित्र किन्तु पक्के हैं, लेकिन हमारा यह आन्दोलन जैसा महान् है, वैसे आन्दोलनका संचालन करनेमें ये विचार निर्णायक नहीं हो सकते। किन्तु मेरा यह निश्चित मत है कि अपवादके तौरपर कोई विज्ञापन लेनेकी नीतिका औचित्य हम कभी नहीं सिद्ध कर सकते।

लाला कमलापतके[1] दिये ३,००० रुपयेका उल्लेख अखबारमें करना है या नहीं — आप क्या चाहते हैं?

रामानन्द संन्यासीके[2] बारेमें मैं आपकी बात समझता हूँ। मैं तो सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि उनके बारेमें अपनी राय बदलनेका आपको कोई कारण मिला था क्या। चूँकि आपके मनमें अब भी शंका है, इसलिए मेरा सुझाव यह है कि आप उनको बुलवाकर उनसे साफ-साफ बात कीजिए। अगर वे अच्छे संन्यासी हैं तो आपकी साफगोईको पसन्द करेंगे और फिर आप भी उनसे काम लेना आसान पायेंगे।

आशा है, सुव्रतादेवी और जानकीदेवीके अनुदानोंके बारेमें मेरा पत्र[3] आपको मिल गया होगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९३४) से।

४५६. पत्र : सुधीरचन्द्र चक्रवर्तीको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैं कुछ नहीं कर सकता। लेकिन आपको सबसे पहले प्रान्तीय अस्पृश्यता-विरोधी बोर्डसे सम्पर्क करना चाहिए और उसके बाद अगर आप चाहें तो केन्द्रीय बोर्डसे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुधीरचन्द्र चक्रवर्ती
१०/१ नेपाल भट्टाचारजी स्ट्रीट
कालिघाट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३६) से।

१. कानपुरके एक प्रमुख उद्योगपति कमलापत सिंहानिया।

२. दिल्लीमें दलित वर्गके उद्धारके लिए काम करनेवाले एक प्रमुख कार्यकर्ता।

३. देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १०-४-१९३३ और "डेविड योजनाके लिए ५,००० रुपये", १५-४-१९३३ भी।

४५७. पत्र : एम० एन० चौदप्पाको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने उस भाषणकी[1] कतरन तो भेजी ही नहीं है जिसका आपने उल्लेख किया था। मुझे याद है कि उस भाषणका एक हिस्सा मुझे पढ़कर सुनाया गया था, लेकिन मुझे उस समय तो ऐसा नहीं लगा कि उसमें टिप्पणी लिखने लायक कुछ है।

आपके पत्रके चौथे अनुच्छेदका आशय मुझे स्पष्ट नहीं हुआ।

हृदयसे आपका,

सहायक सम्पादक
'प्रजा[मत][2]'
१४३–५, मिन्ट स्ट्रीट
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३७) से।

४५८. पत्र : एस० पॉल डेनियलको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। मूर्तियोंके माध्यमसे ईश्वरकी उपासनाके प्रति मेरी भावना वैसी नहीं है जैसी आपकी है। इस सम्बन्धमें मैंने 'हरिजन' में जो-कुछ लिखा है उसे आप पढ़ें। फिर आप मुझसे चर्चा करना चाहें तो कर सकते हैं। मैंने वर्णाश्रम पर भी लिखा है। वर्णाश्रमका मैं जो अर्थ लगाता हूँ उस अर्थमें मैं उसमें विश्वास करता हूँ। इसके लिए भी मैं आपसे 'हरिजन' ही पढ़नेको कहूँगा।

१. मैसूरके दीवान सर मिर्जा इस्माइलने चीतलदुर्गमें एक भाषणमें कहा था कि मेरी समझसे अस्पृश्यता "धार्मिक समस्याकी अपेक्षा सामाजिक समस्या अधिक है और इसलिए इसका समाधान भी इसी ढंगसे किया जाना चाहिए।" एम० एन० चौदप्पाको यह बात आपत्तिजनक लगी थी और उन्होंने इसपर गांधीजी की राय माँगी थी।

२. साधन-सूत्रमें यहाँ "मित्र" है, जो स्पष्टतः चूक है।

जहाँतक रोटी-बेटी-व्यवहारका सम्बन्ध है, उसे मैं अस्पृश्यता-निवारणके लिए आवश्यक नहीं मानता। मैं किसीको भी अस्पृश्य नहीं मानता, लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि मेरे लिए उस व्यक्ति-विशेषके साथ भोजन करना या विवाह-सम्बन्ध कायम करना आवश्यक है। ये बातें तो बिलकुल अलग धरातल की हैं। जहाँतक इन दो बातोंका सम्बन्ध है, हम अपने मनके मुताबिक चुनाव करते ही हैं, लेकिन जहाँतक लोगोंका स्पर्श करनेका सवाल है, हमें यह छूट लेनेका अधिकार नहीं है कि हम अमुकको छुएँगे, मानेंगे और अमुकको नहीं।

हृदयसे आपका,

श्री एस० पॉल डेनियल
ट्रिचेन्दूर रोड
पालमकोट्टा

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३३) से।

४५९. पत्र : दिवाकर सिंहको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय दिवाकर,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला। अगर तुमने सड़कोंकी सफाईका काम फिर शुरू कर दिया है तो मुझे आशा है कि अब तुम उसमें बिना किसी प्रदर्शनकी भावनाके लगे ही रहोगे। लेकिन मैं शीघ्र ही इलाहाबादकी गंदी बस्तियोंके बारेमें एक लेख लिखने वाला हूँ। और मैं चाहूँगा कि मेरा वह लेख[1] जब 'हरिजन' में प्रकाशित हो तो तुम उसे पढ़ लो और उस कामपर ध्यान दो। जबतक तुम काम करते रहोगे, मैं तुम्हारे साथ पूरा धीरज बरतूंगा।

नी० देवीका क्या हुआ, शायद तुम नहीं जानते। मुझे लगता है कि अब मुझे तुमको यह बता देना चाहिए कि उसने मेरे मनपर आखिर क्या छाप छोड़ी है। उससे बातचीतके दौरान मैंने पाया कि बंगलौरमें भंगीका काम करते हुए भी वह सीधा और नैतिक जीवन नहीं जी रही है। लेकिन, मुझे लगा कि उसे जो-कुछ हुआ उसपर सच्चा पश्चात्ताप है। अब उसने हरिजनोंके सुख-दुःखको ही अपना सुख-दुःख बना लिया है, मौजकी जिन्दगी बिलकुल छोड़ दी है और वह चीतलदुर्गके निकट एक हरिजन गाँवमें प्रसिद्धिसे कोसों दूर यथासम्भव हरिजनोंके जैसा जीवन व्यतीत कर रही है तथा जो-कुछ खाने-पीनेको दे दिया जाता है उसीपर गुजारा कर रही है। उसका लड़का उसके साथ है। ऐसा माना जाता है कि वह मेरे मार्ग-दर्शनमें चल रही है। उसपर सन्देह करनेका मुझे कोई कारण दिखाई नहीं देता। मुझे जो

१. देखिए "तात्कालिक कर्तव्य", २२-४-१९३३।

पत्र वह भेजती है, वे काफी सन्तोषजनक हैं। लेकिन, आखिरकार वह कैसी बनेगी, यह अभी तो नहीं कहा जा सकता। यह सब मैं तुमसे इसलिए कह रहा हूँ कि हम दोनोंमें यह तय हुआ है कि जो लोग उसके सम्पर्कमें आये हैं, कमसे-कम उन्हें तो उसके निकट विगत पापोंकी एक सामान्य जानकारी हो ही जानी चाहिए।

हृदयसे तुम्हारा,

कुँवर दिवाकर सिंह
हॉलैंड हॉल
इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३२) से।

४६०. पत्र : हृदयनाथ कुँजरूको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय हृरिजी,

बुलन्दशहरसे किन्हीं सज्जनने एक पत्र लिखकर बताया है कि नगरनिगमने अपने कर्मचारियोंके वेतनोंमें जो आम कमी की है, उसके साथ भंगियोंके वेतन भी घटा दिये गये हैं। भंगियोंने इस कटौतीके खिलाफ हड़ताल की है। पत्र-लेखकका कहना है कि उनके वेतन तो अभी ही बहुत कम हैं। निगमका अध्यक्ष भंगियोंकी शिकायत सुननेको बिलकुल तैयार नहीं है। ऊपरसे देखनेमें तो यह पत्र युक्तिसंगत लगता है। क्या आप जाँच करके जो-कुछ करना सम्भव हो सो करेंगे?

वह पत्र साथमें भेज रहा हूँ।

हृदयसे आपका;

संलग्न पत्र – १

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३५) से।

४६१. पत्र : सुधीर मित्रको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका इसी १० तारीखका पत्र मिला। मुझे तो इस बातमें सन्देह है कि सिर्फ अस्पृश्यता-निवारणका उद्देश्य लेकर ही कोई मासिक पत्रिका चलानेकी जरूरत है। इसलिए आपके इस उद्यमको अगर पहलेसे ही मैं अपना आशीर्वाद नहीं दे रहा हूँ तो इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सुधीर मित्र
मित्र कॉटेज
२ कालि लेन
कालिघाट

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९२५) से।

४६२. पत्र : हरिभाऊ फाटकको[1]

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय हरिभाऊ फाटक,

हरिजनोंका, दरिद्रनारायणका सेवक होनेका मेरा दावा सिद्ध होना अभी शेष है और मैं निस्संकोच यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे दावेके सिद्ध होनेके मार्गकी कठिनाइयोंमें से एक मेरा आहार भी है। लेकिन, आपको यह मालूम होना चाहिए कि अपने आहारपर मैं खुद कुछ खर्च नहीं करता। यहाँ तो यह खर्चीली सरकार मेरा भोजन जुटाती है और फिर मुक्तहस्त होकर खर्च करनेवाले मित्र भी इसमें उसकी सहायता करते हैं। लेकिन कोई और मेरे भोजनपर बहुत-सा पैसा खर्च करता है, इस बातसे इस खर्चका औचित्य सिद्ध नहीं होता और न शायद इसी आधारपर उसको मुनासिब कहा जा सकता है कि मैं जो बकरीका दूध और फल लेता हूँ वह

१. हरिभाऊ फाटकने १३ अप्रैलके अपने पत्रमें लिखा था कि लोगोंको जब वे गांधीजी के आहार और उसपर होनेवाले खर्च तथा उसके स्वदेशीपनको लेकर व्यंग्य करते सुनते हैं तो उन्हें बहुत बुरा लगता है। लोगोंके आक्षेपोंका उत्तर देनेके लिए उन्होंने इस सम्बन्धमें गांधीजी का आश्वासन चाहा था।

डाक्टरी सलाहके मुताबिक मेरे शरीरके लिए जरूरी है। मैं जानता हूँ कि लाखों नहीं तो हजारों लोग तो ऐसे हैं ही जिनके शरीरोंके लिए डाक्टरी सलाहके मुताबिक वैसे ही आहारकी आवश्यकता बताई जायेगी जैसा मेरा आहार है। लेकिन, उनके पास ऐसे प्रमाणपत्र देनेवाला कोई डाक्टर नहीं है और अगर उनको ऐसा डाक्टर मिल भी जाये तो न तो सरकार और न हमारे यहाँके लखपती लोग ही उन्हें वैसा आहार देंगे जो मुझे मिलता है।

मैं स्वदेशीके सिद्धान्तमें सोलहों आने विश्वास करता हूँ, लेकिन मैं यह भी मानता हूँ और इस बातपर किंचित् गर्व भी अनुभव करता हूँ कि मेरा स्वदेशीका सिद्धान्त कोई संकुचित सिद्धान्त नहीं है। जो चीजें मैं भारतमें यहाँके करोड़ों लोगोंको दृष्टिमें रखते हुए लाभपूर्वक पैदा नहीं कर सकता उन्हें तो मैं सारी दुनियासे खरीदूँगा। इसलिए अरबसे वहाँका स्वास्थ्यवर्धक खजूर और अफगानिस्तानसे ऐसे ही स्वास्थ्यवर्धक मुनक्के लेनेमें मुझे कोई संकोच नहीं होता। मैं जिन विदेशी चीजोंका इस्तेमाल करता हूँ उनके ये कुछ-एक उदाहरण हैं। लेकिन, मेरा स्वदेशीका समर्थक होनेका दावा भली-भाँति सिद्ध हो जाता है, क्योंकि भारतीय मिलों द्वारा तैयार किये नफीससे-नफीस कपड़ेके बजाय मैं हरिजनों द्वारा तैयार की गई मोटीसे-मोटी खादी ही लूँगा।

हाँ, बेचारे प्यारेलालने हर स्वदेशी वस्तुके लिए मेरे मोहको जानते हुए यह सोचा था कि उसने अपने स्वर्ग—पंजाबमें खजूर ढूँढ़ लिया है और सचमुच उसने ढूँढ़ भी लिया था। जिन्होंने यह खजूर भेजा उनको तो काफी खर्च उठाना पड़ा, लेकिन मुझे उसके लिए कुछ नहीं देना पड़ा। जबतक वह खजूर उपलब्ध रहा, अरबके खजूरके बजाय मैं वही लेता रहा, लेकिन आखिरकार बाजी तो अरबके ही हाथमें रही, क्योंकि पंजाबका खजूर तो केवल मौसममें ही मिलता है और यह मौसम केवल दो महीनेका होता है। तो कुल मिलाकर विजयी अरब ही रहा, क्योंकि मेरे शरीरको खजूरकी जरूरत है और इसलिए मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता और अरबका खजूर लेकर मैं भारतके खजूर पैदा करनेवालों को लाभसे वंचित नहीं रखता। मैं आपको एजेंटोंके नाम नहीं दे सकता, क्योंकि प्यारेलालने पंजाबका खजूर जुटानेका काम एक मित्रको सौंपा था, इसलिए प्यारेलालको भी उनके नामोंका पता नहीं है।

मुझे खुशी है कि पूना नगरपालिकाने श्रीयुत पाशनकरका वह प्रस्ताव पास कर दिया है जिसमें कहा गया है कि हरिजनोंको सभी कुओं, तालाबों आदिका उपयोग करनेकी छूट दी जाये।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९२७) से।

४६३. पत्र : जी० रामचन्द्र रावको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरी शुभ कामना है कि भारतीय टस्केजी की[१] स्थापनामें तुम्हें पूरी सफलता मिले। बुकर टी० वाशिंगटनके बारेमें मैं बहुत-कुछ जानता था — जब दक्षिण आफ्रिकामें था, उन दिनों भी। उनके लिए मेरे मनमें बड़ा सम्मानका भाव है। तुमने अपने सामने एक योग्य आदर्श रखा है, लेकिन तुम भारतीय बुकर टी० वाशिंगटन नहीं बन सकते। वह तो कोई हरिजन ही बन सकता है। इसलिए तुम्हें तो हरिजनोंमें से ही कोई बुकर टी० वाशिंगटन तैयार करनेमें अपनी पूरी शक्ति लगानी है। ईश्वर तुम्हें सफल बनाये।

तुमने माँगनेका अपना अधिकार तो सिद्ध किया है, लेकिन तुमने क्या असन्दिग्ध रूपसे यह भी प्रमाणित कर दिया है कि तुम्हें जो अनुदान मिलेंगे उनसे तुम उनकी अपेक्षा हजार गुना अधिक मूल्यवान परिणाम पैदा कर दिखाओगे। अगर अपने लिए मूर्ख शब्दका प्रयोग किया जाना तुम्हें अच्छा लगे तो मैं कहूँगा कि तुम बेशक इतने मूर्ख बन जाओ कि यह बात प्रमाणित कर दिखाओ।

हाँ, लेडी ठाकरसी द्वारा तैयार किये गये घीकी बूँद-बूँदका मैंने उपयोग किया और तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि उस दौरान अधिकांश समयतक नमकसे परहेज ही करता रहा। कुछ दिन बाद जब मैंने देखा कि न तो मालिशसे और न नमक त्यागनेसे कुहनियों [के दर्द]में कोई फर्क पड़ रहा है तो मैं फिर नमक लेने लगा और उसके बाद फिर मैंने घीकी माँग नहीं की। नमक लेना इसलिए शुरू किया कि मेरे सिरमें विचित्र ढंगका दर्द रहने लगा था। इसका कारण मैंने नमक छोड़ना मान लिया, जो शायद बिलकुल गलत था। मगर विचित्र बात यह हुई कि नमक लेनेसे मेरा सिर-दर्द जाता रहा। कह नहीं सकता कि यह मात्र एक संयोग था या फिरसे नमक लेना शुरू करनेका नतीजा, हालाँकि मैं नमक १५ ग्रेनसे ज्यादा नहीं लेता था।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत जी० रामचन्द्र राव
मार्फत — सर्वेंट्स ऑफ इंडिया सोसाइटी
रायपेटा (मद्रास)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३८) से।

१. अमरीकामें नीग्रो लोगोंके बीच शिक्षा आदिके प्रचारके लिए बुकर टी० वाशिंगटन द्वारा खड़ी की गई एक संस्था। रामचन्द्र रावने भारतमें हरिजनोंके लिए इसी ढंगकी एक संस्था बनानेकी योजना पेश की थी। इसमें उनका काम होता चन्दा माँगकर संस्थाके लिए पैसा इकट्ठा करना।

४६४. पत्र : समरस शुद्ध सन्मार्ग संघम्‌को

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्र और पुस्तकके[1] लिए धन्यवाद। आपने जिस दूसरी पुस्तकका जिक्र किया है, वह मत भेजिए, क्योंकि तमिल समझनेमें मुझे कठिनाई होती है और मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं उसे समझते हुए पढ़ सकूँ।

हृदयसे आपका,

समरस शुद्ध सन्मार्ग संघम्
३६, स्वामी पिल्लै स्ट्रीट
छोलई डाकघर
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९४०) से।

४६५. पत्र : रामगोपाल शास्त्रीको

१४ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

श्रीयुत स्वात्मदासकी[2] शिकायतके उत्तरमें श्रीयुत अ० वि० ठक्करको लिखे आपके पत्रकी प्रतिके लिए धन्यवाद।

आप बुरा न मानें तो कहूँ कि आपका पत्र मुझे आपकी बातकी प्रतीति नहीं करा सका। मैं कदापि यह नहीं कहता कि दलित सेवा मिशनने कोई सेवा की ही नहीं है, लेकिन आपके पत्रमें इस सम्बन्धमें कुछ नहीं कहा गया है कि आपके मिशनने किस प्रकारकी सेवा की है। हम लोग तो हरिजनोंके सेवक होनेका दावा करते हैं न! तो हमें शरारत-भरी शिकायतोंका भी बुरा नहीं मानना चाहिए। ऐसी शिकायतोंको बन्द कर देनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि कोरे और ठोस तथ्य सामने रख दिये जायें। मैंने श्री ठक्करसे श्रीयुत स्वात्मदास द्वारा उल्लिखित सभी संगठनोंके

१. रामलिंग स्वामी-कृत **तिरु अरुतपा**।

२. प्रेषीने दिनांक ३१ मार्च, १९३३ के अपने पत्रमें लिखा था कि स्वात्मदास एक प्रपंची व्यक्ति है जिसने कई संस्थाओंको केवल सवर्ण हिन्दुओंकी हितकारी होनेका इल्जाम लगाकर बदनाम किया था। देखिए "पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको", १४-३-१९३३ और १६-३-१९३३ भी।

पास उस शिकायतकी प्रतियाँ भेज देनेको कहा था ताकि उन्हें यह मालूम हो जाये कि उनके बारेमें क्या कहा गया है और अगर वे चाहें तो अपने-अपने उत्तर भी दें जिससे कि केन्द्रीय बोर्ड विभिन्न संगठनोंके खिलाफ लगाये आरोपोंका सन्तोषजनक ढंगसे निराकरण कर सके।

हृदयसे आपका,

वैद्यभूषण पण्डित रामगोपाल शास्त्री
मन्त्री, पंजाब दलित सेवा मिशन
लाहौर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९३९) से।

४६६. पत्र : रमाबहन जोशीको

१४ अप्रैल, १९३३

चि० रमा,

सरदारके नाम आया डॉ० पटेलका[१] पत्र मैं आज ही देख पाया हूँ। इसमें कोई ऐसी खतरनाक बात नहीं है। यदि ऑपरेशन कराना ही पड़ा तो उसमें कोई खतरा नहीं है। मुझे लिखना कि आजकल हाथमें कितना दर्द होता है। हाथसे धीरे-धीरे काम करनेमें कोई नुकसान नहीं है। हाथके बेकार हो जानेका कोई खतरा नहीं है। हाँ, लापरवाही करनेसे अन्तमें ऐसा हो सकता है। किन्तु यह पता चल गया है कि क्या गड़बड़ी है, इसलिए चिन्ताका कोई कारण नहीं। प्रतिदिन हाथको थोड़ा-सा व्यायाम देना चाहिए। मुझे पूरे समाचार देना। आशा है तुम्हारा मन प्रफुल्लित होगा।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४७) से।

१. डॉ० मानीभाई डी० पटेल, अहमदाबादके एक प्रसिद्ध सर्जन।

४६७. पत्र : नारणदास गांधीको

१४ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला।

भाई रामजीको लिखा मेरा पत्र पढ़ना। उसके पोस्टकार्डमें इस तरहके वाक्य हैं — 'पेट सिरको लात मार रहा है', आदि; और वह राजभोजसे अपने मनकी पूरी बात कहनेकी अनुमति चाहता है। मैंने उसे लिखा है कि उसकी इच्छा है तो भले वह वैसा ही करे। समझमें नहीं आता उसे क्या हुआ है। उसका दिमाग कहीं गड़बड़ तो नहीं हो गया है? उसकी बातोंसे कभी-कभी मुझे ऐसी शंका होती है। उसे हरएकके बारेमें सन्देह होने लगता है — अपने निकटके सम्बन्धियोंपर भी!

डॉ० शर्मा और राजभोजके नाम लिखे पत्र इसके साथ रख रहा हूँ। कब्जकी शिकायतके सम्बन्धमें डॉ० शर्मासे चर्चा करना। अमीनाके पाँवोंकी चमड़ी जगह-जगहसे फट-सी गई थी; उसकी यह तकलीफ दूर हो गई होगी।

मणिलालके बिल आश्रमके पैसोंमें से नहीं चुकाये जा सकते। देवदासको तीन-सौ रुपये किसने दिये? आश्रमके पैसेका उपयोग हम अमुक व्यक्तियोंकी निजी जरूरतोंके लिए नहीं कर सकते।

कुसुमसे डॉक्टरने क्या कहा? उसके दस्त बन्द नहीं हो रहे हैं, यह तो ठीक नहीं है। कुसुमकी दवा तो डॉ० तलवलकर ही करेंगे। पर डॉ० शर्माको भी उसे दिखाना तो। देखें वह क्या कहता है?

केशू नौकरी ढूंढ़ रहा है।

बापू

[पुनश्च :]

डॉ० पटेलने रमाबहनके विषयमें वल्लभभाईको जो पत्र लिखा है वह मैंने पढ़ा है। तुम्हें कुछ और मालूम हुआ हो तो लिखना। उसके हाथका एक्स-रे होना था, उसका क्या हुआ? यह जाँच पन्द्रह रुपये देकर ही कराई जा सकती हो तो शायद वैसा करा लेना भी ठीक ही होगा। डॉक्टर जैसा कहे वैसा करना। ऑपरेशन करानेकी जल्दी नहीं है। मालूम होता है कि थोड़ा-बहुत काम करनेमें उसे अड़चन नहीं होती। रमाबहनको लिखा पत्र भी साथमें है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५५ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४६८. एक पत्र

१४ अप्रैल, १९३३

मेरे खयालसे ल० की शर्तें तुम्हें बिना संकोच मान लेनी चाहिए। आखिर तो वह तुम्हारा पति है। उसकी चोट पहुँची हुई भावनाओंको शान्त करनेमें कोई छोटापन नहीं है। इससे तुम अपनी नजरमें और ईश्वरकी नजरमें भी ऊँची उठ जाओगी। और ल०का विरोध न करनेसे तुम उसका प्रेम फिरसे प्राप्त कर सकोगी। मित्रोंके बीचके सम्बन्धमें एक पक्षको दूसरे पक्षके विरुद्ध कोई हक नहीं होते। पति-पत्नी मित्रोंसे भी ज्यादा हैं। आज तुम दोनोंके मार्ग एक-दूसरेसे अलग हो गये हैं, इसलिए इस सम्बन्धमें कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। तुम शान्ति रखोगी, तो सब बातें ठीक हो जायेंगी। बच्चोंका हित सर्वोपरि होना चाहिए; और तुम कोई आग्रह न रखो, तो इससे उस हितकी रक्षा ज्यादा अच्छी तरह होगी। ऐसा करके भी तुम्हें सन्तुष्ट रहना चाहिए। तुम अपने आनन्दके लिए नहीं, मगर उनके भलेके लिए ही तो उनसे मिलना चाहती हो। कानून और अदालतकी बात तो अपने दिलसे निकाल ही दो। मेरी बात अच्छी तरह समझमें आ रही है न? ईश्वर तुम्हारा सहायक हो और तुम्हें रास्ता दिखाये।

[गुजरातीसे]
महादेवभाईनी डायरी, भाग-३, पृ० २३०

४६९. केवल जन्मसे नहीं

अभी पिछले दिनों मदाम वाडियाने एक बड़ा ही शिक्षाप्रद भाषण दिया था। उसमें उन्होंने निम्नलिखित श्लोक भी उद्धृत किये थे, जो यद्यपि पहले भी अकसर उद्धृत और प्रकाशित किये जा चुके हैं, फिर भी यहाँ दिये जाने योग्य हैं:

> **आप 'महाभारत' के 'वन पर्व' में युधिष्ठिरके ये शब्द सुनिए:**
>
> **हे सर्पराज, जिसमें सत्य, दाक्षिण्य, क्षमा, सदाचार, विनय, तप और दया ये गुण हैं वही ब्राह्मण है। यदि ये गुण किसी शूद्रमें हैं और द्विजमें नहीं हैं तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है।**
>
> **और 'विष्णु-भागवत' में कहा है:**
>
> **जिन लक्षणोंके कारण कोई व्यक्ति अमुक जातिका माना जाता है, वे लक्षण यदि किसी अन्य व्यक्तिमें हों तो उसकी जातिका निर्धारण उन लक्षणोंके अनुसार ही होगा (अर्थात् उसके शरीर और जन्मके अनुसार नहीं होगा।)**

लेकिन आप लोगोंमें से कुछको 'मनुस्मृति' की बात शायद अधिक जँचेगी। तो सुनिए। काठका हाथी, मृग-चर्म और अज्ञानी ब्राह्मण नामके लिए हाथी, मृग और ब्राह्मण हैं। जो ब्राह्मण वेदोंका अध्ययन न करके कहीं अन्यत्र दास-वृत्ति करता है, वह अपनी सन्तान-सहित इसी जन्ममें शूद्र बन जाता है।

शास्त्रोंके इन तथा अन्य बहुत-से श्लोकोंसे स्पष्ट रूपसे सिद्ध हो जाता है कि मात्र जन्मका कोई मतलब नहीं है। अपने जन्मके आधारपर मनुष्य जो दावा करता है, उसे तो उसको तद्‌रूप कर्म और आचरणके द्वारा सिद्ध कर दिखाना चाहिए। इस प्रकारके श्लोकोंसे इन दलीलोंको भी बल मिलता है:

(क) जो मनुष्य अपने वर्णके लिए आवश्यक गुणोंका परिचय नहीं दे पाता वह अपने वर्णसे च्युत हो जाता है।

(ख) रोटी-बेटी व्यवहारपर लगाये प्रतिबन्धोंकी चाहे जो अच्छाइयाँ हों, उसके कारण किसीके वर्णपर प्रभाव नहीं पड़ता, कमसे-कम उतना तो नहीं ही जितना कि अपने वर्णके अनुरूप आचरण करनेमें विफल होनेका पड़ता है।

(ग) किसी वर्ण-विशेषमें जन्म लेनेके कारण मनुष्य उस वर्णमें तो प्रवेश करता है और उससे माता-पिताको अपने बच्चोंके लिए उपयुक्त प्रशिक्षण और धन्धेका चुनाव करनेकी सुविधा मिलती है, किन्तु यदि वह अपने कर्मोंसे उस वर्णका नाम चरितार्थ नहीं करता तो केवल जन्मके ही कारण वह वर्ण उसका स्थायी वर्ण नहीं हो जाता।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७०. दूसरा हरिजन-दिवस

पहला हरिजन-दिवस पिछले वर्ष १८ दिसम्बरको मनाया गया था। श्रीयुत अमृतलाल ठक्कर दूसरे हरिजन-दिवसकी तिथि निश्चित करवानेको बड़े उत्सुक रहे हैं, लेकिन अपने विश्वासके अभावके कारण मैं उसे टालता रहा हूँ। ठक्कर बापा १९ दिसम्बरको किये गये कामसे सन्तुष्ट थे। मैं नहीं था। कोई विशेष तिथि तो तभी तय करना मुनासिब होगा जब असाधारण प्रयत्न भी किया जाये। हरिजनोत्थान-जैसे पवित्र कार्यके सिलसिलेमें विशेष दिवस तो अपेक्षाकृत अधिक समर्पण, अधिक प्रार्थना और जुटकर काम करनेका दिन होना चाहिए। ठक्कर बापासे सलाह-मशविरा किया तो मेरा मन भी उन्हींकी तरह आशासे भर गया है। अतः इस महीनेके आखिरी रविवारको यह दिवस मनाना तय किया गया है।

उस दिनका कार्यक्रम मैं कुछ इस प्रकार रखना चाहूँगा:

१. सवेरे ५ बजे प्रार्थना करें और अपनी सामर्थ्यके अनुसार इस उद्देश्यके निमित्त कुछ पैसा या कपड़ा अथवा अन्न अलग रख दें। जो बहुत गरीब हैं वे भी मनमें

कोई ऐसा भाव लाये बिना कि उनका जरा भी नुकसान हुआ है, एक या एकाधिक बारका अपना भोजन या उसका एक अंश त्यागकर इस प्रकारका योग दे सकते हैं। अच्छा तो यह होगा कि जिन्सोंके रूपमें दिये जानेवाले दानको नकदीमें बदल लिया जाये। लेकिन जहाँ यह सम्भव नहीं हो वहाँ दानकी चीजें उसके सबसे उपयुक्त पात्र और जरूरतमन्द हरिजनको दी जायें।

२. अगर परिवारका कोई भंगी हो तो उसका काम या तो पूरे तौरपर या आंशिक रूपसे परिवारके सदस्य स्वयं करें। इससे लोग यह समझ सकेंगे कि भंगी कसा काम करते हैं और हो सकता है कि इसके परिणामस्वरूप ऐसे काम करनेके तरीकेमें भी सुधार हो। पाखाने वगैरहका इस्तेमाल करते हुए बहुत कम लोग इस बातका खयाल रखते हैं कि इनकी सफाई करनेवाले बेचारे भंगियोंपर क्या बीतेगी। यदि हममें अस्पृश्यताका दोष न होता और जब-तब भी भंगियोंके काममें हाथ बँटाते तो हमारा पाखाने वगैरहकी सफाईका तरीका कुछ और ही होता।

३. ये दोनों काम कर लेनेके बाद हमें उन कार्योंमें लगना चाहिए जो हमको उस दिन सामूहिक रूपसे करने हैं। सबसे पहले तो हमें घर-घर जाकर नकद और जिन्सी अनुदान इकट्ठे करने चाहिए। एक निश्चित समयके अन्दर यह काम पूरा कर लेना चाहिए। अनुदानमें प्राप्त पैसा और चीजें स्थानीय समितिको दे देनी चाहिए। उस समितिको सब-कुछ अपनेसे ऊपरकी समितिको सौंप देना चाहिए और इस तरह अन्तमें वह प्रान्तीय समितिके पास पहुँच जाना चाहिए। अनुदान इकट्ठा करनेवालों को विचारपूर्वक चुनकर कुछ साहित्य भी साथमें रख लेना चाहिए। इसमें परचे, पुस्तक-पुस्तिकाएँ और जरूरतके मुताबिक अंग्रेजी अथवा देशी भाषाओंके 'हरिजन' की प्रतियाँ भी हो सकती हैं। यह साहित्य बिके तो बेचना चाहिए और जरूरत पड़े तो मुफ्त भी बाँटना चाहिए। लेकिन, प्रत्येक समिति जितना साहित्य मँगवाये उसका खर्च वह खुद उठाये। अगर 'हरिजन'की अतिरिक्त प्रतियोंकी आवश्यकता हो तो प्रकाशकोंको पहले ही सूचना दे देनी चाहिए, ताकि वे अतिरिक्त प्रतियाँ छाप सकें।

४. हर जगह हरिजन बस्तियोंमें जाना चाहिए। और जहाँ जरूरी हो वहाँ उनको साफ करना चाहिए। हरिजनोंकी सभाओंका आयोजन करना चाहिए और उनकी आवश्यकताओंकी जानकारी प्राप्त करके उन्हें दर्ज कर लेना चाहिए। उन्हें यह बताना चाहिए कि अस्पृश्यता-निवारणमें स्वयं उनको क्या भूमिका निभानी है। उन्हें मरे हुए पशुओंका मांस खाना छोड़नेको समझाते हुए डॉ० देशमुखके अधिकृत मतका उपयोग करना चाहिए। बच्चे हरिजन बच्चोंकी सभाओं और उनके सैर-सपाटे-का इन्तजाम कर सकते हैं। सफाईके सुधरे तरीके लागू करनेकी सम्भावनाओंका पता लगाया जाये और जहाँ सम्भव हो वहाँ श्रीयुत हीरालाल शाहकी योजनापर अमल किया जाये। अगर लोग इतना-सा भार उठानेको खुशी-खुशी तैयार हों तो यह काम न कठिन है और न व्ययसाध्य। अन्तमें इससे समाजको स्वास्थ्य और सम्पत्ति दोनोंका लाभ होगा।

५. हरिजन-दिवसका समापन सवर्णों और हरिजनोंकी आम सभाओंका आयोजन करके करना चाहिए। सभाओंमें प्रस्ताव पास किये जायें, जिनमें उपस्थित लोगोंको

अस्पृश्यता-निवारणके लिए प्रतिज्ञाबद्ध किया जाये और मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें अनुज्ञात्मक (परमिसिव) कानून बनानेकी वांछनीयतापर जोर दिया जाये।

६. जहाँ जनमत अनुकूल हो वहाँ हरिजनोंको सार्वजनिक कुओंका उपयोग करने और निजी मन्दिरोंमें जानेकी छूट दिलाई जाये।

जो काम किया जाये उसका ठीक-ठीक विवरण केन्द्रीय समितिको भेजा जाये और सम्भव हो तो, प्रकाशनमें विलम्ब होनेसे बचनेके लिए एक प्रति मुझे भी भेज दी जाये। प्रेस-सन्देश भेजनेके लिए शुल्ककी जो दरें हैं उन दरोंपर सम्पादकके नाम प्रेस-सन्देश भेजे जा सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, १५-४-१९३३

४७१. प्रकट चिन्तन

मुझे और चार्ल्स फ्रीअर एन्ड्रयूजको प्रकट चिन्तन करनेकी आदत है। उनके पत्रोंमें से एक नमूना नीचे दे रहा हूँ:

साथमें . . .का[1] पत्र भेज रहा हूँ, क्योंकि 'आमरण अनशन'को यहाँ लोग नैतिक दृष्टिसे कितना हेय मानते हैं, इसका भान आपको नहीं होगा। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि ईसाईके नाते उसके प्रति मैं भी ऐसी ही भावना रखता हूँ और किसी भी हालतमें इसका औचित्य सिद्ध करना मुझपर अत्यन्त कठिन गुजरता है। पिछले वर्ष जब इसके अलावा सारे रास्ते बन्द नजर आते थे तब उस लाचारीकी स्थितिमें मैं इसका कायल हो गया था, लेकिन तब भी मेरा मन व्यथित था। मैं यह भी जानता हूँ कि ईश्वरकी इच्छा यदि बहुत विचित्र रूपमें सामने आये तो भी मुझे उसको स्वीकार कर ही लेना चाहिए। मुझे यह भी मालूम है कि अतीतमें हिन्दू धर्ममें इसका स्थान रहा है और मुझे यह समझनेकी कोशिश करनी है कि किसी हिन्दूके लिए इसका ठीक-ठीक क्या महत्त्व है। इन बातोंको साफ-साफ समझनेके लिए मैं कठिन प्रयास कर रहा हूँ। लेकिन अबतक मुझे यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया है।

मुझे लगा कि अभी निकट भविष्यमें तो ऐसे अनशनकी कोई सम्भावना नहीं है, इसलिए यह सब आपको अभी ही बता देना ठीक है। इस बीच मैं सारे विषयको गहराईसे समझनेकी कोशिश कर रहा हूँ। यहाँ मैंने आपके पिछले उपवासका बचाव बार-बार किया है और लोगोंको उसके परिणाम समझाते हुए यह बताया है कि गुरुदेवकी-सी संवेदनशील अन्तरात्मावाले व्यक्तिको भी उसमें केवल महान् और उदात्त तत्त्व ही दिखाई दिये लेकिन अपने

१. साधन-सूत्रमें नाम छोड़ दिया गया है।

देशको स्वतन्त्र करानेमें अंग्रेजोंका, जिन्हें आप स्नेह और सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं, साथ प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उनका हृदय परिवर्तन करनेके लिए आप स्वयं जो महान् प्रयत्न कर रहे हैं (और जिसका मर्म लोगोंको समझानेकी हम भरसक कोशिश कर रहे हैं), उसके सम्बन्धमें सचाई यह है कि :

१. अस्पृश्यता-निवारणके प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करना आसान है। उनके हृदय सचमुच द्रवित हैं।

२. लेकिन आमरण अनशन करके आत्महत्या करनेके विचारके प्रति उनकी सहानुभूति प्राप्त करना आसान नहीं है। उनके मनमें इसके प्रति बहुत ही तीव्र घृणा और जुगुप्साका भाव है और ऐसी किसी बातकी आशंका-मात्रसे उनकी अन्तरात्मा जागरूक होनेके बजाय सर्वथा जड़ हो जाती है।

मैं जानता हूँ कि यह सब यदि मैं आपको पहले ही नहीं बता चुका हूँ तो अवश्य ही आप चाहेंगे कि अब बता दूँ; क्योंकि अभी तत्काल अनशनका कोई प्रश्न खड़ा नहीं है, इसलिए मैं शान्त मनसे लिख सकता हूँ।

इस पत्रको मैं इसलिए प्रकाशित कर रहा हूँ कि यह खुले उत्तरकी अपेक्षा रखता है। हिन्दू धर्मकी शुद्धिको मैं एक तरहसे सारे मानव-परिवारकी शुद्धि मानता हूँ और यह बात बिलकुल सही है कि इस अत्यन्त कठिन और आवश्यक कार्यमें मैं संसारके सभी हिस्सोंसे जो तनिक-सी भी सच्ची सहानुभूति मिल सकती है उसे प्राप्त करना चाहता हूँ।

धार्मिक उद्देश्योंसे अनशन और विशेषकर 'आमरण अनशन' के प्रति अंग्रेजोंके घृणाभावसे मैं परिचित हूँ। मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि मैंने बड़े दुःखी मनसे यह देखा है कि जिस उपवासके प्रति दीनबन्धु एन्ड्रयूजने जैसे-तैसे अपना मन मना लिया, भारतमें उसके भी कुछ बुरे परिणाम सामने आये हैं। उस समय हिन्दू लोग जोशमें थे और उस अवस्थामें उन्होंने बहुत-से ऐसे काम किये जिन्हें बादमें जोश ठंडा पड़नेपर मिटा दिया। उपवासके दौरान उन्होंने बड़ी उदारतासे हरिजनोंको मन्दिरों और कुओंके उपयोगका अधिकार दिया। लेकिन, उपवास समाप्त होनेके शीघ्र बाद ही इनमें से कुछका उपयोग उनके लिए पुनः वर्जित कर दिया गया। बंगालमें शिक्षित सवर्ण हिन्दुओंमें ऐसे लोगोंकी एक अच्छी-खासी तादाद है जो सच्चे हृदयसे मानते हैं कि उपवासके कारण जो जोश-जनून पैदा हुआ उसकी रौ में बहकर हरिजनोंको विधान सभाओंमें स्थान देनेके सम्बन्धमें बंगालके साथ बहुत बड़ा अन्याय किया गया। मुझे यह भी मालूम है कि कुछ अन्य प्रान्तोंमें भी यरवडा समझौतेको मेरे उपवासके दबावके कारण ही स्वीकार किया गया। यह सब बहुत बुरा हुआ। उपवास शुरू करते समय मैंने वास्तवमें इन बातोंकी कल्पना नहीं की थी। लेकिन, मुझे उपवास करनेपर पश्चत्ताप भी नहीं है। अव्वल तो उपवास मैंने अपनी ही इच्छासे नहीं किया। दूसरे, यद्यपि उपयुक्त कार्य उपवासके दबावमें किये गये, किन्तु वे अपने-आपमें बुरे नहीं थे। अगर वे बुरे होते तो उन्हें मिटानेके लिए मैं जमीन-आसमान एक कर देता।

लेकिन इस समय मुझे उपवासके परिणामोंपर नहीं, बल्कि दैवी विधानके एक अनिवार्य अंगके रूपमें स्वयं उपवासपर विचार करना है। यदि यह सचमुच उसका अंग है तो जब-कभी उपवास किया जाये, हर बार लोगोंको इसका औचित्य समझानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए।

यद्यपि सनातनी लोग उपवासको लेकर मुझे खूब कोसते हैं और हिन्दू सह-कार्यकर्ता भी शायद इसपर दुखी होते हैं, किन्तु वे जानते हैं कि उपवास आज भी हिन्दू धर्मका एक अभिन्न अंग है। वे इस चीजसे व्यथित होनेका ढोंग ज्यादा दिनों तक नहीं कर सकते। हिन्दू धर्म-ग्रन्थ उपवासके दृष्टान्तोंसे भरे पड़े हैं, और आज भी हजारों हिन्दू छोटे-छोटे कारण उपस्थित होनेपर भी उपवास करते हैं। यह ऐसी चीज है जो कमसे-कम नुकसान पहुँचाती है। इसमें सन्देह नहीं कि हर अच्छी चीजकी तरह उपवासका भी दुरुपयोग किया जाता है। यह अनिवार्य है। अच्छाईके नामपर कभी-कभी बुराई भी की जाती है, इसीलिए अच्छा काम करना छोड़ा तो नहीं जा सकता।

मेरी असली कठिनाई तो उन ईसाई प्रोटेस्टेंट मित्रोंके सम्बन्धमें है जिनकी संख्या अच्छी-खासी है और जिनकी मित्रता मेरे लिए अपरिमित महत्त्व रखती है। मैं उनके सामने यह स्वीकार करता हूँ कि उपवास उन्हें नापसन्द है, यह बात यद्यपि मैं उनके साथ अपना प्रथम सम्पर्क होनेके समयसे ही जानता हूँ, किन्तु यह नहीं समझ पाया हूँ कि ऐसा क्यों है।

देह-दमनको संसारमें सर्वत्र आध्यात्मिक प्रगतिकी शर्त माना गया है। उपवासका जो व्यापकतम अर्थ है, उस अर्थमें उसके बिना प्रार्थना हो ही नहीं सकती। सम्पूर्ण उपवासका मतलब अपने दैहिक अहंका पूरा-पूरा त्याग है। यह सबसे सच्ची प्रार्थना है। "मेरा जीवन ले लो और इसे सदा अपनी सेवामें नियोजित करो", यह सिर्फ ओठोंसे बुदबुदाई जानेवाली या आलंकारिक उक्ति नहीं है और न होनी चाहिए। इसे तो कहींसे तनिक भी संकोच किये बिना निर्द्वन्द्व और हर्षोल्लसित समर्पण होना चाहिए। भोजन, बल्कि जलका भी त्याग, इसका प्रारम्भ-मात्र है, इस समर्पणका तुच्छतम अंश है।

जब मैं इस लेखको लिखनेके लिए अपने विचार संजो रहा था, ईसाइयोंकी लिखी एक पुस्तिका मेरे हाथ लगी। उसमें 'कथनीके बजाय करनी' पर एक परिच्छेद था। इसमें 'जोना'के तीसरे अध्यायमें से एक उद्धरण दिया गया है। पैगम्बरने यह भविष्यवाणी की थी कि महानगर निनवेमें उनके प्रवेशके चालीसवें दिन वह नगर ध्वस्त हो जायेगा।

> **निदान ईश्वरमें निनवेवासियोंका विश्वास जमा। उन्होंने उपवासकी घोषणा की और बड़े-से-बड़े और छोटे-से छोटे सभीने टाटके कपड़े पहन लिये। कारण, निनवेके राजाको दिव्य वाणी सुनाई दी, और वह सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ, उसने राजसी पोशाक उतारकर टाटके कपड़े पहने और धूलमें बैठ गया। और उसने राजा तथा अमीर-उमरोंके नाम यह फरमान जारी किया कि "न मनुष्य**

और न पशु, और न ढोर-डंगर या भेड़-बकरियाँ ही किसी चीजको मुँहसे लगायें; वे सब न कुछ खायें और न पियें। इसके बजाय मनुष्य और पशु सभी टाटके कपड़े धारण करें और पूरी शक्तिसे ईश्वरसे यह विनती करें: प्रभो, तुम सबको बुराईके मार्गसे विमुख करो और जिसके हाथमें जो हिंसा करनेकी शक्ति हो उसे उसका त्याग करनेको कहो। क्या पता कि ईश्वर अपना कदम वापस न ले ले, वह अपने कियेपर पछताने न लगे और अपना यह प्रचण्ड क्रोध त्याग न दे, जिससे हम सब विनाशसे बच जायें!" और ईश्वरने उनके कार्योंको देखा, उसने देखा कि उन्होंने कुमार्गका त्याग कर दिया है; और ईश्वरने उनको जो हानि पहुँचानेकी बात कही थी उसपर उसे खेद हुआ और उसने उनका कोई बुरा नहीं किया।

इस प्रकार यह 'आमरण अनशन' ही था। किन्तु प्रत्येक आमरण अनशन आत्महत्या ही नहीं होता। निनवेके राजा और निवासियोंका यह उपवास अपने त्राणके लिए अत्यन्त विनयपूर्वक की गई महान् प्रार्थना था। या तो उन्हें त्राण मिलना था या मृत्यु। यदि मेरे उपवासकी तुलना 'बाइबिल'में आये उपवासके दृष्टान्तोंसे करना अनुचित न हो तो मैं कहूँगा कि मेरा उपवास भी ऐसा ही था। 'जोना'का यह अध्याय 'रामायण'की किसी घटना-जैसा लगता है।

मित्रगण मेरी बुनियादी स्थितिको जान लें, यह उचित ही है। व्यक्तिगत और सार्वजनिक तौरपर किये गये उपवासमें भी मेरा गहरा विश्वास है। फिर किसी दिन उसका प्रसंग आ सकता है और इस तरह कि उसका पूर्वाभास मुझे भी न हो। यदि यह प्रसंग आता है तो एक सौभाग्य और आनन्दके विषयकी तरह मैं उसका स्वागत करूँगा।

अस्पृश्यता बहुत बड़ा पाप है। कदाचित् वह बहुत-से सेवकोंके खूनके बिना धुल न सके। लेकिन उन्हें इसका उपयुक्त साधन बनना पड़ेगा। यदि मैं इस बलिदानके योग्य पाया गया तो यह अवसर मुझे प्राप्त होगा। यदि वह अवसर आता है तो मैं तो यह चाहूँगा कि मेरे मित्र इसपर खुशी मनायें। उन्हें इसके प्रति न कोई विकर्षण होना चाहिए और न इससे घबराना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७२. एक कार्यकर्ताकी अधीरता

एक उत्साही किन्तु अधीर कार्यकर्ता मन्दिरों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानोंको हरिजनोंके लिए खुलवानेकी कोशिश करते रहे हैं। उन्हें थोड़ी-बहुत सफलता मिली है, पर कोई गर्व करने लायक नहीं। अतः अधीर होकर वह भाई लिखते हैं :

> **यह कार्य सनातनी लोग प्रारम्भ करेंगे, इस बातकी प्रतीक्षा करते रहनेसे कोई लाभ नहीं। जबतक उनको विवश नहीं किया जायेगा तबतक वे कुछ नहीं करेंगे। अस्पृश्यताको मिटानेके लिए कड़े कदम उठानेकी आवश्यकता है। इसलिए आप इस सम्बन्धमें अपना विचार बतानेकी कृपा करें कि यदि मन्दिरोंके प्रवेश-द्वारोंपर हरिजन लोग सत्याग्रह करें और सनातनियोंको मन्दिरोंमें प्रवेश न करने दें तो क्या यह उपाय कारगर सिद्ध होगा। अनुनय-विनयका तो अबतक कोई असर नहीं हुआ है, और मेरी तुच्छ रायमें, इस सबपर अब और समय लगाना कीमती समयको व्यर्थ गँवाना ही होगा।**

इस तरह रास्ता रोकना तो पूरी जबरदस्ती ही होगी। लेकिन धर्म अथवा अन्य किसी सुधारमें तो जरा भी बल-प्रयोग नहीं होना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारण का आन्दोलन तो आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। किसी भी व्यक्तिको उसकी इच्छाके विरुद्ध हम शुद्ध नहीं कर सकते। इसीलिए सनातनियोंके प्रति, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, किसी भी प्रकारसे बल-प्रयोग नहीं होना चाहिए। हमें ध्यान रखना चाहिए कि अस्पृश्यता-निवारणकी आवश्यकता स्वीकार करनेसे पहले हममें से बहुत-से लोग सनातनियों-जैसे ही थे। उस समय यदि कोई मन्दिरमें जानेसे हमें रोकता तो क्या हमें अच्छा लगता? उन दिनों तो हमारा भी ऐसा ही खयाल था कि हरिजनोंको मन्दिरोंमें नहीं घुसने देना चाहिए, पर अपना वही विचार आज हमें गलत मालूम होता है। अतः हमें सनातनियोंका मन्दिरमें जानेका रास्ता नहीं रोकना चाहिए।

पत्र लिखनेवाले भाईको मुझे यह भी याद दिला देना चाहिए कि 'सत्याग्रह' शब्दका अकसर बिना विचारे ही प्रयोग किया जाता है, और उसमें छिपी हुई हिंसाका भी समावेश रहता है। पर इस 'सत्याग्रह' शब्दके निर्माताकी हैसियतसे मैं यह कहना चाहूँगा कि इसमें प्रत्यक्ष या परोक्ष, गुप्त या प्रकट, अथवा मनसा, वाचा या कर्मणा, किसी भी प्रकारकी हिंसाकी गुंजाइश नहीं है। विरोधीका बुरा चाहना या उसका दिल दुखानेके इरादेसे उसे या उसके प्रति कठोर वचन कहना सत्याग्रहकी मर्यादाका उल्लंघन है। क्षणिक आवेशमें आकर शारीरिक हिंसा करना और दूसरे ही क्षण उसके लिए पछताना और फिर विगतको भूल जाना, इसकी अपेक्षा बुरा विचार अथवा कटु-वचन सत्याग्रहके संदर्भमें कहीं अधिक खतरनाक हो सकता है।

सत्याग्रह बहुत कोमल वस्तु है, वह कभी किसीको चोट नहीं पहुँचाता। क्रोध या द्वेषसे प्रेरित होकर सत्याग्रह नहीं करना चाहिए। उसमें छोटी-मोटी बातोंको कभी तूल नहीं दिया जाता, अधीरतासे काम नहीं लिया जाता, व्यर्थका शोरगुल नहीं मचाया जाता। यह जबरदस्तीकी ठीक उलटी चीज है। इसकी परिकल्पना हर तरहसे हिंसाका स्थान लेनेके लिए की गई थी।

फिर भी, "अस्पृश्यताको मिटानेके लिए कड़े कदम उठानेकी आवश्यकता है", पत्र-लेखकके इस कथनसे मैं पूर्णतया सहमत हूँ। पर ये कदम तो हमें अपने ही विरुद्ध उठाने हैं। सनातनी सच्चे दिलसे मानते हैं, जिस अस्पृश्यताका वे पालन करते हैं वह शास्त्रोक्त है, और यदि उसे मिटा दिया गया तो उनपर तथा हिन्दू धर्मपर भारी संकट आ जायेगा। उनके इस विश्वासका निराकरण हम कैसे कर सकते हैं? यह तो स्पष्ट ही है कि उन्हें हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेशका अधिकार देनेको मजबूर करनेसे भी उनका विश्वास बदल नहीं सकता। हरिजनोंको मन्दिरोंमें प्रवेश करनेकी छूट दिलाना उतना जरूरी नहीं है जितना कि सनातनियोंका हृदय-परिवर्तन करके उनमें यह विश्वास पैदा करना है कि हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेश से रोकना गलत है। यह हृदय-परिवर्तन उनके हृदयको द्रवित करके, अर्थात् उनके अन्दर जो-कुछ श्रेष्ठतम है उसे जागरूक और क्रियाशील बनाकर ही किया जा सकता है। उनके हृदयको द्रवित करनेका उपाय यह है कि हम प्रार्थना करें, उपवास करें, व्यक्तिगत ढंगके अन्य कष्ट सहें अर्थात् अपनेको सतत अधिकाधिक पवित्र बनायें। इस उपायको अबतक कभी भी विफल होते नहीं देखा गया है। कारण, स्वयं यह साधन ही अपनी सिद्धि है। सुधारकको अपने हेतुकी सचाईका बोध होना चाहिए। फिर वह अपने विरोधीके प्रति अधीरता नहीं बरतेगा; इसके बजाय खुद अपने प्रति अधीरतासे काम लेगा। उसे अनशन द्वारा मरनेके लिए भी तैयार रहना चाहिए। पर इसका अधिकार हर किसीको नहीं है। सबमें यह करनेकी शक्ति भी नहीं होती। ईश्वरकी कसौटी अत्यन्त कड़ी होती है। वह अपने भक्तोंसे नम्रताकी आशा रखता है। यह सम्भव है कि उपवास भी जबरदस्तीका रूप ले ले। पर इस संसारमें ऐसी कोई चीज नहीं है जिसका मनुष्यके हाथों दुरुपयोग न हो सके। मनुष्य अच्छाई और बुराईका मिश्रण है। उसमें राम और रावण दोनोंका ही वास है। पर जहाँ कष्ट-सहनकी बात आती है, वहाँ दुरुपयोगकी सम्भावना कमसे-कम रहती है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७३. डेविड योजनाके लिए ५,००० रुपये

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि सेठ रामनारायणजी की विधवा श्रीमती सुव्रतादेवीने डेविड योजनाके लिए २,५०० रुपयेका एक चेक भेजा है। उनकी इच्छा है कि अगर राजपूतानाका कोई ऐसा हरिजन विद्यार्थी मिले जिसमें आवश्यक योग्यताएँ हों तो उसे प्राथमिकता दी जाये।

२,५०० रुपयेका एक और चेक सेठ जमनालालजी की पत्नी श्रीमती जानकीदेवीसे प्राप्त हुआ है। उनकी इच्छा है कि मराठी-भाषी मध्य प्रान्तके हरिजन विद्यार्थीको प्राथमिकता दी जाये और वहाँसे कोई अपेक्षित योग्यतावाला विद्यार्थी न मिले तो हिन्दुस्तानी-भाषी मध्य प्रान्तवाले को प्रमुखता दी जाये।

दान देनेवाली बहनोंको मैं बधाई देता हू और आशा करता हूँ कि उनके दृष्टान्तका अनुकरण अन्य सम्पन्न लोग भी करेंगे।[1]

यह भी सूचित कर दूं कि एक चुनाव बोर्डके गठनके सिलसिलेमें कार्यवाही चल रही है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, १५-४-१९३३

४७४. पत्र : वी० एस० आर० शास्त्रीको

१५ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिलते ही उसे मैं बहुत सावधानीसे पढ़ गया। आप मेरी इस बातका भरोसा कीजिए कि कोई कर सके तो मैं कायल होना चाहता हूँ। इस दुनियामें सत्यके अन्वेषणके अलावा मेरा और कोई स्वार्थ नहीं है। आप अपनी या कह लीजिए, सनातनियोंकी व्याख्यापर आग्रह कर रहे हैं और उसपर आपको पूरा भरोसा है। यह बात बिलकुल स्वाभाविक है। दूसरे लोगोंको भी, जिनकी विद्वत्तामें मुझे तनिक भी शंका नहीं है, अपनी व्याख्यापर ऐसा ही भरोसा है। उनके बारेमें यह कहकर कि वे तो मुझे खुश करनेके लिए वैसा करते हैं, आप उनके साथ अन्याय कर रहे हैं। मैं तो आपको वही बता सकता हूँ जो मैं जानता हूँ और जिसे केवल मैं ही जान सकता हूँ। वह यह है : वे स्वतन्त्र चेता लोग हैं। वे जाने-माने विद्वान् हैं; उनका अपना एक चरित्र है, जिसकी रक्षा करनेकी उन्हें फिक्र है। और बहुत वर्षोंतक विदेशोंमें रहनेके बाद जब मैं भारत लौटा, उससे पहले ही उनमें से बहुतोंको

१. देखिए "पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको", १०-४-१९३३ भी।

शास्त्रोंके अधिकारी विद्वानोंके रूपमें मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। मुझे तो शास्त्रोंके मूल पाठ और अनुवादोंके अध्ययनके आधारपर उनके सम्बन्धमें प्राप्त अपने ज्ञानके अनुसार इन्हीं दो व्याख्याओंमें से किसी एकको चुनना है।

आपने विभिन्न विचारधाराओंके पण्डितोंकी एक बैठक बुलानेका सुझाव दिया है। शायद आपको मालूम नहीं है कि ऐसी एक बैठक मैं करा चुका हूँ। उनके तर्कोंको मैंने अत्यन्त धैर्य और आदरके साथ सुना। सत्यको जाननेके अपने कार्यमें मैं मनमें कोई पूर्वग्रह रखे बिना, खुले दिमागसे प्रवृत्त हुआ। मैं अस्पृश्यताका विरोध इसलिए करता हूँ कि इसे मैं बहुत बड़ा पाखण्ड मानता हूँ। अगर कोई मुझे इस बातकी प्रतीति करा दे कि यह बहुत बड़ा सत्य है तो मैं अपनी भूलपर पश्चात्ताप करूँगा और अस्पृश्यतामें पूरी आस्था रखूँगा। इससे ज्यादा मैं कुछ नहीं कह सकता।

लेकिन अन्तमें मुझसे आपने जो एक बहुत ही स्पष्ट-सा प्रश्न पूछा है, उसका उत्तर दे देना चाहिए। ईश्वरमें विलीन होनेपर ही सब-कुछ मिलकर एक हो जाता है। तब न गुण रह जाता है, न दुर्गुण; न अच्छाई रह जाती है, न बुराई; न पाप, न पुण्य; न सुख और न दुःख; और अगर कहना चाहिए तो न सत्य और न असत्य ही। वह तो परिभाषातीत है। लेकिन जबतक मैं यह शरीर धारण किये हुए हूँ तबतक तो मैं द्वैतका अनुभव करता ही रहूँगा। द्वैतका लोप तो मानसिक बोधके रूपमें मेरी कल्पनाकी ही वस्तु हो सकती है। अगर कोई इसके विपरीत बात कहता है तो मुझे उसकी बातपर शंका करनेका अधिकार नहीं होगा और मैं उसकी तुलनामें अपनी स्थितिकी हीनता खुशी-खुशी स्वीकार कर लूँगा। लेकिन, उस हीनताके बारेमें सोचकर मुझे कोई परेशानी नहीं होगी। क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरी स्थिति, सत्यको जिस रूपमें मैं देखता हूँ, उसके अनुसार ही होगी।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९४८) से।

४७५. पत्र : मणिलाल गांधीको

१५ अप्रैल, १९३३

चि० मणिलाल,

तेरी दो चिट्ठियोंके जवाब देने हैं। पिछले पत्रका जवाब देना चाहता था पर नहीं दे पाया।

प्रागजी बम्बई आ पहुँचे हैं, यह सुना तो है पर उनकी ओरसे अभी कोई समाचार नहीं आया।

तूने नारणदासको प्रेसके कुछ सामानका पैसा भर देनेके लिए लिखा है। लेकिन यह कैसे हो सकता है?[1] ट्रस्टके पैसेका यह उपयोग तो अनुचित ही माना जायेगा।

१. देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", १४-४-१९३३।

नारणदास निजी तौरपर कोई व्यवस्था कर सके तो अलग बात है। तुझे इस तरहके सम्बन्ध सीधे व्यापारियोंसे ही बनाने चाहिए अथवा माल वहींके व्यापारियोंकी मार्फत मँगवाना चाहिए या फिर पैसा पहलेसे भेजना चाहिए। मैं तेरी कठिनाई समझता हूँ। किन्तु उसका जो भी हल ढूँढ़ा जाये वह अनुचित तो नहीं होना चाहिए। अन्यथा किसी दिन हम निन्दाके पात्र ठहरेंगे। हमें अपनी चादरके अनुसार ही अपने पाँव फैलाने चाहिए। अपने पाँव सिकोड़कर सोना अच्छा है लेकिन किसी दूसरेसे ओढ़ना नहीं लेना चाहिए।

वहाँ बुखारका जो प्रकोप हुआ था, आशा है, उससे सकुशल निकल आये होगे।

पथ्थर आदि जो लोग वहाँ हवा बदलनेके लिए आते हैं अपना खर्च आप उठाते हैं या वह तुझे उठाना पड़ता है। वह तेरे ऊपर पड़ता हो और तू इस बोझको उठा सकता हो तो बहुत अच्छा है किन्तु यदि न उठा सकता हो तो तुझे नम्रता-पूर्वक कह देना चाहिए कि सबको अपना-अपना खर्च स्वयं भरना पड़ेगा। झूठी प्रतिष्ठाके खयालसे अपने वशके बाहर कुछ भी करना अधर्म समझना। हम जैसे हों हमें वैसे ही दिखना चाहिए।

छापाखाना शहरमें ले जानेकी तेरी माँग तो बिलकुल अच्छी नहीं। उसका अर्थ यह होगा कि मेरे सारे आदर्श गलत हैं या तेरा उनमें विश्वास नहीं है या यह कि तुझमें उनका पालन करनेकी शक्ति नहीं है। इनमें से जो भी कारण हो तुझे उस हालतमें ट्रस्टी तो नहीं होना चाहिए और फीनिक्स छोड़ देना चाहिए। तू यह भूल गया मालूम होता है कि कितना कष्ट उठाकर और कितने उत्साहसे मैंने अपना शहरका डेरा नाबूद करके फीनिक्स बसाया था। फीनिक्समें ही तू बड़ा हुआ, वहीं तूने प्रायश्चित्त किया था, सीताका जन्म वहीं हुआ और फिर फीनिक्समें ही तूने स्वतन्त्र जीवनका आरम्भ किया। यह सब भूलकर एक क्षणमें तू उसका उच्छेद करनेके निर्णयपर आ गया, यह कैसी अस्थिरता और दयनीय स्थिति है।

तूने एक गलती की और मैंने उसमें तेरा साथ दिया। वेस्टने इसके लिए मुझे उलाहना दिया। उनका वह उलाहना कुछ हदतक सही ही था। अखबारमें विज्ञापन लेने लगनेकी तेरी यह गलती मुझे अच्छी तो नहीं लगी थी। किन्तु मेरी यह कहनेकी हिम्मत नहीं हुई कि 'इंडियन ओपिनियन' बन्द करना हो तो कर दो। खैर, अब तू और न गिर और अपने साथ मुझे मत गिरा। मैं तो अब नहीं गिरूँगा। यदि तू फीनिक्समें योगारूढ़ होकर नहीं बैठ सकता और उसके मान्य आदर्शोंका पालन नहीं कर सकता तो तुझे अपना काम समेट लेना चाहिए। या फिर फीनिक्स की रक्षाके लिए तुझे और सुशीलाको कष्ट उठानेका व्रत लेना चाहिए। मैं तो तुझसे यह चाहता हूँ कि तू लाचार होकर फीनिक्स बन्द करे उससे ज्यादा अच्छा यह होगा कि तू ट्रस्टियोंको अपना त्यागपत्र दे दे और फिर तेरे मनमें जो आये सो कर। तू निष्कलंक रहकर फीनिक्स छोड़ दे, यह मुझे अच्छा लगेगा। उसका मुझे दुःख नहीं होगा। किन्तु यदि तुझे वहाँसे कलंकित होकर निकलना पड़ा तो इससे मुझे गहरी चोट लगेगी। याद रख कि तू अभी-अभी एक सार्वजनिक संस्थासे दस हजार रुपये

लेकर गया है। भूतकालको भूल जा। नींदसे जाग। तेरे मनमें एक विचार आया और मैंने उसीको पकड़कर इतना सब लिख दिया, ऐसा सोचकर तू दुःखी मत होना। इस विचारसे तेरी मनोदशा सूचित होती है। तेरे मनका यह रुख खतरनाक है, इसीलिए मैं तुझे सावधान कर रहा हूँ।

एक ओर मिस श्लेसिन तेरे विषयमें सुन्दर सपने देख रही है और दूसरी ओर तेरी दृष्टि डर्बनकी जूठनपर है। तुझमें इतनी ऐंठ तो होनी ही चाहिए कि तू अपने पितासे प्राप्त विरासतको यदि और चमका न सके तो कमसे-कम बरबाद न करे। फीनिक्सके क्या आदर्श हैं, यह तो तू जानता है या उन्हें भी भूल गया? एक बार उन्हें फिर पढ़ लेना।

मिस श्लेसिनका सुझाव है तो बहुत अच्छा किन्तु मुझे लगता है कि उसे करना तेरे वशका नहीं है। अमरीकाकी यात्राका खर्च कैलेनबैक नहीं देंगे और किसी दूसरी जगहसे वह मिल नहीं सकता। और इस बीच 'इं० ओ०'का चलाया जा सकना मैं असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य मानता हूँ। तू अमरीका जाये और वहाँसे तालीम लेकर आये तो भी मुझे ऐसा नहीं लगता कि अनेक जातियोंके बीमार लोग वहाँ अपना नैसर्गिक उपचार कराने आयेंगे। तथापि तुझे आत्मविश्वास हो और यह सब योजनाके अनुसार होना शक्य जान पड़ता हो तो मुझे अच्छा ही लगेगा, क्योंकि उसमें हेतु शुभ है।

आशा है सीताकी तबीयत अब बिलकुल ठीक हो गई होगी। बहुत सावधानीसे रहना।

यह पत्र दो-चार बार पढ़कर अपनी दिशाका निश्चय करना। इतने प्रश्नोंपर विचार करना:

१. तुम दोनोंका ध्येय क्या है?

२. फीनिक्सके आदर्शका पालन करना है या नहीं? उसके लिए अपनेमें आवश्यक शक्ति महसूस करता है?

३. 'इंडियन ओपिनियन' स्वावलम्बी हो सकता है या नहीं?

इतना तो निश्चयपूर्वक समझ ले कि फीनिक्सके आदर्शोंका त्याग करके फीनिक्स नहीं चलाना है। 'इं० ओ०' को फीनिक्ससे नहीं हटाना है।

यह पत्र मैंने तुझे डाँटनेके लिए नहीं, तुम दोनोंको जगानेके लिए ही लिखा है। अनिश्चय बुरी चीज है।

हम लोग सब प्रसन्न हैं। यह पत्र बहुत लम्बा हो गया है और अब मेरे पास समय भी नहीं है। इसलिए यहाँके समाचार नहीं लिखता।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०६)से।

४७६. पत्र : सुशीलाबहन गांधीको

१५ अप्रैल, १९३३

चि० सुशीला,

मणिलालको लिखा पत्र[1] तुम दोनोंके लिए है, इसलिए इस पत्रमें ज्यादा क्या लिखूँ?

सीताको डाँटे-फटकारे और पीटे विना, हँसते-खेलते जितना सिखा सको, उतना ही सिखाओ। तुम दोनों उसे जो सिखाओगे उसमें से वह बहुत-थोड़ा सीखेगी। तुम जो करोगे, उसकी नकल वह अवश्य करेगी।

रामदास अभी नहीं छूटा है। मईके आरम्भमें छूट जायेगा।

मेरी खुराकमें केवल इतना हेरफेर हुआ है कि मैं रोटी और सब्जी नहीं लेता फल और दूधसे काम चलता है। दूधको गरम नहीं करता। हाथमें बराबर दर्द है, पर यह बुढ़ापेकी निशानी लगती है।

बा के पत्र आते रहते हैं। वह ठीक है। काम तो मेरे पास बहुत है ही। रोज तीन बजे उठ जाता हूँ। दिनमें सो लेता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ४८०७) से।

४७७. पत्र : क० मा० मुंशीको

१५ अप्रैल, १९३३

भाई मुंशी,

ऐसा लगता है कि तुम दोनोंने बारी-बारीसे पत्र लिखनेका निर्णय किया है।

जो गुजराती नर्मदाशंकरको[2] नहीं जानता उसे गुजराती कैसे माना जा सकता है? मुझे तो उनका परिचय बचपनमें ही हो गया था। "सहु चलो जीतवा जंग ब्युगलो वागे" — बिगुल बज रहा है, सब लोग लड़ाई जीतने चलो, यह कविता गाते-गाते मैं कभी थकता ही नहीं था। उस समय जो तान छेड़ी थी वह आफ्रिकामें पक्की हुई। तबतक 'गीता' का पुजारी तो मैं बन ही चुका था। किन्तु नर्मदाशंकर द्वारा लिखित 'गीता' के अनुवादकी प्रस्तावनाने 'गीता' माताके प्रति मेरी भक्तिको दृढ़ बना दिया तथा नर्मदाशंकरके प्रति मेरा आदर बढ गया। मुझे दुःख इसी बातका है कि अपनी अनेक प्रवृत्तियोंके कारण मैं नर्मदाशंकर-जैसे लेखक और कविसे उतना परिचित न हो सका जितना कि मैं होना चाहता था।

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. (१८३३-८८); एक गुजराती कवि।

आशा है फिलहाल तुम मुझसे इससे अधिक की अपेक्षा नहीं करोगे। इतना भी सुबह-सुबह तीन बजे उठकर लिख पाया हूँ।

हरिजनोंकी खातिर जीनेका व्रत निबाहना कठिन कार्य है; उनकी खातिर मरनेकी योग्यता पैदा कर पाना तो और भी कठिन है। सत्यनारायण हमसे इतना-कुछ चाहते हैं कि हमारी हिम्मत जवाब देने लगती है। उन्हें बिलकुल बेदाग भेड़ चाहिए, अच्छेसे-अच्छा कुम्हड़ा चाहिए। वे निष्पाप मनुष्यके सिर माँगते हैं। किन्तु हम कहाँसे लायें? किसी गन्दी बातका विचार मनमें उठा नहीं कि वह व्यक्ति अनुत्तीर्ण हुआ। फिर भी उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। लेकिन वह कवियोंका कवि इतना ईर्ष्यालु है कि अन्य कवियोंकी पूजा ही नहीं करने देता। इस दुःखका रोना कहाँ रोऊँ?

मैं मानता हूँ कि तुम्हारा दर्द बिलकुल चला गया है।

आशा है जगदीश ठीक होता जा रहा होगा।

अब कवीबाई न्यासके[1] बारेमें।

इस न्यासके सभी कागज-पत्र मैं पढ़ गया हूँ। मेरा विचार यह है कि 'हाई क्लास' (उच्च वर्गीय) माने जानेवाले हिन्दुओंको पूरी सुविधाएँ प्राप्त होनेके बावजूद जहाँ गुंजाइश हो वहाँ हरिजनको लेनेमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस न्यासमें हरिजनोंका निषेध नहीं है। किन्तु यदि तुम सब वकील इसका यही अर्थ करो कि पाठशालाओंमें 'उच्च वर्ण' के हिन्दू विद्यार्थी काफी तादादमें नहीं आयेंगे, भले बेंचें या स्थान खाली ही क्यों न पड़े रहें किन्तु हरिजनोंको स्थान नहीं मिलेगा तो फिर मेरे लिए कुछ कहनेको नहीं रह जाता।

इसके बाद केवल शिक्षाका प्रश्न रह जाता है। न्यासके धनका उपयोग किस प्रकारकी शिक्षामें किया जाये? यह विषय ऐसा नहीं है जिसपर पत्रों द्वारा चर्चा की जा सके। शिक्षा-सम्बन्धी अपने विचारोंको मैं थोड़े-से लोगोंके ही गले उतार पाया हूँ। एक ओर तो मुझे गोखलेकी कल्पनाके त्यागी शिक्षक चाहिए और दूसरी ओर शिक्षाकी ऐसी व्यवस्था कि जिसका लाभ मृतप्रायः ग्रामीण भी उठा सकें। इस देशके लिए किसी अन्य देशका अनुकरण करना उचित नहीं जान पड़ता। इसलिए हमें शिक्षा-सम्बन्धी अपने स्वतन्त्र विचार और स्वतन्त्र योजना बनानी होगी। किन्तु फिलहाल तो यह मेरा मधुर-स्वप्न ही है। और इस बारेमें सोच-विचार करनेका तुम्हारे पास भी समय कहाँ है?

चींटीकी चालसे मैं तुम्हारी पुस्तकोंमें प्रवेश कर रहा हूँ। किन्तु मेरा अध्ययन चल रहा है। क्या तुमने अहमदाबादी ठिगने बैलोंकी ठिगनी गाड़ी देखी है? इस बैलगाड़ीकी चाल आगाखाँके घुड़दौड़के घोड़ोंकी चालको मात करनेवाली होती है। उसी गतिसे सरदार तुम्हारी पुस्तकें पढ़ रहे हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इस सबमें मेरा स्वार्थ है। तुम दोनोंसे मुझे काफी सेवा लेनी है। जिनसे इतनी अधिक आशा रखी जाये क्या उन्हें पूरी तरह जान नहीं लेना चाहिए?

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ २१२।

इससे तुम समझ जाओगे कि हम लोग तुम्हारे बारेमें सोचते और बात करते ही रहते हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७५२८) से; सौजन्य : क० मा० मुंशी

४७८. भेंट : कीकाभाई और दूदाभाईसे[1]

[१६ अप्रैल, १९३३ या उसके पूर्व][2]

अगर हिन्दू समाज आप लोगोंके साथ न्याय नहीं करता तो मैं फिर आमरण अनशन करूँगा।[3] आप लोग शिक्षाके क्षेत्रमें पिछड़े हुए हैं, इसलिए आप ऐसे किसी स्कूलसे — सरकारी स्कूलसे भी — लाभ उठा सकते हैं जिसके द्वार आपके लिए खुले हुए हों।

कई विषयोंपर लम्बी चर्चाके बाद अन्तमें गांधीजीने कहा कि आखिरकार अस्पृश्यता तो अब तेजीसे मिट रही है और बहुत जल्द ही वह अतीतकी चीज बनकर रह जायेगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १७-४-१९३३

४७९. दो उदाहरण

हरिजन सेवा संघके कड़ी इलाकेके प्रतिनिधि श्री छोटालाल पण्डित लिखते हैं[4]:

इसी तरहका एक दूसरा पत्र भी है। उसके लेखक एक जनसेवक हैं किन्तु फिलहाल वे हरिजन-सेवाका कार्य नहीं कर रहे हैं। उनके पत्रसे निम्नलिखित अंश दे रहा हूँ:[5]

१. अहमदाबादके हरिजन नेता।

२. अखबारमें छपी रिपोर्टमें तारीख १६ अप्रैल दी गई है।

३. भेंटकर्ताओंने गांधीजी को सुझाव दिया था कि वे फिर आमरण अनशन न करें, क्योंकि इससे हरिजन लोग अपयशके भागी बनते हैं।

४ और ५. पत्रोंके अनुवाद यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पहले पत्रके लेखकका कहना था कि कभी-कभी तो हरिजन-सेवकोंके कार्यके फलस्वरूप हरिजनोंके कष्ट और बढ़ जाते हैं। पत्र-लेखकने किसी शालामें यह देखा कि हरिजन विद्यार्थियोंको कक्षाके बाहर बरामदेमें बिठाया जाता है। वे शिक्षक और विद्यार्थियोंसे मिले और उन्हें हरिजन विद्यार्थियोंको कक्षाके भीतर बिठानेके लिए राजी कर लिया। गाँववालोंको खबर लगी तो उन्होंने इस सेवकको धमकाया, गाँवके हरिजनोंको धमकाया और उनसे वचन लिया कि वे भविष्यमें अपने बच्चोंको सवर्ण हिन्दू बालकोंकी पाठशालामें नहीं भेजेंगे, और जिस शिक्षककी कक्षामें यह सब हुआ था उससे जुर्माना वसूल किया गया।

दूसरे पत्रके लेखकका कहना था कि हरिजन सेवा संघके प्रयत्नोंके बावजूद अस्पृश्यता-निवारणकी दिशामें कोई ठोस काम नहीं हुआ है। लोगोंमें हृदय परिवर्तन देखनेमें नहीं आ रहा है।

व्यवहार करें।' आग लगी हो तो जो घर बचाया नहीं जा सकता वहाँ पानीका छिड़काव नहीं किया जाता। लेकिन जिधर आगकी लपट बढ़ रही हो, वहीं अधिक पानी छोड़ा जाता है। ऐसा करके हम उस बढ़ती हुई अग्निको घेर लेते हैं और उसे कमजोर कर देते हैं। आगको तो खुराक चाहिए; उसके बिना वह जी नहीं सकती। इसलिए अड़ोस-पड़ोसका स्थान सुरक्षित हो जानेपर वह अपने-आप शान्त हो जाती है। तात्पर्य यह है कि जहाँ हरिजनोंमें थोड़ी भी शक्ति हो, जहाँ वे सीधी सहायता लेनेके लिए तैयार हों, वहाँ उन्हें सीधे सहायता दे देनी चाहिए। जहाँ वे तैयार न हों वहाँ उन्हें छोड़कर, उनके अड़ोस-पड़ोसमें जहाँ लोग तैयार हों, वहाँ अपनी सेवा-सहायता पहुँचानी चाहिए। वह स्थल सजीव हो जानेके बाद निर्जीव स्थलोंमें भी चेतनता आ जायेगी।

जिस गाँवकी बात की गई है, वहाँके सनातनियोंसे विनय और दलील तो अवश्य की जा सकती है। शायद ही ऐसा कोई गाँव होगा, जहाँ हरिजनोंको चाहनेवाला एक भी आदमी न हो। हमें उन्हींके जरिये उस गाँवसे अपना सम्बन्ध साधना चाहिए।

जिस पाठशालाकी चर्चा श्री छोटालाल पण्डितने की है उसीको लीजिए। हरिजन बच्चे चले गये, इसमें कोई हानि नहीं हुई। वहाँ जाना आवश्यक ही था। अगर इन बच्चोंके माँ-बाप अपने बच्चे सौंप देनेके लिए तैयार हों तो, उन्हें अपने कब्जेमें करके किसी दूसरी जगह पढ़ानेकी व्यवस्था करनी चाहिए। शिक्षकमें शूरता हो, तो वह बहिष्कारका सामना करे, मार-पीट भी बरदाश्त करे और ज्यों ही अनुकूल अवसर मिले उन बच्चोंको पुनः उसी शालामें दाखिल करानेकी कोशिश करे। साथ ही वहाँके सनातनियोंसे विनयपूर्वक बातचीतका सिलसिला जारी रखे। अधिक क्या, शिक्षकमें अगर धर्मका तीव्रभाव हो तो वह उन तीन बच्चोंके लिए अपने प्राणों तककी बाजी लगा दे। पर मान लिया जाये कि उतनी शक्ति शिक्षकमें नहीं है, तो श्री छोटा-लालका तो कर्तव्य है कि वे उस गाँवका पीछा न छोड़ें। वे वहाँके सनातनियों और हरिजनोंके साथ फिरसे सम्बन्ध जोड़नेके अवसर ढूँढ़ें। ऐसे अवसर तो उन्हें दोनोंकी सेवा करनेसे ही मिल सकते हैं। वे उनके मित्रोंको ढूँढ़ निकालें; जिनका उनपर प्रभाव पड़ता हो, उनकी सहायता लें। उन्हें सनातनियोंकी न्याय-बुद्धि जगानी है और हरिजनोंका भय दूर करना है। थोड़ेमें उनका धर्म यह है कि दूसरे काम करते हुए भी वे न तो उस गाँवको भूलें, न उन तीन हरिजन बालकोंको। बल्कि हर तरहसे उनकी रक्षा करना अपना एक विशेष ध्येय बना लें।

इन पत्रोंके पढ़नेसे हमारी दृष्टि दो बातोंपर जाती है। एक तो यह कि शुद्ध एकाग्रचित्त और प्राण न्योछावर करनेवाले सेवक-सेविकाएँ हमारे पास कम हैं। जिसने एक कामको अपना तन, मन, धन दे दिया है, मानना चाहिए कि उसने सभी कामोंको अपना सर्वस्व सौंप दिया। जो अनेक कामोंको अपना तन-मन-धन देनेका दावा करता है, वह असलमें एकको भी नहीं देता। उसकी स्थिति तो व्यभिचारीकी स्थिति है। इस महान् सत्यको हमने अबतक ठीक-ठीक नहीं पहचाना है। इसे हम

पहचान लें तो हमारा बहुत-सारा कार्य बिलकुल आसान हो जाये। सर्वस्व-अर्पण करनेवाले हरिजन-सेवकको छोडकर अस्पृश्यताका कलंक और कौन धो सकता है?

दूसरी बात यह है। जो मैं कहता हूँ, उसपर मुझे आचरण करना ही चाहिए। यह मेरे स्वभाव ही में है। देशकी सेवा मैंने गुजरातसे शुरू की। पर गुजरात, हिन्दुस्तान, पृथ्वी, विश्व इन सबमें मैं कोई भेद नहीं मानता। एकका ध्यान लगानेसे अनेकका ध्यान लग जाता है। मेरा जीवन इसी नींवपर खड़ा है। अहिंसाका आन्दोलन सार्वजनिक कल्याणका अविरोधी होना चाहिए। अस्पृश्यता-निवारणके यज्ञमें मेरी यही दृष्टि रही है। मैं जब सनातनियोंके दोष गिनाता हूँ तो वे दोष मेरे भी होते ही हैं। मैं अपनेको उनसे भिन्न नहीं मानता। प्रायश्चित्त करनेके लिए मैं अवश्य अधीर हूँ। किन्तु मेरी अधीरता कैसे काम आयेगी? प्रायश्चित्तके अनुरूप मुझमें पवित्रता होगी, तभी तो ईश्वर मुझे वैसा करनेकी आज्ञा देगा। इसीलिए मैं दिन-रात उपयुक्त पवित्रता और आज्ञा-पालनकी शक्तिकी भिक्षा अपने सिरजनहारसे माँगता रहता हूँ।

[गुजरातीसे]

हरिजनबन्धु, १६-४-१९३३

४८०. पत्र : नारणदास गांधीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला।

रमाबहनको तकलीफकी जाँचके लिए माणेकरावके पास भेजो। यदि वे उसका इलाज करनेके लिए तैयार हों तो करें। माणेकरावको बात समझमें न आयें तो वह पूना आ जायें। पूनामें एक वैद्य हड्डियोंसे सम्बन्धित बीमारियोंका उपचार करते हैं? रमाबहनको उन्हें दिखायेंगे या और जो-कुछ करना ठीक मालूम होगा सो करेंगे। यहाँ डाक्टरी मदद भी सुलभ है। अन्तमें यदि ऑपरेशन ही जरूरी मालूम हुआ तो वह वहाँ किया जाये या कहीं अन्यत्र, इसका विचार कर लिया जायेगा। इस बीच बच्चे वहीं रहें तो अच्छा। वहाँ न रह सकें तो साथमें रहें। बड़ौदामें नाजुकलाल[1] आदि हैं इसलिए वे लोग वहाँ उसकी सार-सँभाल कर सकेंगे, ऐसा मानता हूँ। अलबत्ता, मैं जानता नहीं कि उसके घरमें कितनी सुविधा है। अब्बास साहबके घर भी रह सकती है। इस समय वहाँ भीड़ नहीं है। देशपांडे साहबके घर रहने लायक सुविधा है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। तो प्रो० माणेकरावसे पूछ लिया जाये और उसके बाद बड़ौदा जाये। माणेकराव बड़ौदामें न हों अथवा इलाज करनेके लिए तैयार न हों तो फिर वह पूना चली आये। पूनामें तो प्रो० त्रिवेदीका घर धर्मशाला-

१. नाजुकलाल चोकसी, लक्ष्मीदास पु० आसरके दामाद।

जैसा ही है। उनका यह ऋण तो हम लोगोंपर चढ़ता ही रहेगा। उन्हें यह अच्छा भी लगता है। उनके यहाँ इस समय भीड़ नहीं है।

मेरी राय केशूको यन्त्र दे देनेके ही पक्षमें है। उसकी कीमतका हिसाब मैंने नहीं लगाया है। यह तो तुम और केशू ही कर सकते हो। मैं ऐसा मानता हूँ कि यन्त्रमें जो टूट-फूट हुई है वह और इसी तरहके दूसरे खर्च भी कीमतमें शामिल करने होंगे।

माधवजी का पत्र मिला है, पत्र बहुत अच्छा है। उसने भी कलकत्ता पत्र लिखा है और कहा है कि बच्चोंको आश्रम भेज दिया जाये।

जेकीके बच्चोंके सम्बन्धमें तुम्हारी बात मैं समझ गया। मेरे ऊपर ऐसी छाप है कि बच्चे सुशील हैं।

अब तुम्हारी बात। हमारा आदर्श राम हैं। रामकी भी टीका करनेवाले लोग थे तब मेरी और तुम्हारी क्या बिसात? हमें तो इस टीकासे मात्र सार ले लेना चाहिए। छगनलालकी टीका और उसके सुझाव इसके साथ हैं। उनमें से अधिकांश तो पुराने ही हैं। प्रेमाबहनके सम्बन्धमें उसने जो लिखा है उसे यदि वह शान्त मनसे पढ़ सके तो भले पढ़े।

. . .[1] के विषयमें उसके सुझावको मैं अनुचित मानता हूँ। किसी पिताको अपनी लड़कीसे कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह कहनेका किसीको क्या अधिकार है? लेकिन यह सोचकर कि छगनलालने अपने मनके अनुसार जो टीका लिख भेजी है उसमें सुधार करके भेजनेके बजाय उसके मनमें जो है उसे जानना ही तुम्हारे लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। मैं उसकी टीकाको जैसी वह है उसी रूपमें भेज रहा हूँ। उसमें और भी बहुत-कुछ ऐसा है जो मेरी आँखको सुधारने लायक प्रतीत हो रहा है। किन्तु वह सब मैं लिखने लगूँ तो पत्र बहुत लम्बा हो जायेगा। छगनलालके मनका यहाँ मैंने जो परिचय पाया है वह बाहर नहीं पाया था। मेरा दृढ़ विश्वास है कि उसका हृदय स्वच्छ है। वह त्यागवृत्तिका विकास करना चाहता है किन्तु वह बालक है। उसकी बुद्धि अपक्व है, अवलोकन-शक्ति कच्ची है, मन व्यवस्थित नहीं है और स्मरण-शक्ति भी दुर्बल है। उसका मन बहुत-सारी चीजोंमें घूमता है इसलिए उसमें एकाग्रताकी शक्ति बहुत कम है। अपनी इन सारी कमियोंका उसे पूरा भान नहीं है। किन्तु उसमें अच्छा बनने और आगे बढ़नेकी उत्कट आकांक्षा है। उसमें द्वेष भाव नहीं है किन्तु बुद्धिके विकासके अभावमें उसके निर्णय अपूर्ण और गलत होते हैं। मेरा खयाल है कि उसके सम्बन्धमें यह विश्लेषण केवल मेरा नहीं है। यद्यपि अपने इन विचारोंकी चर्चा मैंने किसी अन्य व्यक्तिसे नहीं की है। हाँ, काकाके साथ कुछ चर्चा की है। छगनलालको अपना यह मत मैंने अभीतक बताया नहीं है। वह पहली बार इसी पत्रसे जानेगा। आज उसे प्रकट करना उचित जान पड़ा सो इसलिए कि तुम उसके विषयमें कोई गलत धारणा न बनाओ। उसने जो-कुछ लिखा है, उसमें शायद तुम्हें द्वेष-भावकी गंध आयेगी। किन्तु यदि तुम मान सको तो विश्वास करना कि उसके बारेमें मेरा अवलोकन सही है। ऐसा विश्वास यदि तुम कर सके तो

१. यहाँ नाम छोड़ दिया गया है।

छगनलालने तुम्हारी जो टीका की है और जो सुझाव दिये हैं उनमें जो-कुछ ग्राह्य है उसे तुम ग्रहण कर सकोगे। उसकी की हुई टीका और सुझावोंका जवाब मुझे तो देना ही। दूसरे साथियोंको यह पढ़ाना चाहो तो मेरा निषेध नहीं है अगरचे दूसरोंको पढ़वानेकी आवश्यकता मुझे नहीं लगती।

तुम अपनेमें जो गुण चाहते हो वे गुण सबसे ज्यादा और सो भी पर्याप्त मात्रामें तुममें ही हैं, ऐसा मैं मानता हूँ और इसीलिए तुम आश्रमके मन्त्री-पदपर हो। तुम्हारे कार्यसे मुझे बिलकुल भी असन्तोष नहीं है। तुम्हारे विषयमें मेरा यह मत ज्यों-का-त्यों कायम है और यदि दूसरोंपर तुम्हारे कार्यकी यह छाप न पड़ी हो तो मुझे आश्चर्य होगा। न० के मनपर यह छाप नहीं पड़ी, ऐसा वह अपने पत्रमें कहता है। छगनलाल कुछ दूसरोंके बारेमें भी ऐसा ही मानता है। किन्तु किसीने मुझसे शिकायत नहीं की है।

हाँ, यह लिखते हुए भगवानजी की याद आ रही है। लेकिन उसकी शिकायतका मेरे मनपर कोई असर नहीं हुआ था। भगवानजी का स्वभाव मैं ठीक पहचानता हूँ। लेकिन हमें तो जिनके मनपर प्रतिकूल छाप पड़ी हो उनकी बात सुननी है। जो हमें अच्छा मानते हैं उनसे हम काम ले सकते हैं किन्तु उनसे हम कुछ सीख नहीं सकते। हमारे पहरेदार तो आलोचक ही हो सकते हैं। इसलिए न० से तुम्हें जितना सीखना हो उतना सीख लेना।

तुम्हें ठीक लगे तो . . .[१] और . . .[२] के पत्र तुम तोतारामजी, पण्डितजी, नरहरि, लक्ष्मीदास तथा मथुरादासके सामने रखना। उसके विषयमें उन्हें कुछ कहना हो तो सुनना। तोतारामजी या पण्डितजी बागडोर अपने हाथमें लेना चाहें तो दे देना। और यदि वे चाहें तो उनके अधीन हिसाब-किताबका काम करना। आश्रमकी दृष्टिसे मैं तोतारामजी को आश्रमके पितृपदके लिए सबसे ज्यादा योग्य मानता हूँ। हमें आश्रमके लिए पिता ही तो चाहिए। आश्रमको हमने एक कुटुम्ब माना है। मैं जब वहाँ रहता हूँ तो अपनेको पिता ही मानता हूँ। तोतारामजी इस पदको स्वीकार न करें तो भी उन्हें पिता मानकर प्रत्येक उलझनके समय यदि तुम उनकी सलाह का निःसंकोच अमल करो तो मैं इसमें कुछ अनुचित नहीं मानता। लक्ष्मीदासमें आश्रमका मन्त्री होनेके लिए जो गुण चाहिए वे सब हैं किन्तु मैं नहीं जानता कि वह इस समय वहाँ रह सकता है या नहीं। नरहरि तो नहीं ही रह सकता क्योंकि मेरा खयाल है वह अपनी दूसरी जिम्मेदारियोंसे मुक्त नहीं हुआ है। चिमनलालका तो शरीर ही इस कामके अनुपयुक्त है। मथुरादासको अभी तैयार होना बाकी है। जिन साथियोंके नाम इस सम्बन्धमें याद आये उनके बारेमें मेरे ये विचार हैं। विनोबाको वर्धासे हटाया नहीं जा सकता। विनोबाकी जिम्मेदारी वर्धातक सीमित है और इस समय तो उन्होंने, कह सकते हैं, वर्धा भी छोड़ दिया है। आजकल वे हरिजनोंके एक गाँवमें[३] रहते हैं। इसमें मेरी पूरी सहमति थी।

१ व २. यहाँ नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

३. १९३२ में वे वर्धासे डेढ़-दो मील दूर नालवाड़ी नामके गाँवमें चले गये थे।

अभी तो, सम्भव है, विनोबा किसी इससे भी अधिक सम्पूर्ण हरिजन ग्राममें चले जायें। इसलिए तुम सब लोग जो वहाँ हो उन्हें तो इसी परिस्थितिमें से अपनी राह ढूंढ़ निकालनी है; और कोई उपाय नहीं है। यह सब मैंने तुम्हें मात्र इसलिए लिखा है कि तुम इसपर विचार करो। आश्रम छोड़ते हुए जब मैंने आश्रमका श्रेय तुम्हारे हाथोंमें सौंपा तब तुम्हें कोई अधिकार नहीं बल्कि एक जिम्मेदारी सौंपी गई थी और आज भी वही स्थिति है। इस बीच मैंने ऐसा कुछ नहीं पाया जिसे देखकर ऐसा लगे कि यह जिम्मेदारी तुमसे ले लेनी चाहिए। और तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। इसलिए अपनी जिम्मेदारीका विचार करते हुए तुम्हें मेरे सुझावोंमें से जो अनुकूल लगें उनपर ही अमल करना है। यहाँ बैठे हुए मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता। अच्छा या बुरा, जो-कुछ होना होगा, तुम्हारे ही हाथों होना है। यह तो एक सुयोग है कि मुझे पत्र लिखनेका अधिकार है। यदि यह अधिकार मुझे न होता तो तुम्हें जो सूझता वही तो तुम करते। इसलिए मेरे विचारों और पत्रोंको रद्द मानकर तुम तो वही करना जो तुम्हें ठीक लगे। मेरा कर्तव्य तो मैं जो-कुछ सुनूँ और सोचूँ उसे तुम्हारे सामने रखकर समाप्त हो जाता है। मैं चाहता हूँ कि इस सबमें तुम 'गीता' के शब्दोंमें तटस्थ और उदासीनवत् रह सको।

यह तुम्हारे लिए चिन्ताका कारण नहीं होना चाहिए। हाँ, यह तुम्हारे समत्वकी परीक्षाका अवसर अवश्य है। समत्व कभी न खोना।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५६ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४८१. पत्र : जमनालाल बजाजको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। होम्योपैथीपर मुझे अधिक विश्वास नहीं है। परन्तु इस कारण पहाड़ जाना स्थगित नहीं किया जा सकता। अलमोड़ा जानेका विचार मुझे पसन्द है। अलमोड़ेमें भी होम्योपैथ डाक्टर रहता है। पर इस दर्दके लिए पहाड़ी हवा और दूध, मक्खन, फल, समूचे गेहूँके आटेकी रोटी और सब्जीके बाद दवाकी बहुत कम जरूरत पड़ेगी। अलमोड़ा जाकर अधिक काममें मत फँस जाना। यदि छोटेलाल साथ जा सके तो ले जाना। उस हरिजन भाईके लिए कोशिश करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद, पृष्ठ १०८

४८२. पत्र : आश्रमके बालक-बालिकाओंको

१६ अप्रैल, १९३३

बालको और बालिकाओ,

तुम्हारे पत्र अब अनियमित रूपसे मिलते हैं।

. . .[1] के बारेमें तुम लोग थोड़ा-बहुत तो जान ही गये होगे। कुछ तो तुम्हें जानना चाहिए। उससे तुमने क्या शिक्षा ली?

आश्रममें रहनेवाले सब लोग सगे भाई-बहन हैं। यदि किसीके मनमें तनिक भी विकार आ जाये तो उसे तुरन्त अपने बुजुर्गोंसे कह देना चाहिए। विकारको दूर करनेके लिए सख्त कदम उठाना चाहिए। कोई गोपनीय बात नहीं होनी चाहिए।

किसीको एकान्तमें नहीं रहना चाहिए। किसीको बनाव-सिंगार नहीं करना चाहिए। जहाँतक हो सके भीतर-बाहर सादगी बरतनी चाहिए।

मर्यादाका उल्लंघन किसीको नहीं करना चाहिए। एक-दूसरेके प्रति मर्यादाके भीतर रहते हुए ही छूट लेनी चाहिए।

यदि इस सम्बन्धमें सब लोग अपनी-अपनी राय मुझे लिखें तो अच्छा होगा। यदि मैंने तुम्हें पहले भी ऐसा लिखा हो तो भी कोई बात नहीं। ऐसी बातोंकी याद ताजा होती रहा करे यही अच्छा है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/२) से।

४८३. पत्र : नारणदास गांधीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हें सवेरे एक पत्र भेज चुका हूँ। और गोपालका पत्र मुझे मिल गया है। उसे मेरा पत्र बहुत देरसे मिला, इसीलिए उसने पुरी जानेका निश्चय किया। मैंने उसे फिर लिखा है कि अलमोड़ा जाये।

प्रभुदासका मुझे तो एक भी पत्र नहीं मिला। क्या तुम्हें भी नहीं मिला? कहाँ है वह?

महादेव कहता है कि पूरकी पुस्तक मगनलालकी पुस्तकोंमें है। यह तो तुम जानते ही हो कि ये सब पुस्तकें आश्रमकी हैं। यदि उन पुस्तकोंमें हो तो खोजकर भेजना। पुरुषोत्तमने जो सूची भेजी थी उसमें भी पूरकी पुस्तकका नाम था।

१. नाम छोड़ दिया गया है।

पुरुषोत्तम राजकोट न गया हो और यदि वह रुक सकता हो तो उसे रोकना। जमनाका उपचार अभी पूरा नहीं हुआ है और शायद अमीनाको भी उसकी सलाहकी जरूरत हो सकती है। किन्तु इस बातपर तुम्हीं ज्यादा सही विचार कर सकोगे।

आज सवेरे मैंने तुम्हें पत्र लिखा तो है और छगनलालकी टीका भी उसके साथ भेजी है किन्तु वह सब मैंने सकुचाते हुए लिखा है। बात यह है कि मैंने तुम्हारा, छगनलालका, अपना और आश्रमका श्रेय उसीमें देखा। मुझे यह भी ठीक जान पड़ा कि छगनलालके विचारोंको तुम उनके नग्न रूपमें देख लो। छगनलालके मनमें ये विचार क्यों उठते हैं, इसके सम्बन्धमें मेरी धारणा भी तुम जान लो, यह भी मुझे उचित मालूम हुआ। मेरे कानमें 'ईशोपनिषद्'का यह मन्त्र[1] सदा गूँजता रहता है कि सत्यका मुख हिरण्यमय पात्रसे ढँका हुआ है। उसकी सत्यता हर क्षण प्रतीत होती रहती है। किन्तु हमें इस पात्रको हटाना ही होगा। इस तरह सत्यको देखना जो सहन कर सकता है उसे सहन करनेके लिए फिर बाकी बहुत ही कम बच रहता है। हमारे विषयमें कोई जो भी सोचता है वह उसके लिए तो सोलह आना सत्य ही होता है। हममें इस सत्यको सहनेकी शक्ति होनी चाहिए। यह भी अहिंसाका एक प्रकार है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१)। सी० डब्ल्यू० ८३५७ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

४८४. पत्र : विद्या हिंगोरानीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० विद्या,

बडी बालक लडकी है? अब महादेव मिला तो मेरे पर दया खा कर नहिं लिखनी है?

आनंद खुश होगा। उसे लिखनेका कहो। अब तो हिंदीमें लिख सकेगा ना? प्रयत्न करे।

मेरा ख्याल है सही कि महादेवको दस टीपे एरंडीके तेलके देनेसे ज्यादा अच्छा होगा। अगर आलिव आइलका अनुभव कर लिया है तो वही चालु रखो। तुमारा शरीर तो अब अच्छा रहता है?

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी माइक्रोफिल्मसे। सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इण्डिया और आनंद टी० हिंगोरानी

१. १५वाँ।

४८५. पत्र : रमाबहन जोशीको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने नारणदासको विस्तारपूर्वक लिखा है[१]। मैंने उसे तुरन्त प्रो० माणेकरावको दिखाने और यदि वहाँ जाना न हो सके तो पूना भेज देनेके लिए लिखा है। यदि उससे भी ठीक नहीं हुआ तो मैं ऑपरेशन करानेकी बात सोचूँगा। चिन्ताकी कोई बात नहीं है। यदि बच्चोंको आश्रममें रख सको तो रख देना, नहीं तो साथ ले जाना। यदि धीरू नहीं बढ़ रहा है तो हम उसका कोई उपाय खोजेंगे। उसपर कामका या पढ़ने-लिखनेका बहुत अधिक बोझ तो नहीं है? क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि उसे . . .[२] होना सम्भव है?

तुम्हारे खर्चके बारेमें नारणदासका कहना है कि यात्रा आदिका खर्च छोड़ देनेके बाद प्रति व्यक्ति १६ रु० मासिक खर्च आया है। शायद तुम्हें इस खर्चकी तो खबर भी नहीं होगी। सबके ग्यारह जमा होते हैं और उसमें किसी तरहकी बढ़ोतरी नहीं की जाती। मैं देखता हूँ कि तुम्हारे जैसोंका जो खर्च होता है वह आश्रमके हिसाबमें मुजरा किया जाता है, फिर चाहे वह ग्यारह हो या इक्कीस। इसलिए ग्यारहकी संख्यासे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। ग्यारहकी रकम यही सूचित करती है कि खर्चके मामलेमें इससे आगे न बढ़ना हमारा आदर्श है। यदि तुम्हें अधिक घी या किसी अन्य चीजकी जरूरत हो और वह न मिले तो निश्चय ही उसकी शिकायत की जा सकती है। मेरा अनुरोध यह है कि मनमें कुछ भी नहीं रखना चाहिए बल्कि जिन्हें हम अपना स्नेही मानते हों उनसे जो-कुछ मनमें हो वह साफ-साफ कह देना चाहिए। नारणदाससे तो हमारा जीवनपर्यन्त साथ रहेगा। उससे हम कोई दुराव कैसे रख सकते हैं? हम तो संसार-भरके साथ एक-मन होना चाहते हैं तो फिर क्या हम मुट्ठी-भर लोग अलग-अलग रहेंगे?

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४८) से।

१. देखिए "पत्र: नारणदास गांधीको", १६-४-१९३३।

२. इस वाक्यका कुछ अंश छोड़ दिया गया है।

४८६. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तुम्हें एक पत्र तो बीचमें लिखा है। आजकल जब वातावरण इतना अस्थिर हो रहा है, तब तेरे बारेमें समय-समयपर विचार आते रहते हैं। तुझे सिखावन देनेकी इच्छा नहीं होती, और तेरे साथ चर्चामें पड़नेकी हिम्मत नहीं होती। मेरी स्थिति गजेन्द्रकी जैसी है। जरा-सी सूँड़ बाहर रही है। वह भी पानीमें डूब जाये तो साँस रुँध जाये। इसलिए जिनके विषयमें आजकल मनमें विचार आते हैं, उनके लिए केवल प्रार्थना करना ही रहता है। परन्तु किससे करूँ? जो सदा ही जागता रहता है, जिसे आलस्य नामको भी नहीं है, जो हमारे नखकी अपेक्षा हमारे अधिक निकट है, जो सब-कुछ सुनता है, सब-कुछ देखता है, वह तो मेरी प्रार्थनाएँ जानता ही है।

इसलिए उसके आधारपर ही तो सूँड़ पानीके बाहर थोड़ी-सी रही है। उसे जो करना हो सो करे, जैसे रखना हो वैसे रखे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३४१) से। सी० डब्ल्यू० ६७८० से भी; सौजन्य : प्रेमाबहन कंटक

४८७. पत्र : नरहरि परीखको

१६ अप्रैल, १९३३

चि० नरहरि,

तुम्हारा लिफाफा और पोस्टकार्ड एक ही दिन (कल) मिले। भाई-बहन दोनोंके टान्सिल कटवाकर तुमने ठीक ही किया; किन्तु बच्चोंको स्वस्थ रखनेके लिए कितनी देखभालकी आवश्यकता है यह बात समझमें आ जानी चाहिए।

यथासम्भव ताजी हवा;

शुद्ध प्राणायाम;

नियमपूर्वक हलकी कसरत;

दाँत और मसूड़े साफ-सुथरे;

खुराकमें मुख्यत: दूध, दही, फल और साग-भाजीके साथ उचित मात्रामें रोटी;

कमसे-कम भात, दाल और शक्कर खाना छोड़ देना चाहिए।

इन बातोंकी ओर ध्यान न देनेसे बहुत-से उपद्रव उठ खड़े होते हैं।

तुमने नारणदासके बारेमें जो लिखा है उसे मैं समझ गया। नारणदासके जो दोष तुम्हें नजर आये हों वे मुझे लिख भेजना। यदि अलगसे पत्र लिखना चाहो तो लिखना। मैं तो यह चाहूँगा कि तुम्हें उसके जो दोष दिखाई देते हैं उन्हें तुम उसके सामने रखो। किन्तु यदि तुम ऐसा न करना चाहो तो उन दोषोंको मेरे सामने रखना तुम्हारा कर्तव्य है। मेरे लिए यह बात असह्य है कि हमारे मुट्ठी-भर साथियोंमें आपसमें मनमुटाव हो। काका सिंहगढ़ गये हैं। उनका शरीर स्वस्थ हो जानेकी आशा है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं समझता हूँ कि बच्चोंको लगातार ९ घंटे सोने देनेके बजाय उन्हें दिनमें एक घंटे सोने देना ज्यादा अच्छा है। इंग्लैंडमें उन्हें नियमपूर्वक [दिनके समय] सुलाया जाता है।

गुजरातीकी फोटो-नकल (एस० एन० ९०६०) से।

४८८. पत्र : तोताराम सनाढ्यको

१६ अप्रैल, १९३३

भाई तोतारामजी,

तुमारा विवरण[१] अच्छा लगा। महादेवको भजन भेजा वह भी अच्छा। और दोनोंका मेल भी मुझे बहुत प्रिय लगा। हमारा प्रत्येक कार्य प्रभुका भजन ही होना चाहिये।

विवरण दुबारा पढ़ लुंगा। मेरी आकांक्षा तो यह है कि हम इतने फल और इतनी भाजी पैदा करे जो हमारे लिये पर्याप्त हो। यदि गो-माताके लिये भी घास आदि पैदा करें और आश्रमके लिये अनाज तो खेतीके पूर्ण आदर्शको हम पहोंचे। इसमें थोड़ा ज्यादा खर्च भी हुआ तो भी मैं उसको सफल समझुंगा। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सब मूर्खका बकवाद है। खेतीका काम सबसे कम किया और बातें सबसे मैंने इस बारेमें ज्यादा की है। क्या करूँ, खेती उन्हीं चीजोंमें से है जो करनेका खयाल मुझको आधी आयु बीतने पर आया।

बापु

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० २५२६) से।

१. खेती-बाड़ीका; गांधीजी ने अपने ५ जनवरी, १९३३ के पत्रमें इस सम्बन्धमें पूछा था; देखिए खण्ड ५२।

४८९. पत्र : एस० ढवलेको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका १३ अप्रैलका पोस्टकार्ड मिला। इससे पहले आपकी प्रवृत्तियोंके सम्बन्धमें मुझे कोई पत्र नहीं मिला था। मुझसे किसी सन्देशकी तो आपको आवश्यकता है ही नहीं।[1] आपके कामको ही आपका सन्देश होना चाहिए। कार्यकर्ता अपनी नई प्रवृत्तियोंके लिए सन्देश माँगें, यह बात गलत है। उन्हें तो ठोस सेवा करके उनका औचित्य सिद्ध करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० ढवले
१३४, हैरिसन रोड
कलकत्ता

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९८६) से।

४९०. पत्र : कृष्णचन्द्र मुखर्जीको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जो प्रश्न उठाया है, वह नया नहीं है। चूँकि हम लोग चतुर्दिक मृत्यु और विनाशसे घिरे हुए हैं, इसलिए विध्यात्मक शब्द "हिंसा" ही है; लेकिन फिर भी मानव-जातिको जितने भी धर्मोंकी जानकारी रही है, सबमें जीवनको ही नियम माननेका आग्रह किया गया है। किन्तु उसके लिए जो आचरण निर्धारित किया गया है उसे निषेधात्मक नाम "अहिंसा" दिया गया है। शरीर-धारियोंके लिए तो इसका अस्तित्व एक ऐसे आदर्शके रूपमें ही हो सकता है जिसे उन्हें प्राप्त करना चाहिए, किन्तु शरीरके रहते हुए उसे आचरणमें पूरी तरह नहीं उतारा जा सकता। फिर भी, यदि हम अहिंसाके नियमको मान लें तो हम सदा ऐसा आचरण करेंगे जिससे उस लक्ष्यके यथासम्भव अधिकसे-अधिक निकट पहुँच सकें।

१. एस० ढवलेने "नवजीवन पुस्तकालय व वाचनालयके उद्घाटन समारोह" और विशेष रूपसे हरिजनोंके लाभके लिए उसके साथ "नवजीवन पुस्तकालय" मिलाये जानेके लिए गांधीजी से सन्देश माँगा था।

इसलिए तब हम यथासम्भव कमसे-कम हिंसा करेंगे, लेकिन यदि हमारे जीवनका नियम हिंसा ही होती तब तो स्वभावतः हम जितनी बन सकती उतनी हिंसा करते और उसपर प्रसन्न भी होते। किन्तु, हिंसा करके प्रसन्न होनेवाले लोगोंकी संख्या अधिक नहीं है; जबकि ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो उनसे जो भी हिंसा हो जाती है, उसके लिए क्षमा माँगते रहते हैं। यदि हम यह कहें कि दोहरे नियम, अर्थात् हिंसा और अहिंसा दोनों, काम कर रहे हैं तो उसका मतलब यह होगा कि दो परस्पर विरोधी नियम एक ही साथ चल सकते हैं। लेकिन यह सही चीज नहीं है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कृष्णचन्द्र मुखर्जी
मागुरा, डाकघर (जैसोर)
बंगाल

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८२) से।

४९१. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय च० रा०;

बड़ी लम्बी प्रतीक्षाके बाद तुम्हारा पत्र मिला। नटराजन्ने जो लिखा था, वह तो मैंने देखा ही था। कोदण्डरावने क्या लिखा है, वह नहीं देखा है। इन मित्रोंको पत्र लिखनेके अलावा और क्या किया जा सकता है, मुझे सूझ नहीं रहा है। ऐसे प्रसंगोंपर मैं तो अकसर यही करता हूँ और उसमें न्यूनाधिक सफलता भी मिलती है। यह नुस्खा तुमसे भी आजमानेको कहता हूँ। शुरू-शुरूमें नटराजन्पर ही आजमाकर देखो। वह अपनी दलीलकी खामियोंको तो आसानीसे नहीं देख पाता, लेकिन अगर कोई उसे कायल कर सके तो कायल होनेको हमेशा तैयार रहता है। इसलिए मैं उसे कभी भी लाइलाज मरीज नहीं मानता।

जमनालालजी खुद अपने इलाजके लिए पहाड़ जायेंगे। पता नहीं वे अपने साथ किसको ले जायेंगे। अपने पिछले पत्रमें तो उन्होंने लिखा था कि वे अलमोड़ा जानेकी सोच रहे हैं।

मेरी तो सलाह है कि नरसिंहम्[1] और पापा[2]को बिना किसी अन्य साथीके ही — मतलब यह कि अगर नरसिंहम् खुद अपनी और पापाकी सार-सँभाल कर सकें तो — किसी शान्त जगहमें भेज दीजिए, जिससे उन्हें पूरा विश्राम मिल सके। तुम खुद ही उन्हें नन्दी क्यों नहीं ले जाते? अगर तुम वहाँ पूरी अवधि तक न ठहरना

१. च० राजगोपालाचारीके पुत्र।
२. च० राजगोपालाचारीकी पुत्री।

चाहो तो भले ही पहले आ जाओ। तब भी वहाँ तुम्हें पाँच सप्ताहका समय तो मिल ही जायेगा। मगर कहनेकी जरूरत नहीं कि क्या ठीक है, यह तो ज्यादा अच्छी तरह तुम्हीं जानते होगे। हो सकता है, जमनालालके साथ रहना उनके लिए सबसे अधिक लाभदायक हो।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९७२) से।

४९२. पत्र : जी० रामचन्द्रन्को

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्रन्,

तुम्हारा तार मिल गया था। नाटार-हरिजन झगड़ेपर मेरी टिप्पणी[1] 'हरिजन'में देख लेना और मुझे बताना कि दोनोंमें मेल-जोल करानेके लिए क्या किया जा रहा है।

पी० एन० शंकरनारायण अय्यरने मुझे एक पत्र लिखा है। उसमें उन्होंने बताया है कि १० फरवरीसे पहले उन्होंने एक पत्र लिखकर कहा था कि उनकी संस्थाकी सेवा और सहयोग इस उद्देश्यके लिए प्रस्तुत हैं, किन्तु जैसा कि उन्होंने बताया है, उन्हें कोई उत्तर[2] ही नहीं दिया गया। पता नहीं, उन्होंने मद्रासमें किसीको लिखा था या नहीं। शायद तुम इन सज्जनको जानते होगे। उनका पता है: नं० १, थर्ड स्ट्रीट, गोपालपुरम्, कैथेड्रल डाकघर, मद्रास, तथा वे और उनकी बहन जी० विशालाक्षी मद्रासमें गन्दी बस्तियोंमें किये जा रहे सेवाकार्यमें लगे हुए हैं।

कुछ दिन हुए मैंने डॉ० राजन्को एक पत्र[3] लिखा था और उसके साथ राव बहादुर राजाका वह पत्र भी भेजा था जिसमें उन्होंने एक हरिजन-पुस्तकालयके लिए मुझसे मदद माँगी थी। उसका कोई उत्तर मुझे नहीं मिला है। जरा पता करके देखो कि क्या बात है।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९७१) से।

१. देखिए "हरिजन होना क्या मतलब रखता है?", २२-४-१९३३।

२. शंकरनारायण अय्यरके पत्रके गांधीजी द्वारा दिये गये उत्तरके लिए देखिए "पत्र: पी० एन० शंकरनारायण अय्यरको", १९-४-१९३३।

३. देखिए "पत्र: टी० एस० एस० राजन्को", २२-३-१९३३।

४९३. पत्र : नी० को

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय नी०,

तुम्हारा पत्र मिला और श्रीयुत बी० के० रामचन्द्र रावका भी एक पत्र मिला था। इन पत्रोंसे मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि तुम्हारा वहाँ रहना बेकार है। रा०[1] और गं० में[2] से वहाँ कोई भी काम नहीं आ सकता। तुमने अतीतसे अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लिये हैं और मैं चाहूँगा कि अब तुम किसी भी कारणसे उसे अपने मनमें नहीं आने दोगी। इसलिए अगर तुम अबतक वहाँसे चल न चुकी हो तो मेरी आग्रहपूर्ण सलाह है कि तुम तत्काल पूना रवाना हो जाओ, और अगर रू०[3] खुद तुम्हें और सि० के[4] पूना पहुँचनेका पूरा खर्च देनेको तैयार न हो तो मैंने श्रीयुत रामचन्द्र रावसे तुम्हारे और सि० के लिए तीसरे दर्जेका किराया दे देनेको कहा है। तुम मुझे तार कर देना। फिर मैं तुम्हारे रहनेकी व्यवस्था कर दूंगा।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८४) से।

४९४. पत्र : बी० के० रामचन्द्र रावको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपने नी० से मिलकर उसके बारेमें मुझे पत्र लिखा, यह आपकी कृपा है। आपका पत्र आया, उसी समय उसका भी मिला और मैंने तुरन्त तय कर लिया कि उसे वहाँसे पूना आ जानेको कहूँ। मैं यह समझ सकता हूँ कि वहाँ वह अकेली रहकर हरिजन-सेवा नहीं कर सकती। जिन साथियोंके[5] नाम आपने बताये हैं, उनसे उसकी सहायता करनेको नहीं कहा जा सकता। आप शायद उसके जीवनके बारेमें सब-कुछ नहीं जानते। उसका विगत जीवन बहुत ठीक नहीं रहा है। मुझे उम्मीद है कि अब उसने अपने जीवनका एक नया अध्याय शुरू किया है। उसने स्पष्ट रूपसे ऐसा ही वचन दिया है। इसलिए उसके लिए बेहतर यही है कि पुराने साथियोंमें से कोई भी उसके साथ न रहे—चाहे वे कितने भी अच्छे कार्यकर्ता रहे हों। इसमें छिपानेकी कोई बात नहीं है। जिन्हें जानना चाहिए था, उन सबके

१, २, ३ और ४. पूरे नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

५. नी० के दो भूतपूर्व सहयोगी।

सामने उसने अपने विगत जीवनकी भूलोंको स्वीकार कर लिया है। इस पत्रके पहुँचते-पहुँचते शायद वह वहाँसे रवाना हो चुकी होगी। अगर रवाना न हुई हो तो साथका पत्र[1] कृपया उसको दे दीजिएगा, लेकिन अगर वह पूना जानेवाली हो और रु०[2] उसके और उसके लड़केके लिए तीसरे दर्जेका किराया न दे सके या न दे तो मेरी खातिर कृपया आप उसे किराया दे देंगे। बादमें मैं आपके पैसे चुका देनेकी व्यवस्था करूँगा।

हृदयसे आपका,

बी० के० रामचन्द्र राव
वकील
चीतलदुर्ग

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८३) से।

४९५. पत्र : मोतीलाल रायको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मोतीबाबू,

आपका पत्र मिला। आपने इतने विस्तारसे लिखा, इससे बड़ी खुशी हुई।

मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें विचार करते समय हमें यह नहीं सोचना है कि हरिजन क्या चाहते हैं, बल्कि यह सोचना है कि उनके प्रति हमारा क्या दायित्व है और मालवीयजी की अध्यक्षतामें बम्बईमें हुई सभामें[3] इतनी गम्भीरताके साथ क्या वचन दिया गया था। वहाँ उन्हें मन्दिर-प्रवेशका अधिकार देनेका वचन दिया गया था और हमें जीवनकी बलि चढ़ाकर भी उस वचनको पूरा करना है। 'महाभारत'के इन शब्दोंको याद कीजिए: "एक तुलापर सत्य और दूसरीपर अन्य सारे यज्ञोंको रखें तो सत्य-वाला पलड़ा दूसरे पलड़ेसे भारी पड़ेगा।" हरिजनों तथा ईश्वरको दिये वचनको भंग करना कल्पनातीत है। सनातनियोंके साथ तो हम यथासम्भव अधिकसे-अधिक धीरजसे काम लें, किन्तु जिन्हें उस गम्भीर प्रतिज्ञाका तनिक भी खयाल हो उन्हें हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। इसलिए मन्दिर-प्रवेशके बारेमें आपकी दलीलके दूसरे हिस्सेपर विचार करनेकी मुझे कोई जरूरत नहीं है। बेशक, शिक्षाका हमारा कार्यक्रम एक सक्रिय कार्यक्रम होना चाहिए। शिक्षा शब्दके व्यापकतम अर्थमें शिक्षाकी आवश्यकता तो है ही — और सो केवल हरिजनोंके लिए नहीं, बल्कि

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. पूरा नाम नहीं दिया जा रहा है।

३. यह २५ सितम्बर, १९३२ को हुई थी। प्रस्तावके पाठके लिए देखिए "हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा", ९-३-१९३३।

सवर्ण हिन्दुओंके लिए भी। आज हम शिक्षाके अभावसे उतने पीड़ित नहीं हैं जितने कि गलत ढंगकी शिक्षासे। अभीतक तो हमें धर्म और ईमानदारीके स्थानपर अधर्म और बेईमानी, सच्चे ज्ञानके बदले अन्धविश्वास, उदारताके बजाय असहिष्णुता, संयमकी जगह असंयम, शास्त्रोंकी, जो उनके केन्द्रीय सत्यसे सुसंगत हो, ऐसी सच्ची और सरल व्याख्या करनेके बदले उनका विकृत अर्थ निकालना ही सिखाया गया है।

संघकी प्रवृत्तियोंके बारेमें आपने जो बात कही है, उसको मैंने लक्षित किया है और मुझे उम्मीद है कि आपके प्रयत्न सफल होंगे। यदि आप असली चीज, अर्थात् हाथ-कताईको बरकरार रखना चाहते हों तो आप देशी मिलोंसे बारीक सूत लेनेके प्रलोभनमें नहीं फँसेंगे। पता नहीं, आपने इस ऐतिहासिक तथ्यको जाननेकी कोशिश की है या नहीं कि किस प्रकार केवल हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके बीचके स्वाभाविक सूत्रके टूट जानेसे ही हरिजनोंको बुनाईका काम छोड़-छोड़कर भंगीका काम अपनाना पड़ा। अगर आप महीन कपड़े चाहते हों तो आपको लोगोंको महीन सूत कातना सिखाना चाहिए। अच्छी पूनियोंसे मैं ७० अंकका सूत कातता हूँ। महादेवने तो ११० अंक तकका काता है। यह भारतकी किसी भी मिल द्वारा काते जानेवाले बारीकसे-बारीक सूतसे भी ज्यादा महीन है, और आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आश्रमके एक हरिजन बुनकरने महादेवके काते ४० अंकके सूतसे भी कपड़ा बुना है। ४० से अधिक अंकका सूत तो हम इस बारके कारावासके दौरान ही कातने लगे। लेकिन, मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि जब हमारा काता बारीक सूत बुनाईके लिए दिया जा सकेगा तो वही बुनकर उसे भी बुन लेगा। इस पुनरुत्थान आन्दोलनमें हमें कठिनाइयोंका मुकाबला करना ही है, चाहे उसके लिए कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

वैसे तो मेरी बड़ी इच्छा है कि हरिजन-कार्यके लिए जेलसे बाहर आनेके प्रश्न की चर्चा करूँ, किन्तु जेलके प्रतिबन्धोंके कारण ऐसी चर्चाकी गुंजाइश नहीं है।

मुझे नहीं मालूम था कि अरुणने प्रवर्त्तक संघका 'मेसेज एंड मिशन' (सन्देश और कार्य) मुझे खास तौरसे मेरी सम्मतिके लिए भेजा है। अब मैं अवश्य ही ढूँढूँगा और अगर वह मिल गया तो उसे आलोचनात्मक दृष्टिसे पढ़ूँगा।

मेरा खयाल है आपके चिकित्सा-सम्बन्धी सलाहकारकी बात ठीक ही है। आपकी आँखोंको आरामकी जरूरत है।[1] आपके इर्द-गिर्द इतने सारे निष्ठावान कार्यकर्ता हैं, फिर आपको अपनी आँखोंको तकलीफ देनेकी क्या जरूरत है। पता नहीं, आप जानते हैं या नहीं कि दृष्टिके उपचारकी एक नई पद्धति चली है और विचार करनेपर वह बहुत ठीक भी लगती है। इसे बेट्स-पद्धति कहते हैं और भारतमें एक चिकित्सकको इसकी जानकारी है। उनका नाम और पता इस प्रकार है:

डॉ० अग्रवाल [राम आई हॉस्पिटल, बुलन्दशहर]

मैं इन सज्जनको नहीं जानता। मेरे साथ पत्र-व्यवहार करके सबसे पहले उन्होंने ही मुझे इस पद्धतिकी जानकारी दी थी। उसके बाद कई अमरीकी मित्रोंने

१. मोतीलाल राय ग्लॉकोमा से पीड़ित थे।

सम्बन्धमें मुझे पत्र लिखे हैं और साहित्य भी भेजा है[1]। अगर आप चाहें तो डॉ० अग्रवालसे पत्र-व्यवहार करें।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९६८) से।

४९६. पत्र : चावलि सत्यनारायणको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र, जिसपर ३० (?) फरवरीकी तिथि अंकित है, इतने दिनोंतक मेरे पास पड़ा ही रहा। अबतक वह मेरे हाथ ही नहीं आया। अब मैं इसे पढ़ तो गया हूँ, लेकिन दुःखके साथ कहना पड़ता है कि इसमें मुझे जँचनेवाली कोई दलील नहीं मिली। मेरे विचारसे अस्पृश्यताका औचित्य निस्सन्देह, किसी भी तरहसे नहीं ठहराया जा सकता, फिर भी यह बता दूं कि मुझे इसके पक्षमें आपकी दलीलसे अच्छी दलीलें भी देखनेको मिली हैं, हालाँकि उनसे मैं कायल नहीं हो सका।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत चावलि सत्यनारायण
कोठपेट
गुंटूर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९७८) से।

४९७. पत्र : एन० वी० थडानीको

१८ अप्रैल, १९३३

प्रिय थडानी,

आज तुम्हारे और जगद्गुरुके बीच हुए पत्र-व्यवहारको[2] पढ़नेका समय मिला। सुगठित शैलीमें दृढ़ताके साथ, किन्तु संयत और शिष्टतापूर्ण भाषामें लिखे तुम्हारे पत्रोंको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई; लेकिन दूसरी ओर जगद्गुरुके प्रलापपूर्ण, सर्वथा तर्करहित और अशोभनीय पत्रोंको पढ़कर मन लज्जा, दुःख और निराशासे भर उठा। इसलिए मैंने 'हरिजन' में इस पत्र-व्यवहारपर कुछ भी लिखनेका लोभ संवरण कर लिया है। अगर लिखूँ तो जगद्गुरुकी आलोचना करनी पड़ेगी। ऐसा मैं करना नहीं चाहता। इससे इस संघर्षमें कोई सहायता नहीं मिल सकती, लेकिन साथ ही मुझे

१. देखिए "पत्र: डॉ० हैरी जे० मल्लिकको", २४-३-१९३३।
२. देखिए "पत्र: एन० वी० थडानीको", ८-४-१९३३।

तुम्हारी दलीलका भी मोह है। इसलिए मेरा सुझाव है कि तुम 'हरिजन'में एक पत्र[1] लिखकर अपने पक्षको यथासम्भव कमसे-कम शब्दोंमें प्रस्तुत करो और पाठकोंसे कहो कि अगर वे वेदोंमें पंचम वर्णके उल्लेखका कोई भी हवाला दे सकें तो दें। मेरा तात्पर्य तो तुम समझ ही गये होगे।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९७९) से।

४९८. पत्र : द० बा० कालेलकरको

[१८ अप्रैल, १९३३][2]

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला।

दुग्धोपचारकी पुस्तकमें आराम करनेपर बहुत जोर दिया गया है। अतः यदि दिनशाजी भी ऐसा ही चाहते हों तो उनकी सलाहपर पूरी तरह अमल करना। तुम्हें नये सिरेसे अपना शरीर बना लेना चाहिए। पुस्तकके लेखकने तो पढ़ने आदिका भी निषेध किया है। मारुती और लक्ष्मी आकर मुझसे मिल गये। आशा है करसनदास तुमसे मिल गया होगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

आलाबहनको आशीर्वाद। मैं दिनशाजी के पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

श्री काकासाहेब
मार्फत — डॉ० दिनशा मेहता
सिंहगढ़
पूनाके नजदीक

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९७) से; सौजन्य : द० बा० कालेलकर

१. यह १३-५-१९३३ के **हरिजन** में छपा था।
२. डाककी मुहरसे।

४९९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१८ अप्रैल, १९३३

देवलाली या जो भी स्थान, तूने चुना हो वहाँ जल्दी चला जा, यह बहुत आवश्यक है।[१] किसी स्कूलकी अपेक्षा दिलीपको तू ज्यादा अच्छी तरह पढ़ा सकता है, ऐसा तुझे विश्वास होना चाहिए।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी, पृष्ठ ११९

५००. तार : डॉ० पुरुषोत्तम पटेलको

[१९ अप्रैल, १९३३][२]

डॉ० पटेल
पॉलीक्लीनिक
बम्बई

विट्ठलभाईकी दशा और वियानाका पता तार द्वारा सूचित करें।[३]

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २००२८) से।

१. मथुरादास त्रिकमजीका स्वास्थ्य ठीक नहीं था इसलिए गांधीजी ने उन्हें किसी पर्वतीय स्थलपर जानेकी सलाह दी थी।

२. देखिए "पत्र: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको", १९-४-१९३३।

३. पुरुषोत्तम पटेलने इसका उत्तर २० अप्रैलको दिया था। उसमें कहा गया था: "विट्ठलभाईको पेटकी शिकायत है। चिन्ताकी बात नहीं। तारका पता: 'ट्रावेनिक्स वियाना' है।"

५०१. पत्र : रासबिहारी चटर्जीको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका लम्बा पत्र मिला। उसे मैं ध्यानपूर्वक पढ़ गया। जिस स्थितिमें मैं हूँ उसमें मैं क्या कर सकता हूँ, समझमें नहीं आता; लेकिन मेरा सुझाव है कि आप सतीशबाबूसे मिलकर उन्हींसे मार्ग-दर्शन प्राप्त करें। आपकी मदद करना मेरे लिए बड़ी खुशीकी बात होगी। लेकिन समझमें नहीं आता कि कैसे कर सकता हूँ।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत रासविहारी चटर्जी
डाकघर वारीनपुर
ग्राम – शासोन
(जिला – २४ परगना)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९८७) से।

५०२. पत्र : पी० एन० शंकरनारायण अय्यरको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय शंकरनारायण,

आपका 'पेम्फ्लेट' इसके पहले नहीं पढ़ पाया, इसके लिए क्षमा करेंगे। मैं लाचार था। अब कुछ क्षणोंका अवकाश मिलते ही उसे पढ़ा।

आपने मुझसे टिप्पणियाँ, सुझाव, मार्ग-दर्शन और आशीर्वाद देनेको कहा है। अगर आप आशीर्वादके योग्य पात्र हैं तो आशीर्वाद तो आपको प्राप्त ही है। आप उसके पात्र हैं या नहीं, इसका निर्णय मैं नहीं कर सकता, क्योंकि आपकी प्रवृत्तियोंकी मुझे व्यक्तिगत तौरपर कोई जानकारी नहीं है। किन्तु आपकी रिपोर्टसे[1] आपकी लगनकी झाँकी अवश्य मिलती है।

आपके द्वारा विशेष रूपसे चिह्नित सभी अंश मैं पढ़ गया हूँ। कोई उपयोगी आलोचना कर पाना मेरे लिए कठिन है।

मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन और महान् राष्ट्रनेताओंपर आपने जो चोट की है, उससे आपकी चिढ़, अधैर्य और तथ्योंका अज्ञान झलकता है। यदि आपने केवल इतना

१. उनकी प्रवृत्तियोंका उल्लेख २९-४-१९३३ के **हरिजन**में किया गया था।

कहा होता कि आपकी जानकारीमें जो हरिजन आये हैं उन्हें मन्दिर-प्रवेशकी चिन्ता नहीं है तो वह एक उचित बात होती, किन्तु एक महान् धार्मिक आन्दोलनका अध्ययन तक किये बिना उसकी निन्दा करना ठीक नहीं है। जरा समझिए तो कि यह है क्या चीज। गत सितम्बर महीनेमें एक सार्वजनिक सभामें हिन्दू-समाजके प्रतिनिधियोंने एक गम्भीर प्रतिज्ञा की कि और बातोंके साथ-साथ हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार भी खोल दिये जायें। उसी क्षणसे उनका यह कर्तव्य हो गया कि हिन्दू मन्दिरोंके द्वार हरिजनोंके लिए खुलवानेके लिए वे अपनी सारी शक्ति लगा दें। जिस प्रकार हरिजन लोग चाहते हों या नहीं, लेकिन उन्हें सार्वजनिक स्कूलों और कुओंके उपयोगकी सुविधा तथा अबतक उन्हें जो अधिकार नहीं दिये गये हैं वे सारे अधिकार देनेपर आपत्ति करना असंगत होगा, उसी प्रकार यह सवाल भी असंगत है कि वे इन मन्दिरोंका उपयोग करना चाहते हैं या नहीं। यह तो दमन करनेवालोंका सीधा-सादा कर्तव्य है कि वह दलितोंके सिरका बोझ हटा ले। हो सकता है, दलित लोग इतने जड़ हो गये हों कि अपने सिरपर से बोझ हटा लिये जानेके बावजूद वे इस चीजके मूल्यका अनुभव ही न कर पायें। लेकिन, इस कारण दमनकर्ताओंको उनके सिर वह बोझ कायम रखकर उन्हें दबाते तो नहीं रहना चाहिए न!

अगर आप इस दलीलके औचित्यको स्वीकार कर लें तो आपको अपनी गलती माननेमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए। मेरा खयाल है, इससे ज्यादा कहनेकी मुझे जरूरत नहीं है। हरिजनोंके लिए किये गये हर छोटे-मोटे कामसे मुझे खुशी ही होगी और मेरा खयाल है कि इस सम्बन्धमें सेवाका क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि कार्यकर्तागण दूसरोंके प्रयत्नोंकी — यदि ऐसे प्रयत्न शरारतपूर्ण, अनैतिक अथवा स्वार्थमय न हों तो — आलोचना या अनादर किये बिना मजेमें काम करते रह सकते हैं।

अपने पत्रके छठे अनुच्छेदमें आपने बताया है कि आपने पत्र लिखकर स्थानीय सेवा संघको अपना सहयोग और सेवा प्रदान करनेकी तत्परता बताई है, लेकिन अबतक आपको कोई उत्तर नहीं मिला है। अब मैंने उन लोगोंको लिखा[1] है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत पी० एन० शंकरनारायण अय्यर
नं० १, थर्ड स्ट्रीट, गोपालपुरम
कैथेड्रल पोस्ट,
मद्रास

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९६९)से। सी० डब्ल्यू० ९६७७से भी; सौजन्य : पी० एन० शंकरनारायण अय्यर

१. देखिए, "पत्र : जी० रामचन्द्रनको", १८-४-१९३३।

५०३. पत्र : नेपालचन्द्रको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय नेपाल बाबू,

आश्रममें एक लड़का है, जिसका लालन-पालन शैशवावस्थासे ही वहीं हुआ है। उसमें चित्रकलाके प्रति बड़ा उत्साह है। ऐसा नहीं कि वह इस कलाके सम्बन्धमें बहुत या कुछ भी जानता हो, लेकिन वह और किसी बातके विषयमें सोच ही नहीं सकता। हमें वह लड़का सीधा-सच्चा, परिश्रमी और अनुशासनको माननेवाला लगा है। लेकिन आश्रमके प्रति उसकी एक शिकायत है कि वहाँ उसे, उसमें जो विशेष क्षमता है, उसका विकास करनेकी सुविधाएँ नहीं दी जा रही हैं। इसलिए मैंने कहा है कि वह चाहे तो चित्रकलाके प्रशिक्षणके लिए उसे शान्तिनिकेतन भेज दूँ। क्या आप यह बतायेंगे कि इस लड़के (नाम उसका धीरेन्द्र[1] है) का दाखिला वहाँ हो जायेगा। वह पक्का निरामिषाहारी है। मेरा खयाल है वह बिना किसी कठिनाईके बंगला सीख लेगा। उसकी मातृभाषा गुजराती है। हिन्दी अच्छी जानता है। कताईमें पटु है। अगर उसका दाखिला हो सके तो बताइएगा कि क्या उसे दाखिलेके लिए कोई फार्म भी भरना पड़ेगा, उसे वहाँ कब भेजा जा सकता है और शुल्क क्या होगा। अन्य जरूरी निर्देश और परामर्श भी भेजें। पता नहीं, इसके लिए आप उपयुक्त व्यक्ति हैं या नहीं। अगर न हों तो आप इसे सम्बन्धित अधिकारीको दे दें और मेरी ओरसे उनसे यह अनुरोध करें कि इस पत्रके सम्बन्धमें जल्दी ही कार्रवाई की जाये।

आशा है, आप स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। सभी मित्रोंको मेरा नमस्कार।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९४) से।

१. व्रजलाल गांधीके पुत्र।

५०४. पत्र : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको

१९ अप्रैल, १९३३

सचिव
गृह-विभाग
बम्बई

प्रिय महोदय,

साथका तार[1] मैंने अधीक्षक महोदयको इसी १३ तारीखको भेजनेके लिए दिया था। १७ को पूछनेपर पता चला कि वह महानिरीक्षकको भेज दिया गया था। उसी दिन मैंने अधीक्षकसे तार भेजनेमें विलम्ब होनेकी शिकायत की थी। अब आज १९ तारीखको २-२० बजे दिनमें मुझे सूचना मिली है कि इस आशयका आदेश प्राप्त हो गया है कि "इस तारके भेजे जानेपर कोई आपत्ति नहीं है।"

सौभाग्यसे श्री वि० झ० पटेलकी तबीयतको तत्काल तो कोई खतरा नहीं है। अब मैं उक्त तारको उसके वर्तमान रूपमें नहीं भेजना चाहता। मुझे रोगीका वियानाका, जहाँ उन्हें इलाजके लिए भेजा गया है, पता भी मालूम नहीं है। मैं पतेके बारेमें पूछताछ कर रहा हूँ।[2]

किन्तु, एक ऐसे प्रसंगमें, जिसका सम्बन्ध किसी व्यक्तिके जीवन-मरणसे है, मुझे इस विलम्बपर अपना विरोध तो प्रकट करना ही पड़ेगा। और यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि यह व्यक्ति कोई कैदी नहीं है। एक कैदीके सम्बन्धमें, जिसकी जान खतरेमें है, विलम्बका एक मामला तो पहलेसे ही सरकारके विचाराधीन पड़ा हुआ है।

सरकार यह तो स्वीकार करेगी ही कि जैसा तार श्रीयुत वि० झ० पटेलको भेजना था, वैसे तारोंका प्रयोजन तभी सिद्ध हो सकता है जब वे समयपर भेजे जायें। मैंने यह देखा है कि ऐसे तारोंसे तार पानेवालोंको बड़ा ढाढ़स मिलता है। मैं यह माननेको तैयार नहीं हूँ कि ऐसे मामलोंमें सरकारको उन लोगोंकी भावनाओंका कोई खयाल नहीं होता जो उसकी निगरानीमें हैं। क्या उस तारको सात दिनों तक रोके रहना आवश्यक था? मैं चाहूँगा कि मेरी क्या स्थिति है, यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया जाये। अगर मुझे ऐसे तार भेजनेकी छूट है तो सरकार उस अधिकारीको, जिसपर प्रत्यक्ष रूपसे मेरी जिम्मेदारी है, उन तारोंके सम्बन्धमें खुद ही फैसला करनेका अधिकार दे दे। मैं यह कहनेकी धृष्टता करता हूँ कि मौजूदा तरीका अनुचित

१. देखिए "तार: विट्ठलभाई झ० पटेलको", १४-४-१९३३।
२. देखिए "तार: डॉ० पुरुषोत्तम पटेलको", १९-४-१९३३।

और अनावश्यक है। कहनेकी जरूरत नहीं कि वह तार जितना मेरी ओरसे था उतना ही रोगीके भाई सरदार वल्लभभाई पटेलकी ओरसे भी था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ ३२९; जी० एन० ३८८९ से भी।

५०५. पत्र : डॉ० हीरालाल शर्माको

१९ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० शर्मा,

तुम्हारा पत्र मुझे बहुत पसन्द आया।[1] उसे पढ़कर तुम्हारी योग्यता मेरी निगाहमें और चढ़ी है। तुमने तो मेरे सामने आदर्श चिकित्सककी तसवीर खींचकर रख दी है। अगर जरूरी हो तो अमतुस्सलामके कपड़े बेशक धोओ। हालाँकि वह आश्रममें है लेकिन पूरी तरहसे तुम्हारी देखरेखमें है। समुचित विश्राम और निर्धारित आहार लेनेपर आग्रह रखो।

मैं चाहूँगा कि तुम आश्रमकी हर चीजपर आलोचनात्मक दृष्टिसे गौर करके उसके बारेमें अपने विचार मुझे लिखो। जो भी आश्रमवासी या आश्रमवासिनी तुम्हें परीक्षा करने दे उसके स्वास्थ्यकी पूरी परीक्षा करो। कहनेकी जरूरत नहीं कि जिन रोगियोंका इलाज तुम्हारे बससे बाहर हो उनके बारेमें मुझे बता दो। मैं चाहूँगा कि तुम कुसुमबहनकी जाँच करो। अभी वह डॉ० तलवलकरके इलाजमें है। लेकिन मैं यह जानना चाहूँगा कि यदि वह तुम्हारे इलाजमें आ जाये तो तुम उससे क्या-क्या करनेकी अपेक्षा रखोगे। फिर जमनाबहन है। वह दमेकी पुरानी रोगिणी है। अगर वह तुम्हारी देख-रेखमें आ जानेको तैयार हो तो उसका इलाज तो अभी ही किया जा सकता है। फिर है रमाबहन। उसके कन्धेकी हड्डी बढ़ी हुई है। अभीतक मैं उसके रोगको समझ नहीं पाया हूँ। शायद उसका रोग तुम्हारे बूतेसे बाहर हो। अगर ऐसा न हो तो बताना कि तुम उसका इलाज किस तरह करोगे। और अन्तमें है आनन्दी। अभी हालमें उसका अपेंडिसाइटिसका ऑपरेशन हुआ है। वह केवल मेरा इलाज ही चला रही है, जैसा कि कमोबेश सभी लोग करते हैं। ये कुछ खास रोगी हैं, जिन्हें तुम जितनी जल्दी बने, देखकर उनके बारेमें सब-कुछ बताओ। कुछ और लोग भी हैं जिनकी ओर ध्यान देनेकी जरूरत है।

१. आश्रममें रहनेके लिए आनेपर हीरालाल शर्माने गांधीजी को पत्र लिखकर बताया था कि वे आश्रममें पूरी तरह घुल-मिल गये हैं।

और अब खुद तुम्हारे विषयमें। वैसे तो मैं चाहूँगा कि तुम भी आश्रमकी दिनचर्यामें ढल जाओ, लेकिन तुम्हें अपनी शक्तिसे बाहर प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सब-कुछ सहज भावसे करो। अपनी खास जरूरतोंके बारेमें बताकर उन्हें पूरा कराना। अगर समुचित ध्यान न देनेके कारण खुद तुम्हारे स्वास्थ्यपर ही बन आये तो मुझे बहुत दुःख होगा। अगर तुम आश्रमको अपना घर मानकर अपनी जरूरतें साफ-साफ बताओगे तो मुझे अच्छा लगेगा।

अच्छा हो कि एक बार भगवानजी के साथ जाकर हरिजन वस्ती देख आओ। वहाँके बीमार लोगों और सफाई वगैरहकी स्थितिकी जाँच करो।

तुम्हारे दोनों बच्चे तुम्हारे साथ रहते तो बड़ा अच्छा होता। खैर, सब-कुछ ठीक चलता रहा तो बादमें देखा जायेगा।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष, पृष्ठ ३०-२

५०६. पत्र : जमनाबहन गांधीको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० जमना,

तुम्हारा पत्र मिला। ६७ पौंड वजन होनेके वावजूद जिसे परिहास सूझता हो उसकी चिन्ता करनेका विशेष कारण नहीं हो सकता।

एनीमा आदिके बारेमें लिखे तुम्हारे पत्रोंकी मुझे अच्छी तरह याद है। मुझे ऐसा याद आता है कि मैं पुरुषोत्तमके पत्रमें तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तर दे चुका हूँ। किन्तु शायद भूलसे रह गया हो।

तुम टमाटर, . . .[1], नमक और पपीता ले सकती हो। किन्तु पुरुषोत्तमने जहाँ यह विद्या सीखी है उसके अनुसार, यदि सच कहा जाये तो केवल कच्चे दूधका ही स्थान है। इसके सिवा, तुम्हें बस चुपचाप खटियामें लेटे रहना है। किन्तु अब वहाँ डॉ० शर्मा पहुँच गये हैं। उनसे अपनी जाँच करवाना और यदि वे अभी जो इलाज चल रहा है उससे मिलती-जुलती सलाह दें तो तदनुसार चलना। उन्हें भी लिख रहा हूँ। इस व्यक्तिसे मेरा परिचय नहीं है, सिर्फ पत्रोंकी मारफत उन्हें जानता हूँ। उन्हें अपने कार्यका अनुभव तो है। अब चूँकि पुरुषोत्तम वैद्य चले गये हैं अतः मेरे पत्र तुम्हें पहलेसे भी अधिक नियमित रूपसे मिलते ही रहेंगे। तुम्हारे लिए वजन बढ़ाये बिना और कोई चारा नहीं है।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७६) से। सौजन्य : नारणदास गांधी

१. यहाँ एक शब्द अस्पष्ट होनेके कारण पढ़ा नहीं जा सका।

५०७. पत्र : रमाबहन जोशीको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० रमा,

तुम्हारा पत्र मिला। हाथके बारेमें क्या करना चाहिए यह तो मैं पहले ही लिख चुका हूँ। डॉ० शर्मा वहाँ पहुँच गये हैं इस वजहसे मेरे सुझावमें कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। यदि वे उस कष्टका ठीक-ठीक निदान कर सकें और उसका उपचार करनेको तैयार हों तो जरूर कोशिश करें। अन्यथा जैसा कि मैंने लिखा तुम्हें उसी-पर दृढ़ रहना चाहिए। तुम्हें ऐसा कोई भी काम नहीं करना चाहिए जिससे हाथको कोई कष्ट महसूस हो। तुम्हें हाथको वही व्यायाम देना चाहिए जिसमें तकलीफ न हो। किन्तु अब मेरे लिए कुछ कहनेको नहीं रह जायेगा। क्योंकि तेरा हाथ जिनकी देखरेखमें रहनेवाला होगा वे सब ठीक कर देंगे।

ऐसा लगता है कि अमीनाका सारा काम-काज अस्त-व्यस्त हो गया है। उसे हिम्मत बँधाना और उसके विश्वासको बनाये रखना। यदि उसने खान-पानमें सावधानी नहीं बरती तो उसकी तबीयत फिर बिगड़ जायेगी।

बापू

[पुनश्च :]

तेरा पाँच सेर वजन बढ़ना निश्चय ही अच्छा माना जायेगा। किन्तु ऐसा लगता है कि इसका हाथपर कोई असर नहीं पड़ा।

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५३४९) से।

५०८. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० प्रेमा,

तूने उस लड़कीको क्यों मारा? शिक्षिका शिष्योंसे माफी माँगे तो अपना स्वाभिमान नहीं खोती। उलटे वह बढ़ता है। शिष्य भी उसे अधिक चाहते हैं। इसलिए तूने माफी न माँगी हो और उसे मारनेका दोष तेरी समझमें आ गया हो, तो उस लड़कीसे माफी माँग लेना। इसमें तेरा श्रेय ही है।

तेरा आहार ठीक है। इसी प्रकार लेगी तो गला जरूर अच्छा हो जायेगा। डॉ० शर्माकी सलाह लेना। उन्हें पता लगेगा तो कुछ बतायेंगे।

काम करनेमें अधीरता कैसी? जितना धीरे-धीरे करते हुए हो जाये उतनेसे सन्तुष्ट रहे, तो कामकी गति और स्वच्छता बढ़ती है। ऐसा अनुभव मैंने तो हजारों बार किया है।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०३३७) से। सी० डब्ल्यू० ६७७७से भी; सौजन्य: प्रेमाबहन कंटक

५०९. पत्र : पी० एन० राजभोजको

१९ अप्रैल, १९३३

भाई राजभोज,

तुमारा हिन्दी खत बहुत ही अच्छा है।

आश्रममें सब सुभिता होगा।

तुमने जो प्रश्न पूछे हैं उनका उत्तर[1] 'ह० से०' में देनेका प्रयत्न करूंगा। तो भी इतना कह दूं।

हरिजनोंसे भिन्न जाति है उनको मिटानेका मार्ग यह है—जो उच्च जाति मानी जाती है वह नीच मानी [जानेवाली] जातिके साथ सब व्यवहार रक्खे।

जहां सिवरेज हो जाता है वहाँके हरिजनोंको बिनाईका कार्य हस्तगत करना चाहिये। जिस जगह हरिजनोंको पालखीपर बैठनेसे रुकावट की जाती है वहां पोलीसकी मदद लेनेमें कोई हरज न मानी जाय। दूसरे इलाज भी है जिसका उल्लेख मैं 'ह० से०' में करूंगा।

बापूके आशीर्वाद

पत्रकी फोटो-नकल (जी० एन० ७८४) से।

५१०. पत्र : अमतुस्सलामको

१९ अप्रैल, १९३३

बेटी अमतुस्सलाम,

आश्रममें आ गई सो तो अच्छा हुआ। यहां आनेके बारेमें जैसा डॉ० शर्मा कहें वही किया जाये। उनके वहां होनेसे तुम्हारे लिए किसीको कुछ कहनेका हक नहीं है। डॉ० ने लिखा है कि तुम्हारे बिलकुल आराम लेना (है)। अगर वह इजाजत देवे तो शनीचरके दिन आ जाओ।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८४) से।

१. देखिए खण्ड ५५, "एक हरिजनके प्रश्न", ५-५-१९३३।

५११. पत्र : नारणदास गांधीको

१९ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

तुम्हारी वृहत्काय डाक मिली। इस बार तो वह सचमुच ही बड़ी है।

मेरे दोषोंकी नकल कोई न करे। मुझसे दोष होते हैं। उनके कुछ कारण भी मैं बता सकता हूँ। तथापि मैं चाहूँगा कि सब लोग इन दोषोंको पूरी तरह पहचानें और उनका त्याग करें।

१. भोजन करते समय कोई अखबार या पुस्तक न पढ़े। एक ही बारमें जितना चाहिए उतना लेकर एकाग्र चित्तसे और मौनपूर्वक भोजन करे और उठ जाये — यह उत्तम होगा। ऐसा न कर सके तो भले आवश्यकता होनेपर कानमें बोले। एक ही समयमें दो काम करना बुरी आदत है।

२. चरखा चलाते हुए कोई दूसरा काम न किया जाये। मेरी तरह उस समय न तो कोई कुछ लिखाये, न पढ़ाये।

३. पाखानेमें बैठे-बैठे कुछ भी पढ़ना बुरी आदत है।

४. पाखानेमें बैठकर दातुन करना असभ्यता है। यह एक गंदी आदत है और आरोग्यके लिए हानिकर है। यह आदत मुझमें कभी नहीं रही।

किन्तु पहले तीन दोष मैं करता रहा हूँ। पर किसीके दोषोंकी नकल नहीं ीनी चाहिए। इन आदतोंको मैंने कभी गुण नहीं बताया। इसके सिवा मैं तो ़कान्त-सेवी माना जाऊँगा। मेरे लिए पाखानेकी अलग कोठरी है। वहाँ किताबें ह सकती हैं। मेरा जीवन किसी भी समय समाप्त हो सकता है और कार्य रनेका लोभ मैं छोड़ नहीं पाता। उसे मैं छोड़नेका प्रयत्न भी नहीं करता। तलब यह कि इन दोषोंके अनेक कारण या बहाने हैं। किन्तु किसीको उनका अनुकरण नहीं करना है। पत्रका यह अंश सबको पढ़वाना। कब्ज आदि बीमारियोंमें ये बुरी आदतें भी एक कारण हैं। आश्रममें हम शारीरिक परिश्रम और कार्य को महत्त्व देते हैं। किन्तु उसमें भी जल्दबाजी या अत्युत्साहके लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। जहाँ भी किसीको अपना काम ज्यादा बोझीला महसूस हो उसे चाहिए कि वह उसे हलका कर ले। हम यह नहीं चाहते कि कोई भी अपनी शक्तिसे ज्यादा काम करे। आश्रममें सब अपनी स्वेच्छासे रह रहे हैं। वहाँ किसीको कामका बोझ नहीं महसूस करना चाहिए।

डॉ० शर्माको लिखा पत्र पढ़ना। उसके साथ बातचीत करना। उसे जो भी सुविधाएँ चाहिए, देना। मैंने जिनके नाम बताये हैं उन्हें तथा अन्य बीमारोंको उसे

दिखाना। इलाजके परिणाम तथा अपनी रायसे मुझे अवगत कराना। उसके नाम अपने पत्रमें मैं काफी लिख चुका हूँ इसलिए यहाँ उसे दुहराता नहीं हूँ।

वालजी का लेख नहीं मिला। किन्तु वह मुझे उसकी नकल दे गया है।

गांडीव कहाँ भेजना है, उसका पता क्या मैं तुम्हें दे चुका हूँ? पतेमें थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ है:

श्री हरिभाऊ फाटक
पायनियर डाइंग वर्क्स
सदाशिव पेठ
पूना सिटी

लक्ष्मीबहन, नर्मदा भुस्कुटे और अमतुस्सलाम, यदि डॉ० शर्मा अनुमति दें और वे आना ही चाहें तो, अगले शनिवारको आ जायें। सम्भव है कि यह पत्र तुम्हें समयसे न मिले अतः आज तार[1] कर रहा हूँ।

रामजी ने भाई राजभोजके साथ बातचीत करनेकी इजाजत माँगी है। तुम्हें यदि यह ठीक लगे तो राजभोजके साथ तुम स्वयं ही करा देना। वह स्वभावसे संशयी है इसलिए सम्भव है कि इसका उलटा अर्थ करे। अतः तुम स्वतन्त्र रूपसे विचार कर लेना और जो उचित जान पड़े सो करना।

बापू

[पुनश्च :]

एक बात भूला जा रहा था। नी० का नाम तो तुम जानते हो। कुछ दिन हुए वह मेरे पास आई थी। उसका एक लड़का उसके साथ है। उसके खिलाफ आलोचना सुननेमें आई थी इसलिए मैंने उसे यहाँ बुलाया था। वह बंगलोरमें हरिजन-सेवाका कार्य करती थी। कुशल है। अमेरिकाकी है और विवाह उसने ग्रीसमें किया है। उसके पिता रंगशालाओंके सज्जाकार थे। वह स्वयं नाटकोंमें अभिनय करना जानती है। नृत्य आदि जानती है। लगभग तीन वर्ष पहले तुमने पढ़ा होगा कि उसने काश्मीरमें हिन्दू धर्म स्वीकार किया था और वह आश्रममें आनेकी तैयारी कर रही थी। बात सच थी। किन्तु यह भी सच है कि उसका मन जाग्रत नहीं था। उसका चारित्रिक स्खलन हुआ है; कई लोगोंसे उसने पैसा भी लिया है। मेरे पास आई तो उसने अपने ये सारे दोष स्वीकार किए और यह प्रतिज्ञा की कि अब वह अपना शेष जीवन हरिजन-सेवामें बितायेगी। उसकी उम्र, उसके अनुसार, २४ वर्षकी है। होटलसे वह सीधी हरिजनोंके बीच रहने चली गई। इस समय बंगलोरसे दूर हरिजनोंके एक गाँवमें रह रही है। मुझे पत्र लिखती रहती है। मुझे लगता है कि उसकी वृत्ति बदली है और वह सही रास्तेपर है। मैंने उसे यहाँ आनेके लिए तार दिया है। मेरी इच्छा उसे अन्तमें आश्रम भेजनेकी है। आश्रममें उसे प्रवेश देनेमें मैं कोई डरकी बात नहीं देखता। नियमोंका पालन करेगी तो

१. देखिए अगला शीर्षक।

रहेगी। सब सोच-विचारकर मुझे अपनी राय बताना। मुझसे कुछ और पूछना चाहो तो पूछना। पूरकी पुस्तक उसे फिलहाल भेजनेकी जरूरत नहीं है। अभी वह यहाँ आई नहीं है।

बापू

[पुनश्च :]

[साथके पत्र] शर्मा, छोटूभाई, कुसुम, रमा, आनन्द, लीलावती, मणि, धीरू, जमना, राजभोज, अमतुल, प्रेमा, अमीना, धनंजय बाबू।

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५८ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५१२. तार : नारणदास गांधीको

१९ अप्रैल, १९३३

आश्रम
साबरमती

लक्ष्मीबहन, नर्मदा, और डाक्टर सलाह दे तो अमतुस्सलाम शनिवारको एक बजे आ सकती हैं।

बापू

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८४०० से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५१३. पत्र : अमतुस्सलामको

[१९ अप्रैल, १९३३ के पश्चात्][1]

बेटी अमतुस्सलाम

मैंने तो तुम्हारे आनेका तार भेजा। लेकिन डा० साहबने नहीं आने दी ठीक हुआ। कमजोरीमें मुसाफरी—करना अच्छा नहीं है। डा० कहें ऐसा करो। खुदा अच्छा करेगा। सेवा करनेकी फिकर मत करो। अच्छी हो जाएगी तब सेवा करनेका मौका पड़ा है।

बापूकी दुआ

उर्दूकी फोटो-नकल (जी० एन० २८२) से।

१. देखिए "पत्र : अमतुस्सलामको", १९-४-१९३३।

५१४. पत्र : मीराबहनको

२० अप्रैल, १९३३

सुबह ३ बजे आरम्भ और ४ बजे समाप्त किया।

चि० मीरा,

आश्रमके संचालनके बारेमें विचार व्यक्त करते हुए लिखा तुम्हारा पत्र कल, अर्थात् बुधवारको आया।

हमारे आदर्श शायद कुछ भिन्न हैं। मेरी संकल्पनाका समाज कमसे-कम एक बड़े लम्बे अर्से तक एक मिलाजुला समाज ही रहेगा। आदर्श तो आदर्श ही होना चाहिए। कुछ लोग उसे अपेक्षाकृत अधिक प्राप्त करेंगे और कुछ कम। तुम देखोगी कि परिभाषाके अनुसार एक ही आदर्श है, जिसे पूरे तौरपर प्राप्त किया जा सकता है; और वह है सत्यका आदर्श। कारण, किसी समय कोई व्यक्ति जिसे सत्य मानता है वही सत्य है; इसमें किसी भ्रमकी गुंजाइश नहीं होती। सत्य सदा ही अभौतिक रहेगा, जबकि अन्य सभी संकल्पोंका अपना एक प्रत्यक्ष भौतिक पक्ष रहता है और इसलिए उनमें विभिन्न श्रेणियाँ रहना अनिवार्य है। उदाहरणके लिए, अहिंसाको लो। कोई तो अहिंसाका इतना ही पालन करके सन्तुष्ट हो जायेगा कि वह मनुष्य और पशुकी हत्या न करेगा। पर दूसरा व्यक्ति कीड़े-मकोड़ोंके प्रति, और तीसरा कोई व्यक्ति वनस्पति जीवनके प्रति भी अहिंसक रहनेका आग्रह करेगा। साँप या बिच्छूको मारना हम कोई अक्षम्य अपराध नहीं मानते। और अपरिग्रहको लो। इसमें तो मेरे और तुम्हारे विचार भी एकसे नहीं हैं। मैं फाउंटेन पैन रख सकता हूँ, तुम उसे त्याग सकती हो। मेरे पास दस गज और तुम्हारे पास बीस गज खादी हो सकती है। भौतिक या मूर्त्त अभिव्यक्तिकी गुंजाइश करनेवाले इन सब अन्य व्रतोंके पूर्ण तथा समान पालनकी बात ही नहीं उठती। वे एकमात्र महान् प्रयोजन और आदर्श अर्थात् सत्यके सहायक, पूरक हैं। (मान लो) कुसुम अपनी मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई ऐसी सैकड़ों वस्तुओंकी आकांक्षा करती है जिनकी मुझे कोई आकांक्षा न हो, लेकिन यदि हम दोनों मन, वचन और कर्मसे सत्यनिष्ठ हों तो वह भी आश्रमके आदर्शके पालनकी कसौटीपर उतनी ही खरी उतरेगी जितना कि मैं।

यदि तुम यहाँतक मेरा आशय बराबर समझती आई हो, तो तुम एकदम समझ जाओगी कि हमें शाखाओंमें विभाजित होनेकी कोई जरूरत नहीं, विभाजित होना ही नहीं चाहिए। मिलाजुला जीवन जीते हुए, हममें से प्रत्येकको अपना अधिकतम विकास करना चाहिए। मैं यदि अब चौंसठ वर्षकी अवस्थामें भी ब्रह्मचर्यका पालन नहीं कर सकता, विनम्रताके साथ अपनी यह अक्षमता स्वीकार करके मुझे आश्रमसे छुट्टी ले लेनी चाहिए। और इसपर किसीको मेरे ऊपर अंगुली नहीं उठानी चाहिए।

मुझे मन, वचन और कर्मसे सत्यनिष्ठा बरतनेके साहसका श्रेय दिया जाना चाहिए वैसा करने पर आशा की जा सकती है कि मैं शायद ब्रह्मचर्यके पालनके योग्य भी बन सकूँगा। लेकिन, उदाहरणके लिए, . . .[१] से — यदि वह बाहरसे कायिक ब्रह्मचर्य का पूरा-पूरा पालन करते हुए भी वासनाका शिकार बनकर लड़की या लड़कियोंके पीछे भागता रहा है तो — ऐसी कोई आशा नहीं की जा सकती। आश्रमको कलंकित . . .[२] ने किया है, मैंने नहीं।

इसलिए यदि हमें सहिष्णुता और सत्यका पालन करना है तो हमारी एक ही संस्था हो सकती है, जिसमें तुमको अपने विकासकी और सदाकी बीमार कुसुमको उसके अपने या . . .[३] तितलीको भी उसके अपने विकासकी पूरी गुंजाइश मिलनी चाहिए; बशर्ते कि तुम तीनोंमें से कोई एक क्षणके लिए भी धोखा न दे और आश्रमके आदर्शमें पूरा विश्वास रखे तथा उसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करे।

अब किंचित् भिन्न या परिवर्तित तुम्हारा प्रस्ताव — एक या अनेक पृथक् संस्थाओं के निर्माणका प्रस्ताव आता है। एक आश्रम वर्धामें है, जिसका प्रधान विनोबा है। वह मूल संस्थाका ही एक अंग है और उसके आदर्शपर अमल करनेका यथाशक्य प्रयत्न कर रहा है। क्या मैंने तुमको बतलाया था कि वह मेरी पूरी रजामन्दीसे भागकर वहाँसे सिर्फ दो मील दूर एक हरिजन गाँवमें बस गया है। हो सकता है कि वहाँ अपनी एक छाप छोड़कर वह किसी सहयोगीको लेकर या बिना किसी साथी के ही रेलवे लाइनसे पचास मील या इससे भी अधिक दूर कहीं चला जाये, लेकिन उस दशामें भी वह मूल संस्थाके आदर्शकी पूर्ति करेगा और उसका एक अविभाज्य अंग बना रहेगा। यदि हम यह मानकर चलें कि . . .[४] भी उतना ही सत्यनिष्ठ है जितना कि विनोबा और . . .[५] भी आश्रमके आदर्शपर उतना ही अमल कर रहा है जितना कि विनोबा तो विनोबा किसी भी तरफसे . . .[६] से श्रेष्ठ नहीं ठहरता। क्या तुम इसे पूरी तौरसे समझ पाई हो?

एक और भी शाखा है जो अलमोड़में बड़ी-बड़ी आबादियोंसे दूर, रेलवे लाइन से बहुत दूर तैयार हो रही है। संघर्षरत प्रभुदास आजकल उसका कार्य-भार स्वयं सँभाले हुए है। लेकिन मैं कह नहीं सकता कि वह आगे चलकर कैसी निकलेगी। हो सकता है कि वह सदाके बीमारोंका एक आरोग्याश्रम बनकर रह जाये, या हो सकता है, कुछ ऐसे लोगोंका स्थायी अथवा अस्थायी आश्रम बन जाये जो अपने विकासके लिए एकान्त चाहते हैं। हम यदि अपने आश्रमसे असत्यको निकाल बाहर करने और सत्यमय जीवन तथा केवल सत्यके लिए ही जीना सीखनेमें लगातार सफलताएँ प्राप्त करते चले जायें, तो हमारी लाखों शाखाएँ खड़ी हो सकती हैं, जिनमें न कोई श्रेष्ठतर होगी और न कोई निम्नतर। तब ऐसी सभी शाखाएँ अपनी तपी-तपाई मूल संस्थाकी अभिव्यक्तिके रूपमें और उसके लिए अपेक्षित होंगी। पता नहीं, मैं अपने विचारोंको इस तरह रख पाया हूँ या नहीं कि तुम समझ सको।

१ से ६. नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

जितनी बात तुमको ठीक लगे उतनीका अनुसरण करो। इस सप्ताह वा को कोई पत्र नहीं लिख रहा हूँ।

हम सबकी ओरसे सबको स्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

पिछले सप्ताहकी डाक शुक्रवारको दी गई थी और पवित्र कार्ड रजिस्टर्ड बुक पोस्टसे भेजे गये थे।

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६७५) से; सौजन्य : मीराबहन

५१५. पत्र : पी० एच० गद्रेको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और नासिकमें हरिजन बस्तियोंके बारेमें आपकी टिप्पणी दोनों मुझे मिल गये हैं।[1]

सेठ मथुरादास वासनजी से आप क्या सहायता चाहते हैं? यदि मुझे ठीक-ठीक मालूम हो, तो मैं शायद कुछ कर सकूँ।

अन्य सन्तोंके उद्धरणोंके बारेमें आपने जो लिखा, मैंने देख लिया है।[2]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एच० गद्रे
वकील
नासिक

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९७) से।

१. नासिकके भंगियों और महारोंके बारेमें गांधीजी द्वारा माँगी गई रिपोर्ट; देखिए "पत्र: पी० एच० गद्रेको", ४-४-१९३३।

२. पी० एच० गद्रे रिपोर्ट तैयार करनेमें व्यस्त रहनेके कारण महाराष्ट्रके सन्तोंके उद्धरण गांधीजी को नहीं भेज पाये थे।

५१६. पत्र : दौ० गु० जाधवको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

इसी महीनेकी १७ तारीखका आपका पत्र[1] मिला। मैं तो समझता हूँ कि जातिसे वहिष्कृत महार मित्रोंको बहिष्कृत करनेवाली महार पंचायतसे कोई वाद-विवाद या झगड़ा किये बिना अपने संकल्पपर अटल रहना चाहिए और यदि वे आत्म-सम्मानयुक्त मौन रखते हुए कष्ट झेलें तो आप देखेंगे कि बहिष्कार बिलकुल ही निष्प्रभाव साबित हुआ है। शिक्षित महारोंको बहिष्कारके प्रतिबन्धसे मुक्त रखा गया है, यह अपने-आपमें बतलाता है कि उसमें कोई जान नहीं है। मेरा खयाल है कि आपको लगनके साथ, चुपचाप उनके बीच काम करते रहना चाहिए और उन लोगोंकी सेवा करनेकी कोशिश करनी चाहिए जो सुधारकोंका बहिष्कार करानेके साधन बने हैं; और यदि आप दोनों पक्षोंकी सेवा करते रहे तो आप दोनोंके बीच सम्बन्ध जोड़नेवाली एक कड़ी बन सकते हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत दौलत गुलाजी जाधव
वाघली,
चालीसगाँव (पूर्व खानदेश)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००३) से।

५१७. पत्र : कमलादेवीको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय कमलादेवी,

आपका पत्र मिला। अगले सोमवारको दोपहर दो बजे आनेकी कृपा कीजिए।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००८) से।

१. दौलत गुलाजी जाधवने गांधीजी को सूचित किया था कि नीची मानी जानेवाली मांग-जातिके लोगोंके साथ चाय पीनेके कारण अनेक महारोंको जातिसे वहिष्कृत कर दिया गया है, परन्तु शिक्षित होनेके कारण स्वयं उन्हें बहिष्कारसे मुक्त रखा गया है।

५१८. पत्र : आर० मगुडेश्वरन्‌को

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पोस्टकार्ड मिला। आप सोमवार, १ली मईको दोपहर तीन बजे मुझसे मिल सकते हैं। कृपया आधे घंटेसे अधिक समय मत लीजिएगा। पर यदि अस्पृश्यताके सम्बन्धमें कुछ बहुत ही निश्चित और सचमुच महत्त्वपूर्ण प्रश्न आपके पास पूछनेको न हों, तो मैं कहूँगा कि इतनी दूर दक्षिणसे यहाँतक आप क्यों आयें।[1]

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० मगुडेश्वरन्
मार्फत – राजंगा स्वामीनाथ अय्यर
तिरुवाडी
(तंजौर जिला)

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००१) से।

५१९. पत्र : जी० वी० मोडकको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय कैप्टन मोदक,

आपका पत्र मिला। आपकी पुस्तक[2] सुपरिंटेंडेंटने रोक ली है। क्योंकि उनकी रायमें वैसी पुस्तकें मुझे देनेकी अनुमति नहीं है। इसलिए आप जबतक सरकारकी अनुमति प्राप्त न कर लें, वह पुस्तक मुझे नहीं दी जा सकती।

हृदयसे आपका,

कैप्टन जी० वी० मोडक
मार्फत – एस० आई० सोसाइटी
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००७) से।

१. अस्पृश्यताकी समस्यासे सम्बन्धित मगुडेश्वरन्‌की कुछ शंकाएँ थीं उनका विचार था कि उनका समाधान वे गांधीजी से स्वयं चर्चा करके ही पा सकते हैं।

२. रायल इंडियन आर्मीके सम्बन्धमें जानकारी जुटानेवाली।

५२०. पत्र : नारायणको[1]

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मुझे मिला। आप किसी मूर्तिकी पूजा करें या मन्दिरमें हों या गिरजे अथवा मसजिदमें या खुले आकाशके नीचे ही हों, प्रार्थना तो आप एक ईश्वरकी ही करते हैं, ईश्वर जो सर्वव्यापक है, जो सब-कुछ देखता है, जो सब-कुछ सुनता है।

ब्रह्मचारीका पीत वस्त्र धारण करना मैं बिलकुल भी जरूरी नहीं मानता। प्राचीन कालमें अवश्य ही यह ब्रह्मचारियोंको गृहस्थोंसे पृथक् दिखानेका एक प्रतीक था और यों किसी संस्था या सम्प्रदाय-विशेषके सदस्य चाहें तो अपने लिए एक विशेष पहनावा अपना सकते हैं।

मैं समझता हूँ श्राद्धके[2] अवसरपर अपने हरिजन या अन्य सहपाठियों या सहयोगियोंमें कोई भेदभाव न बरतकर आपने बहुत ही ठीक किया है।

हृदयसे आपका,

डॉ० नारायण
गुरुकुल सेवा संघ
पो० आ० केंगरी
बंगलोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २०९९५) से।

५२१. पत्र : डॉ० एम० ए० नारायणको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझसे ऐसी उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि मैं अप-रिचित व्यक्तियोंके व्यक्तिगत चरित्रके बारेमें कोई फैसला दूंगा। अस्पृश्यताके कार्यक्रम पर अमल करनेका तरीका जनताको बतला दिया गया है। अब आम तौरपर सब

१. युवा नारायण चार वर्ष पूर्व एक 'रेजिडेंशल इन्स्टीटयूशन' में शामिल हो गये थे, जिसका उद्देश्य देहातका पुनरुत्थान करना और मुफ्त डाक्टरी सहायता पहुँचाना था। इसका विवरण २२-४-१९३३के **हरिजन**में प्रकाशित हुआ था।

२. नारायणके पिताका।

जानते हैं कि इस सेवा-कार्यके लिए उन लोगोंको ही आगे आना चाहिए जिनका चरित्र शुद्ध और भावना धार्मिक हो, अन्य लोगोंको नहीं।

हृदयसे आपका,

डॉ० एम० ए० नारायण
मार्फत – न्यू फार्मसी
२३, ४४ वीं स्ट्रीट
रंगून

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००५) से।

५२२. पत्र : टी० प्रकाशम्को

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय प्रकाशम्

संलग्न कागजात[1] मैंने हरिजन सेवक संघके प्रान्तीय बोर्डको भेजे थे। वहाँसे इनको यह कहकर लौटा दिया गया है कि यह विषय उनके अधिकार क्षेत्रमें नहीं आता और मुझे ये आपके पास भेजने चाहिए। इसलिए अब आपको भेज रहा हूँ। लिखिए कि इस मामलेमें आप क्या कर सकते हैं।

आशा है आप स्वस्थ होंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१००४) से।

५२३. पत्र : एम० शेषगिरि रावको

२० अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आपने जिस तरहसे ब्योरेवार प्रश्न पूछे हैं, उस तरह पूछकर गलत किया है और अब अगर मैं उन सब प्रश्नोंके उत्तर दूँ तो यह धृष्टता होगी और इसलिए गलत भी। सत्यका पालन हर कीमतपर करना ही चाहिए — मोटे तौरपर एक सिद्धान्त जान लेनेके बाद यह प्रत्येक व्यक्तिका अपना काम हो जाता है कि वह इस सिद्धान्तका पालन करनेकी अपनी क्षमताको देखते हुए इसे अपने जीवनमें उतारनेका ब्योरा खुद तैयार करे।

१. ये उपलब्ध नहीं हैं।

५२५. पत्र : नारणदास गांधीको

[२० अप्रैल, १९३३][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारी बहुत-सारी चिट्ठियोंवाली डाक कल मिली। उसमें से कुछ बातोंका निर्णय तुरन्त होना चाहिए, इसलिए यह पत्र आज ही लिख रहा हूँ।

लक्ष्मीबहन एक वर्षके लिए जानेको[2] राजी हैं, यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी। अब मैं इस सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार करूँगा। मुझे लगता है कि जो-कुछ भी होगा अब जमनालालजी के जेलसे बाहर आनेपर ही होगा। दो बहनोंके एक साथ जानेकी जरूरत शायद नहीं होगी।

यदि चिमनलाल हिम्मत हार जायेगा तो हमारा काम कैसे चलेगा?

डॉ० तलवलकरका पत्र पढ़नेके बाद ऐसा लगता है कि कुसुमको अभी उन्हींके इलाजमें रखना ठीक होगा।

पन्नालालको लिखा पत्र रखना और यथासमय उसे देना।

तुम्हारे किए हुए परिवर्तन ठीक ही प्रतीत होते हैं। प्रेमाका बोझ अवश्य कुछ कम किया जाना चाहिए। उसका बोलना बन्द नहीं हुआ तो मुझे लगता है कि कभी कोई संकटकी स्थिति पैदा हो जायेगी। इस मामलेमें तुम उसके साथ सख्त रहना।

परचुरे शास्त्री जितनी कक्षाएँ ले सकें उतनी लेने देना। अगर लोग उनसे 'गीता' का शुद्ध उच्चारण करना सीख गये तो इसे मैं एक बड़ा लाभ मानूंगा।

हमारे पास जो पुस्तकें हैं वे तो उन्हें देना ही। उनका उपयोग किस तरह किया जाए, यह मैंने अपने पत्रमें समझाया है। उन्हें जो अन्य चार पुस्तकें चाहिए वे, काका कहते हैं, विद्यापीठमें हैं। पण्डितजी माँगें या नरहरि उन्हें लेने दें तो उन्हें हम आश्रमके लिए ले लें।

कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ तो हमें वहाँसे लेने ही हैं। इतना ही है कि इसमें थोड़ा समय लगेगा। शास्त्रीजी तबतक धीरज रखें।

गुजराती (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३६० से भी; सौजन्य: नारणदास गांधी

१. **बापुना पत्रो–९: श्री नारणदास गांधीने,** भाग २ में इस पत्रकी तारीख "२२ अप्रैलके आसपास" मानी है जो कि सही नहीं जान पड़ती। नारणदास गांधीको लिखे अपने २४ अप्रैलके पत्रमें गांधीजी "बड़ी डाकके बाद" तीन दिन तक कोई पत्र न मिलनेकी शिकायत करते हैं। गांधीजी ने यह पत्र "बड़ी डाकके" मिलनेके दूसरे दिन, अर्थात् १९ अप्रैलके अगले दिन २० अप्रैलको लिखा होगा।

२. वर्धाकी स्त्री-शिक्षण-संस्था 'महिला आश्रम' में गृह-व्यवस्थापिकाका पद सँभालनेके लिए।

५२६. पत्र : रामेश्वरलाल बजाजको

२० अप्रैल, १९३३

भाई रामेश्वरलाल,

काफी महीनोंके बाद तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा व्यापार कैसा चल रहा है। यह तुमने नहीं लिखा। तुम कैसे रह रहो हो, लिखो। आशा है, तुम्हारा मन शान्त होगा। लन्दनके घरका क्या हुआ? धीरज रखनेसे सब-कुछ हो सकता है।

रुक्मिणि[1] अब देवलालीमें है। वह ठीक है। हम सब मजेमें हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजरातीकी फोटो-नकल (जी० एन० ९०६४) से।

५२७. पत्र : फूलचन्द बापूजी शाहको

२० अप्रैल, १९३३

भाईश्री फूलचन्द,

बहुत दिनोंतक बाट देखनेके बाद आखिर तुम्हारा पत्र मिला तो सही। हम सभी लोग सोच रहे थे कि तुम्हारा पत्र क्यों नहीं आया। अतः तुम्हारा पत्र मिलने पर हम सब लोग बहुत प्रसन्न हुए।

मेरे पत्रका क्या हुआ, यह बात कुछ समझमें नहीं आती। मैं तो यह मानता हूँ कि हमें जो लिखना हो सो लिख डालें, फिर पत्र पहुँचे या न पहुँचे उसके लिए हम क्या करें?

हम सबका चक्र चलता रहता है।

तुम्हारे बढ़े हुए परिवारके बारेमें हम लोगोंने बार-बार विचार किया, किन्तु वहाँ बहुत-से महारथी हैं इसलिए आशा है कि बिना किसी बखेड़ेके गाड़ी चल रही होगी। यदि रेलगाड़ी दुर्घटनाग्रस्त हो जाये तो बहुत-से लोग मरते हैं। किन्तु यदि देहाती गाड़ी हो और कुछ हो जाये तो हलका-सा झटका ही लगता है। उसकी थोड़ी-सी मरम्मत करके वे फिर चढ़ जाते हैं। रेलगाड़ीके युगके पहले दुनियाकी गति धीमी थी। किन्तु इसकी चर्चा इतिहासमें नहीं मिलती। दुर्घटनाओं और पागलखानोंकी बढ़ोतरीकी बात ही सुननेमें आती है। किन्तु सनातनी भाई कहते हैं कि मुझे यह सब

१. रामेश्वरलाल बजाजकी पुत्रवधू और मगनलाल गांधीकी पुत्री।

कहनेका अधिकार ही नहीं है, क्योंकि मैं रेलगाड़ी, डाक्टरों आदिके विरुद्ध लिखता तो हूँ लेकिन रेलगाड़ी मिलते ही मैं उसमें बैठा नजर आता हूँ। आँख दुखी नहीं कि कानुगाके दवाखानेकी ओर साइकिल दौड़ती दिखती है। यह सच है, सनातनी बेचारे क्या जानें कि कोई पन्द्रह महीने हुए होंगे न तो मैंने रेलगाड़ीमें पैर रखा और न साइकिलपर किसीको डॉ० कानुगाके यहाँ भेजा।

सुरेन्द्रसे कहना कि खाँसी और मन्द ज्वर होना, यह आश्रमके नियमोंका उल्लंघन माना जायेगा। इसका कारण क्या है? वह मुझे विस्तृत पत्र लिखे अथवा जिसकी लिखनेकी बारी हो वह लिखे। दरबारीकी तो कई पारी खाली होनी चाहिए। उनमें से भले एकका उपयोग मुझे लिखनेमें करे। आशा है सुरेन्द्रको बीमारकी खुराक मिलती होगी। शायद विट्ठल जानता होगा कि उसके पिता और बहनें आश्रममें लौट आये हैं।

स्वास्थ्य-रक्षाके बारेमें मेरे पास एक सुनहरी सुझाव है। जिसे जो चीजें अनुकूल न आयें उसे वे छोड़ देनी चाहिए। भूखे रहनेसे किसीको रोग नहीं होता, जबकि यह सिद्ध किया जा सकता है कि हजारमें ९९९ लोग अति भोजन या न खाने योग्य चीजें खानेसे बीमार पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-कुछ कहा जा सकता है किन्तु वह निरर्थक है।

यदि अन्त्यजोंकी समस्याके बारेमें बात करनी हो तो तुम या अन्य कोई भाई मुझसे मिल सकते हो। किन्तु यदि उस सम्बन्धमें बात करनेको कुछ न हो तो न मिलना।

अब बावलावाले अध्यापक, मोहनलालके प्रश्नोंके उत्तर :

१. यदि विचारपूर्ण अध्ययनमें मन न लगे तो भी उसके पीछे लगे रहना चाहिए। 'गीता' के शब्दोंमें इसका नाम अभ्यास है और अभ्याससे सही विचारधारा साध्य है। भगवान्ने उसमें वैराग्यको भी सम्मिलित कर लिया है। किन्तु दोनों वस्तुएँ एक ही हैं। यों कहा जा सकता है कि अभ्यासमें मन लगाना और अन्य वस्तुओंकी ओरसे उसे खींच लेनेका तात्पर्य है वैराग्य।

२. प्रसादको प्रसन्नताके नामसे पहचानें। जब हमें मनभाते ऐहिक पदार्थ मिलते हैं तब हम प्रसन्न रहते हैं किन्तु वह प्रसन्नता निरर्थक है क्योंकि वह इन्द्रियोंकी है। ऐहिक पदार्थ क्षणिक हैं अतः यह प्रसन्नता भी क्षणिक है। पारलौकिक पदार्थ शाश्वत होते हैं अतः उनसे उत्पन्न होनेवाली प्रसन्नता भी शाश्वत है। वह इन्द्रियग्राह्य नहीं बल्कि हृदयकी है। इसलिए जब इन्द्रियोंके प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है, तभी सच्ची प्रसन्नता प्राप्त होती है। इस 'प्रसाद' की चर्चा 'गीता' में की गई है।

हम सबकी सबको राम-राम। रावजीभाईका पत्र मिल गया है। उसका उत्तर बादमें दूंगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९६५१) से; सौजन्य : चन्द्रकान्त फू० शाह

५२८. तार : विट्ठलभाई झवेरभाई पटेलको

[२० अप्रैल, १९३३ या उसके पश्चात्][1]

पटेल

मार्फत ट्रैवेनेक्स

वियना

ईश्वर आपको जीवन-दान दे। सुधारका तार दीजिए।

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २१०००) से।

५२९. भक्तिधारा कैसे बहे?

[२१ अप्रैल, १९३३][2]

एक भागवत धर्म-प्रेमी लिखते हैं:[3]

भक्ति-धारा लेखनीसे नहीं बह सकती। वह बुद्धिका विषय ही नहीं है। यह झरना तो हृदयकी गुफामें से ही फूट सकता है; और जब वहाँसे फूट निकलेगा, तब उसके प्रवाहको कोई भी शक्ति नहीं रोक सकेगी। गंगाके प्रबल प्रवाहको कौन रोक सकता है?

ऐसी भक्तिके लिए मैं प्रयत्नशील अवश्य हूँ। लेकिन यह प्रयत्न शब्दाडम्बरसे सिद्ध होनेका नहीं। इसके लिए तो कर्मयोग ही एकमात्र मार्ग है। इस योगमें पूरी तरह निष्काम होना आवश्यक है। निष्काम कर्मका ही तो दूसरा नाम कर्मयोग है।

इसलिए भक्ति-धारा बहानेके लिए मुझे किसी खास लेखकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी 'हरिजन' का प्रत्येक शब्द यदि भीतरी भक्तिका द्योतक होगा, तो अपने-आप उसका प्रभाव पड़ेगा।

१. इस तारका मसविदा २० अप्रैल, १९३३ को प्राप्त डॉ० पुरुषोत्तम पटेलके तारपर ही लिखा गया था। डॉ० पटेलने यह तार गांधीजीके १९ अप्रैल, १९३३के तारके उत्तरमें भेजा था; देखिए "तार डॉ० पुरुषोत्तम पटेलको", १९-४-१९३३।

२. देखिए "पत्र: वियोगी हरिको", २१-४-१९३३।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। संवाददाताने गांधीजी से प्रार्थना की थी कि **हरिजन**के प्रत्येक अंकमें वे 'भक्ति' पर एक लेख दें जिससे कि जनसाधारण व्यर्थकी चर्चामें न पड़कर विशुद्ध भक्ति-मार्गका अनुगमन कर सकें। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि इस नास्तिक युगमें केवल गांधीजी ही यह कार्य कर सकते हैं।

भागवत धर्म-प्रेमीके आशयको मैं समझ गया हूँ। अगर मेरे अन्दर वह भक्ति होगी और जितनी होगी, तो उसी मात्रामें बिना प्रयत्न किये उसका स्पर्श दूसरोंको अवश्य होगा; क्योंकि मैं मानता हूँ कि हृदय-परिवर्तन एकमात्र भागवत धर्मसे ही हो सकता है। यह धर्म संक्रामक है। प्रकट होनेके बाद किसीको यह अछूता नहीं छोड़ता। जब हममें से किसीमें सचमुच यह प्रकट हो जायेगा, तब हरिजन और सनातनी अपने-आप ही इसे पहचान लेंगे। कमसे-कम अपने लिये मैं कह सकता हूँ कि मेरे सब कार्य — क्या लिखना, क्या बोलना — मुझमें यही भक्ति पैदा करनेके लिए हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू धर्मको विनाशसे बचाना है, तो इसके सिवा दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं।

गुंडेबाजीसे अथवा पाखण्डसे, वाक्चातुर्यसे अथवा ललित लेखोंसे धर्मकी रक्षा न तो कभी हुई है, न होगी। धर्म-रक्षा तो धार्मिक व्यक्तियोंकी आत्म-शुद्धि और तपश्चर्यासे ही हो सकती है। भागवतकारने स्पष्ट कह दिया है कि इस युगमें भगवद्-भक्तिका मार्ग ही सुलभ है और शायद वह एक ही मार्ग है।

तब मैं क्यों लिखता हूँ, क्यों बोलता हूँ, ऐसा प्रश्न उठ सकता है। उत्तर मेरे उक्त कार्योंमें ही निहित है। यही प्रवृत्तियाँ बताती हैं कि भागवत धर्मका पूर्ण विकास मुझमें नहीं हुआ है, मेरी ये प्रवृत्तियाँ भी उसीके विकासके लिए हैं, और सचमुच कुछ विकास हुआ होगा तो उनमें कहीं-न-कहीं भक्तिका कुछ दर्शन तो औरोंको होना ही चाहिए।

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, ३०-४-१९३३

५३०. वर्ण-धर्मपर पाँच प्रश्न

एक सज्जनने ये प्रश्न लिख भेजे हैं:

१. आजीविकाके लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र क्या-क्या कार्य करें?

२. सेवाके लिए चारों वर्ण क्या-क्या कार्य करें?

३. सेवाका कार्य और आजीविकाका कार्य एक ही हो सकता है, अथवा आजीविकाका कुछ और हो और सेवाका कुछ और?

४. आपने लिखा है कि "इस वर्ण-धर्मका पालन फिरसे सम्भव बनानेके लिए सबको स्वेच्छासे शूद्र-धर्म स्वीकार करनेकी आवश्यकता है।" यदि शूद्रेतर वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) शूद्र-धर्मको स्वीकार करेंगे, तो क्या उन्हें स्वधर्म छोड़कर अन्य धर्म स्वीकार करनेका दोष न लगेगा?

५. आपने लिखा है कि "ब्रह्मज्ञानका प्रयत्न करनेवाला सद्भाग्यसे आज एक छोटा-सा वर्ण मौजूद है जिससे कि शुद्ध सनातन धर्म फिर अपना तेज प्रकट करेगा और जगत्को कल्याणका मार्ग बतायेगा।" वह वर्ण कौन-सा है?

किसीको प्रश्न करनेसे मैं रोकना नहीं चाहता। किन्तु इतना कहना मैं आवश्यक समझता हूँ कि बहुत-से प्रश्न तो असली लेख मननपूर्वक पढ़नेसे ही हल हो जाते हैं। ऐसा लेख, जिसमें उसके अन्तर्गत प्रश्न हल न हो सकें, निकम्मा माना जा है। नैतिक लेख एक ही बार पढ़कर छोड़ने नहीं चाहिए। ऐसे लेख यदि बार-बार मनोयोगपूर्वक पढ़े जायें, तो उनके अन्तर्गत प्रश्न आप ही स्पष्ट हो जाते हैं। अतः मैं प्रश्नकर्तासे विनय करूँगा कि वे मेरे वर्णाश्रम-सम्बन्धी लेख फिरसे पढ़ें तो उन्हें मालूम हो जायेगा कि जो-कुछ मैं यहाँ लिखूँगा वह सब उन लेखोंमें मौजूद है। मेरी यह सूचना सर्वसाधारणके लिए है। खासकर प्रश्नकर्ताके लिए यह सूचना है, ऐसा वह न समझें। वाचन-व्यसन तो हम लोगोंमें बढ़ रहा है, पर मनन करनेकी आदत छूटती जा रही है, इसलिए हम पराधीन-से बन गये हैं। हर बातमें दूसरोंका अभिप्राय हम जानना चाहते हैं। अपनी विचार-मौलिकता तो, जो निरन्तर मननसे पैदा होती है, हमने खो दी है। ऐसी स्थितिका पैदा होना सचमुच दयनीय बात है। सिद्धान्त मिल जानेपर उपसिद्धान्त समझ लेनेकी शक्ति हममें होनी चाहिए। थोड़े ही अभ्याससे यह शक्ति पैदा की जा सकती है।

अब प्रश्नोंके उत्तर देखें :

१. ब्राह्मण समाजको ब्रह्मज्ञान देगा। क्षत्रिय राष्ट्रकी रक्षा करेगा। वैश्य व्यापारादिसे धनोपार्जन करेगा। शूद्र परिचर्या करेगा। अपने-अपने कर्तव्य कर्मसे ही सभी अपनी-अपनी आजीविकाका उपार्जन करेंगे; बस यह काफी है।

२. वर्ण असलमें धर्म है, अधिकार नहीं। इसलिए वर्णका अस्तित्व केवल सेवाके लिए ही हो सकता है, स्वार्थके लिए नहीं। इसी कारण न तो कोई उच्च है, न कोई नीच। ज्ञानी होते हुए भी जो अपनेको दूसरोंसे उच्च मानेगा, वह मूर्खसे भी बदतर है। उच्चताके अभिमानसे वह वर्णच्युत हो जाता है। यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि वर्ण-धर्ममें ऐसी कोई बात नहीं है, कि शूद्र ज्ञानका संचय अथवा राष्ट्रकी रक्षा न करे। हाँ, शूद्र अपने ज्ञानके विनिमयको अथवा राष्ट्र-रक्षाको अपनी आजीविकाका साधन न बना ले। ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय परिचर्या न करे, यह भी बात नहीं है। परन्तु परिचर्याके द्वारा आजीविका न चलाये। इस सहज स्वाभाविक धर्मका यदि सर्वथा पालन किया जाये, तो समाजमें जो उपद्रव आज हो रहे हैं, एक-दूसरेके प्रति जो द्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, धन इकट्ठा करनेके लिए जो कष्ट उठाये जा रहे हैं, असत्यका जो प्रचार हो रहा है और जो युद्धके साधन तैयार किये जा रहे हैं वह सब शान्त हो जायें। इस नीतिका पालन सारा संसार करे अथवा न करे, सभी हिन्दू करें या न करें, पर जितने लोग इस व्यवस्थापर चलेंगे उतना लाभ तो संसारको होगा ही। मेरा यह विश्वास बढ़ता ही जाता है कि वर्ण-धर्मसे ही जगत्का उद्धार होगा। वर्ण-धर्मका सच्चा अर्थ सेवा-धर्म है। जो-कुछ किया जाये वह सेवाभावसे ही किया जाये। सेवामें सौदा कहाँ?

अब शारीरिक श्रमकी बात आती है। जहाँतक मैं 'गीता' समझता हूँ उसमें यज्ञके कई प्रकार हैं। उन यज्ञोंमें एक शरीर-श्रम भी है। 'लोक-संग्रह' के लिए शरीर-श्रम यज्ञ-रूपमें करना सभी वर्णोंका धर्म है। इस यज्ञसे कोई नहीं बच सकता। बिना

शरीर-श्रमके तो शरीर-यात्रा ही असम्भव है। जो यह श्रम-रूपी यज्ञ नहीं करता, वह निश्चय ही चोरी करता है। यह कथन कि शरीर-श्रम केवल शूद्रका ही कर्म है, धर्म-विषयक अज्ञान ही प्रकट करता है। परिचर्याका अर्थ शारीरिक श्रम नहीं है। जो मनुष्य अपना जूठा वर्तन धो लेता है, वह शरीर-श्रम करता है, परिचर्या नहीं। जो मनुष्य आजीविकाके लिए दरवाजेपर वैठकर चौकी-पहरा देता है, वह शरीर-श्रम नहीं करता, किन्तु परिचर्या अवश्य करता है।

३. इस प्रश्नका उत्तर देनेकी अब आवश्यकता नहीं रह जाती।

४. यह प्रश्न करते समय प्रश्नकर्ता कदाचित् भूल गये कि मेरा अभिप्राय यह है कि आज वर्ण-धर्मका प्रायः नाश हो गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कबसे अपना-अपना वर्ण-धर्म छोड़कर अधिकार ले बैठे हैं। दोष तो हो ही चुका है। अब स्वेच्छासे शूद्र-धर्म स्वीकार करके वर्ण-च्युत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य दोष-मुक्त होनेका आरम्भ कर सकते हैं। शूद्रको तुच्छ या नीच समझनेका उनका धर्म कदापि नहीं था।

५. जो लोग भागवत धर्मका हार्दिक पालन करते हैं, 'प्रभु-प्रीत्यर्थ' केवल आजीविका प्राप्त करके जो सतत लोक-सेवा करते हैं, वे अपने आचरणसे संसारको ब्रह्मज्ञान देते हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनमें विद्वान् भी हैं और अविद्वान् भी वे अपना कार्य किसीको दिखानेके लिए नहीं करते। उन सबका नाम मैं नहीं जानता। लेकिन मेरा विश्वास है कि ऐसे लोग मौजूद हैं, यद्यपि उनकी संख्या बहुत कम है।

हरिजनसेवक, २१-४-१९३३

५३१. अजन्माका जन्म कैसे?

मन्दिर सम्बन्धी जिनकी कई उलझनोंपर मैंने एक लेख[1] लिखा था वही शिक्षक फिर लिखते हैं:

> **जो अज है, अमर है, सृष्टिकर्ता है उसका जन्म कैसा? हिन्दू धर्मके मूल ग्रन्थ चारों वेदोंमें तो 'अवतार' शब्द तक नहीं आया है। अवतारवादको स्पष्ट करनेवाला यदि कोई ग्रन्थ आपकी दृष्टिमें हो तो मुझे लिखें। एक सत्य-शोधककी दृष्टिसे अवतारवादका अध्ययन कर लेनेकी मेरी इच्छा अवश्य है।**

हिन्दू धर्ममें बहुत-से धार्मिक सिद्धान्त बुद्धि-ग्राह्य हैं और कई बुद्धिसे अतीत हैं। अवतारवाद बुद्धिका विषय है और श्रद्धाका भी। और क्योंकि वह श्रद्धाका भी विषय है, इसलिए जैसे भौतिक विषयोंको समझानेवाले ग्रन्थ मिलते हैं, वैसे अवतारवादपर कोई ग्रन्थ है, यह मैं नहीं जानता। अंग्रेजीमें कुछ ग्रन्थ इस विषयपर लिखे गये हैं सही, लेकिन वे भी बुद्धिको पूर्ण सन्तोष नहीं देते। सम्भव है, संस्कृतमें इस विषयके कुछ ग्रन्थ हों, पर मुझे उनका पता नहीं। अवतारपर जो मेरी श्रद्धा जम गई है उसका कारण भक्तवर तुलसीदासजी हैं, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं तो प्रश्नकर्ता शिक्षक-जैसे सत्य-शोधकोंको तुलसीदासजी के ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेकी सलाह दूँगा। कोई

१. देखिए "कुछ उलझन-भरे प्रश्न", १८-३-१९३३

सज्जन इस विषयकी कोई पुस्तक जानते हों, तो कृपाकर उसका नाम लिख भेजें, मैं उसकी सूचना उक्त शिक्षकको दे दूँगा। पर अवतार-जैसे विषयपर ग्रन्थकी आवश्यकता कम है, मननकी अधिक है।

अब थोड़ा बुद्धिवादपर विचार कर लेना चाहिए। जो गुण परमात्माके माने जाते हैं, वही आत्माके भी माने जाते हैं। जिस प्रकार परमात्मा अज, अजर, अमर है उसी तरह आत्मा भी है। आत्मा परमात्माका सनातन अंश है, तभी तो उसमें परमात्माके गुण हैं। आत्मा अज है, तो भी शरीररूपमें जन्म लेती है, इस कारण उसे परमात्माका अंशावतार मानना पड़ेगा। यदि ऐसा हम मानते हैं, तो जिसमें परमात्माके बहुत-से गुणोंका आविर्भाव देखनेमें आता है, उसे ईश्वरावतार मान लेनेमें कोई बाधा नहीं आ सकती। पूर्णावतार-जैसी कोई बात बुद्धिसे सिद्ध नहीं हो सकती। यह विषय काल्पनिक है और श्रद्धामूलक भी। हिन्दू पूर्वजन्म और इस जन्मके संस्कारोंके कारण राम, कृष्ण इत्यादिको ईश्वरावतार मानेंगे। विश्व-मात्रको जो ईश्वर रूप मानता है उसे ईश्वरका अवतार मानना पड़ेगा। जैसे, जलके समुदायको हम समुद्र रूपमें देखते हैं, इसी तरह जीव-समुदाय रूपी संसारको हम ईश्वरावतार-रूपमें क्यों न देखें? इसे 'अवतार'का नाम दें अथवा न दें, यह और बात है। किसी भी नामसे हमें काम नहीं। यह जगत् ईश्वरसे अभिव्याप्त है। जहाँ भी देखते हैं, वहाँ वही-वही है। जिसका नाम और रूप है वह ईश्वरका अवतार है, इतना हमारे श्रद्धा-चक्षुके सामने स्पष्ट होना चाहिए। इतनी श्रद्धा यदि कहीं हमारे हृदयमें जम जाये, तो बहुत सम्भव है कि हम पापोंसे सदा दूर रहें। ईश्वरको घट-घटका साक्षी जानते हुए हम क्यों असत्यपर चलें और क्यों कोई पाप करें?

हरिजनसेवक, २१-४-१९३३

५३२. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रचूजको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय चार्ली,

तुम्हारा वह लम्बा-चौड़ा पत्र मिला, जिसमें तुमने ब्रिटिश गायना, दक्षिण आफ्रिका, इत्यादिकी प्रस्तावित यात्राके बारेमें अपने विचारोंका खुलासा किया है। मैं सोचता हूँ कि ये बाहरी चौकियाँ तुम्हारे साथ सदाके लिए जुड़ गई हैं। मुझे अपने-आपको इसका विश्वास दिलानेके लिए किसी बड़ी दलीलकी जरूरत नहीं। ये चौकियाँ जब-तब तुमको पुकारती ही रहेंगी। और इन पुकारोंपर ध्यान देना ही सबसे अच्छा रहेगा। इसलिए तुमको निश्चय ही ब्रिटिश गायना और बादमें दक्षिण आफ्रिका जाना ही चाहिए, फिर वहाँसे पूर्वी आफ्रिका जाकर भारत होते हुए लौटना चाहिए। इससे तुमको मानसिक सन्तोष मिलेगा और जिन समस्याओंके बारेमें तुमने विशेष योग्यता प्राप्त की है उनके बारेमें ताजी-से-ताजी जानकारी भी मिल जायेगी, तथा सम्बन्धित जनताको भी इससे सन्तोष मिलेगा। फिर, इन कई प्रदेशोंमें जो काम तुम कर सकते

हो वह सिर्फ तुम्हारे किये ही हो सकता है। आज यह काम देखनेमें ठोस लगता है या नहीं, इसका बिलकुल कोई महत्त्व नहीं है। और विश्वास करो — मुझे तो पूरा विश्वास है — कि इंग्लैंडसे तुम्हारी अनुपस्थितिमें इस कारण कामका कोई हर्ज नहीं होगा कि तुम मौज-मजेके लिए नहीं, बल्कि अपना कर्तव्य निभानेके लिए ही वहाँसे अनुपस्थित हो।

आशा है कि भाईकी सेवा-शुश्रूषाके भारसे तुम्हारी सेहतपर कोई बुरा असर नहीं पड़ा होगा और उन्हें अस्पतालमें दाखिल कराना उनके लिए लाभदायक रहा होगा।

हम सबकी ओरसे सस्नेह,

मोहन

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स, होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग-४, पृष्ठ ३१३ से। जी० एन० १३०३ से भी

५३३. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय घनश्यामदास,

आपका पत्र मिला। आपके बताये छहों सज्जनोंको[1] 'हरिजन'की प्रतियाँ जाती रहेंगी। पहली प्रतिके साथ शास्त्रीका एक पत्र भी रहेगा। लॉर्ड रीडिंग और लोथियनको अगाथा हैरिसनके निर्देशानुसार 'हरिजन'की एक-एक प्रति भेजी ही जा रही है।

आपके पिताजी बिना किसी पूर्व-सूचनाके मुझसे मिलने आ गये थे।[2] शास्त्री भी उनके साथ थे। दोनोंसे मिलकर मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। हम लोगोंने अस्पृश्यताके बारेमें काफी विस्तारसे बड़ी दिलचस्प चर्चा की। उन्होंने बतलाया था कि वे आपसे ग्वालियरमें मिलेंगे। आशा करता हूँ कि आपकी पुत्र-वधू सिंहगढ़ चली गई होंगी। आपके पुत्रके यहाँ आनेपर मैं उससे अवश्य मिलूँगा। मुझे पता नहीं था कि उसकी सेहत भी ठीक नहीं रहती।

दोनोंके दानका[3] उल्लेख मैं 'हरिजन'में करूँगा। वियोगी हरिने भी लिखा है कि उनको आशा है कि थोड़े ही समयमें 'हरिजनसेवक' आत्म-निर्भर बन जायेगा।

१. ये थे: बंगालके गवर्नरके निजी सचिव, सर एडवर्ड बेंथल, कलकत्ता, सर वाल्टर लेटन, सर हेनरी स्ट्रेकॉश लॉर्ड रीडिंग और लॉर्ड लोथियन, लन्दन।

२. राजा बलदेवदास बिड़ला १८ अप्रैल, १९३३ को गांधीजी से जेलमें मिले थे।

३. कानपुरके कमलापत सिंहानिया और रामेश्वरप्रसाद बागलाकी ओरसे; देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", १४-४-१९३३।

देखता हूँ कि आपने उसमें लिखना एकदम बन्द कर दिया है। गलत बात है। आपको हर सप्ताह उसके लिए कुछ-न-कुछ भेजना ही चाहिए।

आशा है, आप कलकत्तामें आवश्यक शल्य-चिकित्सा[1] करायेंगे।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २१०११) से।

५३४. पत्र : के० ईश्वर दत्तको[2]

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आप जो लेख मुझसे चाहते हैं उसे लिखनेके लिए मेरे पास थोड़ा-सा भी समय नहीं है और इसके अतिरिक्त दूसरा तथ्य यह भी है कि मेरे जेल-जीवनपर लगाये गये प्रतिबन्धोंके अन्तर्गत मैं ऐसा लेख शायद लिखकर भेज भी नहीं सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० ईश्वर दत्त
"स्वदेश भक्त"
इलाहाबाद

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२७) से।

५३५. पत्र : गरामुरके गोस्वामी सत्राधिकारको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मेरा निश्चित मत है कि हरिजन-सेवा कार्यके लिए समाजसे बहिष्कृत व्यक्तियोंको विनम्रतापूर्वक कष्ट-सहन करना चाहिए। फिर आप देखेंगे कि

१. नाककी।

२. के० ईश्वर दत्त **लीडर**के सहायक सम्पादक थे। उनको अंग्रेजी और हिन्दीकी एक सचित्र मासिक पत्रिका **स्वदेशी भक्त**के वार्षिक अंकका सम्पादन करना था। उसीके लिए वे स्वदेशीके कामको आगे बढ़ानेमें हरिजनोंके योगदान और हरिजन-कार्यको आगे बढ़ानेमें स्वदेशीके योगदानके तरीकोंके बारेमें एक लेख लिखवाना चाहते थे।

विरोध अपने-आप ठण्डा पड़ जायेगा।[1] मैं इसके विषयमें 'हरिजन' के पृष्ठोंमें काफी विस्तारसे लिख चुका हूँ। आपको वह पढ़ना चाहिए।

हृदयसे आपका,

गरामुरके परमपूज्य श्री श्रीगोस्वामी
गरामुरके सत्राधिकार
कैम्प, उत्तर गौहाटी, असम

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२१) से।

५३६. पत्र : ई० हिलियर्डको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

इसी महीनेकी १८ तारीखके आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आपका भेजा दिलचस्प लेख[2] मैं सरसरी तौरपर पढ़ गया हूँ। उसमें दिये गये उद्धरण बहुत ही जँचते हुए हैं।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ई० हिलियर्ड
४, हैरिस रोड
बेन्सन टाउन
बंगलोर

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२६) से।

१. गोस्वामी सत्राधिकार असम हरिजन सेवक संघके अध्यक्ष थे और उन्होंने गांधीजीसे सलाह माँगी थी कि सामाजिक बहिष्कारके मुकाबलेमें वे कैसा रवैया अपनायें।

२. "एक्जामिनिंग द यूनीवर्स" (विश्वका विश्लेषण)। खगोल-विज्ञानमें गांधीजी की दिलचस्पीकी बात मालूम होनेपर, ई० हिलियर्डने यह लेख उनके पास भेजा था।

५३७. पत्र : डी० सी० पर्वतेको[1]

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके[2] लिए धन्यवाद। कृपया देशदास पैसा फण्ड रानडेको बतला दीजिए कि मेरे विचार तो सर्वविदित हैं। मन्दिर-प्रवेश तो दूर, मैं किसी भी लक्ष्यके लिए बल-प्रयोगात्मक सत्याग्रहके इस्तेमालके एकदम विरुद्ध हूँ। इसलिए जहाँतक मेरी बात है, मैं निश्चय ही बलप्रयोगके सभी तरीकोंसे असहमति ही दिखाऊँगा और हमारे मित्रको मालूम होना चाहिए कि मैंने मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमें बल प्रयोगात्मक सत्याग्रह करनेसे लोगोंको रोकनेमें सफलता भी पाई है। आशा है, देशदासकी सेहत ठीक होगी। मेरा ख्याल है कि एक पवित्र संकल्पसे प्रेरित उपवासको त्यागनेका सुझाव देनेका भी कोई फायदा नहीं। आशा है कि उपवास पूरा करनेपर वे बहुत अधिक कमजोर नहीं होंगे।

हृदयसे आपका,

डी० सी० पर्वते
पूना

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०१९) से।

५३८. पत्र : झमटमल रामचन्दको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। बुद्ध और गुरुनानकके दिनोंमें मन्दिर-प्रवेशके सिलसिलेमें किसी भी तरहके झगड़े-फसाद या नहीं, इसका पता लगाना कठिन है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत झमटमल रामचन्द
मार्फत — आर० हासाराम एण्ड सन्स
१४५, मेन स्ट्रीट, कोलम्बो

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०१८) से।

१. गोवर्धन संघके एक कार्यकर्ता।

२. पर्वतेने लिखा था कि सितम्बर १९३२ में गांधीजी के साथ उपवास करनेवाले देशदास रानडेने हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेश दिलानेके लिए सत्याग्रहका इस्तेमाल करनेके विरोधमें फिरसे उपवास शुरू कर दिया है, क्योंकि उसे वह एक तरहका बल-प्रयोग ही मानते हैं।

५३९. पत्र : रामचन्द्रको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय रामचन्द्र,[१]

आपका १८ तारीखका पत्र मिला। यह मालूम होनेपर कि रु० ने नी० की किस तरह बिलकुल ही उपेक्षा कर रखी है और पूरी तरह सोच-विचार करनेके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि उसे पूना आ जाना चाहिए। उसके करनेके लिए देशके इस भागमें काफी हरिजन-कार्य पड़ा है। इसलिए मैंने उसको आ जानेके लिए तार दे दिया है। उसका उत्तर अभी मुझे नहीं मिला है। चीतलदुर्गके एक स्थानीय वकीलने मेरे साथ पत्र-व्यवहार शुरू किया था। मैंने उनको लिखा है कि यदि रु० उसे मार्गव्यय न दें तो वे जुटा दें।[२] मैंने लिखा है कि मैं उतनी राशि लौटा दूंगा। अब मैं इस बातकी प्रतीक्षामें हूँ कि नी० इसपर क्या करती है। हिन्दू मन्दिर-सम्बन्धी आपके प्रश्नके बारेमें मैं लिखूँगा। आपका पिछला पत्र मुझे नहीं मिला।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि युवराज आपसे मिलने आये थे और उन्होंने दान[३] दिया है और श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने भी दान दिया है।

स्वयं ब्रदर नारायणने मुझे एक पत्र भेजा था। मैंने उनको उत्तर दे दिया है।

आपके द्वारा प्रस्तुत ब्योरेवार प्रतिवेदनकी एक प्रति दिल्लीसे यथासमय मेरे पास पहुँच जायेगी। मैं उसे पूरे ध्यानसे पढ़ूँगा और मैं गुरुकुल सेवा संघके प्रतिवेदनको भी सरसरी नजरसे देख जाऊँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०१५) से।

१. मैसूर राज्यीय अस्पृश्यता-विरोधी संघ, बंगलोरके संयुक्त मन्त्री।

२. देखिए "पत्र: बी० के० रामचन्द्र रावको", १८-४-१९३३।

३. मैसूरके युवराज दीन संघके स्कूलोंको देखने गये थे और उन्होंने पाँच सौ रुपये दानमें दिये थे। रामचन्द्र द्वारा प्रस्तुत पूरा विवरण १३-५-१९३३ के **हरिजन**में प्रकाशित हुआ था।

५४०. पत्र : डॉ० आर्थर सॉण्डर्सको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय डॉ० सॉण्डर्स,

मीराबाईके सम्बन्धमें लिखे गये मेरे पत्रका[1] तुरन्त उत्तर देनेके लिए मैं आपका आभार मानता हूँ। इससे मुझे बड़ी शान्ति मिली है।

हृदयसे आपका

डॉ० आर्थर सॉण्डर्स
३७, हार्ले स्ट्रीट
लन्दन वेस्ट – १

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२५) से।

५४१. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

मुझे आपके कई पत्र मिल चुके हैं। समझौतेके बारेमें चिन्तामणिकी चेतावनी मैंने देख ली है।

मैं बंगालका जन-गणना प्रतिवेदन तुरन्त मँगाकर देखूँगा और आपने जिस अंशका हवाला दिया है उसे पढ़नेपर मेरे मनपर जो छाप पड़ेगी, आपको लिखूँगा।

नाटार-हरिजन झगड़ेके बारेमें आपको इसी सप्ताहके 'हरिजन' में मेरा लेख[2] मिल जायेगा। अब आपका अतिरिक्त विवरण[3] भी मुझे मिल गया है। उसे मैं अपनी फाइलमें रखूँगा, लेकिन उसके बारेमें अगले सप्ताह भी कुछ लिखूँगा नहीं। मैं घटना-क्रमपर नजर रखूँगा और अवसर देखकर परिस्थितिके बारेमें अपने विचार लिखूँगा।

हृदयसे आपका,

बापू

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० १११९)से; एस० एन० २१०२२ से भी।

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५१८-९।

२. देखिए "हरिजन होना क्या मतलब रखता है", २२-४-१९३३।

३. रामनाड जिलेमें हुए झगड़ेके सम्बन्धमें।

५४२. पत्र : अमृतलाल वि० ठक्करको

२१ अप्रैल, १९३३

प्रिय ठक्कर बापा,

इसी महीनेकी १७ तारीखका आपका पत्र मिला, और साथमें कोदण्डरावका बिल भी। बिलकी जाँच मेरी अपेक्षा आप ज्यादा अच्छी तरहसे कर सकते हैं। मैं तो इतना ही कह सकता हूँ कि जिन दिनों मैं वक्तव्य जारी किया करता था उन दिनों मैंने उनको जब-जब बुलाया वे तुरन्त आ जाते थे। मेरा खयाल है कि आप भी मुझसे इतना ही प्रमाणित करना चाहते हैं। उन्होंने जो तिथियाँ दी हैं, मुझे पूरा यकीन है, उनका क्रम बिलकुल सही है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२३) से।

५४३. पत्र : द० बा० कालेलकरको

२१ अप्रैल, १९३३

चि० काका,

तीन दिन बाट देखनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला। लगता है तुम्हें दूध अच्छी तरह हजम हो जाता है। अतः मेरे लिए कुछ कहनेको नहीं रहता, हालाँकि उस दुग्धोपचारकी पुस्तकमें आराम और गरम पानीमें कटि-स्नान करनेपर बहुत जोर दिया गया है। तुम घोड़ेके समान तगड़े हो जाओ और 'आत्मकथा' के अवशिष्ट अंशको पूरा कर डालो। मुझसे उसे पूरा करनेकी आशा करना बालूसे तेल निकालना है।

आनन्दीको एक दिन ज्वर आनेका तो मुझे पता है। किन्तु एक्सरे फोटो लेनेकी मुझे कोई खबर नहीं है। ये फोटो चाहे जितने सस्ते क्यों न हो जायें फिर भी करोड़ों लोगोंके तो कभी नहीं लिये जा सकते, इसलिए मुझे लगता है कि ये फोटो हमें कभी नहीं खिचवाने चाहिए। किन्तु मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी इन बातोंपर कोई अमल नहीं करेगा। मैं तो फूटा हुआ घड़ा हूँ उसमें कितना भरा जा सकता है? और जब उसमें कुछ है ही नहीं तो किसे क्या दिया जा सकता है?

गंगाबहनके बारेमें मुझे कुछ पता नहीं। खम्भाताका पता लिख भेजना। बुध-ग्रहको देखनेकी चेष्टा करूँगा। गोलीकेरेकी पुस्तक जहाँ-तहाँसे ही देख पाया था कि

इतनेमें दुग्धोपचारकी पुस्तक आ पहुँची। वाल तुमसे आकर मिल गया यह अच्छा हुआ। क्या घनश्यामदासकी पुत्रवधू आ गई?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९९) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

५४४. पत्र: द० बा० कालेलकरको

२१ अप्रैल, १९३३

चि० काका,

तुम्हारा पत्र मिला।

तुम चाहो तो पुस्तक रख लो। जो पुस्तक अच्छी हो वही पढ़ना उचित है। आलाबहनसे आँखोंका व्यायाम सीखकर शुरू कर ही दो। चश्मा छोड़ा जा सके तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है?

दुग्धोपचारके नियमोंका पूरी तरहसे पालन करना। यदि शरीर सदाके लिए स्वस्थ हो जाये तो उससे अधिक और क्या चाहिए। दिनशाके उपचारके बारेमें भी हम अधिक जान सकेंगे।

. . .के[1] बारेमें अब मुझसे और ज्यादा मत पूछो। फिलहाल तो तुम्हें जैसा ठीक लगे वैसा करो।

'हरिजनों'के बारेमें तुम्हारे प्रश्न मिल गये हैं। मैं उनके उत्तर दूँगा।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९४९८) से; सौजन्य: द० बा० कालेलकर

५४५. पत्र: नारायण मोरेश्वर खरेको

२१ अप्रैल, १९३३

चि० पण्डितजी,

तुम्हारा पत्र मिला।

छाराओंसे हम डरनेवाले नहीं हैं। उन्होंने भले बबूलके पेड़ काट दिये हों। इस बारेमें हम उन्हें समझायें और उन्हें शरमिन्दा करें। यदि हमारी सेवा सच्ची होगी तो कभी-न-कभी उसका अच्छा परिणाम निकलेगा। अतः किसी-न-किसीको उनके पास नियमपूर्वक जाना ही चाहिए।

१. जेलके अधिकारियोंने नाम मिटा दिया है।

दत्तात्रेयके बारेमें तुमने जो लिखा है मैं समझता हूँ। मुझे जब तुम लिखना आवश्यक समझो तब लिख सकते हो।

यदि तुम मथुरीकी[1] ठीक देखभाल कर सको और वह खुशीसे रहना चाहे तभी उसे रखना। संगीतके लोभमें उसके अन्य बन्धनोंको ढीला कर देना। कुछ थोड़ा तो वह बालकृष्णसे भी सीख सकती है। किन्तु लक्ष्मीबहन जो फैसला करे उसपर हमें अमल करना चाहिए। वह जब कल मुझसे मिलेगी तो मैं उससे बात कर लूँगा। तुम्हारे पत्रसे जान पड़ता है कि वह कल नहीं आ सकेगी। यदि ऐसा है तो मैं समझता हूँ कि अगले सप्ताह हम मिल सकेंगे।

बापू

गुजरातीकी फोटो-नकल (सी० डब्ल्यू० २४६) से; सौजन्य : लक्ष्मीबहन ना० खरे

५४६. पत्र : वियोगी हरिको

२१ अप्रैल, १९३३

भाई वियोगी हरि,

तुमारा पत्र मिला है। साथमें पुराने लेख भी मीले। वापिस किये जायेंगे। साथमें पुराने प्रचार कार्यकी दोड़धूप बंध होनेसे अ० निवारण कार्य शिथिल हुआ लगता है। यह मुझे प्रिय है। यह कार्य दोड़धूपका नहिं है धर्मकार्यमें दोड़धूप क्या? शांतिसे जितना होगा वही सच्चा और पक्का होगा। मतगणनाका कार्य होना आवश्यक समझता हूं। परंतु यह कार्य सच्चाईसे होनेमें मुझको कुछ संदेह है। ठक्कर बापा और घनश्यामदाससे इसकी चर्चा करो और तत्पश्चात् मुझे लिखो। इस कार्यकी जिम्मेवारी भी लेनावाली कोई धार्मिक व्यक्ति होनी चाहिये। ऐसी व्यक्ति कोई तुमारी नजरमें है?

जिन मंदिरमें हरिजन न जा सके उसमें सेवक भी न जाय यह बात मुझे प्रिय है। उपरोक्त कार्यसे यह ज्यादा कठिन है इसमें शांतिभंग होनेका भी डर है और चौकी कार्य शुरू करे उसके पहले हमारे लोगोंमें कुछ प्रचार भी करना चाहिये। इस बारेमें भी चर्चा करके मुझे दुबारा लिखो और इसका प्रबंध करनेवाला कौन हो सकता है? पत्रोंमें लिखना शुरू कर दूं उसके पहले हमारे सामने कुछ चित्र खड़ा होना चाहिये।

भक्तिके बारेमें तो इसीके साथ एक लेख[2] आ रहा है। दूसरे एक हरिजन भाईके प्रश्नों[3] पर है।

१. नारायण मोरेश्वर खरेकी पुत्री।

२. देखिए "भक्तिधारा कैसे बहे?" २१-४-१९३३।

३. देखिए खण्ड ५५, "एक हरिजनके प्रश्न", ५-५-१९३३ और "पत्र : पी० एन० राजभोजको", १९-४-१९३३ भी।

काका साहेब सिंहगढ़में हैं वहाँ नैसर्गिक, उपचार अपने हाजमाके लिये कर रहे हैं। सिंहगढ़से उतरनेके बाद कुछ हो सकेगा तो अवश्य लिखवाऊंगा।

'हरिजनसेवक' के ग्राहक बढ़ रहे हैं यह संतोषजनक बात है।

बापुके आशीर्वाद

हिन्दीकी फोटो-नकल (जी० एन० १०७४) से।

५४७. तार : बी० आर० अम्बेडकरको

[२२ अप्रैल, १९३३ या इसके पूर्व][1]

आपका पत्र मिला। रविवारको नौ-दसके बीच आ जाइए।[2]

गांधी

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (एस० एन० २०९९३)से।

५४८. ३० अप्रैल याद रहे[3]

जो लोग अगली ३० अप्रैल, अर्थात् हरिजन-दिवसके लिए निर्धारित तिथिको उपयुक्त और ठोस कार्यक्रमका संयोजन करना चाहते हों वे एक-एक क्षणका उपयोग करके सारी तैयारी सुविन्यस्त ढंगसे कर लें तो अच्छा हो। इस सम्बन्धमें मैंने जो काम सुझाये हैं उनमें प्रत्येक समिति अपनी इच्छानुसार कमी या वृद्धि कर सकती है।

आशा है, लोगोंने यह तो साफ-साफ समझ लिया होगा कि जहाँ और कोई काम करना सम्भव न हो वहाँ कमसे-कम प्रचुर धनसंग्रह अवश्य किया जायेगा। मैं जानता हूँ कि चन्दा इकट्ठा करनेवाले लोग अकसर पैसे-दो पैसेके दानको हिकारतकी नजरसे देखते हैं। उन्हें मैं अंग्रेजीकी यह कहावत याद दिला दूं कि "पेनी-पेनी जोड़नेसे पौंड़ तो अपने-आप बन जाते हैं।" यहाँ मैं एक कुशल चन्दा उगाहने-वालेकी हैसियतसे अपने अनुभवकी कुछ बातें बता दूं। मुझे याद है कि उड़ीसामें जनसाधारणसे मैंने पैसा-पैसा, अर्थात् इकन्नीका चौथाई हिस्सा भी नहीं, बल्कि पाई-पाई उगाही थी और जब सबको जोड़ा गया तो पता चला कि एक अच्छी-खासी रकम इकट्ठी हो गई है। हमारे देशकी आबादी करोड़ोंमें है। इसलिए मेरे विचारसे

१. यह तार अम्बेडकरके १९-४-१९३३ के पत्रके उत्तरमें दिया गया था और दोनोंकी भेंट रविवार, २३ अप्रैलको हुई थी। इसलिए गांधीजी ने यह तार २२ अप्रैलको या इसके पूर्व ही भेजा होगा।

२. अम्बेडकरने गांधीजी से पूना-समझौते और विशेषकर नाम-सूची (पैनल) की पद्धतिके बारेमें पुनर्विचारकी सम्भावनाओंपर चर्चा की थी।

३. यह "टिप्पणियाँ" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

इन करोड़ों लोगोंसे इकट्ठी की गई पाइयोंके योगका मूल्य कुछ-एक हजार मध्यवित्त लोगों द्वारा दिये गये रुपयोंके या आधे दर्जन धन्नासेठोंके द्वारा दिये कुछ लाखकी राशियोंके मूल्यसे कई गुना अधिक है। यदि चन्दा करनेवालों का विश्वास स्वयं अपनेमें, अपने कार्यमें और जन-साधारणमें होगा तो वे घर-घर जाकर पैसा-दो-पैसा जो मिले उसे इकट्ठा करेंगे। पूरे मनसे दी गई एक पाईको भी मैं इस बातका प्रतीक मानूँगा कि दाता अस्पृश्यताको मिटाना चाहता है और उसने इस आन्दोलनमें अपना अंश-दान किया है। यदि समितियाँ चन्दा एकत्र करनेके अपने-अपने प्रयत्नोंके परिणामोंके सच्चे विवरण दें और न केवल यह बतायें कि उन्होंने कितना धन एकत्र किया है, बल्कि यह भी बतायें कि वह धन कितने लोगोंसे एकत्र किया है तो उससे हमें इस आन्दोलनकी शक्तिका काफी अन्दाजा मिल सकता है। कहनेकी जरूरत नहीं कि चन्दा शान्तिपूर्वक और यथासम्भव विनम्रतासे इकट्ठा किया जाये और जब यह काम बिना शोर-गुल किये घर-घर जाकर किया जायेगा तो किसी हलकेसे कोई विरोध किये जानेका सवाल ही नहीं उठेगा। जो गृहस्थ कुछ देनेके इच्छुक न हों उनके साथ दलील न की जाये, उनके प्रति कोई दुर्भावना न प्रकट की जाये। ये दान तो स्वेच्छासे ही दिये हुए होने चाहिए।

एक सुझाव मैं चिकित्सक-समाजके लिए भी दूँगा। इन स्तम्भोंमें मैं जब-तब एक स्कूलके शिक्षकके कार्योंका विवरण देता रहता हूँ। अभी उसकी एक रिपोर्ट आई है, जिसमें हरिजनोंकी डाक्टरी सहायताकी आवश्यकता बताई गई है। अभी जो प्रसंग मेरे मनमें है उसमें हुआ यह कि एक चिकित्सकको निमोनियाके एक रोगीके बारेमें बताया गया। वह तुरन्त बिना कोई फीस लिये हरिजन बस्तीमें पहुँचा और वहाँ उसने न केवल उस रोगीका उपचार किया, बल्कि दूसरे मरीजोंकी भी जाँच करके कहा कि जब भी उन्हें उसकी सहायताकी आवश्यकता होगी, वह बिना कुछ लिये उनकी सेवाको तैयार रहेगा। इससे हरिजन लोग बड़े प्रसन्न हुए। यदि भारतके हर हिस्सेके डाक्टर-वैद्य मिलकर अपने बीचसे ही कुछ ऐसे चिकित्सक नियुक्त कर दें जो हरिजनोंके घरोंमें जाकर उन्हें आरोग्य तथा सफाईके नियमोंका पालन करनेकी आवश्यकता बतायें और जहाँ जरूरी हो, डाक्टरी सहायता दें तो इसका कैसा अद्भुत प्रभाव होगा? यदि इस कामको बड़े पैमानेपर करना है तो स्वभावतः इसे किसी प्रकारके पारिश्रमिककी अपेक्षा किये बिना करना होगा। डाक्टर-वैद्य हरिजनोंकी जो सेवा कर सकते हैं उसका प्रतिदान देनेका भार कोई भी संस्था अपने ऊपर नहीं ले सकती। इसके बजाय अगर डाक्टर-वैद्य इसका भार अपने सिर ले लेंगे तो आज भारतमें उनकी संख्या इतनी अधिक है कि यदि समझदारीसे कामका बँटवारा किया जाये तो किसीको ज्यादा बोझ महसूस न होगा।

तीसरी बात मुझे देश-भरकी महिला कार्यकर्ताओंसे कहनी है। उन सबको एक-जुट होकर हरिजनोंको जूठन देनेकी अमानवीय प्रथाको मिटा देना चाहिए। कराचीके एक हरिजनने मुझे पत्र[१] लिखा है। उसने बड़े करुण शब्दोंमें कहा है कि स्त्रियाँ

१. देखिए खण्ड ५५, "महिलाओंके विरुद्ध शिकायत", २३-४-१९३३।

कमसे-कम इस सुधारको तो तत्काल सम्पन्न करानेका भार अपने सिर ले सकती हैं। उसका कहना है कि हरिजनोंको सड़ा-गला, आदमीके न खाने योग्य खाना, जिससे दुर्गन्ध आती है और जो इतना गन्दा होता है कि बयान नहीं किया जा सकता, देते हुए वे तनिक भी संकोच नहीं करतीं, और यह खाना भी वे इस भयसे कि हरिजनोंके सम्पर्कसे कहीं अपवित्र न हो जायें, अपने छज्जे या बरामदे परसे ही हरिजनोंके हाथोंमें फेंक देती हैं। और आगे वह बड़ी व्यथाके साथ लिखता है, "दयनीय बात तो यह है कि अगर हरिजनोंको यह उच्छिष्ट न दिया जाये तो वे मानेंगे कि उनसे उनका एक हक छीन लिया गया है।" यदि सभी जगहोंपर महिला कार्यकर्ता संगठित होकर अपनी बहनोंसे मिलें और उन्हें इस प्रथासे विमुख करें तो निश्चय ही यह बहुत अच्छी बात होगी। मुझे पूरी आशा है कि दया और मानवीयताके इस कार्यमें सनातनी लोग भी सहयोग करेंगे। लेकिन वे चाहे सहयोग करें या न करें, जो महिलाएँ इस प्रथाकी जघन्यताका अनुभव करती हैं उनका यह कर्त्तव्य है कि वे सक्रिय हो जायें और अपनी उन बहनोंके विवेकको जगायें जो शायद यह भी नहीं जानतीं कि इन लोगोंको, जो आखिरकार उनके भाई-बन्धु ही हैं, अधम अवस्थामें डालनेकी दोषी बनकर वे मानवताके विरुद्ध एक अपराध कर रही हैं। इस सन्दर्भमें मैं कार्यकर्ताओंका ध्यान उन ठोस सुझावोंकी ओर दिलाना चाहूँगा जो मैंने अभी पिछले ही दिनों देहरादूनके एक विद्यार्थीकी शंका-समाधान करते हुए दिये थे।[1]

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-४-१९३३

५४९. हरिजन होना क्या मतलब रखता है

करोड़ों हिन्दुओंमें तीर्थराज प्रयागके नामसे विख्यात, गंगा-यमुनाके संगमपर बसे, उत्तर भारतके नगर इलाहाबादमें हरिजनोंकी दशाके बारेमें पाठक अन्यत्र[2] पढ़ेंगे।

वे सुदूर दक्षिणपर भी एक नजर डाल लें। वहाँ उनको ऐसे गाँवोंका एक झुण्ड मिलेगा जिसमें नाटार नामसे जाने जानेवाले भूमिधर रैयत और उनके भूमिहीन 'अर्द्ध-दास' हरिजन रहते हैं। पिछले वर्ष मई, जून और जुलाई महीनोंके दौरान इन दोनोंमें झगड़ा हो गया था। मद्रास विधान परिषद्में एक प्रस्ताव भी २२ के विरुद्ध ४४ मतोंसे पारित हुआ था, जिसमें सरकारसे सिफारिश की गई थी कि नाटारों द्वारा हरिजनोंपर किये गये कथित अत्याचारोंकी जाँच करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करनेके लिए एक समिति नियुक्त की जाये। कहा जाता है कि सरकारने इस सिफारिशपर अबतक कोई अमल नहीं किया है।

१. देखिए "विद्यार्थी और अवकाश" १-४-१९३३।

२. देखिए अगला शीर्षक।

परन्तु श्रीयुत अमृतलाल ठक्करने मेरे पास एक विस्तृत विवरण भेजा है। यह विषय अब भी प्रासंगिक बना हुआ है, क्योंकि झगड़ेकी सम्भावना अभी-पूर्णतः समाप्त नहीं हुई है, वह किसी भी क्षण फिर भड़क सकता है। दोनों समुदाय जैसे एक सशस्त्र निष्क्रियताकी स्थितिमें रह रहे हैं। यह जाँच वकील तथा जिला हरिजन समितिके अध्यक्ष, श्रीयुत ए० रंगस्वामी अय्यंगार, वकील तथा जिला समितिके मन्त्री श्रीयुत लक्ष्मीरतन भारती, वकील श्रीयुत वी० ई० एपन और हरिजन सेवक संघके तमिलनाड बोर्डके मन्त्री श्रीयुत रामचन्द्रन्ने सम्मिलित रूपसे की। ये महानुभाव देवकोट्टा, पवनकोट्टा, परमक्कुडि, एलुवनकोट्टा और चित्तनूर गये। यह झगड़ा एलुवनकोट्टामें मन्दिरोत्सवके दौरान शुरू हुआ। हरिजनोंको "अभी हालतक नाटारों द्वारा निर्धारित शर्तोंपर उनकी मजदूरी करनी पड़ती थी।"

झगड़ेके दौरान, नाटारोंने गाँव (पवनकोट्टा) पर हमला बोला और हरिजन घरोंको लूट लिया। उन्होंने प्रतिरोध पर आमादा कुछ हरिजनोंको एक पेड़से बाँध दिया। . . . हरिजन बस्तीके एक घरमें स्थित हरिजन स्कूलमें आग लगा दी। अधिकांश हरिजन घरोंके आगे गोबर और भूसेके बने छोटे-छोटे अन्न-भण्डारोंको बिलकुल मटियामेट करके अन्न लूट लिया। ये भण्डार कमरोंके बजाय बड़ी बाल्टीनुमा दिखते हैं। स्कूली इमारत और अनाजके उन बर्तनोंके अवशेष हमने स्वयं देखे।

विवरणमें आगे कहा गया है:

स्वयं हरिजनोंमें दो समुदाय शामिल हैं — पल्ला और परिया। गड़बड़ीके आसार दिखते ही पल्ला लोग तो अपनी स्त्रियों तथा बच्चोंको गाँवमें ही छोड़कर देवकोट्टा भाग गये। हमलावरोंने उनकी स्त्रियों तथा बच्चोंको भी काफी तंग किया। इन पल्ला लोगोंमें से अनेक पहलेसे ही ईसाई थे। परिया लोगोंको अधिक कष्ट भोगने पड़े। धर्म-परिवर्तन करानेवाला ईसाई पादरी अब प्रार्थना-सभाओं और सामान्य प्रचारके लिए हर सप्ताह वहाँ आता है। वह उनका अपना एक नया स्कूल बनवानेके लिए भी तैयार हो गया है। पल्ला लोग कुछ पहले और परिया लोग बादमें अपने-अपने घरोंमें लौटे।

तीन महीने पहले चार परिवारोंके १४ सदस्य ईसाई बन गये। लगता है कि कुछ अन्य परिवार भी यही करेंगे। हम जहाँतक पता लगा पाये हैं, उसके अनुसार धर्मान्तरित लोगों और हरिजनोंके बीच कोई झगड़ा नहीं है। धर्मान्तरित लोगोंमें से एकने हमारे प्रश्नोंके उत्तरमें बताया कि वे ईसाई इसलिए बन गये कि मिशनरियोंने उनको सुरक्षा और सहायता देनेका वचन दिया है।

हरिजनोंने समितिको बतलाया:

नाटार लोग चाहते हैं कि हम पुरानी प्रथाओं और रीति-रिवाजोंका बिलकुल पहलेकी तरह पालन करते रहें। वे नहीं चाहते कि हम लोग शरीरके

ऊपरी भागमें अपनी पसन्दके मुताबिक कमीजें या अन्य वस्त्र धारण करें, या हमारे यहाँकी स्त्रियाँ फ्राक या साड़ी पहनें। पुरानी प्रथाके मुताबिक हमारे वस्त्र घुटनोंसे नीचेतक नहीं रहने चाहिए और ऊपरी भागमें पहने हुए सभी वस्त्र कूल्होंपर ही कसे जाने चाहिए। स्त्रियोंको कमरसे ऊपरके हिस्सेको अपने हाथोंके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकारसे ढँकनेकी इजाजत नहीं थी। पुराने जमानेमें हमें एक नृत्य-विशेष करते हुए धार्मिक जुलूसोंमें चलना पड़ता था। आज भी किसी नाटारसे सामना होनेपर हरिजनको 'सेवकम्' अर्थात् 'आपकी सेवामें', कहना पड़ता है। वे हमको अपनी पसन्दके स्थानपर या पसन्दके मालिकके यहाँ काम नहीं करने देते। हमको उनके हुक्मपर जहाँ वे कहें वहाँ और जितनी भी मजदूरी वे दें, उसीपर उनके लिए काम करना पड़ता है। वे यह पसन्द नहीं करते कि हम पीतलके बर्तन इस्तेमाल करें और यदि हमारी स्त्रियाँ आभूषण पहनती हैं तो वे नाराज हो जाते हैं। पासके एक गाँव परमक्कुडिमें अभी दो सप्ताह पहले ही एक नाटारने फ्राक पहनकर निकलनेवाली हमारी एक महिलापर थूक दिया था और कहा था कि नाटारोंकी गलीमें ऐसा धृष्ट व्यवहार मत करो।

एक नाटार मुखियाने यह बयान दिया :

हरिजनोंके साथ हमारा कोई झगड़ा नहीं। हम सिर्फ इतना चाहते हैं कि वे पुरानी प्रथाओं और रीति-रिवाजोंको न तोड़ें। वे अब हमारे लिए काम करनेसे इनकार करते हैं; ऊँची मजदूरी माँगते हैं। वे अपने गाँवमें कमीजें पहनें या उनकी महिलाएँ आभूषण या फ्राक पहनें — इसपर हमें कोई आपत्ति नहीं। आपत्ति तो हमें तब होती है जब वे हमारे गाँवमें और खासकर मन्दिरोत्सवके दिनोंमें सभी तरहके लोगोंके भारी जमावके अवसरपर आकर इनका प्रदर्शन करते हैं। यदि हरिजन स्त्री-पुरुष भी हम लोगोंकी तरहके ही वस्त्र धारण करने लगेंगे, तो फिर उस भारी जमावमें हम उनमें और अन्य लोगोंमें फर्क कैसे करेंगे? इससे होता यह है कि सब लोग साथ मिल जाते हैं और हमें छूत लगती है। वे जैसा चाहें पहनें, इसपर हमें कोई आपत्ति नहीं, लेकिन हमारी मुश्किल तो यह है कि फिर हम भीड़में उनको पहचानेंगे कैसे? स्कूलोंमें भी वे जायें, इसपर हमें कोई एतराज नहीं, लेकिन यदि वे सबके लिए खुले किसी स्कूलमें जायें तो उनको अलग बैठना चाहिए। हम भली-भाँति समझते हैं कि वे जैसे पुराने जमानेमें थे, ठीक वैसे ही नहीं बने रह सकते। पर हमें धृष्टता और विद्रोहका विरोध तो करना ही पड़ेगा।

यह पीड़ाजनक विवरण और अधिक विस्तारसे देनेकी जरूरत नहीं। अच्छे वस्त्र पहननेपर या विवाहके अवसरपर हरिजन वर-वधूको पालकियोंमें ले जानेपर हरिजनोंपर हमले करने और तरह-तरहसे नाराजी प्रकट करनेके कई उदाहरण हमारे

पास अन्य स्थानोंसे भी आये हैं।[1] अब यह तो सनातनियोंका ही कर्तव्य है कि वे सुधारकोंके साथ मिलकर काम करें और धर्मके नामपर एक जाति द्वारा दूसरी जातियोंपर अपनी श्रेष्ठता थोपनेके इस दम्भपूर्ण व्यवहारको समाप्त करें।

पाठकोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि समिति सिर्फ जाँच-पड़तालके काम तक ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री नहीं मानती, यद्यपि जाँच-पड़तालका यह काम अपने आपमें काफी महत्त्वपूर्ण है। समितिने इससे आगे जाकर सब-कलेक्टरसे भी मुलाकात की है और उसने आश्वासन दिया है कि यदि फिर झगड़ा फैला तो हरिजनोंकी सुरक्षाका प्रबन्ध किया जायेगा। आगामी उत्सवके दौरान उरूवट्टि गाँवमें इसकी बड़ी आशंका है। समितिके सदस्यगण प्रभावशाली नाटारों और पास-पड़ोसके काफी जाने-माने अन्य व्यक्तियोंकी सहायता लेकर नाटारों और हरिजनोंके बीच जो दोनोंके लिए सम्मानजनक हो, ऐसी शान्ति स्थापित करनेकी कोशिशमें लगे हुए हैं।

समिति यह भी महसूस करती है कि "शिक्षाके अतिरिक्त अन्य कोई साधन इस समस्याको अन्तिम रूपसे हल नहीं कर सकता।" इसीलिए उनका प्रस्ताव है कि जिले-भरमें पाठशालाओंका — दिवा और रात्रि दोनों तरहकी पाठशालाओंका — एक सिलसिला जमाया जाये। आइए, हम इन दोनों दिशाओंमें समितिके सराहनीय प्रयत्नोंकी सफलताकी कामना करें।

[अंग्रेजीसे]
हरिजन, २२-४-१९३३

५५०. तात्कालिक कर्तव्य

हरिजन सेवक मण्डल (सं० प्रा० बोर्ड)की इलाहाबाद शाखाने एक समिति नियुक्त की थी। इसके सदस्य थे श्रीयुत प्रकाशनारायण सप्रू, श्रीयुत विश्वेश्वर प्रसाद और श्रीयुत रामनाथ दर। समितिको उस नगरके हरिजनोंकी अवस्थाकी रिपोर्ट देने और उसमें सुधारके लिए सिफारिशें पेश करनेका काम सौंपा गया था। समितिने टाइप किये हुए अट्ठावन पृष्ठोंकी विस्तृत रिपोर्ट पेश की है। इसके अलावा इसमें कुछ परिशिष्ट भी हैं। इस रिपोर्टके लिए समिति बधाईकी पात्र है। रिपोर्टमें हरिजनोंकी संख्या नहीं दी गई है, यह बात खटकती है। छावनीको छोड़कर नगरकी आबादी केवल १,७३,८९५ है।

इस महत्त्वपूर्ण रिपोर्टके सभी हिस्सोंकी चर्चा मैं नहीं कर रहा हूँ। जो लोग इसका अध्ययन करना चाहें, इलाहाबाद कार्यालयसे इसकी प्रति मँगवा लें।

सबसे अधिक अशिक्षित और उपेक्षित मेहतर और डोम हैं। इनकी उपेक्षा न केवल सवर्ण हिन्दू बल्कि इस महानगरमें रहनेवाले सभी नागरिक करते हैं। उनकी अवस्थाके बारेमें समिति अपनी रिपोर्टमें कहती है:[2]

१. देखिए "हरिजन क्या सोचते हैं", १८-३-१९३३।
२. यहाँ इसके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

दलित वर्गोंके लोगोंकी बस्तीके निकट जाते ही मन घोर ग्लानिसे भर जाता है। वे जिन घरोंमें रहते हैं, उनमें से कुछ, और खासकर जो नगरके केन्द्रीय हिस्सेमें बने हुए हैं वे तो वास्तवमें मनुष्यके रहने लायक नहीं हैं। ये घर बिलकुल अंधेरे और सीलन-भरे हैं। . . . उनमें आम तौरपर एक ही कमरा होता है, वह भी केवल पाँच वर्ग गजका और उसीमें चार-छः लोगोंके एक पूरे परिवारको रहना पड़ता है। इन घरोंमें कहींसे हवा या रोशनी नहीं आती। इनमें सामने न कोई बरामदा होता है, न खुली जगह; न पाखाने, गुसलखानेकी व्यवस्था होती है और न रसोईघरकी। इनके सामनेकी गलियाँ बहुत तंग होती हैं — कच्ची, कीचड़-भरी, न कोई नालियाँ और न कोई रोशनी। इन हलकोंका सारा वातावरण ही दुर्गन्धमय होता है। सफाई आदिकी तो कोई व्यवस्था ही नहीं है, और वहाँ जो दृश्य देखनेको मिलते हैं वे मनमें घृणा और वितृष्णा पैदा करते हैं। भयंकर रूपसे गन्दे सार्वजनिक पाखानोंसे केवल सात फुटकी दूरीपर रहनेको मजबूर लोगोंसे कोई अधिक आशा नहीं की जा सकती। हमने देखा है कि इन्हीं पाखानोंमें लगे नलोंका पानी आस-पास रहनेवाले मेहतर नहाने-धोने और पीने-पकानेके काममें लाते हैं। . . . मनुष्यके चरित्रपर उसके भौतिक परिवेशका प्रभाव पड़ता है, इससे कौन इनकार कर सकता है? फिर आश्चर्य नहीं यदि 'अस्पृश्यों' के मनमें स्वच्छ और सुन्दर जीवनका कोई खयाल ही नहीं रह गया है। . . . जिन परिस्थितियोंमें मेहतरोंको रहना पड़ता है, उनका वर्णन करते हुए कलमको काबूमें रखना कठिन है। समाज-कल्याणके कार्योंमें रुचि रखनेवाले सभी लोगोंसे हम उत्कटतासे अनुरोध करते हैं कि इलाहाबादके फूल तालाब, भैंसा गोदाम या काली माईका थान जैसी जगहोंपर जाकर वे स्वयं देख लें कि हमने जो कहा है वह सही है या गलत।

काली माईके थानके बारेमें रिपोर्टमें इस प्रकार लिखा है:

नगरपालिकाकी गणनाके अनुसार इन पाखानोंका उपयोग प्रतिदिन ११९२ पुरुष और १२२० स्त्रियाँ करती हैं। इनमें रोशनी नहीं है, जिससे मर्दोंको शामको बाहर ही शौच जाना पड़ता है। इन पाखानोंके सामने बने घरोंमें रहनेवाले लोग घरों और पाखानोंके बीचकी जगहका उपयोग आँगनकी तरह करते हैं और उनके बच्चे इसीमें खेलते हैं। पाखानेके चारों ओर कोई दीवार नहीं है, जिससे मेहतरोंके घरोंसे इन पाखानोंका उपयोग करने वालोंके अधोभाग नजर आते हैं। औरतों और मर्दोंके लिए अलग-अलग खण्ड हैं, लेकिन बीचकी दीवार इतनी कम ऊँची है कि खुड्डीपर खड़े हुए मर्दको उस पारकी औरतें दिखाई दे सकती हैं। नल सिर्फ एक है — सो भी पाखानेके निकट और नाबदानसे बिलकुल सटा हुआ। पानी जब-तब आता है, और सो भी बिलकुल

अपर्याप्त। नलका प्रयोग पाखाने साफ करने, नहाने तथा घरेलू जरूरतोंके पानीके लिए भी किया जाता है। पाखानेमें लगे नाबदान अकसर पेशाबसे भर जाते हैं और वे बहुत ही गन्दी हालतमें होते हैं। उन्हें ठीकसे साफ करनेके लिए मेहतरोंको उनमें नंगे पैर उतरना पड़ता है। उस हलकेके आसपासकी और गलीकी जमीन कच्ची है और बरसातमें वह कीचड़से भर जाती है। सार्वजनिक और निजी पाखानोंसे विष्टाको पाखानेकी गाड़ियोंमें डालनेके लिए कोई चबूतरा नहीं बना हुआ है। मेहतरोंको इस गन्दगीका भारी बोझ लेकर गाड़ीपर चढ़ना पड़ता है और तभी वे उसे गाड़ीमें डाल पाते हैं। पाखानोंमें रखे ज्यादातर डोल टूटे-फूटे होते हैं। वे छोटे होते हैं, इसलिए जल्दी ही भर जाते हैं। इससे विष्टा उनसे बाहर निकल आती है और पानी तथा पेशाबके साथ मिलकर नाबदानोंमें बहने लगती है।

पाखाना उठानेकी गाड़ियाँ केवल चार हैं। गाड़ियोंके बिलकुल भरी होनेके कारण हमने मेहतरोंको अपने टोकरोंमें पड़े मल-मूत्रको जमीनपर फेंकते देखा है। हमारा दावा है कि ऊपर हमने जो तथ्य दिये हैं, उन्हें कोई गलत साबित नहीं कर सकता।

मेरे विचारसे तो इसके सामने रिपोर्टकी और सभी बातें गौण हो जाती हैं। रिपोर्टमें वर्णित अवस्थाको महज इसीलीए कायम नहीं रहने दिया जा सकता कि इस तरहकी जाँच की जानेपर शायद दूसरे नगरोंकी अवस्था भी दुःखद ही पाई जायेगी, या इलाहाबादकी तो वर्षोंसे यही हालत है। जब किसी घरमें कोई साँप दिख जाता है तो इस कारणसे कि वह तो वहाँ वर्षोंसे रहता आया है, उसको भगानेमें देर नहीं की जाती। इस कल्पित घर और कल्पित साँपकी अपेक्षा इलाहाबाद का यह घिनौना स्थल कहीं ज्यादा बुरा है। मुझे आशा है कि समितिके सदस्य और मण्डलकी इलाहाबाद शाखाके सदस्य तबतक न खुद चैन लेंगे और न इलाहाबाद नगरपालिकाको लेने देंगे जबतक कि यह शर्मनाक अवस्था बिलकुल बदल नहीं जाती और समाजके इन अत्यन्त उपयोगी सदस्योंके किसी अच्छी जगह अच्छी तरह रहनेकी व्यवस्था नहीं कर दी जाती। मेरी जानकारीमें एक ऐसा प्रसंग है। एक जगह प्लेग फैल जानेपर वहाँ रहनेवाले पन्द्रह सौ लोगोंको चौबीस घंटेके अन्दर वहाँसे हटाकर तम्बुओंमें बसा दिया गया था और जबतक उनके लिए अन्यत्र आवासकी व्यवस्था नहीं हो गई तबतक उन्हें वहीं रखा गया था।[1] मौजूदा प्रसंगमें भी इसी तरहकी तात्कालिक कार्यवाही की आवश्यकता है और अगर इलाहाबादने आगे बढ़कर रास्ता दिखाया तो मुझे कोई सन्देह नहीं है कि दूसरे नगर भी उसका अनुसरण करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-४-१९३३

१. देखिए खण्ड ३९, पृष्ठ २२६।

५५१. एक हरिजन-सेवककी दुविधा

एक हरिजन-सेवक लिखते हैं:

आप तो जानते हैं कि अस्पृश्यता-विरोधी कार्यकर्ताओंको सनातनी पुरोहितोंके दुर्व्यवहारका शिकार होना पड़ता है। वे ऐसे कार्यकर्ताओंके घरोंके धार्मिक समारोहोंमें पौरोहित्य करनेसे इनकार करते हैं। आपने 'हरिजन', सं० ४ में कहा है[1] कि सुधारकोंको बाहरी आडम्बरोंका त्याग करना सीखना चाहिए। क्या आप नहीं चाहेंगे कि पुरोहितोंसे भी बिलकुल छुट्टी ही पा ली जाये? पुरोहित लोग तो सिर्फ पैसेके लिए काम करते हैं, मेरी जानकारीमें ऐसे बहुत-से पुरोहित हैं जो शुद्ध मन्त्रोच्चार भी नहीं कर पाते। उनके अर्थ तो और भी कम पुरोहित जानते हैं। वे जनताके भोलेपनका लाभ उठाते हैं। ऐसे पौरोहित्यसे किसीको क्या पुण्य मिल सकता है? अन्य स्थानोंकी अपेक्षा तीर्थस्थलोंमें ऐसे पाखण्डका और अधिक बोलबाला है। मैं खुद ब्राह्मण हूँ। मैं १३ वर्षका था तभी मेरा उपनयन संस्कार हुआ था। संस्कारके अन्तमें पुरोहितने कहा कि जबतक तुमने जनेऊ नहीं धारण किया था, तुम शूद्र थे, लेकिन अब जनेऊ धारण करके ब्राह्मण बन गये हो। जब मैं माता-पिताको नमस्कार करने गया तो मुझे इस सूत्रको वहाँ दोहराना पड़ा। यहाँ मुझे जो बात बताई गई वह यह थी कि जनेऊ धारण करनेके बाद मेरा दर्जा ऊँचा हो गया है। आप अपने कथनका कि हिन्दू धर्ममें ऊँच नीचका कोई भेद ही नहीं, मेल इस बातसे कैसे बैठाते हैं?

आपसे एक और बात कहना चाहता हूँ। जब मैं स्कूलमें था, हमारी कक्षामें एक वाद-विवाद प्रतियोगिता हुई थी। उसकी अध्यक्षता एक सनातनी शिक्षकने की थी। मुझे याद है, उसने कुछ इस तरहकी बातें कही थीं: हमारी स्त्रियाँ हर महीने अस्पृश्य हो जाती हैं और उनके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा किसी भी अन्य अस्पृश्यके साथ। तो फिर जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता है, उनके प्रति हम ऐसी अस्पृश्यता क्यों नहीं बरतें?

पत्र काफी लम्बा था, लेकिन मैंने उसे बहुत संक्षिप्त करके दिया है। बहुत-से पुरोहितोंके अज्ञानके बारेमें और वे पाण्डित्यका जो स्वांग रचाते हैं उसके सम्बन्धमें पत्र-लेखकने जो-कुछ कहा है, वह दुर्भाग्यवश सर्वथा सच है। इसका उपाय यह है कि सामान्य रूपसे सभी लोगोंके चरित्रका स्तर ऊपर उठाया जाये और ठीक ढंगकी

१. देखिए खण्ड ५३, पृष्ठ ५०४-५।

शिक्षाका, जिसमें संस्कृतका कामचलाऊ ज्ञान भी शामिल है, प्रचार किया जाये। विवेकानन्द संस्कृतको जिस महान् शक्तिका श्रेय देते थे, उसमें मेरा विश्वास है। हम लोग संस्कृत सीखनेकी कठिनाईसे अनावश्यक रूपसे घबराते हैं। लगनशील विद्यार्थीके लिए यह उससे कुछ अधिक कठिन नहीं है जितना कि कोई और भाषा सीखना। मेरा मतलब यह नहीं है कि हम संस्कृतका ऐसा ज्ञान आसानीसे प्राप्त कर सकते हैं जिससे हम प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंकी निगूढ़ताको समझ जायें। मेरा कहना तो यह है कि संस्कृतका कामचलाऊ ज्ञान प्राप्त करना, उसका सही उच्चारण सीख लेना, ताकि हम यह जान सकें कि पुरोहित अपना काम ठीक-ठीक कर रहा है या नहीं या वह हमें धोखा तो नहीं दे रहा, बहुत कठिन नहीं है। अंग्रेजीका उतना ही ज्ञान प्राप्त करना जितना कठिन है, उसकी तुलनामें तो यह दशांश भी कठिन नहीं है। और फिर यह भी नहीं भूलना चाहिए कि संस्कृतका ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लेनेका मतलब वह कुंजी हाथ लग जाना है जिसके बलपर दक्षिणकी भाषाओं-सहित अधिकांश भारतीय भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करना बहुत आसान हो जायेगा।

किन्तु मैं प्रस्तुत विषयसे दूर जा रहा हूँ। जबतक वह शुभ दिन नहीं आता तबतक तो हमें अपने उपलब्ध साधनोंसे काम लेना होगा और उनके द्वारा अपनी पूरी शक्ति लगाकर जितना जो-कुछ कर सकते हों, करना होगा। और यदि हमें अपनी धार्मिक विधि करानेके लिए कोई विश्वसनीय ब्राह्मण पुरोहित न मिले तो 'भागवत' और परवर्ती सन्तोंने इसका हमें एक अत्यन्त सरल हल बताया है। विवाहकी, जन्मकी, मृत्युकी, या अन्य कोई भी धार्मिक विधि हो यदि हृदयसे भगवान्‌के नामका उच्चारण-मात्र करें तो हम निःशंक यह मान सकते हैं कि उतने से ही हमें उनकी उपस्थिति और उनके आशीर्वादका लाभ मिल जायेगा। भगवान् तो सदा और सर्वत्र है ही; हमें इस सत्यकी प्रतीति नहीं है, इतनी ही बात है। सन्तोंकी अटूट परम्परा द्वारा अनुष्ठित और इस दीर्घकालीन अनुष्ठान द्वारा पावनीकृत यह नाम-जप हमें अज्ञानकी मूर्च्छासे जगा देता है और उसका प्रभाव बिजलीकी चिनगीकी तरह अमोघ होता है। वह हमें तुरन्त ही अपने बीच भगवान्‌की उपस्थितिका भान करा देता है। यह मैं उनके लिए कह रहा हूँ जिनमें श्रद्धा है। जिनमें ऐसी श्रद्धा नहीं है वे इस बातको अपने मनसे निकाल दें। उनके लिए तो उस रूढ़िवादी पुरोहितका वहाँ होना भी महज एक यान्त्रिक घटना है, रिवाजका मूढ़ पालन-मात्र है। उससे उन्हें कोई पुण्य लाभ नहीं होता। हिन्दू परिवारोंमें प्रामाणिक, सदाशय पुरोहितके लिए, वह रूढ़िग्रस्त हो तब भी, स्थान है। इस स्थानको अपनी मूर्खताके कारण वह तेजीसे खो रहा है। यदि वह अपना आलस्य, अज्ञान और जो इससे भी ज्यादा बुरी वस्तु है, अपनी बेईमानी दूर कर दे तो उसका स्थान अब भी सुरक्षित है। वर्तमान आन्दोलनसे हमारी यह अपेक्षा है कि वह अप्रत्यक्ष रूपसे यह सुधार भी करेगा। आन्दोलन आन्तरिक शुद्धिका आन्दोलन है। आन्तरिक शुद्धि तबतक सम्भव नहीं है जबतक हम हर बुरी चीजको झाड़-बुहारकर फेंक नहीं देते। और इसका आरम्भ यदि अपने को ब्राह्मण कहनेवाले नहीं करेंगे तो और कौन करेगा?

जहाँतक उपनयनकी विधिका सवाल है, मैं स्वयं तो यज्ञोपवीतका त्याग कर चुका हूँ किन्तु मैं यह जरूर मानता हूँ और मुझे इसमें कोई शंका नहीं है कि उसमें एक गहरा अर्थ है। यज्ञोपवीत नवजन्मका प्रतीक है। यज्ञोपवीत धारण करनेके पहले हमारा पहला जन्म, शारीरिक जन्म हुआ होता है। यज्ञोपवीत दूसरे जन्मका, आध्यात्मिक जन्मका चिह्न है। वह दीक्षित होनेका, भगवान्‌के प्रति समर्पित नये जीवनका चिह्न है। इसलिए उच्चतर जीवनके इस अर्थमें कि इस नये जीवनमें अपने प्रति हम ज्यादा जिम्मेदारी महसूस करते हैं, वह उच्चतर जीवन अवश्य है। लेकिन वह हमें अपने पड़ोसीसे ऊँचा दर्जा नहीं देता। सच तो यह है कि उपनयनके समय उपनीत को इस बातकी स्पष्ट प्रतीति होनी चाहिए कि वह उस दिनसे समाजके सबसे ज्यादा गरीब और दलित लोगोंका सेवक बन रहा है। और यह कल्पना कि जब तक दीक्षा और समर्पणका यह संस्कार सम्पन्न नहीं होता तबतक हम सब शूद्र हैं मुझे तो बहुत ही सुन्दर मालूम होती है। इन सारी विधियोंका मूल उद्देश्य मानवीय कर्तव्योंपर जोर देना था किन्तु दुर्भाग्यवश उनका उपयोग कमजोरोंका शोषण करने और उन्हें उनके अधिकारोंसे वंचित करनेके लिए किया गया है।

जहाँतक स्त्रियोंकी अस्पृश्यताकी बात है उनकी उस अस्पृश्यताकी तुलना, आजकल हम अपने ही चार करोड़ मानव-बन्धुओंके साथ जैसी अस्पृश्यता पालते हैं, उसके साथ करना सत्यकी हत्या करने-जैसा है। स्त्रियोंकी वह स्वल्पकालिक अस्पृश्यता शरीरकी एक स्वल्पकालिक अवस्थासे सम्बद्ध है। लेकिन करोड़ों अस्पृश्योंकी यह अस्पृश्यता तो उसकी दलितावस्थाकी निशानी है; वह उनके जन्मसे जुड़ी हुई है, शरीरकी शुचिता-अशुचितासे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। पहली अस्पृश्यताके लिए, यदि वह विवेककी सीमाके भीतर पाली जाये, तो विचारका आधार है। यह दूसरी अस्पृश्यता तो एकदम विचारहीन है और शास्त्रोंकी अज्ञानपूर्ण तथा स्वार्थमूलक व्याख्यापर आधारित है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, २२-४-१९३३

५५२. एक मित्रकी चेतावनी[1]

आपने जब हरिजन-सेवाका कार्य हाथमें लिया, तब कुछ दिन तो मेरे मनमें बड़ी प्रसन्नता रही। लेकिन थोड़े ही दिनों बाद चिन्ता होने लगी। इतने दिन विचारोंमें बिताये। पर अब तो इस चिन्ताने मेरा खाना और सोना भी हराम कर दिया है। इसलिए यह लिखे बिना अब रहा नहीं जाता।

१. अंग्रेजीमें यह लेख २२-४-१९३३ के **हरिजन**में प्रकाशित हुआ था। उसमें सूचना भी दी गई है कि इस लेखमें आधा पत्र गुजरातीमें था। इसलिए यद्यपि गुजरातीमें यह लेख अंग्रेजीसे एक दिन बादमें छपा, फिर भी गुजरातीका ही अनुवाद देना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है

आज कई वर्ष हुए, मेरी सदा यह आकांक्षा रही है कि इन अन्त्यज भाइयोंको इतना अधिक अपना लूँ, कि वे भूल जायें, कि वे अन्त्यज हैं। उनकी पृथक् पाठशालाएँ तोड़ दी जायें, उनके लिए अलग कुएँ न बनवाये जायें, शिक्षामें, मिलने-जुलनेमें, जलाशयके उपयोगमें अलगाव एकदम नष्ट कर दिया जाये, इसी भावना और आशासे मैंने काम किया। आपने जब यह काम शुरू किया, तब आशा थी कि उसके फलस्वरूप अब 'अन्त्यज' शब्द सदाके लिए विदा हो जायेगा और तमाम अन्त्यज हिन्दू समाजमें समा जायेंगे। पर आजकल जो हो रहा है, वह सब देखकर तो मुझे बड़ी पीड़ा होती है। इसका फल तो यह दिखाई देता है कि वे और भी अलग हो रहे हैं। अलग पाठशाला, अलग छात्रवृत्तियाँ — सारी योजनाएँ हरिजनोंके लिए अलग हो रही हैं। और आप इस प्रगतिपर खुश हो रहे हैं। मुझे तो बड़ा दुःख होता है। मैं तो साफ देखता हूँ कि इन सब बातोंका नतीजा यह होगा कि आज पाँच करोड़ हरिजन हैं, तो कल दस करोड़ हो जायेंगे। और फिर कोई ऐसे साधु-संन्यासी मिल जायेंगे जो उसके गद्दीधारी आचार्य बनकर हरिजनोंके लिए एक नया पंथ स्थापित कर देंगे। सौ-दो सौ वर्षके बाद आप हरिजन-धर्मके संस्थापक कहे जायेंगे। आपकी मूर्तियाँ पधराई जायेंगी, और आप ही के नामपर हिन्दुओंसे पृथक् 'हरिजन' नामका एक निराला वर्ग बन जायेगा।

आपके नामपर हरिजन-सेवाका यह कार्य सर्वत्र जिस तरह चलाया जा रहा है उस तरह तो आप इन हरिजन भाइयोंको अपना एक अलग वर्ग बनाने के लिए ही प्रेरित कर रहे हैं। इस अलगावमें ही वे अपना श्रेय देखते हैं। आपने डाक्टर अम्बेडकर तथा श्री श्रीनिवासन्‌के लिए रास्ता खोल दिया है। उनके हाथ आपने मजबूत कर दिये हैं। अब हिन्दू समाजमें वे घुलेंगे-मिलेंगे नहीं। 'अन्त्यजोंकी जय', 'हरिजनोंकी जय'के नारे सुनाई देंगे।

यह सब मैं बिना सोचे-समझे नहीं लिख रहा हूँ। जो अपनी आँखोंसे देखता हूँ उसका हृदयपर पड़ा हुआ प्रभाव ही इस पत्रमें दिया गया है और यह लिखते हुए मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।

आपकी लड़ाईका मूल उद्देश्य छूटा जा रहा है। आप एक जालमें फँस गये हैं। आप अगर हिम्मतसे उससे बाहर न निकले, तो बहुत बुरा होगा।

आप करने चले थे कुछ, पर हो गया कुछ और ही। उन्हें हिन्दुओंमें समाविष्ट करनेका कार्य तो एक ओर रह गया, उसके बजाए उनका उद्धार करनेके बहाने आपने उन्हें एक लुभावना नाम दे दिया है। उनका यह 'हरिजन' नाम उन्हें शेष हिन्दू समाजसे अलग कर रहा है। परिणाम यह होगा कि अब वे हिन्दुओंमें नहीं मिलेंगे। लालची और स्वार्थी धर्मगुरु उनका एक अलग वर्ग बना देंगे और इस कार्यमें आप उनका हथियार होंगे।

> **जैसे हिन्दू, मुसलमान, सिख आज आपसमें एक-दूसरेका सिर तोड़ रहे हैं, वैसे ही देशमें झगड़ा करनेवाला एक वर्ग पैदा हो जायेगा। उनके अलग मन्दिर पहलेसे ही थे और नये भी बनते जा रहे हैं। उनपर कब्जा करनेकी कोशिश अनेक पंथवाले अभीसे कर रहे हैं और वह सब हो रहा है आपके ही नाम पर — "महात्मा गांधीकी जय' के नारेके साथ। अधिक क्या लिखूँ?**

इस पत्रके लेखकका नाम मैं प्रकट नहीं करना चाहता। पर उन्हें सभी जानते हैं। वे भारतके सच्चे सेवकोंमें से एक हैं। उन्होंने हरिजनोंकी खास सेवा की है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि इस पत्रको सब लोग ध्यानसे पढ़ें। मैंने इसे दो बार पढ़ा और इसपर विचार किया। उनकी चेतावनी माकूल है और सामयिक है। सम्भव है, उनकी यह आशंका सच निकले।

मान लिया जाये कि लेखकका डर सत्य ही साबित हुआ तब भी मैं पछतानेवाला नहीं। इन्सान सोचता कुछ है, ईश्वर करता कुछ और ही है। अगर होनहार एसी ही हुई तो वह कोई नई बात नहीं। ईश्वर सब-कुछ करता हुआ भी किसी चीजके कर्तृत्वका जिम्मा अपने सिर नहीं लेता; नहीं तो मैं ईश्वरपर ही सारी जिम्मेवारी डाल देता। अपनी जिम्मेवारी मैं लेशमात्र भी नहीं मानता। हाँ, एक बातकी जिम्मेवारी मैं अवश्य सहर्ष ले लूँगा। वह इस बातकी कि 'अन्त्यज' नाम छोड़कर एक अन्त्यज भाईका ही सुझाया हुआ अत्यन्त मधुर और समुचित नाम 'हरिजन' मैंने ही पसन्द किया। सो 'अन्त्यजोंकी जय' के बजाय 'हरिजनोंकी जय' के नारे भले लगाये जायें।

सनातनी कहते हैं, अन्त्यज तो अनादिकालसे अलग माने गये हैं, और उन्हें अलग रखनेके लिए हम अपने प्राणों तककी बाजी लगा देंगे। दूसरी ओर मैं उन्हें हिन्दू समाजमें ओतप्रोत करके उनका अलगावको नष्ट करनेके लिए अपने प्राण दे देनेकी शक्ति ईश्वरसे माँग रहा हूँ और वैसी ही शक्ति पानेकी प्रार्थना करनेको दूसरोंको भी ललचा रहा हूँ। सनातनी भाई जब हरिजनोंको अलग रखनेकी कोशिश कर रहे हैं, और उसका जो परिणाम होगा उसकी जिम्मेवारी वे खुद लेनेके लिए तैयार हैं; तब फिर वह जिम्मेवारी किसकी है, यह निश्चित करनेका सवाल ही नहीं रहता।

हरिजन कंगाल रहें, गुलाम रहें, सदाके लिए सवर्णोंके अधीन रहें, जूठन खानेवाले रहें, इससे तो यह बेहतर है कि वे जाग्रत होकर सवर्ण हिन्दुओंका सामना करें और उनसे अच्छी तरह सुलझ लें। ऐसी लड़ाईके लिए उन्हें तैयार करनेमें मेरी मददकी जरूरत न तो डाक्टर अम्बेडकरको है, और न रावबहादुर श्रीनिवासन्को ही। काल अपना कार्य कर रहा था और अब भी कर रहा है। काल भगवान्ने ही इन दो सज्जनोंको तैयार किया है और औरोंको भी तैयार कर रहा है। अगर सवर्ण हिन्दू अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करेंगे, तो फिर सर्वसमर्थ काल तो ऐसे अनेक सेवक तैयार करेगा ही।

जो चीज आँखोंके सामने है उसे नकारनेसे वह नष्ट नहीं हो सकती। घरमें घुसा हुआ साँप नहीं है यह कहनेसे वह निकल जानेवाला नहीं। रोगका खयाल न करनेसे रोग दूर नहीं होता। मैं अपनेको इस विषयमें सच्चा वैद्य मानता हूँ। मैंने रोगग्रस्त हिन्दू धर्मकी नाड़ी अच्छी तरहसे देख ली है और दवा भी मैंने उपयुक्त बताई है। उसका यदि भली-भाँति उपयोग हो तो रोगका अवश्य नाश होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन रोगी उसका उपयोग ही न करे तो वैद्य बेचारा क्या कर सकता है? अधिकसे-अधिक वह मरीजके सिराहने बैठकर अनशन कर सकता है। वैद्य वैसा करनेकी भी तैयारी कर रहा है। अनशनके लिए जो योग्यता चाहिए वह मिले तो फिर वह किसीके रोके रुकनेवाला भी नहीं है।

रोग हरिजनको नहीं है। अगर हरिजनको है तो उसका कारण सवर्ण हिन्दू ही हैं। रोग तो असलमें हुआ है सवर्ण हिन्दूको। पर वह स्वीकार नहीं करता कि उसे रोग है। वह मरीज तो निदान करनेवाले वैद्यको घुड़कता है। पर वैद्यको इसकी परवाह नहीं। वह तो पुकारता ही रहता है — 'अरे, तेरे घरमें आग लगी है, आग।'

लेकिन ललाटके अंक कभी व्यर्थ नहीं होते। अगर हिन्दू धर्मका नाश होना ही है, तो कौन क्या कर सकेगा? बुद्धि 'कर्मानुसारिणी' कही गई है। कर्मका अर्थ है भविष्य। जैसी भवितव्यता होगी वैसी ही मति-गति सवर्ण हिन्दुओंको सूझेगी। होनहार होकर रहेगी। यानी, अन्तमें उनका भी क्या दोष?

इसलिए पत्र लिखनेवाले हिन्द-सेवकको मेरी सलाह है कि वह व्यर्थ व्याकुल न बनें, अपना खाना व सोना खराब न करें। वह तो एकाग्र होकर बराबर अपना कर्तव्य करते रहें। वह कहेंगे — 'मेरा तो धर्म था कि आपको चेतावनी दे दूँ। वह मैंने कर दिया। अब आप जानो, आपका काम जाने। मैं शान्त हूँ।' तब तो ठीक ही है। तब उन्हें शान्त करनेको कुछ रहा ही नहीं। उन्होंने चेतावनी दी तो अच्छा ही किया। मैं अधिक सावधान बनूँगा। अपना मार्ग तो मेरे सामने साफ है। मैं ध्यान रखूँगा कि किसी भी हालतमें उससे न डिगूँ। पत्र लिखनेवाले हिन्द-सेवकका और मेरा आदर्श एक ही है। वे जैसे हरिजनोंका अलग पंथ नहीं देखना चाहते, वैसे ही मैं भी उनके अलगावका विरोधी हूँ। मैं नये पंथका आचार्य बननेका स्वप्न भी नहीं देख रहा हूँ। मैं तो हिन्दुओंका अतएव हरिजनोंका और हिन्दूका अतएव हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी सभीका सच्चा सेवक बनना चाहता हूँ और सेवा करते-करते ही मरना चाहता हूँ।

लेकिन उक्त हिन्द-सेवककी चेतावनी जैसे मेरे लिए है, वैसे ही सनातनी भाइयोंके लिए भी है। क्या वे चेतेंगे?

[गुजरातीसे]
हरिजनबन्धु, २३-४-१९३३

५५३. तार : प्रभाशंकर पट्टणीको

२२ अप्रैल, १९३३

सर प्रभाशंकर पट्टणी
अदन

ईश्वर आपको जीवन-दान दे। तार द्वारा हालत बतलाइए।

गांधी
वल्लभभाई

अंग्रेजीकी फोटो-नकल (जी० एन० ५९२९)से। सी० डब्ल्यू० ३२४५ से भी; सौजन्य : महेश पट्टणी

५५४. पत्र : नारणदास गांधीको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० नारणदास,

पिछले तीन दिनोंसे यानी उस बृहत्काय डाकके बादसे तुम्हारा कोई पत्र नहीं है। इसलिए थोड़ी चिन्ता हो रही है।

काकाके पास ऐसा समाचार आया है कि आनन्दीको बुखार आ रहा है। क्या बात है? कुसुम कैसी है? लक्ष्मीबहनके बारेमें मैंने तुम्हें तार किया है। नर्मदाका पत्र आया है। आज कोई आयेगा या नहीं, कह नहीं सकता। शायद आज पत्र आये। यह मैं प्रार्थनाके पहले लिख रहा हूँ।

तुम्हारे विषयमें भी चिन्तित रहता हूँ। तुम्हारे पास तुम्हारे बारेमें दूसरोंके विचार भेजता रहता हूँ। आशा करता हूँ कि तुम्हें उनका बुरा नहीं लगता होगा। जो व्यक्ति कोई बड़ी जिम्मेदारी उठाता है उसकी टीका तो होती ही है। उसे सुनकर जो अलिप्त रह सकता है वह उससे लाभान्वित ही होता है, और जो उद्विग्न होता है वह तो प्राणान्तक कष्ट पाता है। हमारे पास तो 'निन्दक बाबा' के बारेमें भजन भी है — भजन बहुत अच्छा है, ऐसा मैं नहीं कहता। भजनके रचयिताने उसमें निन्दकके प्रति उदारता नहीं दिखाई है। किन्तु भजनका आशय ठीक है। जो भी हो, तुम स्वस्थ होओ या अस्वस्थ, मुझे तुम्हारा पत्र मिलता रहे तो मैं निश्चिन्त रह सकता हूँ। इसलिए प्रतिदिन एक कार्ड तो लिख ही दिया करो।

नी० के विषयमें मैंने तुम्हारी राय पूछी थी। वह आज यहाँ आ जायेगी। उसका त्याग इस समय तो उसके पिछले भोग-विलास जितना ही प्रतीत होता है। साबुन और तेलका खर्च बचानेके लिए मैंने उसे केश कटा डालनेकी सलाह दी थी। उसने ऐसा ही किया। ऐसे और भी कई अनुभव हैं। किन्तु उन्हें लिखनेका समय नहीं है।

इसके साथ कनुमूर्ति राममूर्तिका पत्र भेज रहा हूँ। ऐसा लगता है कि उसने तुम्हें कुछ लिखा है। वह आश्रममें आना चाहता है; मुझसे मिलना चाहता है। आजकल तो मैं उसे रोकता रहा हूँ। लेकिन अब मैं उसे आकर मिलनेकी अनुमति दे रहा हूँ। इस बीच तुम्हें उसके बारेमें कोई अनुभव हुआ तो मुझे लिखना।

सीतलासहायका एक नाराजी-भरा पत्र आया है। एक पत्र प्रभुदासका भी आया है। उसकी सगाईका अभी कुछ पक्का नहीं हुआ है।

बापू

गुजरातीकी माइक्रोफिल्म (एम० एम० यू०/१) से। सी० डब्ल्यू० ८३५९ से भी; सौजन्य : नारणदास गांधी

५५५. पत्र : के० केलप्पनको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय केलप्पन,

आपका पत्र मिला। आपको 'हरिजन' नियमित रूपसे भेजा जा रहा है, इसमें सन्देहकी कोई गुंजाइश नहीं। समझमें नहीं आता कि फिर रास्तेमें कैसे गड़बड़ हो जाती है। आपकी हिदायतके मुताबिक पता बदल दिया गया था। मैं फिर पूछताछ करूँगा। आपको 'हरिजन' नियमित रूपसे मिलना ही चाहिए। कालिकटमें ही दूसरे कई लोगोंको नियमित रूपसे मिल रहा है। इसलिए आशा है कि आपने 'हरिजन' के सभी अंक पढ़ तो लिये होंगे।

समितिके सदस्योंके नाम मैंने देख लिये हैं। आशा है, उसमें सदस्योंकी संख्या आवश्यकतासे अधिक नहीं हो पायेगी;[१] और ऐसा नहीं होगा, यदि सदस्योंमें से प्रत्येक सचमुच कार्यकर्ता हो। आप मात्र शोभा बढ़ानेके लिए तो सदस्य नहीं रखना चाहते। आप तो उपयोगी कार्यकर्ता चाहते हैं, जिनमें से प्रत्येकको उसका एक निश्चित कार्य सौंप दिया जाये।

याद रखिए कि लक्ष्य अब भी गुरुवायूर ही है। उसे छोड़ा नहीं गया है, केवल उसका समय कुछ आगे बढ़ा दिया गया है। आप अपने आन्दोलनके बारेमें मुझे जब-तब जानकारी देते रहियेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०३६)से।

१. के० केलप्पनने १६ सदस्योंकी एक सूची दी थी।

५५६. पत्र : ए० जी० मुलगाँवकरको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय मित्र,

पत्रके लिए धन्यवाद। आपने जिन कागजातका उल्लेख किया है, वे अब तक मेरे पास नहीं पहुँचे हैं।[1] उनके मिलते ही, मैं उनको देखनेके लिए थोड़ा समय निकालनेकी कोशिश करूँगा और यदि उनमें कोई ऐसी उपयोगी चीज मिली जिसके बारेमें मैं कुछ कह सकता हूँ तो मैं निश्चय ही आपको लिख दूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ए० जी० मुलगाँवकर
अवैतनिक संयुक्त मन्त्री
द आल इंडिया हिन्दू लॉ रिसर्च एण्ड रिफॉर्म एसोसिएशन
पोपटवाड़ी, कालबादेवी रोड, बम्बई

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२९) से।

५५७. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय च० रा०,

११ अप्रैलका आपका पत्र मुझे कल ही मिल पाया। दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन क्या किया जाये।

विधेयकोंके भाग्यके बारेमें कुछ भी लिखनेके सिलसिलेमें एक बारीकी आड़े आ रही है।[2] आप यदि कोई लाभ देखें, तो मैं वाइसरायको और भारत मन्त्रीको भी व्यक्तिगत रूपमें पत्र लिखनेको तैयार हूँ, पर उनको सार्वजनिक रूपसे कुछ लिखनेमें मुझे संकोच होगा। इसमें कोई शोभा नहीं कि कोई बन्दी स्वयंको बन्दी बनानेवाली सरकारकी सार्वजनिक रूपसे आलोचना करे। आप देखेंगे कि सार्वजनिक रूपसे

१. ए० जी० मुलगाँवकर जिस एसोसिएशनके संयुक्त मन्त्री थे, उसका साहित्य।

२. च० राजगोपालाचारीने गांधीजी को सूचित किया था कि सरकारने एक प्रशासनिक आदेश जारी करके श्री हरविलास शारदाका यह अनुरोध ठुकरा दिया है कि विधेयकको राय बनानेके लिए प्रचारित किया जाये या फिर विधानसभाके चालू सत्रमें गैर-सरकारी कार्यके लिए एक अतिरिक्त दिन रखा जाये और उस दिन अस्पृश्यता-निवारण तथा मन्दिर-प्रवेश विधेयकोंकी चर्चा की जाये।

सरकारकी आलोचना करनेसे मैं बड़ी सतर्कतापूर्वक बचता आ रहा हूँ और मैं समझता हूँ कि ऐसी निर्लिप्तता मुझे कायम रखनी चाहिए।

नरसिंहम्‌को दिनशा मेहताकी देखभालमें रखनेसे मुझे प्रसन्नता होगी, पर मैं जानता हूँ कि प्राकृतिक चिकित्सामें आप विश्वास नहीं करते और यदि करते भी हैं तो उतना नहीं जितना कि मैं करता हूँ। काका इन दिनों सिंहगढ़में यही चिकित्सा करा रहे हैं और सिंहगढ़ एक बहुत ही उत्तम, स्वास्थ्यकर, एकान्त स्थल है। यह पूनासे कुछ ही मीलकी दूरी पर है। यदि आप उसको सिंहगढ़ नहीं भेजते, तो मैसूर आरोग्यालय भेज दीजिए।

आपके वहाँ पहुँचनेपर पापाकी हालतमें सुधार होना निश्चित था। मैंने उसके बारेमें भी अपना सुझाव दिया है।

एक सुझाव और। बहुत सम्भव है कि बियरम-दम्पति[१] पहाड़पर चले गये हों। बहुत ही भले लोग हैं और वे बड़ी खुशीसे पापाको अपने साथ रख लेंगे। पापा इतनी अंग्रेजी जानती ही है कि वियरम-दम्पत्तिके साथ घुलमिल सके। और आपको मालूम ही है कि वे पुडुकोट्टामें हैं। आप कहें तो मैं भी उनको लिख दूँ।

सबकी ओरसे सप्रेम,

हृदयसे आपका,
बापू

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स; होम डिपार्टमेंट, स्पेशल ब्रांच, फाइल नं० ८०० (४०) (३), भाग ४, पृष्ठ ३७३; एस० एन० २१०३७ से भी

५५८. पत्र : नी० को

[२२][२] अप्रल, १९३३

प्रिय नी०,

शास्त्री बुधवारसे ही हर रोज सुबह स्टेशन जाता और निराश हो लौट आता था। म तुम्हारे बारेमें इतना ही चिन्तित था। मुझे खुशी है कि आखिर तुम आ गईं। आशा है, तुम्हारी सेहत पहलेसे अच्छी होगी। तुम सीधी सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटीकी अतिथिशालामें चली जाना, वहीं रहना और जल्दी न आ सको तो सम्पादक शास्त्री या कहो 'हरिजन शास्त्री'—उसका यही नाम पड़ गया है—के साथ चली जाना। यदि भूख न लगती हो तो तुम दूध भी मत लेना, बस फलोंका

१. ये पहले बंगलोरके थियोलॉजिकल कॉलेजमें थे।

२. साधन-सूत्रमें "२१" है जो सम्भवतः चूक है। नी० २२ अप्रैलको पूना पहुँची थी; देखिए अगला शीर्षक।

रस ही लेना। यदि किसी भी चीजकी इच्छा न करती हो, तो सिर्फ पानी ही पीना और यहाँ आने पर फलोंका रस लेना। मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा। मेरे पास आनेसे पहले तुम बिलकुल अपनी मर्जीके मुताबिक चलना। सबसे अच्छा तो यही रहेगा कि फल और दूधके अलावा कोई चीज न लो। आशा है, मेरे पास आने लायक ठीक सेहत तुम्हारी रहेगी। यदि इससे पहले चिकित्सककी सहायताकी जरूरत पड़ी तो शास्त्री उसका प्रबन्ध कर देगा। सि० को खाने-पीनेके लिए तुम वही देना जो सोसाइटीकी अतिथिशालामें सुलभ हो। यहाँ आते समय उसे साथ लेती आना। हाँ, अभी तुम नंगे सिर नहीं रह सकती। मेरा खयाल है, मैंने तुमसे कहा था कि तुमको मेरी तरह सिरपर एक गीली पट्टी बाँधनी पड़ेगी। फिर तुम देखोगी कि तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।

इसी महीनेकी १८ तारीखका तुम्हारा पत्र मुझे आज मिला। १७ तारीखका पत्र अबतक मुझे नहीं मिला।

हृदयसे तुम्हारा,

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२४) से।

५५९. पत्र : पी० एस० रुद्रमणिको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय रुद्रमणि,

आज सुबह सि० के साथ नी० यहाँ सकुशल पहुँच गई। तारके लिए धन्यवाद। अबतक उनसे मेरी मुलाकात नहीं हुई है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० एस० रुद्रमणि
चीतलदुर्ग

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०२८)से।

५६०. पत्र : के० सी० सूर्यनारायणको

२२ अप्रैल, १९३३

प्रिय सूर्यनारायण,

आपका पत्र मुझे मिल गया। पर मैं आपकी सहायता करनेमें एकदम असमर्थ हूँ। आपको अपनी सभी दलीलें अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्रीके सामने रखनी चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० सी० सूर्यनारायण
खद्दर-विक्रेता
पीठापुरम्

अंग्रेजीकी माइक्रोफिल्म (एस० एन० २१०३०)से।

५६१. पत्र : पुरुषोत्तम डी० सरैयाको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० काकु,

तू यह तो समझ ही गया होगा कि तेरा विवाह ऐसे अवसरपर क्यों हो रहा है। यदि तूने और लक्ष्मीने[1] यह समझ लिया है कि विवाह भोगके लिए नहीं बल्कि त्यागके लिए है तो सब कुशल ही है। अपने विवाहके बाद दूनी समाज-सेवा करना, तथा धर्मपालनमें और भी सजग रहना। हम लोग जो पंचयज्ञ करते रहे हैं, विवाहके दिन तुम दोनों वे यज्ञ करना।

दोनों दीर्घायु होओ और सच्चे सेवक बनो।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मुझे याद नहीं पड़ता कि तेरा कोई पत्र मुझे मिला था। मुझे जो पत्र मिलते हैं उनमें से शायद ही कोई अनुत्तरित रहता हो।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८१५) से। सौजन्य : पुरुषोत्तम डी० सरैया

१. बम्बईके एक खादी-कार्यकर्ता विट्ठलदास जेराजाणीकी भतीजी।

तुम अपनी बहनके बारेमें कुछ नहीं लिखतीं।
काकुका कोई पत्र मुझे नहीं मिला।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो - ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने, पृष्ठ ७१-२। सी० डब्ल्यू० ८८०१ से भी; सौजन्य : गंगाबहन वैद्य

५६४. पत्र : शारदा चि० शाहको

२२ अप्रैल, १९३३

चि० शारदा,

तू अपना दिन कैसे बिताती है? तू कौन-सी दवा लेती है? तू क्या खाती-पीती है? तेरी सहेलियाँ कौन हैं? घरसे समुद्र कितनी दूर है? क्या वहाँ घूमने जाया जा सकता है? क्या तू जाती है? तेरे साथ और कौन जाती है? क्या तू आश्रमको पत्र लिखती है? किसको लिखती है? इन सब प्रश्नोंके उत्तर देना।

बापू

मूल गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९९६३) से। सौजन्य : शारदा गो० चोखावाला

५६५. पत्र : विश्वम्भरसहायको

२२ अप्रैल, १९३३

भाई विश्वंभर सहाय,

आपका खत मिला। अस्पृश्यता पर मैं 'हरिजन' में जो लेख लिख रहा हूं उससे अधिक क्या लिखुं? समय भी कहांसे? कोई किसीके वहां खाय-पीये ऐसा कोई धर्म नहिं है लेकिन अमुक मनुष्य अमुक जातिका है इसलिये उसके हाथका छुआ अन्न पाना त्याज्य है, ऐसा मानना अधर्म है। जो मनुष्य मैला होगा उसके हाथका पानी हम अवश्य न पीयें।

आपका,
मोहनदास गांधी

[पुनश्च :]

जिसमें लीखा था वह कागज वैसे भेजनेका नाम-ठाम दे दो।

सी० डब्ल्यू० ९६६७ से। सौजन्य : परशुराम मेहरोत्रा

परिशिष्ट

डॉ० जी० वी० देशमुख द्वारा गांधीजी को लिखे पत्रके अंश[1]

स्वस्थ जानवरके अपनी मौत मर जानेपर उसके मृत शरीरमें जो मांस होता है उसमें और वध किये गये जानवरके मांसमें कोई रासायनिक या शारीरिक शास्त्र-विषयक अन्तर नहीं होता। . . .

वध किये जानेपर पशुके शरीरसे खून निकलता है और इस तरह उसका लगभग सारा खून निकल जानेके कारण उसके मांसमें अपेक्षाकृत कम खून रह जाता है। अपनी मौत मरनेवाले पशुके मृत शरीरमें सारा खून उसके तंतुओंमें ही रह जाता है और इसलिए उसके मांसमें ज्यादा खून मिला हुआ होता है।

शरीरका विगलन तो अपनी मौत मरनेवाले और वध किये जानेवाले दोनों पशुओंमें होता है। नम तंतुओं और ज्यादा खून मिले तंतुओंका विगलन जल्दी आरम्भ होनेकी संभावना होती है। इसलिए अपनी मौत मरनेवाले पशुके शरीरकी अपेक्षा वध किये गये पशु के शरीरके जल्दी विगलित होनेकी सम्भावना रहती है।

आप शायद सोचते हों कि मांस जब विगलित होने लगता है तब दुनियाके सब लोग उसे खानेकी दृष्टिसे त्याज्य मानते हैं। केवल हमारे यहाँके दलित वर्गोंके ही लोग विगलित होते मांसको खाते हों, ऐसी बात नहीं है। दुनियाके अन्य भागोंमें भी ऐसा होता है। देखा गया है कि यूरोपके जिप्सी ऐसे मांसके बड़े प्रेमी होते हैं। बल्कि वे तो जमीनके नीचे गाड़ दिये गये मृत जानवरोंकी लाशें निकालकर उन्हें भी खाते हैं। अनुमान है कि दुनियाके तीस करोड़से अधिक लोग विगलित हो रही मछलियोंको खानेवाले हैं। . . .

रुग्ण जानवरका मांस : लेकिन यह सब स्वस्थ जानवरोंकी हदतक होता है। रुग्ण जानवरोंपर यह बात लागू नहीं हो सकती। विषाक्त मांस खानेके कारण पश्चिमी दुनियामें अनेक बार महामारियाँ फैली हैं। इनका कारण रुग्ण पशुओंका मांस खाना पाया गया है और पशुओंके जिन रोगोंके कारण उनका मांस विषाक्त हुआ वे उनकी मृत्युकी वजह बननेवाले जाने-माने पशु-रोग नहीं थे, जैसे कि ऐंथ्रेक्स और ग्लैंडर्स। इसके बजाय वे मामूली ढंगके मवाद पैदा करनेवाले रोग थे, जिनकी ओर पशुओंके जीते-जी लोगोंका ध्यान नहीं जाता। इसलिए सभी सभ्य देशोंमें मांसकी

१. देखिए पृष्ठ ३५५-५६।

ठीक जाँच की जरूरत महसूस हुई। भारतीय गाँवोंमें, जहाँ अपनी मौत मरनेवाले पशुओंका मांस खानेका ज्यादा चलन है, यह चीज कितनी खतरनाक हो सकती है इसका अनुमान तो कोई भी लगा सकता है, क्योंकि बहुत-से पशु ऐसे रोगोंसे मरते हैं जिन्हें कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, लेकिन जो मनुष्यके लिए खास तौरसे खतरनाक हैं। . . .

विष देकर मारे गये पशुओंका मांस खानेकी दृष्टिसे विषाक्त नहीं होता। . . . अमेरिकाके रेड इंडियन और ब्रह्मपुत्रके पासके अकास जनजातिके लोग भी जहर-बुझे तीरोंसे शिकार करते हैं, लेकिन इस तरह मारे गये पशुओंका मांस खानेसे उन्हें कोई नुकसान नहीं होता।

पशुओंको मारने के लिए भारतमें, शायद, कुचलाका प्रयोग किया जाता है, लेकिन खानेकी दृष्टिसे इस तरह मारे गये पशुका मांस विषाक्त नहीं होता। कुत्ते आदि जानवरोंको विष देकर मारे गये जानवरोंका मांस खिलाकर प्रयोग किया गया है। प्रयोगके लिए काममें लाये विषोंमें स्ट्राइचनिन, एसटिन, पिलोकार्पाइन, वेरेट्रिन आदि वानस्पतिक विष तथा संखिया, एंटीमनी आदि खनिज विष थे। लेकिन इस विषोंसे मारे गये जानवर खानेसे कुत्तों आदिको कोई नुकसान नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि यद्यपि यह विष किसी जानवरको मारनेके लिए तो काफी कड़ा होता है, लेकिन वह बादमें जारित होकर हानिरहित बन जाता है और इसलिए मांस भी हानिशून्य रह जाता है। खनिज विषों तथा कास्टिकका प्रयोग करनेपर देखा गया है कि इन विषोंका बहुत कम अंश जानवरोंके शरीरमें जज़्ब हो पाता है और इसलिए इनसे मारे गये जानवरोंके शरीरमें बहुत कम खनिज विष होता है। इसलिए विष देकर मारे गये जानवरोंका मांस खानेकी दृष्टिसे हानिरहित होता है।

[अंग्रेजीसे]

हरिजन, ८-४-१९३३

सामग्रीके साधन-सूत्र

'इन द शैडो ऑफ द महात्मा' (अंग्रेजी) : घनश्यामदास बिड़ला, ओरिएंट लांग-मैन्स लिमिटेड, कलकत्ता; १९३५।

'कंस्टीट्यूशन ऑफ द हरिजन सेवक संघ' (अंग्रेजी): हरिजन सेवक संघ, किंग्सवे, दिल्ली-९; १९५५।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद': सं० काका साहब कालेलकर; जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा; १९५३।

'बापुना पत्रो-४ : मणिबहेन पटेलने' (गुजराती) : सं० मणिबहेन पटेल; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५७।

'बापुना पत्रो-६ : गं० स्व० गंगाबहेनने' (गुजराती) : स० द० बा० कालेलकर; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद।

'बापुना पत्रो-९ : श्री नारणदास गांधीने', भाग २ (गुजराती) : सं० नारणदास गांधी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९६४।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९४८।

'बापूकी छायामें मेरे जीवनके सोलह वर्ष': हीरालाल शर्मा; ईश्वरशरण आश्रम, इलाहाबाद; १९५७।

'बापू — मैंने क्या देखा, क्या समझा': रामनारायण चौधरी; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९५४।

'महादेवभाईनी डायरी', जिल्द ३ (गुजराती) : सं० नरहरि द्वा० परीख; नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद; १९४८।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हरिजन' (१९३३-५२) : गांधीजी द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक, जो पहले पूनासे प्रकाशित होता था और १९४२से अहमदावादसे प्रकाशित होने लगा।

'हरिजनबन्धु': चन्द्रशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित गुजराती साप्ताहिक, जो पहले पूनासे निकलता था और बादमें अहमदाबादसे निकलने लगा।

'हरिजनसेवक': वियोगी हरि द्वारा संपादित हिन्दी साप्ताहिक, जिसका प्रकाशन दिल्लीमें आरम्भ हुआ था।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

बॉम्बे सीक्रेट ऐब्स्ट्रैक्ट्स, १९३३ : बम्बई सरकारके दस्तावेज।

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरी : स्वराज आश्रम, बारडोलीमें सुरक्षित।

स्पीगल पेपर्स : नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालयमें सुरक्षित।

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी-साहित्य तथा गांधीजी विषयक कागज-पत्रोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय।

नेहरू स्मारक संग्रहालय तथा पुस्तकालय, नई दिल्ली।

राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय तथा पुस्तकालय : गांधीजी से सम्बन्धित कागज-पत्रोंका संग्रहालय।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(६ मार्च, १९३३ से २२ अप्रैल, १९३३ तक)

६ मार्च : च० राजगोपालाचारी, देवदास गांधी और शंकरलाल बैंकर गांधीजी से यरवडा केन्द्रीय जेलमें मिले।

८ मार्च : गांधीजी ने लक्ष्मी और मारुतीके विवाहके अवसरपर शुभकामना-सन्देश भेजा।

९ मार्च : हरिजन सेवक संघके संविधानका मसविदा तैयार किया।

१२ मार्च : पूनासे गुजराती 'हरिजनबन्धु'का पहला अंक प्रकाशित।

१७ मार्च : भारतीय संवैधानिक सुधारपर श्वेत पत्र प्रकाशित।

१८ मार्च : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पत्र लिखकर गांधीजी ने पूनमचन्द राँकाके नाम लिखे अपने उस तारके रोक रखनेके फैसलेपर पुर्नविचार करनेका अनुरोध किया जिसमें उन्होंने राँकाको उपवास तोड़नेकी सलाह दी थी।

२३ मार्च : बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पुनः पत्र लिखा, जिसमें सरकारसे अपना निर्णय बदलनेका अनुरोध किया और निवेदन किया कि मानव-दयाकी दृष्टिसे तार उपवास करनेवाले कैदियोंतक पहुँचा दिया जाये, क्योंकि १९२२ से ही सरकार इस तरहकी सुविधा देती रही है।

२५ मार्च : पोलक गांधीजी से मिले।

२७ मार्च : एसोसिएटेड प्रेसको दी गई मुलाकातमें हरिजनोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोले जानेके महत्त्वपर जोर दिया।

२८ मार्च : पूनमचन्द राँकासे पत्र-व्यवहार करनेकी अनुमति की माँग करते हुए गृह-सचिवको पुनः पत्र लिखा।

१ अप्रैल : सरकारी आदेशका उल्लंघन करके कलकत्तामें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका २७वाँ अधिवेशन आयोजित किया गया और ६०० प्रतिनिधि गिरफ्तार हुए।

गांधीजी ने बम्बई सरकारके गृह-सचिवको उन्हें पूनमचन्द राँकासे सम्पर्क करनेकी अनुमति देनेके लिए धन्यवाद दिया, लेकिन सरकारके इस निर्णयपर खेद प्रकट किया कि मानव-दयाकी परिधिमें आनेवाले प्रश्नोंके सम्बन्धमें उन्हें अन्य कैदियोंके साथ भी पत्र-व्यवहार करनेकी अनुमति देनेकी पुरानी नीति जारी नहीं रखी जायेगी।

एन मेरी पीटर्सनने गांधीजी से मुलाकात की।

२ अप्रैल: भी० रा० अम्बेडकरने पूना समझौतेमें संशोधन किये जानेके बारेमें जेलमें गांधीजी से सलाह-मशविरा किया।

१० अप्रैल: गांधीजी ने तार भेजकर पूनमचन्द राँकासे उपवास तोड़नेको कहा, क्योंकि अधिक सुविधाएँ प्राप्त करनेके लिए उपवासका सहारा लेना, गांधीजी की दृष्टिमें, सत्याग्रहियोंके लिए उचित नहीं था।

१२ अप्रैल: बम्बई सरकारके गृह-सचिवको पत्र लिखकर इस बातपर दुःख प्रकट किया कि सरकारने मानव-दयाके कार्योंके निमित्त भी उन्हें कैदियोंसे सीधा सम्पर्क स्थापित करनेकी अनुमति न देनेका निर्णय किया है।

१६ अप्रैल या उसके पूर्व: अहमदाबादके हरिजन-नेता जेलमें गांधीजी से मिले।

१८ अप्रैल: गांधीजी ने ३० अप्रैलको हरिजन-दिवस मनानेकी अपील जारी की।

२२ अप्रैल: गांधीजी यरवडा केन्द्रीय जेलमें।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ख

घ

च

ड

ढ

त

थ

द

भ

म

य

र

ल

व

स

ह